# हिन्दी गद्य साहित्य

प्रश्न पत्र : *Core Course* | *Credits : 06*
*(DSC-IC)*
*HIND*-203

पूर्णांक : 100 (आई.सी.डी.ई.ओ.एल. एवं प्राईवेट परीक्षार्थी)
पूर्णांक : 70 (रेगुलर परीक्षार्थी)
आन्तरिक मूल्यांकन 30
समय तीन घण्टे

### इकाई–1

1.1 जैनेन्द्र कुमार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
1.2 उपन्यास : त्यागपत्र – पाठपरक अध्ययन
1.3 त्यागपत्र : तात्विक समीक्षा

### इकाई–2

2.1 प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, यशपाल एवं उषा प्रियंवदा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2.2 निम्नलिखित कहानियों का पाठपरक अध्ययन
कहानी :नमक का दरोगा – प्रेमचंद
आकाशदीप – जयशंकर प्रसाद
परदा – यशपाल
वापसी – उषा प्रियंवदा
2.3 उपर्युक्त कहानियों की तात्विक समीक्षा

### इकाई–3

3.1 रामचन्द्र शुक्ल तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
3.2 निम्नलिखित निबन्धों का पाठपरक अध्ययन
निबंध : लोभ और प्रीति – रामचन्द्र शुक्ल
कुटज – हजारीप्रसाद द्विवेदी
3.3 उपर्युक्त निबन्धों को तात्विक समीक्षा

### इकाई–4

4.1 महादेवी वर्मा तथा प्रभा खेतान का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.2 निम्नलिखित निबन्धों का पाठपरक अध्ययन
निबंध –संस्कृति और शिक्षा (चिन्तन के क्षण संग्रह से) – महादेवी वर्मा
भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद – प्रभा खेतान
4.3 उपर्युक्त निबन्धों की तात्विक समीक्षा

**प्राश्निक के लिए निर्देश :**

1. प्रश्न पत्र दो भागो में विभक्त होगा। पहला भाग अनिवार्य है, जिसमें एक प्रश्न के अन्तर्गत 14 वस्तुनिष्ठ बहुविकल्पीय प्रश्न पूछे जाएंगे। वस्तुनिष्ठ प्रश्न समान रूप से चारों इकाइयों में से पूछे जाएंगे।

$14 \times 1 = 14$ अंक (रेगुलर, आई.सी.डी.ई.ओ.एल. एवं प्राइवेट)

2. दूसरे भाग के अन्तर्गत चार प्रश्न शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चारों इकाइयों में से पूछे जाएंगे। सभी प्रश्न अनिवार्य होंगे। प्रत्येक प्रश्न को दो उपविभागों में विभाजित किया जाएगा, जिनमें से दूसरा उपविभाग व्याख्या से सम्बन्धित रहेगा। प्रत्येक प्रश्न के लिए 7 अंक निर्धारित किए गए हैं।

7 + 7 = 14 अंक (रेगुलर)

10¾ + 10¾ = + 21½) अंक (आई.सी.डी.ई.ओ.एल. एवं प्राईवेट)

**अंक विभाजन**

रेगुलर 14 + 14 (7+7) + 14 (7+7) + 14 (7+7) + 14 (7+7) = 70 अंक

आई.सी.डी.ई.ओ.एल. एवं प्राइवेट विद्यार्थियों के लिए दूसरे भाग के अंतर्गत प्रत्येक प्रश्न 21½ अंकों का होगा।

14 + 21½ + 21½ + 21½ + 21½ = 100 अंक

*****

# इकाई—1
# हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

**संरचना**

1.1 भूमिका
1.2 उद्देश्य
1.3 उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास
    1.3.1 उद्‌भव
    1.3.2 विकास
    स्वयं आकलन प्रश्न
1.4 सारांश
1.5 कठिन शब्दावली
1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
1.7 संदर्भित पुस्तकें
1.8 सात्रिक प्रश्न

## 1.1 भूमिका

पिछली कक्षा में हमने अनिवार्य हिन्दी, लोक साहित्य एवं अनुवाद विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन किया। इस कक्षा में हिन्दी गद्य साहित्य का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत हम हिन्दी गद्य साहित्य के अभिन्न अंग उपन्यास के उद्‌भव एवं विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 1.2 उद्‌देश्य

इकाई एक का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे –

1. उपन्यास का उद्‌भव कैसे हुआ ?
2. उपन्यास का स्वरूप क्या है ?
3. उपन्यास का विकास कैसे हुआ ?
4. उपन्यास का क्या अर्थ है ?
5. उपन्यास की क्या परिभाषा है ?

## 1.3 हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

आधुनिक काल की विकसित गद्य विद्याओं में उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी का उपन्यास शब्द अंग्रेजी 'नॉविल' Novel का हिन्दी पयार्य माना जाता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास का उद्‌भव आधुनिक काल से माना जाता है। उपन्यास शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'उप' और 'न्यास'। 'उप' का अर्थ है समीप और 'न्यास' का अर्थ है रखना। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ समीप रखना। हिन्दी उपन्यास साहित्य पर यूरोपीय साहित्य का सीधा प्रभाव है। भारतीय क्षेत्र जो सीधे तौर पर अंग्रेजों के संपर्क में था, वहां इसका आरम्भ कुछ पहले हुआ। बांग्ला में हिंदी से पूर्व ही उपन्यास लेखन आरम्भ हो चुका था। अतः हिन्दी उपन्यास पर बंगला उपन्यास का प्रभाव पड़ा।

हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यास के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है इस सम्बन्ध में जिन दो उपन्यासों के नाम आते हैं ये हैं श्रद्धाराम फुल्लोरी कृत भाग्यवती (सन 1877) तथा लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरू' (सन् 1882)। परीक्षा गुरू को अधिकांश विद्वान हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं।

### 1.3.1 उद्‌भव

• **उपन्यास का अर्थ–** इकाई का आरंभ इस प्रश्न पर विचार करने के साथ करेंगे कि उपन्यास क्या है। उपन्यास पढ़ते हुए और उपन्यास के बारे में पढ़ते हुए हम कह सकते हैं कि उपन्यास वह गद्य रूप है जिसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है या कहा जा सकता है। महाकाव्य में उस प्रबंध की ध्वनि है जो जीवन के बहुविध विस्तार को समेटने में सक्षम है। हमारे यहाँ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ऐसी कृतियाँ मिलने लगती है जिन्हें उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। उसमें गल्प का तत्व भी है और रोमांस का तत्व भी। पर सच्चाई यह है कि उपन्यास का अर्थ और स्वरूप बहुत कुछ बदलता रहा है। कथानक जो उपन्यास का मुख्य तत्व है उसे छोड़कर भी उपन्यास लिखे गए हैं। भारतेंदु के एक अधूर उपन्यास से शब्द लेकर कहें कि वह आपबीती भी है और जगबीती भी। वह एक समूचा वृत्तांत भी है और नये प्रयोगों तक आते–आते खंड–खंड में भी सम्पूर्ण नजर आता है। वस्तुतः 'उपन्यास' शब्द में ही अर्थ की विविधता है। जीवन के सभी रूपों के बीच कोई ऐसा संबंध होता है, जिसे उपन्यास उद्‌घाटित करता है। किस्सागोई के अनेक रूप और गल्प या आख्यान के अनेक रूप उत्तमें घुल–मिल गये हैं। पर सबके साथ आप देखेंगे कि वह एक आधुनिक गद्य–रूप है जो जीवन को समग्रता में था कभी टुकड़ों में देख पाता है। प्रेस के उदय के साथ गद्य आया। उसे गद्य के साथ नया पाठक वर्ग मिला। उपन्यास क्या है का उत्तर पाने के लिए हमें इन तथ्यों को भी ध्यान में रखना होगा।

पहले तो यही ध्यान में रखें कि उपन्यास उन समाजों में प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में सामने आया है जिनकी विशेषताओं में है औद्योगिक सभ्यता, मध्यवर्ग और पूंजी। पर ठीक इन्हीं परिस्थितियों में सब जगह उपन्यास नहीं आया। भारतीय समाज में मध्यवर्ग की उपस्थिति के साथ किसान और किसानचेतना, स्त्री और स्त्रीचेतना को स्वीकृति मिली।

उपन्यास क्या है. प्रश्न पूछते हुए हमें कुछ चिन्तकों के विचार सूत्र याद आ सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जब 1910 में 'उपन्यास' नामक निबंध लिख रहे थे तो उन्हें इसका आभास था कि यथा–आधारित इस विधा को लेखक और पाठक दोनों की अनुमान शक्ति की जरूरत है। यह अनुमान शक्ति क्या है? विचार करें तो यही कल्पना है। एक प्रकार की ऐतिहासिक कल्पना के बगैर उपन्यास विधा असंभव है। इसी में समय का बोधा भी शामिल है और मानवचरित्र की मर्मस्पर्शी विविधता भी शामिल है। प्रेमचंद के अनुसार उपन्यास मानव चरित्र का चित्र मात्र है। पर हम उपन्यास के अब तक के विकास के बाद कह सकते हैं कि वह चित्र मात्र नहीं है। वह झलक भर नहीं है। वह हमारी आँखें खोल देता है और यथार्थ को हम कुछ और ही तरह से देखने लग जाते हैं। सोचने के लिए हमें हंगरी के उपन्यास आलोचक और सिद्धांतकार जार्ज लूकाच से यह विचार–सूत्र मिल चुका है कि उपन्यास 'ईश्वर विहीन दुनिया का महकाव्य' है। इस अर्थ में हमारी अनुभव–संवेदना की कोई बड़ी क्षति है, जिसका एहसास उपन्यास कराता रहता है। एक सीधे वृत्तांत रूप से काम नहीं चलता तो वह कई रूप अपनाता चलता है। अब तो उपन्यास के इतने रूप हैं कि उसे परिभाषित करना कठिन है।

- **उपन्यास के विभिन्न नामांतरण**

उपन्यास के विभिन्न नामांतरणों पर हमने कुछ चर्चा पिछली इकाई में की थी। उपन्यास को 'नावेल' के अर्थ में लें. तो प्रायः आलोचक मानते हैं कि 'नावेल' अंग्रेजी साहित्य में ही नहीं यूरोप में भी 'नया' था। इतिहास की दृष्टि से जैसा हम पहले कह आये हैं ब्रिटिश उपनिवेश बन चुके भारत में निबंध, कहानी, नाटक आदि गद्य रूपों के साथ ही उपन्यास आया। वह कथातत्व के आकर्षण से लोकप्रिय भी हुआ। मुद्रण कला का विकास, समाचार पत्रों का प्रसार, नये पाठक वर्ग का उदय और गद्य का विकास आदि कारणों ने उपन्यास के लिए आधार भूमि तैयार की। उन्नीसवीं सदी से भारतीय भाषाओं में उपन्यास मिलने लगता है।

यहीं से हमारा ध्यान इस विधा के विभिन्न नामांतरणों पर जाता है। इनके निहितार्थों पर ध्यान दें तो यह कहना एक प्रकार का सरलीकरण लगता है कि 'उपन्यास' रूप की दृष्टि से मुख्यतः पश्चिम की देन है।

हिंदी में 'उपन्यास' आने से पहले बंगला में 'उपन्यास' नाम प्रचलित था। यह केवल नवीनता का सूचक न था, कुछ और अर्थ दे रहा था। 'हिंदी साहित्य कोश' के खंड एक में 'उपन्यास' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है 'यह शब्द उप–समीप तथा न्यास–थाती के योग से बना है जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है. इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। यहीं यह भी कहा गया है कि उपन्यास शब्द हमारे लिए नया नहीं है। गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' तक इसकी दीर्घ परंपरा मानी जा सकती है यद्यपि वह आधुनिक उपन्यास नहीं है। आख्यान या दास्तान या कथा की चाहे कितनी लम्बी परंपरा क्यों न रही हो, उपन्यास है तो आधुनिक युग की देन ही।

उपन्यास के अन्य नामो में मुख्यतः गुजराती की 'नवलकथा' है या मराठी में 'कादम्बरी' उपन्यास शब्द के इतने अर्थ दिए गए हैं वाक्य का उपक्रम या बात का आरंभ होना, वाक्य प्रयोग, विचार, प्रस्ताव, धरोहर। धरोहर या थाती अर्थव्यंजक शब्द हैं। जानकारी के लिए, इसे स्मृति में रख लें कि कभी 'नाट्यशास्त्र' में प्रतिमुख संधि का एक भेद उपन्यास भी बताया गया है। लेकिन इस जानकारी से हमारी आज की उपन्यास–संबंधी समझ में कुछ जुड़ने वाला नहीं है। योरप में उपन्यास के लिए 'रोमांस' शब्द चला, तो यह भी स्वच्छन्दता सूचक शब्द है। इसमें साहसिक कथा और प्रेम–कथा का मिला–जुला रूप निहित है।

मराठी का 'कादम्बरी' शब्द सातवीं शताब्दी की बाणभट्ट रचित 'कादम्बरी' की याद जरूर दिलाता है पर दोनों में बहुत फर्क है और एक तरह से देखा जाय तो कोई सीधा संबंध भी नहीं है। हम आपसे पहले भी नामवर सिंह के एक निबंध का उल्लेख कर आये हैं 'अंग्रेजी ढंग का नावेल और भारतीय उपन्यास'। यहाँ नामवर सिंह की मुख्य स्थापना यही है कि हिंदी के सभी उपन्यास या दूसरी भाषाओं के सभी उपन्यास अंग्रेजी ढंग के नावेल नहीं है। उदाहरण के लिए, बंकिमचंद्र का उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' या हिंदी में जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' अंग्रेजी ढंग के नावेल नहीं हैं। 'श्यामा स्वप्न' यदि कादम्बरी के निकट जाता है तो बंकिमचंद्र के उपन्यास 'रोमांस' जान पड़ते हैं। अंग्रेजी ढंग के नावेल बाहे यथार्थवादी ही हैं लेकिन हैं तो अनुकरणधर्मी। जबकि 'कादम्बरी' कल्पनाशीलता से जुड़ी विधा है। यहाँ फिर नामवर सिंह की यह धारणा याद करने योग्य है 'कभी–कभी यह ख्याल भी आता है कि यदि सभी भारतीय भाषाओं में मराठी की तरह 'नावेल' के लिए 'कादम्बरी' संज्ञा स्वीकार कर ली गयी होती तो शायद अपनी जातीय स्मृति अधिक सुरक्षित रहती और अपनी परंपरा का प्रत्यभिज्ञान हमारी कथात्मक सर्जनात्मकता में कुछ और रंग लाता।'

कह सकते हैं कि नामांतरण से कुछ न कुछ नयी विशेषता तो जुड़ ही जाती है। 'नावेल', 'नवल', 'नवलकथा', 'कादम्बरी', 'उपन्यास', 'रोमांस' ये हैं तो उपन्यास के अनेक नाम या पर्याय, पर इनके अंतर पर जरूर ध्यान देना चाहिए। 'उपन्यास' शब्द में कई तरह की व्यंजकता संभव हुई होगी जब नये शिल्प, नये रूप प्रकार प्रचलन में आये होंगे। जब उपन्यास 'आत्मकथात्मक' या 'जीवनीपरक' होगा तो उसका अर्थ कुछ और होगा। फिर कभी वे डायरी के रूप में होंगे या पत्र के रूप में होंगे तो भी 'उपन्यास' की अर्थवत्ता कुछ विशेष हो उठेगी।

उपन्यास को यथार्थ और संभाव्यता के बीच की एक नयी परिघटना कह सकते हैं। आप अनुभव करेंगे कि यथार्थ को लेकर कई प्रकार के भ्रम प्रचलित हैं। कुछ लोग मानते हैं कि यथार्थ उतना ही है जितना हमारे सामने है या दिखता है। यदि ऐसा नहीं है तो वह अद्भुत लोक की चीज होगा। जबकि यह सच्चाई नहीं है। प्रेमचंद जैसे बड़े उपन्यासकारों ने भी यथार्थ को इतने सीमित अर्थ में नहीं लिया है। वे यथार्थ को जितना महत्व देते हैं उससे कम कल्पना या अनुमान को नहीं देते। आप किसी भी उपन्यास को देखें उसका यथार्थ उतना ही नहीं होगा जो घटित हो चुका हो। वह आगे कभी संभव अर्थात् संभाव्य भी हो सकता है। संभव है वह आगे कभी वैसा ही घटित हो आज हम जिसे कल्पनातीत मान रहे हैं। वह विगत में भी बहुत पीछे जाकर मिथकीय अर्थात् काल्पनिक नजर आ सकता है।

### 1.3.2 हिन्दी उपान्यास का विकास

हिन्दी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा रिश्ता है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिन्दी भाषी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया विलम्ब से प्रारंभ हुई। अतः हिन्दी में उपन्यास विधा का आरंभ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा विलम्ब से ही हुआ। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरभ 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने माना जाता है, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में पुनर्जागरण का आरंभ मुख्यतः 'आर्य समाज' (1875) की स्थापना और उसके आन्दोलन के साथ हुआ। बंगाल से आरंभ हुए पुनर्जागरण की लहर 1960 ई. के आस–पास हिन्दी भाषी क्षेत्र को छूने लगी थी। स्त्री–शिक्षा का आन्दोलन, विधवा–विवाह का समर्थन, बाल और वृद्ध विवाह का विरोध आदि इसी के परिचायक थे। हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का आन्दोलन भी इसी की अभिव्यक्ति था। दुर्भाग्य से वह अंग्रेजी विरोधी आन्दोलन न होकर उर्दू विरोधी आन्दोलन बन गया था. जिसके पीछे अंग्रेजी शासन की साजिश भी थी, पर उसके पीछे अपनी भाषा का प्रेम प्रेरक तत्त्व था। इसमें दो मत नहीं हो सकते। सातवें दशक के लगभग अन्त में आरंभ हुए खड़ी बोली हिन्दी साहित्य के आन्दोलन के मूल में भी पुनर्जागरण की प्रेरणा ही प्रमुख थी।

उपन्यास आधुनिक युग की देन है। अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य से पहले परिचित होने के कारण 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग बंगाल में लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के उठे दशक में निश्चित हो गया था। तत्पश्चात् बंगभाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवादों के क्रम में तथा पुनर्जागरण कालीन चेतना से सम्पृक्त होने के कारण, हिन्दी के क्षितिज पर भारतेन्दु के क्रियाशील होने पर हिन्दी में भी इसका प्रचलन हुआ। इस रूप में हिन्दी का 'उपन्यास' शब्द अंग्रेजी के नॉवल के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। किन्तु कुछ समालोचक विद्वान इस सत्य को झुठलाकर अपने पुरातनवादी आग्रह के कारण हिन्दी उपन्यास को प्राचीन भारतीय कथा साहित्य की परम्परा का क्रमिक विकास मानते हैं, जो सर्वथा अनुचित है क्योंकि अधिकांश प्राचीन कथा–साहित्य पद्य बद्ध, कुतूहलदायक, अलौकिक घटनाओं से पूर्ण प्रेममूलक तथा उपदेश वृति की भंगिमा से परिव्याप्त है। जबकि आधुनिक हिन्दी उपन्यास गद्य में लिखित, वैयक्तिक दृष्टिकोण, विश्वसनीयता, स्वाभाविकता तथा यथार्थपरक स्थितियों पर बल देता है जो निश्चित रूप से पश्चिमी शिक्षा के सम्पर्क का परिणाम है।

'परीक्षा गुरु' हिन्दी में वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से उपन्यास साहित्य की शुरुआत करता है। जब तक अन्य काई कृति प्रकाश में नहीं आती तब तक उसे हिन्दी के प्रथम उपन्यास के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता है।

#### प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास

प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों को हम सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर सकते है।

( 1) शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास

(2) उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास

(3) ऐतिहासिक उपन्यास

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास में घटनाओं की सृष्टि लेखक इस प्रकार करता है कि रचना में अनेक अद्भुत करिश्मे दिखाई पड़ते हैं। पाठक विस्मयकारी घटनाओं के मायाजाल में चमत्कृत होता हुआ दाँतो तले अंगुली दबाये कृति में डूबा रहता है। जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों में पाठक की कौतूहल वृत्ति को बनाये रखने की अद्भुत क्षमता होती है किन्तु इस समानता के बावजूद जासूसी और तिलस्मी उपन्यास के शिल्प में अन्तर है। इन उपन्यासों में कथानक की स्थिति रीड की हड्डी के समान होती है। जासूसी उपन्यास का कथानक सीमित कार्यकारण श्रृंखला से जुड़ा होता है. जबकि तिलस्मी उपन्यास के कथानक में विस्तार और बिखराव अधिक होता है। तिलस्मी उपन्यासों में कथा का क्रम आगे की ओर अग्रसर होता है, जासूसी उपन्यास में पीछे

की ओर जाता है। जासूसी उपन्यास की कथा तथ्यपूर्ण तत्कालीन समाज से सबंधित वास्तविक घटनाओं के आधार पर होती है, जबकि तिलस्मी उपन्यास की कथा चमत्कारपूर्ण सामन्ती वातावरण युक्त तथा कल्पनाजन्य होती है। इसी कारण जासूसी उपन्यास आज भी लोकप्रिय है, जबकि तिलस्मी उपन्यास अदृश्य हो गये हैं।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों में सर्वाधिक ख्याति तिलस्मी उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री को प्राप्त हुई। उस युग में जब हिन्दी क्षेत्र में भी उर्दू का बोलबाला था, हिन्दी के पाठक बहुत कम थे, देवकी नन्दन खत्री जी ने हिन्दी को असंख्य पाठक दिये। उनके उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी। यह खत्री जी की कलम का कमाल था। उनकी प्रसिद्ध तिलस्मी रचनाएँ हैं 'चन्द्रकान्ता' (4) भाग), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (24 भाग) और 'भूतनाथ (21 भाग) भूतनाथ के वे 6 भाग ही लिख पाये कि सन् 1913 में उनका स्वर्गवास हो गया। शेष 15 भाग इनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने लिखे।

किशोरीलाल गोस्वामी जी भारतेन्दु और द्विवेदी युग के मध्य की कड़ी है। इन्होंने लगभग 65 उपन्यास लिखे, जिनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिकता गौण है, लेकिन कल्पना की ऊँची उड़ानें और तिलस्मी करामाते अधिक दृष्टिगत होती है।

दुर्गाप्रसाद खत्री ने उपन्यास लेखन कला विरासत में ग्रहण की थी। इसी कारण पिता द्वारा छोड़े गये अधूरे उपन्यास 'भूतनाथ' को उन्होंने सफलतापूर्वक पूर्ण किया है। दुर्गाप्रसाद जी ने देख लिया है कि तिलस्म और ऐय्यारी को चमत्कृत करने वाला प्रभाव मन्द पड़ता जा रहा है. इसलिए उन्होंने कल्पना की ऊंची उड़ान भरते हुए वैज्ञानिक उपन्यास लिखे। इनके कई उपन्यासों में गोपालशंकर नाम का जासूस है। इसलिए इनके उपन्यासों को जासूसी उपन्यास की संज्ञा दी गई। दुर्गाप्रसाद खत्री जी के उपन्यासों में देश प्रेम की भावना व्यक्त की गई है। इनकी जासूस–अपराध प्रधान प्रमुख रचनाएँ है लाल पंजा, रक्तमण्डल, सफेद शैतान प्रतिशोध आदि उपन्यासों में तीन तरह के पात्र है– (1) जासूस गोपाल शंकर (2) शासक अंग्रेज और राजा, महाराजा नवाब आदि. (3) देशभक्त पात्र।

गोपालराम गहमरी ने हिन्दी में जासूसी उपन्यासों की परम्परा का श्रीगणेश किया। इन्होंने उपन्यासों के अतिरिक्त काव्य और नाट्य रचना भी की और जासूसी ऐतिहासिक, सामाजिक उपन्यास भी लिखे। किन्तु इनको हिन्दी साहित्य में ख्याति जासूसी उपन्यासकार के रूप में ही प्राप्त हुई। जासूसी उपन्यासों की परम्परा अंग्रेजी और बंगाली के माध्यम से हिन्दी में आई। गहमरी जी ने सर्वप्रथम नगेन्द्रनाथ गुप्त के 'हीरार मूल्य' उपन्यास का 'हीरा का मोल' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। जिसका पाठकों ने खूब स्वागत किया। बस इसकी लोकप्रियता ने गहमरी को जासूसी उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी और छोटे–बड़े, मौलिक, अनूदित कुल मिलाकर उन्होंने लगभग 150 जासूसी उपन्यास लिखे। गहमरी जी के उपन्यासों में अव्यवस्था के प्रति विद्रोह है। लोकहित की भावना निहित होने के कारण इनका साहित्य मनोरंजन मात्र के लिए नहीं था। इनका उद्देश्य कानून व न्याय के प्रति पाठकों की आस्था प्रगट करना था।

इस युग में लिखे गये अनेक जासूसी उपन्यासों की एक लम्बी सूची उपलब्ध होती है। उस युग के हर उपन्यासकार ने इस क्षेत्र में एक दो रचनाओं के द्वारा प्रवेश किया। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द पूर्व युग निर्माण कहा जा सकता है। जासूसी और तिलस्मी घटना प्रधान उपन्यासों का इस युग में बोलबाला था। सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर इन लेखकों ने उपन्यास विधा को लोकप्रिय बनाया। सुदृढ़ समृद्ध भूमि पर प्रेमचन्द जी ने सुन्दर सुघड़ इमारत खड़ी कर दी।

प्रेमचन्द पूर्व काल में हिन्दी उपन्यास लगभग 25 वर्ष तक एकरसता की स्थिति में पड़ा रहा। एक ओर सर्वश्री लाला श्री निवास दास (परीक्षागुरू), बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी).. राधाकृष्ण (निस्सहाय हिन्दू), रतनचन्द प्लीडर (नूतन चरित्र), बालमुकुन्द शर्मा (मालती), श्यामसुन्दर लाल शर्मा (पंजाब पतन), कला प्रसाद (कुल कलंकिनी), गौरी दत्त (गिरिजा), पुतनलाल सारस्वत (स्वतन्त्र बाला) आदि कथाकार अपने–अपने उपन्यासो में

कहीं रूढ़िवादिता का प्रचार तो कहीं इसका विरोध कर सामाजिक संक्राति की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। दूसरी ओर मनोरंजन को ही अपना साध्य मानने वाले कथाकार यथा देवकीनन्दन खत्री, चुन्नीलाल खत्री, (जबर्दस्त की लाठी), विठ्ठलदास (किस्मत का खेल), मदनमोहन पाठक (आनन्द सुन्दरी 5 भाग), सत्यदेव (आश्चर्य), रामप्रसाद वर्मा (राजकुमारी चन्द्रमुखी), लक्ष्मी नारायण शर्मा (समुद्र में गिरीन्द्र), गोपालराम गहमरी (चतुर चंचला) आदि उपन्यास, किशोरी लाल गोस्वामी (तिलस्मी 'शीशमहल तारा, आदर्श सती आदि 65 उपन्यास), सूरजनाथ वैश्य (कटा हुआ सिर) आदि के अपने–अपने उपन्यासों में अनेक प्रकार से पात्रों को मूर्छित कर पुनः अपनी दवा द्वारा चेतनावस्था में ले आने, सहेलियों के साथ कभी बाग में तो कभी तालाब में रमण करती नायिकाओं, बहु ये में छिपे नजमीरम्मालों, भूल–भुलैयों में खो देने वाले तिलस्मों, मेज पर पड़ी लाशों, बटुए में रखे हत्याओं के भेदों को पढ़कर लाखों करोड़ों पाठक एकदम मनोरंजन वृद्धि ही तो करते हैं।

**प्रेमचन्द का आविर्भाव और हिन्दी उपन्यास का नया युग**

प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार है। उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उनके उपन्यासों में हमें अपने युग की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है। प्रेमचन्द की श्रेष्ठता और महत्ता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने हिन्दी के प्राचीन उपन्यासकारों द्वारा संस्थापित परंपराओं का ध्वंस कर पुरानी मान्यताओं का परित्याग कर हिन्दी कथा–साहित्य के क्षेत्र में नवीन आदर्शों की स्थापना की और चिर उपेक्षितों को भी पढ़े–लिखे समाज के आकर्षण का केन्द्र बनाया। मानव जीवन के अन्तर्गत प्रेमचन्द की गहरी पैठ थी। मानव की विचारधारा, उसके सोचने के तौर–तरीके, उसकी दुर्बलताओं और प्रतिक्रिया का अच्छा अध्ययन था। दूसरे शब्दों में, प्रेमचन्द एक सफल मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक प्राणी थे। कृषकों के वे बड़े ही संवेदनशील या हिमायती लेखक थे। उनके दुखों, दर्दों और कठिनाइयों का उन्होंने बड़ी सहानुभूति और मनुष्यता के साथ चित्रण किया है। अध्ययन, चिन्तन और अनुभव ने प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में अविराम द्रष्टा की शक्ति उत्पन्न कर दी थी।

देश और समाज और सामाजिक परिस्थितियों को देखकर प्रेमचन्द ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं जो अक्षरशः सत्य प्रमाणित हो रही है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों के कलात्मक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। चरित्र चित्रण, कथोपकथन और भाषा–शैली की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने चरित्र–चित्रण की उपन्यास की आधार शक्ति मानत हुए लिखा है–

''मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहन और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़ने वालों पर गहरा असर पड़ेगा। अपने उपन्यासों के चरित्रांकन में प्रेमचन्द ने परिस्थितियों का प्रभाव दिखाकर गतिशील पात्रों की सृष्टि की। कुछ आदर्शवादी पात्रों को छोड़कर उनके चरित्र मानव–प्रकृति की बहुर्मुखी अन्त वृत्तियों का गहरा प्रभाव अंकित कर पाते हैं। उपन्यासों में कथोपकथन के महत्त्व पर भी उनकी दृष्टि थी। उनके कथोपकथन स्वाभाविकता के अपूर्व उदाहरण हैं। उपन्यासों में प्रेमचन्द ने जैसी सरल, सरस, सजीव एवं प्रभावोत्पादक भाषा शैली का प्रयोग किया, वैसी आज तक दूसरा उपन्यासकार नहीं कर पाया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों में जिस सहज गतिशील प्रवाह का अभाव दृष्टिगत होता है, वह प्रेमचन्द की कृतियों में नहीं है।

**प्रेमचन्द की कला**

'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' तक के उपर्युक्त परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द ने आधुनिक जीवन की अधिक से अधिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के चित्रण की अपनी कला का उपकरण बनाया। परिवार की छोटी से छोटी घटनाओं से लेकर समाज और देश की बड़ी से बड़ी समस्याओं के अंकन का उन्होंने

प्रयास किया और उसमें सफल भी रहे। इस सफलता का प्रधान उनकी अलौकिक पर्यवेक्षण शक्ति तथा सांसारिक अनुभव की प्रचुरता थी। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने अपने समाज और देश को अनेक पक्षों से देखा था और विभिन्न स्थितियों में पालित पोषित मानव स्वभाव को भलीभांति पहचाना था। अन्य पक्षों की अपेक्षा ग्रामीण वातावरण एवं मनःस्थिति के चित्रण में उनकी प्रतिभा विशेष उद्दीप्त हुई है। ग्रामीण जीवन की जितनी अधिक स्थितियों, ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियों के जितने अधिक चित्र इनकी रचनाओं में मिलते हैं उतने अन्यत्र दुर्लभ है। नागरिक जीवन के वर्णन में निम्न एवं मध्य वर्ग का अकन उच्च वर्ग की अपेक्षा अधिक मार्मिक एवं सजीव वन पड़ा है। उनके उपन्यासों की प्रत्येक घटना, प्रत्येक पात्र एवं प्रत्येक परिस्थिति हमारी पहचानी सी लगती है।

चरित्र चित्रण की यथार्थवादी कला का विकास एवं पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचंद की कृतियों में ही हुआ। प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र हमारे चारों ओर चलने फिरने, उठने बैठने वाले प्राणी हैं। इनके रुपरंग, बोलचाल, कार्यप्रणाली, मनोदशा, रहन–सहन सबका इतना जीवनवत् वर्णन किया गया है कि हमें वास्तविकता का भ्रम हो जाता है। परिस्थितियों के घात प्रतिघात में ढले हुए इनके चरित्र मानव सौन्दर्य एवं सीमा के प्रतीक हैं।

भाषा पर असाधारण अधिकार ही प्रेमचन्द की सफलता का रहस्य है। उनकी आरम्भिक कृतियों में अवश्य थोड़ी बहुत भाषा की शिथिलता मिलती है परन्तु उनमें थोडे ही दिनों बाद वह तेजस्विता और सरसता, वह भाव–व्यंजकता और मधुरता आ गई, जो हिन्दी साहित्य में एक नवीन उपलब्धि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द का महत्त्व केवल इसी बात में नहीं है कि उन्होंने तत्कालीन समाज की अनेक पक्षीय समस्याओं एवं विकृतियों की ओर संकेत करके उनके सुधार की ओर संकेत किया और अपने युग एवं समाज के साहित्यिक स्वर बने वरन् उनका महत्त्व इस बात में भी है कि उन्होंने कथा साहित्य को एक नूतन कलात्मक गरिमा दी।

**जयशंकर प्रसाद और यथार्थवादी उपन्यास की परम्परा**

कविवर प्रसाद जी की प्रतिभा बहुमुखी है। कविता नाटक, कहानी तथा उपन्यास, साहित्य के इन सभी प्रमुख अंगों को उन्होंने नवीन रूप दिया, नूतन चेतना दी। कंकाल उनका प्रथम उपन्यास है। इसमें वर्तमान के एक विशेष पक्ष का विशेष दृष्टि से चित्रण किया गया है। मनुष्य समाज ने सभ्यता के विकास में अनेक धार्मिक तथा नैतिक मान्यताओं एवं संस्थाओं की स्थापना की है। इनके मूल में सामूहिक कल्याण की भावना ही काम करती है किन्तु इन्ही पर इतना आग्रह हो गया कि व्यक्ति की उपेक्षा की जाने लगी और उसकी सहज प्रवृत्तियाँ को कदम–कदम पर कुचलने का प्रयास होने लगा। मानव मगल की भावना से प्रेरित संस्थायें उत्पीड़न का कारण बन चलीं और इनके चक्र में आक्रान्त व्यक्ति स्वयं में बड़ा दयनीय हो उठा। कंकाल में सामाजिक बन्धनों एवं व्यक्ति की सहज प्रवृत्तियों के संघर्ष से उद्दत विषमताओं का मार्मिक अंकन किया गया है।

'तितली' (1934) प्रसाद का दूसरा उपन्यास है। इसमें वर्णित जीवन 'कंकाल' से नितान्त भिन्न है। मानव की यौन दुर्बलताओं पर ही अधिक आग्रह रहने के कारण 'कंकाल' का समाज दर्शन एकपक्षीय सा लगता है। उसमें चारित्रिक स्थलन एवं पतन के चित्रण की प्रवृति प्रधान है, जिसे निरपवाद सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत 'तिलस्मी' में प्रेम आदर्श स्वरूप एवं आत्म संयम के चित्रण का प्रयास है। इस उपन्यास में वर्णित समाज के अनेक स्तर हैं और इनकी शक्ति एवं दुर्बलता दोनों ही की ओर लेखक की दृष्टि है। विषयचयन की दृष्टि से इस उपन्यास में प्रसाद ने प्रेमचन्द मार्ग को अपनाया है और जमींदार के कर्मचारियों की कूटनीति एवं धांधली, ग्रामीण जनता की सरलता एवं चोर स्वार्थ वृत्ति गाँवों की राजनीति, त्योहार उत्सव मनाने का ढंग, सम्मिलित कुटुम्ब की दुर्बलता आदि की झलक दिखाने का प्रयास किया है। इसमें ग्राम सुधार तथा ग्राम संगठन की ओर भी संकेत है।

'कंकाल' यदि यथार्थवाद की ओर उन्मुख है तो 'तितली' पूरी तरह आदर्शवादी उपन्यास है। कंकाल में मानव की यौन दुर्बलता या स्थलन पर अधिक आग्रह है किन्तु इस उपन्यास में चारित्रिक दृढ़ता के साथ साथ आदर्श प्रेम के चित्रण का प्रयास है।

**प्रेमचन्द युगीन उपन्यास**

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों की प्रधान प्रवृत्ति मध्य वर्ग का चित्रण है। मध्य वर्ग समाज का सबसे बड़ा और विविध आयामी वर्ग हैं। मध्य वर्ग दो उप वर्गों में विभक्त है उच्च मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग। मध्य वर्ग का एक हिस्सा जो उच्च वर्ग को छूता है, उच्च मध्य वर्ग कहलाता है और दूसरा जो निम्न वर्ग को छूता है निम्न मध्य वर्ग है। इससे स्पष्ट है कि मध्यवर्ग में स्तरगत वैविध्य है। इस वैविध्य की सही पहचान प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों को थी। प्रताप नारायण श्रीवास्तव के उपन्यासों में जिसे उच्च वर्ग कहा गया है. वह वास्तव में उच्च मध्य वर्ग है। उदाहरण के लिए 'विदा' के माधवचन्द्र को लीजिए। वे ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट है। बंगले में रहते हैं. अंग्रेजी रहन सहन के अभ्यस्त हैं। लेकिन वे इतने से ही उच्च वर्ग के सदस्य नहीं हो जाते। मध्य वर्ग की सीमाएँ और विवशताएँ उनके साथ हैं।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास में भी वर्ग संक्रमण के आव है। उपन्यास का नायक अजीत है जो एक जमींदार का पुत्र है। उसे उच्च वर्ग की समस्त सुख सुविधायें उपलब्ध है लेकिन वह प्रोफेसर शिवदयाल के विचारों से प्रभावित होकर पढ़ना छोड़ देता है और भावी सुख सपनों पर लात मारकर स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ता है। अजीत का यह कर्म कुछ ऐसा ही है जैसा कि कर्मभूमि के अमरकान्त का प्रोफेसर शांति कुमार के प्रभाव में आकर पढ़ाई छोड़ना।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का उद्देश्य दोहरा था एक ओर तो देश की मुक्ति का सवाल था और दूसरी और अनेक सामाजिक जड़ताओं से भी जूझना था। इसके बावजूद भावना प्रधान अथवा कवित्वपूर्ण उपन्यास भी लिखे गये। जयशंकर प्रसाद उपन्यासकार होने के साथ साथ कवि भी थे। अतः इनके सभी उपन्यास भावना प्रधान और कल्पना प्रधान है। भाषा और रचना शैली की दृष्टि से उपन्यास शिल्प का इस युग में उत्तरोत्तर विकास होता गया। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के उपन्यासों में आलंकारिक चित्रात्मक, व्यंजना प्रधान भाषा, प्रेमचन्द में मुहावरेदार स्वाभाविक भाषा तथा प्रसाद जी के उपन्यासों में भावनात्मक तथा तत्सम शब्दावली मूलक भाषा की प्रधानता है।

**प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास (यथार्थवादी धारा का विकास)**

यथार्थवाद का वास्तविक सम्बन्ध फ्रेंच यथार्थवादी स्कूल से है। इसका प्रथम प्रयोग सन् 1935 ई. में आदर्शवादी विचारधारा में विश्वास रखने वालों के विरुद्ध सौन्दर्यवादी विकास के रूप में हुआ था। बाद में 1856 ई. में एक पत्रिका रियलिज्म की स्थापना के पश्चात् इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा। दुर्भाग्य से यथार्थवाद का विशेष महत्व फ्लावेयर, जोला उनके सहयोगियों द्वारा साहित्य में अपनाई जाने वाली अनैतिक मान्यताओं एवं निम्न कोटि के विषयों के विरुद्ध उठे कटु विवाद में बहुत कुछ अशों में न्यून हो गया। इसके परिणामस्वरूप यथार्थवाद का प्रयोग आदर्शवाद के भिन्न रुप के ही अर्थ में ग्रहण किया जाने लगा। यह वास्तव में फ्रेंच यथार्थवादियों के विरोधियों द्वारा ग्रहण किए गए दृष्टिकोण से प्रतिध्वनित रूप था। उसने उपन्यास लेखन शिल्प के ऊपर अपना स्थायी प्रभाव डाला और साहित्य के जितने भी रूप उस समय प्रचलित थे, उनमें उपन्यास साहित्य ने इस प्रभाव को अधिकाधिक अंशों में ग्रहण किया। यथार्थवाद की आधारशिला पर ही उपन्यासों का ताना–बाना निर्मित होना प्रारम्भ हुआ और तभी वह जनजीवन के अधिक निकट भी आया। यथार्थवाद के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ प्रचारित है और कुछ तथाकथित अध्यवसायी एवं प्रतिक्रियावादी आलोचकों ने तो यह घोषित भी कर दिया कि यथार्थवाद ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को दिग्भ्रान्त कर दिया है और उसमें एक गतिरोध की स्थिति उत्पन्न कर दी है। ऐसी भ्रमपूर्ण धारणा वस्तुतः यथार्यवाद को न समझने के कारण ही उत्पन्न हुई है। यथार्थवाद वास्तव में वस्तुओं के यथातथ्य चित्रण पर नहीं अपितु सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण पर बल देता है। यदि कोई उपन्यास केवल इसलिए यथार्थवादी है कि उसमें जीवन का चित्रण तटस्थ दृष्टि से किया गया है तो वह केवल अन्वेषित रोमांस ही होगा। यथार्थवाद वास्तव में बहु विधीय मानव–अनुभवों के पूर्ण एवं सत्य

चित्रण पर बल देता है न कि किसी विशेष साहित्यिक दृष्टिकोण पर। यथार्थवाद उस जीवन प्रकार में ही नहीं अवस्थित रहता, जो उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है, वरन् उस जीवन प्रकार के प्रस्तुतीकरण की शैली में भी और उसी रूप में विकसित भी होता है।

**यशपाल—**

समाज के यथार्थवादी चित्रण की दृष्टि से यशपाल के उपन्यास महत्त्वपूर्ण है। जीवन के प्रति उनकी एक निश्चित दृष्टि है और सामाजिक अवस्था के चित्रण में उन्होंने अपनी सी दृष्टि को समाज—दर्शन का माध्यम बनाया है। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी कृतियों में पूँजीवादी अथवा सामंती व्यवस्था के वैषम्य से उद्वभूत मानवीय उत्पीड़न की कथा वर्णित है। जीवन के प्रवृत्ति को असंदिग्ध सत्य मानकर उन्होंने अपने उपन्यासों में यौन आकर्षण को मनुष्य की सबसे सहज, स्वाभाविक तथा तीव्र अनुभूति के रूप में चित्रित किया है और उनमें राजनीति तथा रोमांस का अपूर्व सम्मिलित हुआ है। एक प्रकार से प्रेमचन्द के उपरान्त राजनीतिक विषयों पर उपन्यास लिखने वालों में यशपाल अग्रणी है। किन्तु प्रेमचन्द तथा यशपाल की दृष्टि में बड़ा अन्तर है। प्रेमचंद ने युग की उथल—पुथल को कलाकार की सम्पूर्ण सच्चाई के साथ केवल चित्रित करने का प्रयत्न किया है किन्तु यशपाल ने उपन्यास को सिद्धान्त प्रचार का साधन बनाया है। यशपाल में उच्च कोटि की विधायक प्रतिभा है, उनकी कहानियाँ इसकी साक्षी है। किन्तु कहानियों में कला के जिस उत्कृष्ट रूप का दर्शन होता है वह उपन्यासों में नहीं मिल पाता। इसका प्रधान कारण यह है कि उपन्यास के माध्यम से वे एक निश्चित ध्येय की सिद्धि चाहते थे। जिन प्रबल भावनाओं ने उन्हें 'गाँधीवाद की शव परीक्षा' लिखने की प्रेरणा दी थी वे ही भावनायें उनकी कला का भी नियन्त्रण कर रही थी।

**जैनेन्द्र—**

जैनेन्द्र के उपन्यासों की संख्या अधिक नहीं है। अब तक के उनके उपन्यास है 'परख (1929) 'सुनीता' (1935) 'त्याग पत्र' (1937) 'कल्याणी' (1939) 'सुखदा' (1952) 'विवर्त' (1953) 'व्यतीत' (1953) 'जयवर्धन' (1956) 'मुक्तिबोध' (1965) 'अनन्तर' (1968) और 'अनाम स्वामी' (1974) ये उपन्यास हिन्दी उपन्यास की एक नयी दिशा प्रदान करने वाले उपन्यास हैं। 'परख' के प्रथम संस्करण के समय जैनेन्द्र ने उपन्यास के साथ कुछ शब्द जोड़े थे। इस भूमिका में यह अंश विशेष महत्त्व का है ''मैंने जगह—जगह कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ दी है। वहाँ पाठक को थोड़ा कूदना पड़ता है। और मैं समझता हूँ, पाठक के लिए थोड़ा आयाम वाछनीय होता है. अच्छा हो लगता है। कहीं एक साधारण भाव को वर्णन से फुला दिया है, कहीं लापरवाही से, कही हल्की धीमी कलम से काम किया है, कहीं तिक्षण और भागती से। मैं समझता हूँ यह सब कुछ चित्र में खूबी और असलियत लाने के लिए जरूरी ही पड़ता है। यह कम ज्यादा रंग की शोभा रंग—बिरंगेपन में और स्वाद देती है। सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है। दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है। और कौन है जो बुरा नहीं है. अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है न पशु। सब आदमी ही है देवता से कम ही और पशु से ऊपर हो।'' इस उद्धारण से दो बातें सामने आती है एक जैनेन्द्र की कहानी कहने की पद्धति परम्परागत नहीं है। उनके उपन्यासों की कथा श्रृंखला में बीच—बीच में कड़ियां टूटी रहती है। यह इसलिए है कि कहानी कहना उनका उद्देश्य नहीं है। यही कारण है कि उनके उपन्यास आकार में अत्यन्त लघु हैं। दो. वे आदमी को आदमी के रूप में देखना चाहते हैं देवता या दानव के रूढ़ रूपों में नहीं। दूसरे शब्दों में उनके उपन्यासों के पात्र 'टाइप' चरित्र न होकर व्यक्ति चरित्र है। व्यक्ति चरित्र होने के कारण उनके पात्र असाधारण आचरण करते हैं। 'परख' की कही, 'सुनीता की सुनीता', 'त्यागपत्र' की मृणाल, 'कल्याणी' की कल्याणी, 'सुखदा की सुखदा', 'विवर्त की भुवन मोहिनी तथा इसी प्रकार अन्य उपन्यासों की केन्द्रीय स्त्रियाँ जिस प्रकार का आचरण करती है वह सामान्य आचरण कतई नहीं है। जैनेन्द्र के अधिकांश उपन्यासों का कथा परिरूप एक ही है। यह परिरूप प्रेम का त्रिकोण है। स्त्री जिस पुरुष से प्रेम करती है उसके साथ उसका विवाह नहीं होता और जिससे विवाह होता है उससे वह प्रेम नहीं करती। प्रेमिका और पत्नी का द्वैत जैनेन्द्र के उपन्यासों की केन्द्रीय समस्या है।

**इलाचन्द्र जोशी–**

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी के दूसरे महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने जैनेन्द्र के साथ ही उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। उनका पहला उपन्यास 'घृणामयी' 1929 में प्रकाशित हुआ। इसी उपन्यास का 'अल्पसंशोधित' रूप 1947 में 'लज्जा' के नाम से प्रकाशित हुआ। आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ यह उपन्यास एक ऐसी युवती की कहानी है जो अपने भाई और पिता की इच्छा के प्रतिकूल एक चरित्रहीन युवक से प्रेम करती है। इसके आघात के कारण पिता के दिमाग की नस फट जाने के कारण मृत्यु हो जाती है और भाई आत्महत्या कर लेता है। अन्ततः युवती की दुर्गति भी होती है। उपन्यासकला की दृष्टि से यह कोई परिपक्व रचना नहीं है तथापि इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जोशी जी साग्रह और सचेत भाव मनोविश्लेषण के सिद्धांतों को अपने उपन्यासों में स्थान दे रहे हैं। मनोविश्लेषण के जिन सिद्धातों को उन्होंने मृणामयी में स्थान दिया है, वे आरोपित है, वे उपन्यास का स्वाभाविक अंग नहीं बन पाये हैं। उसका कारण यह है कि उन्होंने जीवन को महत्त्व देने के स्थान पर अपने अध्ययन और शास्त्र को महत्त्व दिया है। उनकी यह प्रवृत्ति उनके सभी उपन्यासों – 'सन्यासी' (1940) 'प्रेत और छाया' (1944), 'पर्दे की रानी' (1945), 'निर्वासित' (1946), 'ऋतुचक्र भूत का भविष्य' (1973) में विद्यमान है। मृणामयी के बाद सन्यासी में पात्रों के व्यक्तित्व की जटिलता और उनके आचरण की असाधारणता और बढ़ी है। यह उपन्यास ऐसे दंपत्ति की कहानी है जिसका दाम्पत्य जीवन प्रतिहिंसा की नींव पर खड़ा है। नन्दकिशोर जयन्ती से इसलिए विवाह करता है कि वह उस ''तेजस्विनी नारी के स्वभाव के एक शान्त और सयत तथापि दुर्दमनीय गर्व को जो भाव दिखाई दिया था'' उसे चूर–चूर कर दे। फलतः इस दम्पत्ति का जीवन अशान्ति और निराशा से परिपूर्ण है। क्या स्त्री पुरुष के बीच विवाह का कारण प्रतिहिंसा की भावना हो सकती है ?

**अज्ञेय–**

अज्ञेय ने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को इस अर्थ में आगे बढ़ाया कि उनके उपन्यासो में मनोविज्ञान और उपन्यासकार का सुखद सामंजस्य है। अब तक उनके तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं– 'शेखर एक जीवनी' (पहला भाग 1940, दूसरा भाग 1944) 'नदी के द्वीप' (1951) तथा 'अपने–अपने अजनबी' (1961)। 'शेखर एक जीवनी रोम्यों रोला के 'ज्यों क्रिस्तोफ' से प्रेरित उपन्यास है जिसमें शेखर के बचपन, किशोरावस्था और युवावस्था के विकास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इस संबंध में अजेय ने 'आत्मनेपद' में लिखा है– ''ज्यों क्रिस्तोफ'' के अनवरत आत्मशोध और आत्मसाक्षात्कार का जो चित्र रोलाँ ने प्रस्तुत किया है, उससे मुझे अवश्य प्रेरणा मिली लेकिन न तो 'शेखर' उपन्यास 'ज्यों क्रिस्तोफ जैसा उपन्यास है। उन शेखर पात्र वैसा पात्र है। समानता इतनी ही है कि जैसे क्रिस्तोफ में लेखक एक आत्मान्वेषी के पीछे उसका चित्र खींचता चला है. वैसे ही में एक दूसरे आत्मान्वेषी के पीछे चला हूँ। क्रिस्तोफ में सर्वत्र उपन्यासकार अन्य पुरुष में लिख रहा है. शेखर का रूप उत्तम पुरुष में लिखी गई आत्मकथा का है। ''आत्मनेपद, प्रथम संस्करण, 1960. पृ. 64) शेखर उपन्यास को पढ़ने से लगता है कि शेखर असाधारण बच्चा है। वह अन्तर्मुखी, चिन्तनशील और अत्यधिक जिज्ञासु बच्चा है। वह जिन प्रश्नों को पूछता है वे ऐसे प्रश्न हैं जो सामान्यतः बच्चों के मन उठते हैं। ये प्रश्न जन्म, मृत्यु, ईश्वर युद्ध इत्यादि के बारे में हैं। इन प्रश्नों के समुचित उत्तर उसे नहीं मिलते। वह क्रमशः अपने निष्कर्षों पर पहुंचता है। जैसे वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ईश्वर नहीं है। बच्चा कहाँ से आता है. इसे वह अपने ढंग से जान लेता है। डॉ. देवराज उपाध्याय ने मेलामिया क्लीन के द्वारा फ्रिटज नामक बच्चे के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ शेखर के बचपन की तुलना करके दिखा दिया है कि दोनों में कितना साम्य है और शेखर के बालमन का चित्रण कितना मनोविज्ञान सम्मत है। (डॉ. देवराज उपाध्याय आधुनिक कथा–साहित्य और मनोविज्ञान 1963. पृ. 241 251) बचपन में शेखर को अपनी अनेक जिज्ञासाओं और वृत्तियों को दबाना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप उसमें अहन्ता, भय और सैक्स पनपते हैं। सैक्स की प्रवृत्ति अप्रत्यक्षत तो बचपन से ही

विदयमान है अपनी बहन सरस्वती के प्रति उसका लगाव इसका प्रमाण है. किन्तु किशोरावस्था में उसकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है। उसके जीवन में अनेक लड़कियाँ आती हैं फूली शारदा, शान्ति शशि इत्यादि। उसमें समलैंगिकता की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। वह सबसे अधिक राशि के निकट आता है। शशि उसकी दूर की मौसेरी बहन है। बहन के साथ यह सम्बन्ध अजेय के कथा–साहित्य में बार–बार प्रत्यावर्तित होने वाली वस्तु है। शेखर के काम सम्बन्ध सहज और स्वाभाविक नहीं हैं। बचपन के दमन उसे विद्रोह और स्वातन्त्रय की ओर ले जाते हैं। वह इसीलिए क्रान्तिकारी बनता है और फॉसी की सजा पाता है। शेखर एक जीवनी आसन्त मृत्यु की छाया में प्रत्यवलोक के रूप में लिखा गया है। इस उपन्यास में इस प्रकार अनेक स्थल हैं जो अस्वाभाविक लगते हैं। किन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि 'शेखर' हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें बड़ी गहराई और सूक्ष्मता के साथ एक व्यक्ति के विकास का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अनुकूल 'शेखर में न तो स्थूल घटनाएँ हैं और न पात्रों की संख्या अधिक है।

**भगवती प्रसाद वाजपेयी–**

वाजपेयी जी ने लिखना प्रेमचन्द के जीवनकाल में ही शुरु कर दिया था। उनका पहला उपन्यास 'प्रेमपथ' 1926 में प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द की मृत्यु के वर्ष तक उनके सात उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। उनके कुल उपन्यासों की संख्या 40 से ऊपर है। इन उपन्यासों में वस्तु और शिल्प सम्बन्धी विविधा है। वाजपेयी जी समय समय पर अनेक विचारों और उपन्यासकारों से प्रभावित हुए हैं। अतः कुछ लोग उन्हें सामाजिक उपन्यासकारों की श्रेणी में रखते हैं और कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की श्रेणी में। उनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक समस्याओं की प्रधानता है। अत उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की श्रेणी में रखना ही उचित होगा।

**डॉ. देवराज–**

डॉ. देवराज साहित्य में मानव जीवन की समग्रता और उसे अभिव्यक्त करने के प्रयत्नों की आपेक्षित पूर्णता को महत्त्व देते हैं। अब तक उनके जो उपन्यास आये हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। 'पथ की खोज' (दो भाग) उनका पहला उपन्यास है, जो 1951 में आया था। उसके बाद 'बाहर भीतर' (भीतर का भात), 'रोड़े और पत्थर', 'मैं वे और आप अजय की डायरी और 'दूसरा सूत्र (1978) में उपन्यास प्रकाश में आये। इनमें उनके दो उपन्यास विशेष महत्त्वपूर्ण है 'पथ की खोज' तथा अजय की डायरी।

**देश विभाजन और हिन्दी उपन्यास**

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि देश विभाजन के सदर्भ में साम्प्रदायिक संकीर्णता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध धर्म से है और भारत में इसकी जड़ें बहुत गहरी रही हैं। अतीत काल से ही हमारे जीवन में धर्म का महत्व सर्वोपरि रहा है। प्राचीनकाल में राजनीति भी धर्म का माध्यम से संचालित होती थी, किन्तु आधुनिक युग में विदेशी शासकों द्वारा उसी धर्म का राजनीति में एक घातक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया। राजनीतिक स्वार्थी और राजनीतिक महत्त्व के विभिन्न मुद्दों को धर्म के साथ जोड़कर ब्रिटिश शासकों ने एक अन्य साम्प्रदायिक उन्माद को उभरने और विकसित होने का अवसर उत्पन्न कर दिया. जिसके आत्मघाती और देशव्यापी परिणामों के करुण प्रसंगों से हमारा अतीत भरा पड़ा है और आज भी जिसके दुष्प्रभावों से हम मुक्त नहीं हो सकते हैं। भारत विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश रहा है। विदेशी आक्रांता भी इस देश को समय–समय पर रौंदते रहे है। भारत विभिन्न धार्मिक संकीर्णताओं तथा ऊँच नीच के भेदभाव से ग्रस्त रहा है। विभाजन से पूर्व हिन्दू और मुसलमान सदियों तक साथ–साथ रहे। फलतः दोनों के बीच सामाजिक स्तर पर भावात्मक एकता उत्पन्न हो गई थी। उसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भिन्न सम्प्रदायवाद एवं भिन्न कौमियत

का नारा देकर छिन्न–भिन्न करके कटुता, विद्वेष और घृणा में बदल दिया। यही साम्प्रदायिक विद्वेष आगे चलकर देश विभाजन का कारण बना। विभाजन से पूर्व के साम्प्रदायिक दंगे और तनाव की स्थितियाँ मुस्लिम लीग द्वारा हिन्दुओं और मुस्लिम समाज की इसी भावनात्मक मानवीय सम्बन्ध सूत्रता को छिन्न–भिन्न करने के लिए किए जाने वाले राजनीतिक प्रयास थे। इसका बीज ब्रिटिश शासको ने बोया था और लाभ भी वे ही उठा रहे थे। हिन्दी के उपन्यासों में इस साम्प्रदायिक धर्मान्धता के स्वरूप का विवेचन पर्याप्त रूप से हुआ है।

अखंड भारत की अनिवार्य दुर्भाग्यपूर्ण नियति देश के विभाजन के रूप में 15 अगस्त, 1947 को घोषित हो गई। झूठा सच 'इन्सान', 'देश की हत्या', 'सीधी–सच्ची बातें', 'खून और खून', 'दासता के बन्धन', कालेकोस आदि अनेक उपन्यासों में विभाजन के इस मानवीय दुःस्वप्न और राजनीतिक त्रासदी के अनेक पक्षों का चित्रण लेखकीय संवेदना के साथ हुआ है। 15 अगस्त, 1947 को भारत धर्म के आधार पर ऐसे दो स्वतंत्र राष्ट्रों में विभक्त कर दिया गया जिनका कोई भौगोलिक आधार नहीं था। देश का यह विभाजन अंग्रेज शासकों की मध्यस्थता के तहत दोनों राष्ट्रों के शीर्षस्थ नेताओं की सहमति से हुआ। किन्तु इस विभाजन से सन्तोष किसी को नहीं था। कांग्रेस दुखी थी, गाँधी जी–दुखाँध और जिन्ना जो पाकिस्तान के निर्माता थे, भी दुखी थे। जिन्ना एक महत्वाकांक्षी नेता थे। उन्होंने मुस्लिम जनता को नारा भर दिया था। कदाचित पाकिस्तान की वास्तविकता पर उसे असंभव और अव्यावहारिक समझ कर उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया था। किन्तु पाकिस्तान बनने के बाद की विभीषिका देखकर और अनागत भविष्य की कल्पना करके जिला संत्रस्त हो उठे थे।

विभाजन के राजनीतिक निर्णय का प्रभाव देश की जनता के एक विशाल वर्ग की मानसिकता पर भी पड़ा। हिन्दी उपन्यासों में इस दौर में होने वाली पारिवारिक विघटन, पारस्परिक सम्बन्धों में आयी टूटन और दवन्द्व की विविध मानसिक स्थितियों का अत्यन्त यथार्थमूलक और आर्थिक अंकन हुआ है। ये ऐसी मानसिक स्थितियाँ हैं जिनका इतिहास के पृष्ठों पर कोई उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु जो कटु वास्तविकताएँ हैं जिन्हें एक सवेदनशील उपन्यासकार की लेखनी ही साकार रूप दे सकती है। विभाजन की घोषणा और सीमा से लगे नगरों में हो रहे रक्तपात को लोमहर्षक खबरों ने भारतीय ग्रामांचलों और नगरांचलों की शांति भंग कर दी थी। मनुष्य मनुष्य न रहकर कट्टर हिन्दू या कट्टर मुसलमान हो रहा था। टोपी शुक्ला उपन्यास में विभाजन की विभीषिका का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है जहाँ प्रतिशोध की भावना ते उन्हें गालव विरोधी बता दिया था। दोनों ही देशों के लाखों आबाल वृद्ध 'जिन्दगी के खलिहानों में लगी आग' को देखकर स्तब्ध हो रहे थे। विभाजन एक ऐसा राजनीतिक निर्णय था जिसने प्रेम, सौहार्द और बंधुत्व के स्नेह सूत्र उलझा दिए थे। टोपी शुक्ला का इफ्फान और उसका दोस्त शुक्ला दिलों में अनजाने ही जन्म लेती कटुता, सन्देह और नफरत की भावनाओं के अहसास से पीड़ित दिखाई देते हैं। शुक्ला को लगता है कि अब वह सलीमा से प्यार न कर सकेंगा या सकीना से राखी न बंधवा सकेगा, क्योंकि वह हिन्दू है। इफ्फान को अपने स्कूल के हिन्दू अध्यापक अजीव से दिखने लगे। 'ओस की बूँद' का वजीर हसन भी ऐसा ही एक प्रतीक पात्र है जो अपने इकलौते बेटे अली वाकर के पाकिस्तान चले जाने पर उसके साथ नहीं जाता, क्योंकि उसे अपना घर देश और धर्म से भी बड़ा लगता है। वजीर हसन जैसे न जाने कितने विघटित परिवार वाले अपनी ही आत्मा के अकेले कमरे में बन्द हो गए। 'आधा–गाँव' में भी ऐसे आधे–अधूरे अनेक परिवारों की व्यथा कथा चित्रित हुई है। विभाजन की विभीषिका के रूप में खल्लों जैसी अनेक सदयः विवाहिता स्त्रियाँ अपने शौहर के पाकिस्तान चले जाने से उनके जीते जी बेवा हो गई। 'आधा गाँव' के परिवारों के विघटन की समस्या को प्रेम और घृणा के दोहरे द्वन्द्व के माध्यम से चित्रित किया गया है। 'आधा गाँव' के ऊँची हैसियत वाले हकीम साहब, फुस्सूमियाँ जवादमियाँ सभी आजादी के कारण मिली आत्मा और परिवेश की तनहाई का दर्द झेलते दिखाई देते हैं।

**स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास**

स्वातंत्रयोत्तर काल की राजनीतिक घटनाओं और नये सामाजिक संदर्भों ने समूचे हिन्दी साहित्य को बहुत गहरे प्रभावित किया था। विभाजन की विभीषिका स्वतंत्रता मिलने का उत्साह और आर्थिक संकट से उत्पन्न परिस्थितियों ने वस्तु और शिल्प के स्तरों पर हिन्दी उपन्यास में एक युगान्तर सा उपस्थित कर दिया। पुरानी पीढ़ी के कुछ इन गिने उपन्यासकार इस परिवर्तित परिवेश में अपना सामंजस्य नहीं बिठा सके। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण परम्परागत ही रहा । यशपाल, अमृतलाल नागर और रागेय राघव जैसे उपन्यासकारों ने बदले हुए जीवन बोध को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद के उपन्यासों का कथ्य उतना मौलिक और नया नहीं है। किन्तु 1953–54 के आस–पास लिखे उपन्यासों में कथ्यगत रूपातरण स्पष्ट झलकता है। स्वतंत्रतापूर्व के उपन्यास नागरिक जीवन से विशेष रूप से जुड़े हुए थे लेकिन स्वतंत्रता के बाद विभिन्न अंचलों की ओर भी कथाकार की दृष्टि गयी। इस तरह से आंचलिक उपन्यासों का प्रादुर्भाव हुआ।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास ने अन्य साहित्यिक विधाओं को बहुत पीछे छोड़ दिया है क्योंकि जीवन यथार्थ के विभिन्न स्तरों को जितनी गहराई और संवेदनशील सूक्ष्मता के साथ उपन्यास ने उकेरा है उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। जिस गति से जीवन चलता है. उसमें यथार्थ कोई इकहरा प्रत्यय नहीं रह गया है क्योकि 'मनुष्य' पर आन्तरिक और बाह्य दबावों का सिलसिला निरंतर जटिल होता गया है। जीवन की यथार्थ जटिलताओं को समझने और उन्हें अभिव्यक्त करने का जितना साहस उपन्यास ने किया है उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। स्वातंत्रयोत्तर में उपन्यास का परिदृश्य इतना वैविध्यपूर्ण, कलात्मक और यथार्थपरक है कि इस विधा का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है व्यक्ति के आन्तरिक संसार की जटिलताओं (अधेरबंद कमरे, आपका बंटी), कुंठाओं (मित्रों मरजानी मछली मरी हुई), ग्रामीण जीवन की विषमताओं (मैला आंचल रागदरबारी), महानगरीय विद्रूपताओं (मुर्दाघर, उखड़े हुए लोग, राजनैतिक क्रूर विसंगतियों (महाभोज, दारुलशफा), ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संकटो (पुनर्नवा मृगनयनी), सामाजिक विषमताओं (बूँद और समुद्र झूठा सच) आदि अनेक क्षेत्रों का विश्वसनीय विश्लेषण हिन्दी उपन्यास ने किया है। शिल्प और भाषा की दृष्टि से देखें तो एक छोर पर मैला आंचल, रागदरबारी, आधा गाँव है तो दूसरे छोर पर चारुचन्द्र लेख, मानस का हंस, शैलूष है, सूरज का सांतवां घोड़ा, अजय की डायरी, कलिकथा वाया बाइपास जैसे शिल्पगत प्रयोग है तो झूठा सच, 'पहला गिरगिटिया' जैसे महाकाव्यात्मक आख्यान है. सूरजमुखी अन्धेरे में, 'चित कोबरा' जैसे मानसिक कुंठाओं को चित्रित करने वाले उपन्यास हैं तो 'अमृत और विष', 'धरती', 'धन न अपना' जैसे सामाजिक सरोकारी वाले मानवीय संवेदना भरे उपन्यास हैं। इसलिए स्वातंत्रयोत्तर  में हिन्दी उपन्यास को हम अनेक धाराओं में रख सकते हैं।

डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार स्वतंत्रता परवती हिन्दी उपन्यास की दो प्रमुख धाराएँ हैं। पहली धारा के अन्तर्गत 'अन्धा विद्रोह', नितान्त वैयक्तिकता और घोर अन्तर्मुखता के उपन्यास आते है जबकि 'मानव मूल्य और मर्यादा स्थापित करने वाले उपन्यासों' की गणना दूसरी धारा के अन्तर्गत होती है। डॉ. सिन्हा ने प्रथम वर्ग के उपन्यासों (अपने अपने अजनबी, वे दिन, नदी के दवीप) के कथ्य की कटु आलोचना की है। उनकी धारणा है कि इन उपन्यासो में मनुष्य का जीवन जितना अर्थशून्य, सतही और यान्त्रिक चित्रित किया गया है उतना वास्तव में भारतीय समाज में लक्षित नहीं होता। दघवितीय वर्ग में आने वाले उपन्यास (बूँद और समुद्र अमृत और विष सूरज का सालवा घोड़ा अलग–अलग वैतरणी यह पथ बन्दु था, मैला आँचल और आपका बंटी) समकालीन मूल प्रश्नों एवं समय सत्य से साक्षात्कार करने का प्रयत्न करते हैं। इनमें उपन्यासकारों के अनुभव तथा अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हुई है। आज की परिस्थितियों से उत्पन्न वास्तविक संत्रास का चित्रण एवं अस्तित्व की सही चुनौतियों को सार्थक ढंग से स्वीकार करने का प्रयत्न इन उपन्यासों में प्राप्त होता है।

हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित वर्गों में रखेंगे

**1. व्यक्ति के अन्तर्मुखी वैयक्तिक जीवन पर केन्द्रित उपन्यास –**

(क) सैक्स जीवन से सम्बद्ध उपन्यास।

(ख) आत्म निर्वसन अकेलेपन, अजनबीपन, निराशा, अनिश्चय आदि के अनुभवों से सम्बद्ध उपन्यास।

**2. समाज और परिवेश को चित्रित करने वाले उपन्यास–**

(क) ग्रामीण जीवन की पहचान को रेखांकित करने वाले उपन्यास।

(ख) नगर बोध और महानगरबोध पर केन्द्रित उपन्यास।

(ग) राजनैतिक विसंगतियों और जटिलताओं पर केन्द्रित उपन्यास।

**3. ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना सम्बद्ध उपन्यास।**

**नगरीय तथा महानगरीय बोध के उपन्यास–**

स्वातंत्रयोत्तर काल में नगरी तथा महानगरों का बड़ी तेजी से विकास हुआ है तथा गाँवों का भी शहरीकरण लगातार हो रहा है। वस्तुतः आज स्थितियां ऐसी हैं कि जीवन यथार्थ को गाँव शहर में बांटकर देखना भी संभव नहीं रहा है। 'मैला आंचल' से जैसे आंचलिक उपन्यास की अवधारणा विकसित हुई वैसी ही आंचलिकता शहरी क्षेत्रों के चित्रण को लेकर हुई। इस दृष्टि से जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' उपन्यास सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में ठेठ बंबइया भाषा के जबरदस्त सर्जनात्मक प्रयोग द्वारा समाज के एक निम्नतम वर्ग की हालत का एहसास उपजाया गया है। यहां भाषा के परिचित ढाँचे को तोड़कर, भाषायी बनावट को शुरु से अंत तक, काव्यात्मक आवेग में क्रियमाण रखा गया है। हिन्दी उपन्यास आषायी काव्यात्मकता का लाभ अक्सर नहीं उठा सका। इस दिशा में जो प्रयत्न हुए भी उनसे अधिकतर, भावुकता और रोमानियत ही पनपी। इसका कारण यह रहा कि कवित्व उपन्यास में अलग से चमकता रहा। वह भाषायी सरचना और वाक्य विन्यास का अंग नहीं बना। दीक्षित की औपन्यासिक भाषा की विशेषता यह है कि इसकी सरचना और वाक्य विन्यास में कविता की लय का प्रयोग हुआ है अलग से कवित्व की चमक कहीं नहीं है। भाषा के संरचनात्मक विधान में कविता की शक्मित को गूथ देने के कारण यहाँ भाषा उत्तेजना या आवेग में बंधी हुई है बिफरी नहीं है। इस भाषा से स्थितियों को सीधे और ठेठ रूप में प्रस्तुत करने और उत्कृष्ट सर्वदनात्मक बोध जगाने की क्षमता अर्जित की गई है।

जब हम स्वातंत्रयोत्तर शहरी उपन्यासों की ओर देखते हैं तो उसी तरह असली और नकली अर्थात् अनुभवों के और आधुनिकता के फार्मूलों के उपन्यास दिखाई पड़ते हैं जैसे आंचलिक क्षेत्र में असली और नकली अर्थात् अंचलों के गहरे अनुभवों के और आंचलिकता के फार्मूलों के उपन्यास दिखाई पड़ते हैं। नगर जीवन और उसके माध्यम से देश के सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं और यथार्थ के विविध स्तरों को उद्घाटित करने वाले उपन्यासों में प्रमुख है 'झूठा सच' (यशपाल), 'भूले बिसरे चित्र' (भगवतीचरण वर्मा), 'बूंद और समुद्र' (अमृतलाल नागर), 'यह पथ बंधु था' (नरेश मेहता), 'धूपछांही रंग' (गिरीश अस्थाना)।

इस श्रेणी में आने वाले अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं कालाजल (शानी) एक सड़क सत्तावन गलियां (कमलेश्वर), उखड़े हुए लोग (राजेन्द्र यादव), चाँदनी का खंडहर (गिरधर गोपाल), शहर में घूमता आईना (उपेन्द्रनाथ अश्क), कड़ियाँ (भीष्म साहनी), सीमाएँ (मनहर चौहान), कच्ची पक्की दीवारें (रामकुमार अमर), कुरु स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी), कोई तो (विष्णु प्रभाकर), अनित्य (मृदुला गर्ग), उपसंहार (योगेश गुप्त), सावित्तरी (शैलेश मटियानी), सुबह के इन्तजार तक (सूर्यबाला) आदि।

**सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यास–**

स्वातंत्रयोत्तरकाल में जो महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये उनमें प्रमुख है चारुचन्द्र लेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा (हजारी प्रसाद द्विवेदी), मृगनयनी, भुवन विक्रम (वृंदावन लाल वर्मा),

मुर्दों का टीला (रागेय राघव), शतरंज के मोहरे, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस, खंजन, नयन (अमृतलाल नागर), मौत की सराय (मिक्यु), सोमनाथ (आचार्य चतुरसेन), अमिता, दिव्या (यशपाल) तांबे के पैसे (आनंद प्रकाश जैन), बहती गंगा (शिव प्रसाद मिश्र रुद्र कार्तिकेय) आदि।

अतीत की घटनाओं और चरित्रों पर आधारित ये उपन्यास आधुनिक जीवन के मूल्य संक्रमण, राजनैतिक उथल–पुथल, सामाजिक यथार्थ और सांस्कृतिक अवमूल्यन से गहरे जुड़े हैं। ये उपन्यास हमारे धार्मिक और लोक विश्वारा सम्बन्धी रुढ़ियों को निर्ममता से उधेड़ते हैं। इस दृष्टि से ये उपन्यास प्रासंगिक हैं।

**निजी केन्द्रित उपन्यास–**

यह आकस्मिक नहीं है कि आधुनिक रचनाकार राजनीतिक प्रश्नों से टकरा रहा है। राजनीतिक ने हमारे पूरे जीवन को इस कदर ग्रस लिया है कि उसकी छाया पारिवारिक जीवन तक पर पड़ रही है। इसलिए हमारे लेखकों ने स्वातर्त्योत्तर में राजनैतिक व्यक्तियों, घटनाओं, आकस्मिकताओं, साजिशों तथा उठा पटक को अपने उपन्यासों में विन्यस्त किया है। यों थोड़ी बहुत राजनीति तो हर सामाजिक उपन्यास में मिलेगी किन्तु सबहिं नचावत रामा गुसाई (भगवतीचरण वर्मा), एक और मुख्यमंत्री (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र), हरा समंदर गोपी चदर (लक्ष्मीनारायण लाल), काली आधी (कमलेश्वर), हीरक जयंती (नागार्जुन), महाभोज (मन्नू भण्डारी), जिन्दाबाद मुर्दाबाद (दयानंद वर्मा) पक्षधर (विश्वम्भरनाथ उपाध्याय) समय साक्षी हैं (हिमांशु जोशी) आदि।

**बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक हिन्दी उपन्यास का उत्कर्ष**

श्री गिरिराज किशोर ने अपनी एक टिप्पणी 'उपन्यास और कुछ नोट्स' में लिखा है कि हिन्दी में उपन्यास–विधा हासिए पर है। एक तो अच्छे हिन्दी उपन्यास कम लिखे जा रहे हैं, दूसरे जो लिखे जा रहे हैं. वे स्पर्धा से बाहर हैं। दसर्व दशक के उत्तरार्द की इस टिप्पणी से हिन्दी उपन्यास का निराशाजनक बिम्ब बनना स्वाभाविक है। जब टिप्पणी करने वाले स्वयं एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार हो तो उसका महत्त्व और बढ़ जाता है। दूसरी ओर डॉ. विजय मोहन सिंह जैसे आलोचकों का स्पष्ट विचार है इस शताब्दी का आखिरी दशक औपन्यासिक दृष्टि से अधिक समृद्ध माना जायेगा, कविता और कहानी दोनों की अपेक्षा। इन दो विरोधी मंतव्यों के बीच इसी दशक में उपन्यास को लेकर एक नजरिया यह उभरा है कि बहुत यात्रिक ढंग से लेखन हो रहा है। ज्योतिष जोशी के अनुसार इसी से जुड़ी एक कठिनाई यह भी है कि उपन्यास को अपने समय की घोषणा बनाने पर क्यों जोर दिया जाता है। दसवे दशक के तमाम उपन्यासों से गुजरते हुए हिन्दी उपन्यास से सम्बन्धित अनेक आपत्तियाँ और मंतव्य कौंधते हैं और बहस की माँग करते हैं।

दसवें दशक में कई पीढियों के रचनाकारों को उपन्यास विधा के प्रति गंभीरता से समर्पित देखा जा सकता है। कई दशकों से लिख रहे विष्णु प्रभाकर, निर्मल वर्मा, रामदरश मिश्र, भीष्म साहनी, विवेकीराय, यादवेन्द्र शर्मा, चन्द्र कृष्णा, सोबती कन्हैया लाल ओझा, अमरकांत, जगदीश चन्द्र, शिव प्रसाद सिंह आदि के उपन्यास इस दशक में प्रकाशित हुए। इनके साथ युवा लेखकों अशोक लव, शकुन्तला दुबे, प्रियवंद, जयप्रकाश कर्दम आदि ने भी अपनी उपस्थिति जतायी है। एक बड़ी संख्या में लेखिकाएँ इस दशक में सक्रिय रही। यह आकस्मिक और अस्वाभाविक नहीं हैं कि इस दशक में नारी की नियति और उसकी मुक्ति कामना पर केन्द्रित उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक है। सम्भवतः अधिकतर उपन्यासकारों को अपने समय समाज को नारी की नियति के सन्दर्भ में पारिभाषित विश्लेषित करने की जरूरत महसूस होती जा रही है। नारी केन्द्रित उपन्यासों की सूची इस प्रकार है 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेन्द्र वर्मा), 'मीनारें' (शशि प्रभा शास्त्री), उकाव (क्षितिज शर्मा), 'इच्छा पत्र' (जगन सिंह), 'छिन्नमस्ता', 'पीली आँधी' 'अपने–अपने चेहरे' (प्रभा खेतान), 'अपनी सलीबें (नमिता सिंह), परछाई अन्नपूर्णा' (क्षमा शर्मा) 'यामिनी कथा' (सूर्य बाला), 'अवान्तर कथा' (अनामिका), सुन्नर पांडे की पतोहू (अमरकांत), 'मानदंड' (इंदिरा दीवान), 'आवर्तन' (कमल कुमार), 'एक पत्नी के नोट्स' (ममता कालिया), 'बेतवा बहती रहीं' (इदत्रमम), 'चाक' (मैत्रेयी पुष्पा), 'अपने–अपने कोणार्क', 'वितस्ता बहती है' (चन्द्रकान्ता), वह रास्ता उसी अस्पताल को जाता है (सुधा अरोड़ा), 'सुरंग' (भीमसेन त्यागी), 'औरत' (शिवप्रसाद सिंह), रंगी हुई चिड़िया (धर्मेन्द्र गुप्त) 'कलिकथा

वाया बाईपास' (अलका सारावगी), 'कीर्ति कथा' (कश्मीरी लाल), 'निष्कवच' (राजी सेठ) 'शाल्मली' (नासिरा शर्मा), 'अर्द्वनारीश्वर' (विष्णु प्रभाकर), 'यश' (प्रबोध कुमार गोविल), 'शहर की सड़कें' (राजेन्द्र अवस्थी), 'गंजी' (मंजुल भगत), 'कठगुलाव' (मृदुला गर्ग). 'एक नौकरानी की डायरी', 'नर नारी' (कृष्ण बलदेव वैट), कुंतो, 'नीलू नीलिमा नीलोफर' (भीष्म साहनी). 'साधना' (शशिभूषण) आदि।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. हिन्दी उपन्यास को अंग्रेजी में क्या कहते है ?
2. हिन्दी का पहला उपन्यास किसे माना जाता है ?
3. हिंदी के आरंभिक उपन्यासों की विषय–वस्तु क्या थी ?
4. भाग्यवती उपन्यास के रचियता कौन हैं ?
5. हिन्दी में तिलस्मी एवं ऐय्यारी उपन्यासों के जनक किसे माना जाता है ?
6. भाग्यवती उपन्यास का रचना वर्ष क्या है।

## 1.4 सारांश

गद्य की प्रमुख विधाओं में उपन्यास को सबसे आधुनिक विधा माना जाता है। हिंदी में नोवेल के अर्थ में उपन्यास शब्द का पहला प्रयोग 1875 ई. में हुआ और बंगला में उपन्यास शब्द का पहला प्रयोग 1862 ई. में हुआ जो भूदेव मुखोध्याय द्वारा किया गया था। हिंदी उपन्यास का आरंभ लाला श्रीनिवसदास कृत 'परीक्षा गुरु' (1862) से माना जाता है।

## 1.5 कठिन शब्दावली

**उद्‌भव** – जन्म उद्‌गम

**विकास** – व्यक्त करना, खिलना

**तिलस्म** – जादुई

**ऐययारी** – ठगी

## 1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. नॉवेल
2. परीक्षा गुरु
3. तिलस्मी एवं ऐययारी
4. श्रद्धा राम फिल्लौरी
5. देवकीनंदन खत्री
6. 1877

## 1.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य–साहित्य, महाराणा प्रताप कॉलेज, गोरखपुर।
2. आचार्य उमेश शास्त्री, हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एव विकास, देवनागर प्रकाशन, जयपुर।

## 1.8 सात्रिक प्रश्न

प्रश्न–1 हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–2 हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर विस्तारपूर्वक लिखिए।

प्रश्न–3 हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक वर्ण्य विषयों पर प्रकाश डालिए।

*****

# इकाई–2
# हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

**संरचना**


2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 जैनेन्द्र कुमार : जीवन परिचय

2.3.1 व्यक्तित्व

2.3.2 कृतित्व

स्वयं आकलन प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न


## 2.1 भूमिका

इकाई एक के अन्तर्गत हमने उपन्यास केई उद्भव एवं विकास का गहनता से अध्ययन किया। इकाई–दो में हम जैनेन्द्र कुमार के जीवन परिचय के बारे में अध्ययन करेंगे। जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व कैसा है और कृतित्व का अध्ययन विस्तारपूर्वक करेंगे।

## 2.2 उद्‌देश्य

इकाई दो का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. जैनेन्द्र कुमार का जन्म कहाँ हुआ ?
2. जैनेन्द्र कुमार का जीवन परिचय किस प्रकार है?
3. जैनेन्द्र कुमार का व्यक्तित्व कैसा है?
4. जैनेन्द्र कुमार का कृतित्व का उद्‌देश्य क्या है?

## 2.3 जैनेन्द्र कुमार का जीवन–परिचय

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंदोत्तर युग के कहानीकारों में श्री जैनेन्द्र कुमार जी को श्रेष्ठ कहानीकार के रूप में गिना जाता है, इसका कारण ये है कि जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी गद्य साहित्य में प्रमचंद के बाद नयी सोच, नयी दिशा का निर्माण किया। जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कथा साहित्य के ऐसे प्रथम कथाकार हैं, जिन्होंने मनोविज्ञान के तत्त्वों को आधार बनाकर 'व्यक्ति' की मनःस्थिति का विश्लेषण करके उसकी समस्याओं को समाज के सामने लाने का भरपूर प्रयास किया है। साथ ही सामाजिक विषमताओं को भी उजागर करने का प्रयास किया है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक जीवन–इतिहास अवश्य होता है। जन्म तिथि, जन्म स्थान, माता–पिता, नामकरण, परिवार, शिक्षा–दीक्षा, योग्यताएँ, मृत्यु आदि के माध्यम से कथाकार जैनेन्द्र कुमार जी का जीवन–इतिहास समझने का प्रयास करेंगे।

**2.3.1 व्यक्तित्व**

श्री जैनेन्द्र कुमार जी का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में 2 जनवरी सन् 1905 में हुआ। परन्तु जैनेन्द्र कुमार को अपनी जन्म तिथि संबंधी ठीक अनुमान नहीं था क्योंकि उनकी जन्मपत्री नहीं थी।। वे स्वयं स्वीकार करते ह कि ''ठीक समय पता नहीं, शायद तड़का फूटने से पहले का सवेरा। यह अनुमान हुआ माता जी की लिखी एक कापी की पंक्ति से, उसमें जन्म का सन् 1905 लिखा था।'' जैनेन्द्र कुमार जी का जन्म 'कौड़ियागंज' नामक छोटे से कस्बे में हुआ था। 'कौड़ियागंज' उत्तर प्रदेश के जिला अलीगढ़ में है। जैनेन्द्र कुमार इसी स्थान पर जन्में परन्तु वह इस जगह रहे नहीं। इस बारे में एक लेख से ज्ञात होता है कि **''ये सही है... जैनेन्द्र की पैदाइश कौड़ियागंज की है। नौ वर्ष की उम्र में चले गये यहाँ से पहले अतरौली गये वहाँ उनकी ननसाल थी।''**

**नामकरण**

जैनेन्द्र कुमार जी का 'जैनेन्द्र' नाम किसी पंडित या परिवार जनों के द्वारा दिया गया नाम नहीं था. ये नाम तो उस गुरुकुल की देन है जिसमें जैनेन्द्र जी की प्रारम्भिक विद्यारम्भ करायी गई थी। जैनेन्द्र कुमार जी का जन्म सकट चौथ को हुआ था। जिसके कारण पास पड़ोस के लोग 'सकटुआ' नाम से पुकारने लगे परन्तु जैनेन्द्र जी के पिता प्यारेलाल जी ने इस नाम का खण्डन करते हुए अपने पुत्र का नाम ''आनंदीलाल'' रख दिया इस प्रकार से जैनेन्द्र नाम ''आनंदीलाल'' था। जब आनंदीलाल को हस्तिनापुर के 'ऋषभ ब्रह्मचार्यश्रम गुरुकुल में दाखिल कराया गया जब गुरुकुल के नियमानुसार आनंदीलाल का नाम जैनेन्द्र रखा गया। जैनेन्द्र के आगे 'कुमार' लगाकर जैनेन्द्र कुमार हो गये जैन सम्प्रदाय है परन्तु साहित्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र के कारण ''जैनेन्द्र कुमार नाम से ही प्रसिद्धि है।

**माता–पिता एवं परिवार**

जैनेन्द्र कुमार को जानने के लिए उनके माता–पिता का परिचय देना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के निर्माण में उसके माता पिता का प्रभाव पड़ना एक स्वभाविक प्रक्रिया है। जैनेन्द्र कुमार जी की माता का नाम 'रामदेवी वाई' था जिनका जन्म 'अतरौली' जिला अलीगढ़ में हुआ था। रामदेवी बाई एक अच्छे घराने की महिला थी। जैनेन्द्र कुमार, कुशल, साहसी एवं विदुषी माता की संतान थे। रामदेवी बाई का जन्म जिस युग में हुआ था. उस समय लड़कियों को स्कूली शिक्षा देना मना था। रामदेवी बाई को अगर स्कूली शिक्षा पाने का अवसर मिलता तो वह अवश्य ही किसी ऊँची डिग्री लेने के काबिल थी। जैनेन्द्र जी की माता को स्कूली शिक्षा तो न मिल सकी परन्तु घर गृहस्थी का सम्भालने की शिक्षा उन्हें अवश्य मिलती रही। रामदेवी बाई घर परिवार का बड़ी कुशलता के साथ सम्भालती थी। रामदेवी वाई के पिता यानि जैनेन्द्र कुमार जी के नाना श्री गंगाराम जैन अच्छे प्रतिष्ठित सम्पन्न व्यक्ति थे। भोपाल में ए डी ओ (ADO) के पद पर आसीन थे। जैनेन्द्र कुमार जी को माता दो भाईयों की अकेली बहन थी तथा दोनों भाइयों से बड़ी भी थी।

जैन सम्प्रदाय की अनुयायी होने के कारण जैन धर्म के नियमों का बड़ी ही निष्ठा के साथ पालन भी किया करती थी। रात्रि भोजन त्याग, कुएँ का पानी छान कर प्रयोग में लाना, पूजा–पाठ आदि नियमित चलता था। जैनेन्द्र कुमार अपने संस्मरण 'माता जी में स्वयं लिखते हैं कि ''आचरण से वह कठोर थी। मैं सदा का शिथिलाचारी, रात्रि भोजन के संबंध में असावधान, लेकिन उनका इकलौता बेटा था तो क्या, मुझे याद है शुरू में देर से लौटने पर कई दिन, रात का मुझे खाना नहीं दिया गया था। कुल मर्यादा और सामाजिक व्यवहार के शीत–संभ्रम का उन्हें पूरा चेत था।''

रामेदवी बाई को बचपन में गृहस्थी संभालने की जो शिक्षा मिली थी वह विवाह एवं पति की मृत्य के बाद भी काम आयी। जैनेन्द्र कुमार के जन्म के 2 वर्ष बाद ही वह विधवा हो गई थीं। अपने और बच्चों के सिर से

घर के मुखिया का साया सदा के लिए घर अतरौली चली गई थी। परिवार को संभालते हुए उन्होंने स्वयं अध्ययन भी किया। सन 1918 में दिल्ली के पहाड़ी धीरज के महिलाश्रम की संचालिका बनी। रामदेवी बाई ने बम्बई में ताड़देव में सेठ माणिक चन्द्र की सुपुत्री सुश्री मदन बाई के श्राविकाश्रम में रहकर पढ़ाई की थी। इन्दौर के सेठ हुक्मचन्द्र क श्राविकाश्रम की संचालिका भी बनीं। जैनेन्द्र जी की माता देश प्रेम की भावनों से भी ओत–प्रोत थी। सन् 1935 में रामदेवी बाई का देहांत हो गया।

जैनेन्द्र कुमार जी के पिता का नाम श्री प्यारेलाल जैन था। जैनेन्द्र जी के पिता ने अतरौली में रहकर ही पढ़ाई की तथा पटवारी की परीक्षा पास की। जैनेन्द्र कुमार जी के पिता ऐसे परिवार में जन्म लिया था जहां अपने हाथ पाँव पर भरोसा किया जाता था, इसी कारण पटवारी का इम्तेहान पास करने के बावजूद पटवारी का कार्य न करते हुए गाँव की पैंठ में दैहात का बना कपड़ा बेचते थे। इसी से परिवार का पालन पोषण चलता था। जैनेन्द्र कुमार के जन्म लेने के बाद से ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। श्वास, कफ, रोग लग गया था, सन् 1907 में पिता का स्वर्गवास हो गया। अतः जैनेन्द्र कुमार के माता–पिता महान् व्यक्तित्व वाले थे जिसका प्रभाव जैनेन्द्र जी पर पड़ा। शरारती, हठी होने के वावजूद भी सभी के प्यारे थे। बचपन से ही सभी के दिलों में स्थान पाने वाले व्यक्ति रह हैं।

**शिक्षा–दीक्षा**

पंडित की कहीं हुई बात सही हो गई जैनेन्द्र जी के सिर से पिता का साया उठ गया। इसके बाद से ही जैनेन्द्र जी की शिक्षा का आरम्भ उनके मामा के घर पर ही हुआ था। जैनेन्द्र जी के ननिहाल में औरतों को छोड़कर सभी फारसी भाषा का ज्ञान रखते थे, जिसके कारण घराने के रिवाज के अनुसार जैनेन्द्र जी का विद्यारम्भ संस्कार 'अ, ई' देवनागरी लिपि में न होकर फारसी लिपि के अलिफ, बे, ते, से से शुरू कराया गया था। शीन और काफ काफी दुरूस्त थे। जैनेन्द्र कुमार जी की शिक्षा हस्तिनापुर के 'जैन गुरुकुल ऋषि ब्रह्माचाश्रम नामक गुरुकुल में हुई थी, इस गुरुकुल की स्थापना उनके मामा ने ही करवाई थी। गुरुकुल में दाखिला लेने पर जैनेन्द्र जी छः सात साल के थे। जैनेन्द्र जी प्रारम्भ में पढ़ने–लिखने में रूचि नहीं लिया करते थे। एक बार उनके मामा ने उनको एक पत्र लिखा जिसे पढ़कर रो पड़े और उसके बाद से वह पढ़ने में मन लगाने लगे तथा कभी प्रथम श्रेणी के अलावा द्वितीय श्रेणी नहीं आते थे। सन् 1918 में गुरुकुल किसी कारण से बंद हो गया जिसस जैनेन्द्र जी की पढ़ाई का क्रम टूट गया। दिल्ली में माता जी महिला आश्रम की संचालिका थीं तो उन्हीं के पास आ गए। जैनेन्द्र जी की उम्र मैट्रिक की पढ़ाई के हिसाब से कम थी। इसी कारण मैट्रिक की पढ़ाई न कराने का विचार किया गया। जैनेन्द्र जी ने सन् 1919 में स्वयं अध्ययन करके व्यक्तिगत रूप से पंजाब से मैट्रिक के बाद इण्टर मीडिएट की पढ़ाई के लिए 1919 में बनारस यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लिया। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होने के कारण विश्वविद्यालय छोड़कर आन्दोलनों में भाग लेने लगे और पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। 16 वर्ष की उम्र में ही स्कूल छोड़कर जीवन में आगे बढ़ गये।

**दाम्पत्य जीवन**

जैनेन्द्र कुमार जी का विवाह सन् 1929 में हुआ था। जैनेन्द्र कुमार जी की पत्नी का नाम 'भगवती जैन' है। उनकी पत्नी का घर मुजफ्फरनगर में था। भगवती जी एक अच्छे परिवार की लड़की थी। जैनेन्द्र जी की पत्नी ज्यादा पढ़ी–लिखी नहीं थी। इस पर जैनेन्द्र स्वयं को सौभाग्यशली बताते हुए कहते हैं कि ''श्रीमती भगवती देवी यदि मामूली भी पढ़ी–लिखी नहीं थी तो वह उनके भाग्य की दृष्टि से वरदान ही सिद्ध है उनके जैसी सब परिस्थितियों में निर्वाह कर सकने वाली और हर तरह का श्रम और कष्ट सह सकने वाली पत्नी शायद दूसरी नहीं हो सकती थी।'' जैनेन्द्र कुमार जी का विवाह उनकी माता की पसंद की लड़की से हुआ था। जैनेन्द्र जी ने अपनी पत्नी की शादी से पहले देखा नहीं तथा माता जी के कहने पर भी उन्होंने इस विषय पर कहा कि – ''तुमने जो पसंद करली है वह ठीक है, मुझे सब मंजूर है।'' जैनेन्द्र कुमार जी की पत्नी को शादी से पहले जैनेन्द्र

जी को देखने का एक अवसर अवश्य मिला था। भगवती जैन लिखती है कि ''महात्मा जी के पास उस समय में पढ़ रही थी कि एकदम तांगा आकर रूका देखा कि गांधी टोपी, खद्दर का कुर्ता, धोती पहने हुए एक 23–24 वर्ष का नवयुवक हाथ में टोकरी लिए हुए कमरे की तरफ आ रहा है। इतना देख शक हुआ कि था कि दिल्ली से कोई आया है, यह पहला ही अवसर था कि ''इन्हे'' मैंने देखा।''

जैनेन्द्र जी का विवाह बिना लेन–देन के हुआ था बारात में सात आदमी गये थे। विवाह में जैनेन्द्र जी की पत्नी ने कोई भी जेवर नहीं पहना हुआ था क्योंकि जैनेन्द्र जी के मामा भगवानदीन ने कहा था कि ''जिस दिन जैनेन्द्र कमायेंगा उसी रोज भगवती जेवर पहनेगी। इस वक्त कोई भी जेवर बदन पर नहीं होगा।'' जैनेन्द्र कुमार की पत्नी ने उनका बड़ा साथ दिया चाहे वो घर–गृहस्थी के कार्य हो या जैनेन्द्र जी के साथ देश–सेवा का कार्य हो। जैनेन्द्र जी अपनी पत्नी को प्रेयसी मानते थे। जैनेन्द्र जी अपने मित्र श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय के घर लेखन कार्य से जाया करते थे तथा मित्रता इतनी घनिष्ठ थी कि साथ खाना भी खाया करते थे एक दिन मित्र के घर पूरी–पकवान बना था, मित्र उन्हें खाने को कह रहे थे परन्तु जैनेन्द्र जी चुप बैठे रहे तथा भोजन देख कर जो शब्द उनके मुख से निकले वो इस तरह थे कि ''गोयलीय जी खाना बंधवा दो–साथ ले जाऊँगा–वहीं पर खा लूँगा, मित्र के पूछने से पहले ही जैनेन्द्र सजल आँखों के साथ बोले–दो दिन से पत्नी ने खाना नहीं खाया, मैं पकवान कैसे वही ले जाऊँगा, उसी के संग खाऊगा। इन शब्दों से पता चलता है कि जैनेन्द्र और उनकी पत्नी के बीच मधुर संबंध थे। जैनेन्द्र कुमार जी के पाँच बच्चे हुए जिसमें से कुसुम, कुमुद, कनक तीन बेटियाँ और दिलीप कुमार, प्रदीप कुमार दो पुत्र थे।

**जैनेन्द्र कुमार की मृत्यु**

22 नवम्बर 1986 में गुड़गाँव में आयोजित 'मैथिलीशरण गुप्त' के जन्म शताब्दी समारोह में भाग लेने गये थे वहीं अचानक गिर पड़े। जैनेन्द्र जी को लकवा मार गया था जिससे उनके शरीर का दाहिना हिस्सा बेकार हो गया तथा बोलने की शक्ति भी खो गयी थी। जैनेन्द्र जी ने दो वर्षों तक इस परेशानी को झेला और 24 दिसम्बर 1988 में उन्होंने इस संघर्ष भरी जिन्दगी से मुक्ति पा ली।

जैनेन्द्र के चिन्तन पर पारिवारिक परिवेश का भी गहरा प्रभाव पड़ा। अल्पशिक्षित भगवती देवी के साथ उनकी शादी हुई जिससे दिलीप कुमार और प्रदीप कुमार नामक दो पुत्र तथा कुमुद, और कलक नामक तीन पुत्रियां हुई। जैनेन्द्र कुमार ने पारिवारिक ज़िम्मेदारी कभी संभाली नहीं और न ही आजीविका के लिए कोई काम ढंग से किया। उनका ईश्वर पर अटूट विश्वास था और गृहस्थी ईश्वर के सहारे ही चली। जैनेन्द्र की लड़कियां उच्च शिक्षा प्राप्त कर अच्छे परिवारों में व्याही गई। जैनेन्द्र ने पूर्वोदय प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसे बाद में बड़े लड़के ने संभाला। दिलीप कुमार की असमय मृत्यु के पश्चात् प्रकाशन का दायित्व छोटे लड़के प्रदीप कुमार ने संभाला।

**जैन धर्म का प्रभाव** – जैनेन्द्र कुमार पर अपने जैन धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा। माँ जैन धर्म की साध्वी थीं और श्रावकाश्रम इन्दौर की संचालिका बनीं। मामा भगवानदीन ने जैन धर्म के गुरूकुल की स्थापना की थी, वहीं जैनेन्द्र की शिक्षा प्रारम्भ हुई थी। किशोरावस्था में धर्म के प्रति विद्रोह का भाव भी पैदा हुआ परन्तु 1930 में गांधी जी के आन्दोलन में भाग लेने पर जेल गए तो पुनः धर्म में आस्था बढ़ी। जैन धर्म में समर्पण की अपेक्षा आत्म–साधना का अधिक महत्व है। वे सत्य और अहिंसा के पुजारी बने।

जैनेन्द्र गांधी से प्रभावित थे इसलिए उनका रहन–सहन साधारण–सा था। गाँधी टोपी, खद्दर का कुरता, धोती साधारण–सी उनकी पोशाक थी। वे शुद्ध शाकाहारी थे और उन्हें प्याज़, उड़द की दाल, दूध और दही पसंद था। 19 वर्ष की अवस्था में गांधी के प्रभाव में राजनीतिक क्षेत्र में उतरे। धीरे–धीरे क्रांति का भाव कम होता गया। 22–23 वर्ष की आयु तक बेकार रहने से मन में हीनता का भाव घर करने लगा। मां से पचास रूपए लेकर काम की खोज में कलकता भी गए पर काम न मिला। उन्होंने महावीर जैन और महात्मा बुद्ध के सत्य और

अहिंसा के तत्व को अपनाया। उनके समग्र साहित्य पर यह प्रभाव दिखाई देता है। वे ईश्वर में गहरा विश्वास रखते थे। सत्य को अंतिम सत्य मानते थे फिर भी कभी भजन कीर्तन नहीं किया। वे जैन होकर कभी जैन नहीं हुए।

1927 में लाला लाजपत राय के तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स में भी भर्ती हुए थे। वहां मन न लगा तो मध्यप्रदेश में बिलासपुर गए जहाँ माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान से भेंट हुई। वहीं से अहमदाबाद में हो रहे कांग्रेस के अधिवेशन में भी गए। 1927 और 1930 में जेल भी गए। 1932 के पश्चात् राजनीति से अलग हो गए।

जैनेन्द्र साहित्य–लेखन की ओर कैसे आए यह एक रोचक प्रसंग है। अपने एक मित्र की पत्नी से इस बात पर बहस हो गई कि देखें पहले कहानी कौन लिखता है। बड़ी मुश्किल से उन्होंने पहली कहानी 'खेल' पूरी की और 'विशाल भारत' में छपने को भेज दी। कहानी के पारिश्रमिक के रूप में चार रूपए प्राप्त हुए। एक बेकार युवक के लिए उस समय चार रूपए बड़ी रकम थी। फिर क्या था निरन्तर कहानियां, लेख, उपन्यास लिखकर आजीविका चलाने लगे। वे एक अच्छे वक्ता, अच्छे विचारक, राजनीतिज्ञ और विशाल हृदय के व्यक्ति थे।

**2.3.2 • कृतित्व**

जैनेन्द्र जी का व्यक्तित्व जितना महान हैं, उतना ही उनका कृतित्व उच्चकोटि का है। हिन्दी गद्य साहित्य की अनेक विधाओं को जैनेन्द्र जी ने अपनी लेखनी से सींचा है। जैनेन्द्र जी की रचनाओं का विवरण इस प्रकार से है–

**उपन्यास**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | परख | 1929 |
| 2. | सुनीता | 1935 |
| 3. | त्यागपत्र | 1937 |
| 4. | कल्याणी | 1940 |
| 5. | सुखदा | 1952 |
| 6. | विवर्त | 1953 |
| 7. | व्यतीत | 1954 |
| 8 | जयवर्धन | 1956 |
| 9 | मुक्तिबोध | 1965 |
| 10. | अनन्तर | 1969 |
| 11. | अनामस्वामी | 1974 |
| 12. | दशार्क | 1985 |
| 13. | तपोभूमि | 1932 |

श्री जैनेन्द्र कुमार ने तपोभूमि उपन्यास की रचना श्री 'ऋषभ चरण जैन' के सहयोग से की।

**कहानी–संग्रह**

प्रथम भाग–फाँसी तथा अन्य कहानियाँ – 1953

दितीय भाग–अपना–अपना भाग्य एवं अन्य कहानियाँ – 1953

तृतीय भाग–नीलम देश की राजकन्या एवं अन्य कहानियाँ – 1953

चौथा भाग– जाहनवी एवं अन्य कहानियाँ – 1953

पाँचवाँ भाग ध्रुवयात्रा एवं अन्य कहानियाँ –1953

छठा भाग–साधु की हट एवं अन्य कहानियाँ – 1953

सातवाँ भाग– तिरवेनी एवं अन्य कहानियाँ – 1954

आठवां माग– अभागे लोग एवं अन्य कहानियाँ – 1962

नवाँ भाग – दो सहलियाँ एवं अन्य कहानियाँ – 1964

दसवाँ भाग– महामहिम एवं अन्य कहानियाँ – 1966

## निबंध–साहित्य

जैनेन्द्र कुमार जी ने निबंध विधा के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जैनेन्द्र कुमार जी के निबंध से संबंधित डा. त्रिलोचन पाण्डेय लिखते हैं कि ''जैनेन्द्र जी विचारक अधिक है और यह रूप निबंधों में उभरा हुआ है। उनके निबंधों की विशेषता यह है कि सरल भाषा पूर्ण छोटे–छोटे वाक्यों में गम्भीर तथ्य स्पष्ट किये है।'' **जैनेन्द्र जी के निबंधों के नाम निम्न प्रकार से हैं –**

1. काम, प्रेम और परिवार (1936)
2. जैनेन्द्र के विचार (1937)
3. प्रस्तुत प्रश्न (1938)
4. पूर्वोदय (1951)
5. जड़ की बात (1945)
6. सोच–विचार (1952)
7. मंथन (1953)
8. समय और हम (1962)
9. राष्ट्र और राज्य (1963)
10. प्ररिपेक्ष (1965)
11. प्रश्न और प्रश्न (1966)
12. अकाल पुरुष गाँधी (1966)
13. समय, समस्या और सिद्धांत (1971)
14. बंगला देश एक (1971)
15. वृत्त बिहार (तीन खण्ड 1971, 75, 77)
16. इतस्तत (1972)
17. प्रेम और विवाह (1980)

## अनुवाद, संस्मरण एवं अन्य

### अनुवाद

1. मग्दालिनी – मैतरलिंक के नाटक का अनुवाद – 1935
2. पाप और प्रकाश – टॉलस्टॉय क नाटक का अनुवाद – 1937
3. प्रेम में भगवान – टॉलस्टॉय के कथा संग्रह का अनुवाद – 1952
4. यामा – अलेक्जेंडर क्यूप्रिन के उपन्यास का अनुवाद – 1956
5. क्या भविष्य है? – बर्टेंड रसेल के निबंध का अनुवाद – 200

### संस्करण

1. ये और वे – 1953
2. प्रेमचंद : एक कृति व्यक्तित्व – 1967
3. 3. कश्मीर की यात्रा (यात्रा संस्मरण) – 1968
4. मेरे भटकाव – 1981

### आलोचनात्मक कृतियाँ

1. साहित्य का श्रेय और प्रेय–1953
2. कहानी : अनुभव और शिल्प–1967
3. साहित्य और संस्कृति–1979
4. शिक्षा और संस्कृति–1981

**सम्पादित पुस्तकें**

1. हंस — 1936 (प्रेमचंद की मृत्यु बाद एक विशेषांक का सम्पादन)
2. लोक जीवन — 1946, मैटिक पत्रिका, संस्थापक व संपादक
3. साहित्य चयन — 1951, कथासंग्रह, सम्पादक
4. विचार वल्लरी — 1952, निबंधसंग्रह, सम्पादक
5. 23 हिन्दी कहानियाँ — 1964, कथासंग्रह, सम्पादक
6. कल्प — 1972, पाक्षिक पत्रिका, संस्थापक व संपादक

**पुरस्कार एवं सम्मान**

1. परख (उपन्यास) — हिन्दुस्तानी अकेदमी सम्मान (1929)
2. प्रेम में भगवान (अनुवाद) — शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार का पुरस्कार (1952)
3. समय और हम (निबंध) — मंगला प्रसाद पारितोषिक एवं हजारीमलडालमिया पुरस्कार (1962)
4. मुक्तिबोध ( उपन्यास) — साहित्य अकादमी सम्मान (1968)

जैनेन्द्र कुमार जी ने हिन्दी साहित्य में जो योगदान दिया वह अमूल्य है। जैनेन्द्र जी के लेखन कार्य एवं हिन्दी साहित्य के प्रति लगन को देखते हुए उन्हें कई सम्मानों से सम्मानित किया गया है।

1. 1971 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।
2. 1972 में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा मानद डी. लिट. की उपाधि।
3. 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा मानद डी. लिट. की उपाधि।
4. 1973 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति की उपाधि मिली।
5. 1974 में गुरुकुल काँगड़ी द्वारा विद्यावाचस्पति उपाधि से अलंकृत किया गया।
6. 1978 में तुलसी सम्मान से सम्मानित किया गया।
7. 1982 में साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता तथा अणुव्रत सम्मान से सम्मानित किया।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. जैनेन्द्र कुमार का मूल नाम क्या था ?
2. जैनेन्द्र कुमार का जन्म कब हुआ था ?
3. जैनेन्द्र कुमार की मृत्यु कब हुई ?
4. हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का जनक किसे माना जाता है ?
5. जैनेन्द्र कुमार पर किस पाश्चात्य विद्वान का प्रभाव माना जाता है ?
6. जैनेन्द्र के पिता जी का नाम क्या था ?

## 2.4 सारांश

प्रेमचंदोतर उपन्यासकारों में जैनेन्द्र का विशिष्ट स्थान है। वह हिन्दी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणवादी परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते है। इनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटना पर बहुत कम बल दिया गया मिलता है।

## 2.5 कठिन शब्दावली

**मनोविज्ञान** — मन और व्यवहार का अध्ययन

**व्यक्तिव** — व्यक्ति की विशेषता या गुण

**कृतित्व** — किसी कृति अथवा रचना का गुण

### 2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. आनंदी लाल
2. 1905
3. 1990
4. जैनेन्द्र
5. एडलर एवं फ्रायड
6. प्यारे लाल जैन

### 2.7 संदर्भित पुस्तकें


1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
2. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य ।


### 2.8 सात्रिक प्रश्न

1. जैनेन्द्र कुमार का जन्म, शिक्षा एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
3. मनोवैज्ञानिक साहित्यकारों में जैनेन्द्र का स्थान निर्धारित कीजिए।

*****

# इकाई—3
# त्यागपत्र : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**

3.1 भूमिका
3.2 उद्देश्य
3.3 त्यागपत्र : पाठपरक अध्ययन
3.3.1 त्यागपत्र की तात्विक समीक्षा
3.3.2 त्यागपत्र का सार
3.3.3 त्यागपत्र का उद्देश्य
3.3.4 मृणाल का चरित्र चित्रण
3.3.5 प्रमोद का चरित्र चित्रण
स्वयं आकलन प्रश्न
3.4 सारांश
3.5 कठिन शब्दावली
3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
3.7 संदर्भित पुस्तकें
3.8 सात्रिक प्रश्न

### 3.1 भूमिका

इकाई—दो के अन्तर्गत हमने उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार के जीवन परिचय के बारे में गहनता के साथ अध्ययन किया। इकाई—तीन में हम त्यागपत्र उपन्यास का पाठपरक अध्ययन करेंगे। जिसमें उपन्यास की तात्विक समीक्षा करेंगे, सार, उद्देश्य और पात्रों के चरित्र—चित्रण का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

### 3.2 उद्देश्य

इकाई तीन का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि —

1. त्याग पत्र उपन्यास की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
2. त्याग पत्र का सार क्या है ?
3. त्यागपत्र उपन्यास का उद्देश्य क्या है ?
4. त्यागपत्र उपन्यास में पात्रों का चरित्र—चित्रण कैसे करेंगे ?
5. मृणाल के चरित्र—चित्रण को कैसे स्पष्ट करेंगे ?

### 3.3 त्यागपत्र : पाठपरक अध्ययन

'त्यागपत्र' 1937 में प्रकाशित जैनेन्द्र का तीसरा उपन्यास है। इससे पूर्व 'परख' और 'सुनीता' उपन्यास छप चुके थे। यह लघु उपन्यास प्रथम पुरूष में आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है। लेखक के अनुसार इसकी पाण्डुलिपि सर एम. दयाल जो प्रान्त के चीफ जज थे, उनके पत्रों में मरणोपरान्त प्राप्त हुई जो अंग्रेजी में लिखी थी। लेखक ने उसे हिन्दी में अनूदित किया है। इस प्रकार इस उपन्यास की कथा को यथार्थ का आभास देने के लिए यह सब कहा गया है।

उपन्यास की नायिका मृणाल है जो अपने भतीजे प्रमोद तथा अपने भाई और भाभी के साथ रहती है। इसमें मृणाल के अभिशप्त जीवन की कथा कही गई है। वह अपने से चार–पाँच वर्ष छोटे भतीजे से स्नेह करती है और उसी के साथ स्कूल में पढ़ती है। भाई का व्यवहार स्नेहपूर्ण है परन्तु भाभी कुछ कठोर स्वभाव की है। मृणाल अपने भतीजे को अपनी शरारतों के विषय में रस लेकर सुनाती है। उसकी एक सहेली शीला है। मृणाल बारहवीं में पढ़ रही थी जबकि प्रमोद सातवीं में था। मृणाल प्रायः शीला के साथ उसके घर जाती है जहाँ उसे उसके भाई से प्यार हो जाता है। कालान्तर में इस प्रेम का रहस्य जब भाभी को पता चलता है तो वह मृणाल को कोठरी में बन्द करके पीटती है और उसका स्कूल जाना बन्द करवा देती है। कुछ महीनों में मृणाल की शादी एक अधेड़ उम्र के विधुर से करवा दी जाती है। भाभी चाहती थी कि शीघ्र मृणाल को कहीं दूर भेज दे ताकि उसके प्रेम प्रसंग को किसी को पता न चले।

मृणाल विचारशील, दृढ़ निश्चयी और स्वतंत्र प्रकृति की लड़की है। वह अपने पति को अपने पूर्व प्रेम के विषय में बतला देती है। वह नहीं चाहती कि अपने पति को अन्धेरे में रखे। उसका पूर्व प्रेमी तब तक डॉक्टर बन चुका था। वह उसे भी पुनः कभी संपर्क न करने के लिए संदेश भिजवाती है। उसका पति उसके पूर्व सम्बन्ध को स्वीकार नहीं कर पाता और उसे मारता–पीटता है और अन्ततः छोड़ देता है। वह उसके लिए एक कोठरी में रहने की अलग व्यवस्था कर देता है। प्रमोद अपनी बुआ के लिए बहुत परेशान रहता है परन्तु घर पर कोई उसकी बात को महत्व नहीं देता। प्रमोद बी.ए. की पढ़ाई करने चला जाता है।

मृणाल अकेले रह रही थी तो एक कोयला बेचने वाले ने उससे मेल–जोल बढ़ाया और उससे प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया। वह मृणाल को अपना सर्वस्व कहता था। परन्तु मृणाल जानती थी कि एक दिन वह भी उसे छोड़ देगा। वह उसके साथ भागकर किसी और शहर में चली जाती है और दोनों एक कोठरी लेकर इकट्ठे रहने लगते हैं। कोयले का व्यापार भी प्रारम्भ कर लेते हैं।

उधर प्रमोद बी.ए. पास कर लेता है और माँ उसे घर आकर अपने विवाह के लिए लडकी देखने का आग्रह करती है। प्रमोद इस बीच बुआ का पता लगा लेता है और उससे मिलने जाता है। एक कोठरी में बुआ रोटियां पका रही थी। कोठरी का वातावरण निम्न मध्यवर्गीय था। उसका पति बाहर दुकान पर कोयला बेच रहा था। प्रमोद अपनी बुआ को अपने साथ ले जाना चाहता है परन्तु बुआ जानती है कि उस तथाकथित सभ्य–सुशिक्षित समाज में अब उसके लिए जगह नहीं है। वह दृढ़तापूर्ण प्रमोद के साथ जाने से इन्कार कर देती है। वह प्रमोद को यह भी बताती है कि कोयले वाला एक दिन, मन भर जाने पर उसे छोड़ देगा, परन्तु वह स्वेच्छा से उसके साथ रह रही है इसलिए परिणाम की चिन्ता नहीं, प्रमोद वहाँ से चला गया। घर पर माँ से उसने मृणाल से मुलाकात की बात कही तो माँ ने उस चरित्रहीन की बात करने से मना किया।

प्रमोद वकालत पढ़कर जज बन गया। उधर मृणाल का रूपया पैसा समेटकर कोयले वाला उसका प्रेमी पुनः अपने परिवार में लौट गया। वह पहले ही विवाहित था और मृणाल भी यह जानती थी। बेसहारा मृणाल उस समय गर्भवती भी। मिशन अस्पताल में उसने बेठी को जन्म दिया। मिशन वालों ने उसे इसाई बनने के लिए कहा ताकि वह वहीं रहकर काम कर सके और लड़की को मिशन पाल ले। मृणाल ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और वह वहाँ से चली गई।

मृणाल को राजनन्दिनी के परिवार में सहारा मिलता है और वह छोटे बच्चों को घर पर पढ़ाने लगती है। वह एक डॉक्टर का परिवार था और राजनन्दिनी उसकी बेटी थी। प्रमोद की शादी की बात राजनन्दिनी से चल रही थी और जब वह उसे देखने डॉक्टर के घर पहुँचा तो उसने बुआ को बच्चों को पढ़ाते देखा। वह बाद में जाकर बुआ से मिला और उसे घर चलने का आग्रह किया। मृणाल ने स्पष्ट कर दिया कि उसकी शादी में शामिल न हो सकेगी। उसने प्रमोद को भी कहा कि वह उसके विषय में किसी को कुछ न बताए। उसने प्रमोद से यह भी कहा कि वह राजनन्दिनी से शादी कर ले क्योंकि वह सभ्य, संपन्न और सुशील लड़की है। प्रमोद ने

अपने भावी ससुर को स्पष्ट रूप से बता दिया कि उनके घर में ट्यूटर का काम कर रही मृणाल उसकी बुआ है और रहेगी। डॉक्टर साहब को कोई ऐतराज़ नहीं था परन्तु उनकी पत्नी और बिरादरी ने इस विवाह का विरोध किया। शादी टूट गई। राजनन्दिनी की शादी कहीं और हो गई जहाँ वह संभवतः सुखी नहीं रही। डॉक्टर साहब प्रमोद को पुत्रवत ही मानते रहे परन्तु अपनी बिरादरी और पत्नी से पार न पा सके। मृणाल को काम से निकाल दिया गया।

प्रमोद ने बुआ को खोजने का पुनः प्रयास किया परन्तु कुछ पता न चल सका कि वह कहाँ चली गई। अनेक वर्ष बीत गए। प्रमोद वकील बन गए। समाज में उनका मान था। माँ की मृत्यु हो गई परन्तु मृणाल को सूचित नहीं किया जा सका।

अन्तिम बार प्रमोद बुआ मृणाल से एक गन्दी कोठरी में मिला जहाँ वह रोगग्रस्त थी और अनेक निम्नतम श्रेणी के लोग उसके पास जुटे थे। स्वयं बुआ न उसे पत्र लिखकर बुलाया था। वह बदनाम मुहल्ले में रह रही थी जहाँ चोर–उचक्के, ठग, वेश्याएँ एक साथ रहते थे। प्रमोद ने पुनः उसे अपने साथ चलने का आग्रह किया ताकि ठीक से इलाज हो सके। मृणाल ने उससे कहा कि यदि वह दे सकता है तो बहुत से पैसे दे जाए ताकि उस मुहल्ले में रहने वाले लोगों की सहायता हो सके। वह साथ जाने को तैयार नहीं हुई। प्रमोद अपने साथी वकील को कुछ पैसे देकर मृणाल को इलाज करवाने के लिए कहकर चला आया।

सत्रह वर्ष बीत गए। एक दिन अचानक समाचार आया कि बुआ नहीं रही। खबर सुनकर एकाएक प्रमोद पश्चाताप से भर गया। उसे अपनी कायरता, स्वार्थपरता पर क्रोध आया। उसने अपने आप से कहा कि बुआ के जीत जी वह स्वार्थी बना रहा, अपना ही सुख देखता रहा परन्तु अब वह और अधिक ऐसा घृणित जीवन नहीं जिएगा। उसने जज के पद से त्यागपत्र दे दिया। वह हरिद्वार में सन्यासी बनकर रहने लगा। यह उपन्यास उसकी मृत्यु के समाचार से प्रारम्भ होता है। सर एम. दयाल ही जज प्रमोद है जिनकी आत्म कथात्मक कहानी इस उपन्यास में आई है।

यह जैनेन्द्र का सशक्त उपन्यास माना जाता है। इसमें मृणाल असहाय सामाजिक व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करती है। वह विद्रोह नहीं करती। अपने को मिटा देती है। अपनी शहादत देकर – अहिंसा और प्रेम को चरितार्थ करते हुए–पुरूष के स्वामित्व के औचित्य को चुनौती देती है। यहां भी लेखक ने नारी के आत्मदान में ही उसकी मुक्ति के दर्शन का प्रतिपादन किया है।

'सुनीता' की तरह 'त्यागपत्र' में 'घर–बाहर' की समस्या को जैनेन्द्र ने उपस्थित किया है। 'त्यागपत्र' आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास है। उपन्यास की हर घटना लहरों की तरह दयाल के स्मृतिपटल से टकराती है और अन्ततः उसे त्यागपत्र देने पर विवश कर देती है। मृणाल अपना घर तोड़ना नहीं चाहती इसीलिए अपने पूर्व के प्रेम की बात पति को सच–सच बतला देती है। वह वैवाहिक जीवन की नींव ईमानदारी पर रखना चाहती है। अपने दूसरे प्रेमी कोयलेवाले को अपना शरीर सौंपती है परन्तु उसके बदले में पैसे माँगने को वह वेश्यावृति करार देती है।

त्यागपत्र एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी है। मृणाल और प्रमोद के मनोविश्लेषण को स्पष्ट करने वाले अनेक लम्बे संवाद और प्रसंग हैं। 'त्यागपत्र' में मृणाल युवा नायिका के रूप में चित्रित है। वह प्रमोद में अपने प्रेमी को खोजती है इसीलिए उसकी बुआ बनी रहना नहीं चाहती। वह कहती हैं, 'मै तुम्हें प्यार करती हूँ प्रमोद।' उसे अपने पास खींचकर छाती से घोंसले में छुपाती है। प्रमोद 11–12 वर्ष का है और वह 17–18 की। फ्रायड के मतानुसार अपनी अतृप्त वासना छोटे बालकों में या नज़दीक के व्यक्ति से मानसिक रूप में मनुष्य तृप्त करता है। मृणाल भी अपने असफल प्रेमी को संभवतः प्रमोद में देखती है। 'त्यागपत्र', मराठी, बांग्ला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, अरबी, अंग्रेजी तथा जर्मन भाषा में अनूदित हुआ है।

### 3.3.1 जैनेन्द्र विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' की तात्विक समीक्षा –

किसी भी उपन्यास की तात्विक समीक्षा करते हुए हम उपन्यास के प्रमुख तत्वों के आधार पर उसका मूल्यांकन प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास के प्रमुख तत्व हैं– कथानक, पात्र–चित्रण, देशकाल और वातावरण, भाषा–शिल्प, संवाद और उद्‌देश्य। 'त्यागपत्र' उपन्यास की समीक्षा हम इन्हीं तत्वों के आधार पर करेंगें।

**1. कथानक** – किसी भी उपन्यास का कथानक घटनाओं के ताने–बाने से बुना जाता है। घटनाएँ पात्रों के साथ घटित होती हैं। त्यागपत्र उपन्यास का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है। यह आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है इसलिए जज एम. एस. दयाल उर्फ प्रमोद की आत्मकथा के रूप में लेखक ने इसे प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की प्रमुख घटनाओं में प्रमोद की बुआ मृणाल का प्रेम–प्रसंग और उससे उत्पन्न विवाद के कारण भाई और भाभी द्वारा उसकी शादी एक विधुर के साथ किया जाना, मृणाल का शादी से अप्रसन्न होना और अपने पति को अपने पूर्व प्रेम की बात बताना, पति द्वारा मृणाल को त्यागा जाना, मृणाल का कोयले वाले के साथ भाग जाना और अन्ततः उसके द्वारा भी गर्भिनी मृणाल को असहाय छोड़ देना प्रमुख घटनाएँ हैं। मृणाल का मिशन में लड़की को जन्म देना, बाद में लड़की की मृत्यु और मृणाल का मिशन त्याग किसी अन्य शहर में चले जाना और डॉक्टर के यहाँ बच्चों की शिक्षिका बनना भी प्रमुख घटनाएँ हैं। प्रमोद का अपनी बुआ मृणाल से बार–बार मिलना और अन्ततः गन्दी बस्ती में उसे असहाय छोड़ आना भी प्रमुख घटना है। प्रमोद को मृणाल की मृत्यु पर पश्चाताप होता है और अपनी कठोरता, स्वार्थपरता तथा अहमवादिता पर पश्चाताप होता है और वह अपने पद से त्याग पत्र देकर, हरिद्वार में सन्यासी बनकर रहने लगता है। संभवतः वह वहाँ नाम बदल कर सर एम.एस. दयाल के रूप में रहता था। इस प्रकार कहानी का कथानक मृणाल के जीवन की त्रासदी और प्रमोद की मानसिक पीड़ा की कहानी है। जीवन की सार्थकता पद–प्रतिष्ठा, मान, धन प्राप्ति में है अथवा दर्द से गुज़र कर आत्मज्ञान प्राप्त करने में है, यही इस कहानी का मुख्य विषय है जिसे मृणाल और प्रमोद के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

**2. पात्र–चित्रण** – प्रस्तुत उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यास है इसलिए पात्रों को घटनाओं के घात–प्रतिघात में विकसित नहीं किया गया। पात्रों का आत्म–चिंतन, उनका अंतर्द्वन्द्व अधिक चित्रित है। भाभी, बुआ, प्रमोद के पिता और प्रमोद, सभी की मानसिक दशा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। लेखक ने पात्रों को आत्मचिंतन ग्रस्त दिखाया है विशेषकर प्रमोद को। प्रमोद अत्याधिक संवेदनशील है, उसकी माँ, सामाजिक रूढ़ियों की शिकार सामान्य मध्यमवर्गीय नारी है जो सामाजिक मान–सम्मान को अधिक महत्व देती है। प्रमोद के पिता और मृणाल के पिता तुल्य भाई को संवेदनशील चित्रित किया गया है परन्तु वह भी सामाजिक मर्यादाओं की बेड़ियों में जकड़ा है। कोयले वाले का चरित्र चपटा अर्थात् गढ़ा–गढ़ाया है जिसमें कोई विकास नहीं होता। मृणाल सर्वाधिक कष्ट सहती है और सामाजिक स्थितियों पर अपना मत देती है। स्त्री के लिए पतिव्रत्य धर्म को सर्वोपरि मानकर वह अपनी रूढ़िवादिता का परिचय देती है। मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक हुआ है।

**3. देशकाल और वातावरण** – उपन्यासकार ने स्वतन्त्रता से पूर्व के भारतीय समाज का चित्रण किया है जो संभवतः 20वीं शताब्दी के तीसरे–चौथे दशक में विद्यमान था। लड़कियाँ, शिक्षा प्राप्त करने लगी थीं यद्यपि अीाी उप पर अनेक प्रतिबन्ध रहते थे। विवाह प्रायः जाति के भीतर ही होते थे और प्रेम विवाह अच्छा नहीं माना जाता था। माता–पिता द्वारा शादियाँ तय की जाती थी और लड़कियों की पसन्द–ना पसन्द का अधिक ध्यान नहीं रखा जाता था। प्रमोद की बुआ का अनमेल विवाह और प्रमोद का राजनन्दिनी से विवाह टूटना उस समय के रूढ़िवादी समाज का परिचायक है। समाज में पतिव्रता धर्म को सती नारी के लिए सर्वोपरि माना जाता है। मृणाल, समाज की अनेक रूढ़ियों और मर्यादाओं को तोड़ते हुए भी पतिव्रता धर्म निभाने की बात बार–बार कहती है। रूढ़िवादी समाज में मृणाल और प्रमोद जैसे संवेदनशील और उदार विचारधारा के पात्रों की कष्टदायक स्थिति का चित्रण लेखक ने पूरी आत्मीयता के साथ किया है। मृणाल जिस बदनाम मुहल्ले में रहती थी, वहाँ रहने वाले चोर–उचक्के, अपराधी वृति के लोग समाज द्वारा तिरस्कृत एवं निष्कासित थे। मृणाल के विचार से सामाजिक मर्यादाओं को तोड़कर नए प्रयोग करने का अधिकार ऐसे ही लोगों पर आता है। सामाजिक मर्यादाओं और शिष्टाचार को निभाने की आवश्यकता उन्हें नहीं रहती है।

**4. भाषा–शिल्प** – जैनेन्द्र कुमार सामान्यतः तत्सम शब्दावली प्रधान, सम्प्रेषणीय खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा पात्रानुकूल एवं परिस्थिति के अनुकूल रहती है। अंतर्द्वन्द्व चित्रण और आत्म चिंतन के क्षणों में भाषा अधिक सांकेतिक या लाक्षणिक हो जाती है, यथा – 'मैं जान लूँ कि चाहे कुछ भी हो, हमारा विधाता का ही दुःख है। पर जो जगत की कठोरता का बोझ स्वेच्छापूर्वक अपने ऊपर उठाकर चुपचार चले चलते हैं और फिर समय आने पर इस धरती माता से लगकर उसी भाँति चुपचाप सो जाते हैं – मैं उनको प्रणाम करता हूँ। मैं उनको अभागा कह लूँगा, पापी भी कह लूँगा–लेकिन मैं उनको प्रणाम करता हूँ।' मृणाल अपने आप में बहुत स्पष्ट है। वह जानती है कि वह जो कुछ कर रही है, वह समाज विरोधी है परन्तु उसके पास उसको न्याय संगत सि़द्ध करने का तर्क मौजूद है। उसकी भाषा अधिक सुलझी और स्पष्ट है। वह अपने दूसरे पति, कोयले वाले को लेकर किसी भ्रम में नहीं है। वह जानती है कि वह पहले से ही विवाहित है, उसकी सन्तान भी है। वह केवल शारीरिक आकर्षण से उसके निकट आया है और यह आकर्षण क्षीण होते ही वह उसे छोड़ अपने परिवार के पास लौट जाएगा। उसकी भाषा देखिए, ' मैंने उस बेचारे से पूछा–कहाँ चलोगे!' जहां चाहे चलो, मेरी प्यारी तुम मेरी सर्वस्व हो।' जैसे में उसकी प्यारी थी और प्यारी हूँ, वह मैं ही जानती हूँ। उसे अपना ही प्यार था। लेकिन उसे इसका पता न था।' भाषा सरल और विवेचनात्मक है। मृणाल ने जिन परिस्थितियों में उसका प्यार स्वीकार किया वह उसके लिए भी असहाय थी।

**5. संवाद–शिल्प** – जैनेन्द्र कुमार अपने उपन्यासों और कहानियों को अधिक सजीव, वर्तमानकालिक और प्रभावी बनाने के लिए सफल संवाद रचना करते हैं। पात्रों के चरित्र को उघाड़ने के लिए, कथानक को आगे बढ़ाने के लिए, लेखक की मान्यताओं को सम्प्रेषित करने के लिए दीर्घ और लघु संवादों की संरचना आवश्यकतानुसार की गई है। लघु संवादों का उदाहरण देखिए–

'मर जाऊं, तो भी याद करेगा?'

मैं तब समझदार था। कहा – 'ऐसी बात मत करो बुआ। मैं नहीं सुनना चाहता।'

'अच्छा एक बात बता। तू बड़ा हो जाएगा, तब मैं बुलाऊंगी तो तू आएगा?'

'फौरन आऊंगा।'

'कैसी भी हालत में हुई, तू आएगा ?'

'हाँ आऊँगा।'

'तो सुन, मैं कहती हूँ कि तू नहीं आएगा। मैं तुझे बुलाऊँगी ही नहीं। कहती हूँ तुम सब मुझे भूल जाना। मैं जैसे गई, वैसे मरी। इसके बाद मैं तुम लोगों को बिल्कुल तकलीफ नहीं दूंगी।'

इन संवादो में आने वाली कहानी का आभास भी दे दिया गया है और पात्रों के चरित्र की ओर भी संकेत कर दिया गया है।

**6. उद्देश्य**– इस लघु उपन्यास में एक ओर नारी जीवन की त्रासदी का चित्रण हुआ है वहीं दूसरी ओर जीवन की सार्थकता विषयक चिंतन सामने आया हैं रूढ़िवादी समाज में नारी किस तरह प्रताड़ित होने के लिए अभिशप्त है यह मृणाल के चरित्र से स्पष्ट होता है। प्रमोद अपने जीवन की सार्थकता पद, प्रतिष्ठा और पैसे में खोजता है परन्तु उसे प्रतीत होता है कि यह सब सतही जीवन है। वास्तविक जीवन पीड़ा को स्वीकारने में है।

### 3.3.2 'त्यागपत्र' का सार

कथानक से अभिप्राय कहानी से है जो किसी भी रचना में पात्रों की परिस्थितियों को विभिन्न घटनाओं में पिरो कर बनता है। 'त्यागपत्र' जैनेन्द्र विरचित तीसरा उपन्यास था। इससे पूर्व 'परख' (1929) और 'सुनीता' (1935) प्रकाशित हो चुके थे। लघु उपन्यास 'त्यागपत्र', 1937 ई. में प्रकाशित हुआ। चालीस के दशक में लिखा गया उपन्यास 'त्यागपत्र' ने केवल हिन्दी, बल्कि समग्र भारतीय उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण माना जाता है

क्योंकि इसमें भारतीय नारी की यातनापूर्ण स्थिति को पूरी मार्मिकता के साथ, यथार्थवादी दृष्टि से अंकित किया गया है। उस समय के रूढ़िवादी हिन्दू समाज में मृणाल जैसी नारी का होना, समाज में आ रही नई चेतना का सूचक है। लगभग इसी समय यशपाल का 'दादा कामरेड़' (1941) प्रकाशित हुआ था जिसकी नायिका 'शैल' भी सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय देती है।

**त्यागपत्र : कथासार (कथानक)** – त्यागपत्र उपन्यास, चीफ जज सर एम. दयाल के पुराने कागजों में मिली एक पाण्डुलिपि के आधार पर तैयार किया गया उपन्यास है। लेखक का कहना है कि श्री दयाल जज का पद त्यागकर, संन्यासी बनकर हरिद्वार में रह रहे थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुराने दस्तावेज़ों में उन्हें यह पाण्डुलिपि मिली जिसके पात्रों के नाम बदल कर उन्होंने इस कहानी को प्रस्तुत किया है। यह एम. दयाल की आत्मकथा है जिसे प्रमोद के नाम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रमोद अपने बचपन से कहानी प्रारम्भ करता है। परिवार में उसके पिता, चाचा और उनकी तीन बहनें थीं। चाचा ओवर सीयर थे और वर्मा जाकर बस गए, फिर नहीं लौटे। प्रमोद की तीन बुआ थीं जिनमें से दो की मृत्यु प्रसव के समय हो गई केवल एक बुआ बची, जिसका नाम मृणाल है और वह प्रमोद से 5–6 वर्ष बड़ी है। प्रमोद की माँ, मृणाल को आदर्श आर्य नारी के रूप में ढालना चाहती है और उससे कठोर व्यवहार करती है।

मृणाल अत्याधिक सुन्दर और शरारती थी। गणित के मास्टर जी की कुर्सी पर उसकी सहेली शीला ने पिन चुभा दी जिससे मास्टरजी को कष्ट हुआ। जब उन्होंने सारी कक्षा को दण्ड देना चाहा तो मृणाल ने पिन रखने का आरोप अपने सिर ले लिया और मार खाई। ऐसी थी मृणाल, दूसरों की बला अपने सिर लेने वाली। वह अपने भतीजे प्रमोद से बहुत प्यार करती थी और उससे अपने मन की हर बात कह लेती थी।

**मृणाल का विवाह** – शीला, मृणाल की सहेली थी। मृणाल प्रायः उसके घर भी जाती थी। शीला के भाई से उसे प्रेम हो गया जो डॉक्टर था। यह बात किसी तरह प्रमोद की माँ को पता चल गई। उसने मृणाल को बेंत से बुरी तरह पीटा और उसका स्कूल जाना भी बन्द कर दिया। पाँच–छह माह पश्चात् मृणाल की शादी एक विधुर से कर दी गई जो उम्र में उससे दुगुना था। प्रमोद, बुआ की विदाई के समय बहुत रोया और उसने बुआ को घर से दूर करने के लिए अपनी माँ को अपराधी माना। चार दिन पश्चात् मृणाल पगफेरे के लिए वापिस घर आई। उसने प्रमोद के हाथों अपने पूर्व प्रेमी, शीला के डॉक्टर भाई को संदेश भिजवाया कि अब वह उससे कोई पत्र व्यवहार न करे और न ही मिलें। यदि उसने ऐसा किया तो वह छत से कूद कर जान दे देगी। वह अपने पति के प्रति पूरी ईमानदार रहना चाहती थी। प्रमोद के फूफा, मृणाल के पति आए और उसे अपने साथ ले गए। मृणाल का स्वास्थ्य उस समय बहुत खराब था परन्तु उसके पति न माने और उसे 300 मील दूर अपने घर ले गए।

**मृणाल का माँ बनना** – आठ–दस माह पश्चात् मृणाल अपने नौकर के साथ लौट आई, पति उसे छोड़ने साथ नहीं आए। वह गर्भावस्था में थी और उसका शरीर पीला पड़ चुका था। उसने प्रमोद को बताया कि उसके पति कठोर हैं और उसे बेंत से पीटते हैं। प्रमोद चाहता है कि मृणाल कभी लौटकर न जाए और मृणाल भी जाना नहीं चाहती थी परन्तु उसके पति घरवालों को मना कर उसे अपने साथ वापिस ले जाते हैं। बुआ मृणाल के जाने पर अवश क्रोध से पागल प्रमोद अपने को अंधेरी कोठरी में बन्द कर लेता है और फूट–फूटकर रोता है। लम्बे समय तक प्रमोद को बुआ विषयक कोई सूचना नहीं मिलती। माँ और पिता जी उसका प्रसंग आने पर बात टाल जाते हैं और कहते है कि वह अपने घर खुश ही होगी। प्रमोद बड़ा होकर कॉलेज में पढ़ने चला जाता है। बी.ए. तृतीय वर्ष की पढ़ाई समाप्त कर वह माँ के बुलावे पर घर जा रहा था कि अचानक उसे पता चला कि बुआ पास ही रहती है। वह स्टेशन पर उतर बुआ की खोज करता हुआ उसके घर तक पहुँच गया।

**कोयला बेचने वाले की पत्नी के रूप में मृणाल** – प्रमोद जिस कोठरी में गया वहां बुआ अंगीठी पर खाना पका रही थी। बुआ ने प्रमोद को पहचान तो लिया परन्तु उसके आने पर किसी तरह का उत्साह

दिखाने की जगह उदासीन ही बनी रही। प्रमोद को पता चला कि उसके पति ने उसे त्याग दिया था और एक कोठरी में रहने की व्यवस्था अलग से कर दी थी। वह दूसरों के घर में काम करके गुज़ारा कर रही थी कि एक व्यक्ति ने उसके प्रति सहानुभूति जताई और उसकी सहायता की। वह उसके साथ भाग कर उस शहर में चली आई जहाँ प्रमोद उससे मिला था। उसका पति कोठरी के बाहर ही कोयला बेचने का काम करता था। मृणाल ने अपने पति का परिचय प्रमोद से करवाया और पति को दही–बूरा खरीद लाने के लिए भेज दिया। प्रमोद को पता चला कि मृणाल ने एक मृत बेटी को जन्म दिया था। प्रमोद अपनी बुआ को उस कोठरी से मुक्त कर घर ले जाना चाहता है परन्तु बुआ कोयले वाले पति को धोखा नहीं देना चाहती। वह प्रमोद को बताती है कि उसका यह नया पति पहले से विवाहित था और उसके बच्चे भी थे। वह जानती है कि एक दिन वह अपने परिवार में लौट जाएगा और वह फिर अकेली ठोकरे खाने को विवश होगी। उसने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया है। वह उसके एहसान से दबी है और उसे छोड़ना नहीं चाहती। वह प्रमोद से कहती है कि उसे लोग बदजात, बदकार और बाज़ारू और समझते हैं परन्तु वह बेहया नहीं है जो अपने उपकार करने वाले पति को धोखा दे छोड़ जाए। प्रमोद को बुआ की बातें सुनकर अच्छा नहीं लगता और उसे बुआ के पांव छूने में भी संकोच होता है। बुआ वहाँ आस–पास के बच्चों को पढ़ाने का काम भी कर रही थी। प्रमोद चला आता है और घर पर पहुँच माँ को मृणाल के विषय में बताता है। मृणाल से मिलने के लिए माँ उसे डाँटती है और वह मानती है कि मृणाल ने वंश का नाम डुबाया है।

**प्रमोद का विवाह प्रसंग** – प्रमोद की पढ़ाई समाप्त हो चुकी है। उसके विवाह की बातचीत चल रही है। वह पुनः बुआ की खोज में उसी मुहल्ले में जाता है जहाँ एक कोठरी में बुआ से पहले मिला था। बुआ मृणाल वहाँ से जा चुकी है। आस–पड़ोस से पता चलता है कि कोयला बेचने वाला उसको धोखा देकर, उसका पैसा लेकर भाग गया था। मृणाल सिलाई का काम करके गुज़ारा करती रही थी। वह गर्भवती थी। प्रमोद को मिशन से पता चला कि मृणाल ने एक बेटी को अस्पताल में जन्म दिया था। मिशन वालों ने उससे कहा था कि बालिका को यदि वह उन्हें सौंप दे और नर्स का काम करती हुई मिशन में रह सकती है। मृणाल ने मिशन की बात नहीं मानी और वह मिशन छोड़कर न जाने कहाँ चली गई। प्रमोद को मृणाल के विषय में इससे अधिक जानकारी न मिल सकी। प्रमोद का विवाह एक डॉक्टर की बेटी राजनन्दिनी से तय होने जा रहा था। वह सपरिवार अपने होने वाले ससुराल में लड़की को देखने और सगाई की रसम के लिए गया।

**डॉक्टर साहब के यहाँ मृणाल से पुनः भेंट** – प्रमोद अपनी माता के साथ जिस लड़की को देखने पहुँचा उस घर में एकाएक दो बच्चों को पढ़ाने वाली ट्यूटर मृणाल को देखकर हैरान रह गया। मृणाल उसके सामने नहीं आई। घर वालों ने बताया कि विधवा मृणाल पास ही रहती हैं और दो माह से बच्चों को पढ़ाने आती है। प्रमोद पुनः पता पूछता हुआ मृणाल की कोठरी में जा पहुँचा। मृणाल को उसने अपने साथ ले जाने की बात कही परन्तु वह न मानी। मृणाल ने प्रमोद से कहा कि वह राजनन्दिनी से अवश्य शादी कर ले क्योंकि वह अच्छी लड़की है। राजनन्दिनी भी प्रमोद को पसन्द करने लगी थी। प्रमोद ने राजनन्दिनी के पिता, डॉक्टर साहब को बता दिया कि उनके बच्चों की ट्यूटर मृणाल उसकी बुआ है। डॉक्टर साहब खुले विचारों क थे। उन्होंने प्रमोद से कहा कि उसे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी बुआ क्या है या थी। डॉक्टर साहब की पत्नी को मृणाल के परिवार से रिश्ता स्वीकार न हुआ। बिरादरी वालों ने भी विरोध किया। अन्ततः प्रमोद की सगाई टूट गई और मृणाल को भी काम से निकाल दिया गया।

**वकील प्रमोद से मृणाल की अन्तिम भेंट** – कुछ वर्ष पश्चात् एकाएक मृणाल ने अपने भतीजे को पत्र लिखकर बुलवाया। एक बदनाम मुहल्ले में जिसमें अधेड़ वेश्याएँ, चोर–उचक्के रहते थे, एक कोठरी में रूग्ण मृणाल से प्रमोद जाकर मिला। आस–पड़ोस के निर्धन लोगों को उससे पूरी सहानुभूति थी परन्तु गरीब लोग उसकी कोई आर्थिक सहायता न कर सकते थे और न ही उपचार करवा सकते थे। प्रमोद ने एक बार फिर बुआ

से साथ चलने को कहा परन्तु बुआ ने उस बदनाम बस्ती के बदनाम लोगों को अपना लिया था। क्योंकि उनमें दिखावा नहीं था और अपनत्व भी था। वह उनके बच्चों को पढ़ाती भी थी। मृणाल ने अपने भतीजे प्रमोद से कहा कि वह अधिक से अधिक आर्थिक सहायता करे ताकि बस्ती का उद्धार हो सके। प्रमोद अपना पैसा उन लोगों पर लुटाने को तैयार न था। वह नामी वकील था, माँ के जाने के बाद अपने घर का मालिक था। उसे अपना और अपने परिवार का भविष्य देखना था। उसकी शादी हो चुकी थी। वह अपने वकील साथी को दो–तीन सौ रूपये देकर चला आया और उससे कहा कि वह उससे बुआ का इलाज करवा दे। इतने में ही उसने अपने कर्तव्य की इतिश्री मान ली।

**मृणाल की मृत्यु और प्रमोद का जज के पद से त्यागपत्र** – मृणाल कहाँ गई, कैसे रही, इसकी जानकारी प्रमोद ने कभी लेने का प्रयास नहीं किया। वह एक नामी वकील और जज बना। उसे सर की उपाधि भी मिल गई। वह सुख–संपन्न परिवार का मुखिया था, समाज में ऊँचा पद होने से मान–सम्मान था। एकाएक एक दिन मृणाल की मृत्यु का समाचार उसे मिला। उसने अपने अतीत के आचरण पर नज़र डाली तो लगा कि उसका आचरण अनैतिक था। उसे ग्लानि हुई और अपने किए पर पछतावा भी हुआ। वह साधन रहते हुए भी मृणाल के काम न आया। उसने ग्लानिवश, पश्चाताप करते हुए जज के पद से त्यागपत्र दे दिया और संन्यास धारण कर हरिद्वार में जा बसा। भोग–विलास का त्याग ही उसका प्रायशित था। प्रमोद ही सर एम. दयाल था।

### 3.3.3 'त्यागपत्र' का उद्देश्य

'त्यागपत्र' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया, समस्या–प्रधान सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका मृणाल है, जिसके जीवन की त्रासदी को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है। इस उपन्यास में उठाई गई प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित है–

● **भारतीय समाज में नारी की दुर्दशा**– भारतीय समाज में नारी की 1940 के दशक में क्या स्थिति थी, इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। बलिकाओं को कम ही शिक्षा दी जाती थी। उनको प्रायः पर्दे में रहना पड़ता था। मृणाल भी पैदल स्कूल नहीं जाती थी बल्कि शहर के बड़े स्कूल में बग्घी में बैठकर जाती थी। प्रमोद के पिता जी उससे बहुत प्यार करते थे परन्तु माँ उसे कड़े अनुशासन में रखकर आदर्श नारी बनाना चाहती थी। मृणाल ने अपनी सहेली के भाई से प्यार करने का अपराध किया इसलिए उसकी शादी तुरन्त एक अधेड़ विधुर से करवा कर दूर भेज दिया गया। अनमेल विवाह की पीड़ा झेलती मृणाल पति की मार भी सहती है और उपेक्षा तथा अपमान भी झेलती है। उसे पति असहाय छोड़ देता है क्योंकि वह अपने पूर्व प्रेम की बात पति को बता देती है। उस समय के समाज में नारी पुरूष की सहधर्मिणी न होकर सम्पति मानी जाती थी ऐसा प्रतीत होता है। मृणाल का कोयलेवाले से सम्बन्ध भी अंततः दुखद रहा और वह उसे गर्भावस्था में त्याग कर चला गया। मृणाल अपने चाचा–चाची के साथ बचपन से रहने को विवश हुई क्योंकि उसके पिता वर्मा में जाकर बस गए थे। विवाह उपरानत परिस्थितियों की मार सहते हुए वह एक निर्धन, बदनाम बस्ती में रहने को विवश हुई। प्रमोद, उसका प्यारा भतीजा उसे दो बार मिलने भी आया परन्तु वह उसके साथ दुबारा अपने घर नहीं आई क्योंकि वह जानती थी कि एक परित्यक्ता, दूसरे व्यक्ति के साथ रहने वाली चरित्रहीन बदनाम नारी को प्रमोद का सभ्य समाज कभी स्वीकार नहीं करेगा। वह उन बदनाम, निर्धन और अभावग्रस्त लोगों के बीच रहकर उनकी हालत सुधारना चाहती है और उसके लिए प्रमोद से आर्थिक सहायता भी मांगती है परन्तु प्रमोद को उन लोगों से कोई सहानुभूति नहीं है। वह सहायता नहीं करता। प्रमोद का विवाह डॉक्टर की बेटी राजनन्दिनी से तय हो जाता है परन्तु जैसे ही उसकी होने वाली सास को पता चलता है कि मृणाल उसकी बुआ है तो वह रिश्ता तोड़ देती है। ऐसी बदनाम, चरित्रहीन नारी का जिस परिवार से सम्बन्ध है उससे वह सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहती। उसकी बिरादरी भी उसका साथ देती है।

असहाय मृणाल, मिशन अस्पताल में एक बेटी को जन्म देती है। मिशन वाले उसे इस शर्त पर नर्स रखने को तैयार हैं कि वह अपनी बेटी मिशन को सौंप दे। स्वाभाविक रूप से वे उसे पालकर अपने धर्म प्रचार में लगाते। मृणाल उनका कहना नहीं मानती और बेटी को लेकर मिशन से जाने को विवश होती है। दस माह पश्चात् बेटी का देहान्त हो जाता है।

मृणाल, आत्मनिर्भर रहकर जीने का प्रयास करती है। वह कपड़े सीती है, बच्चों को पढ़ाती है, घरेलू काम करती है परन्तु समाज उसे पग–पग पर प्रताड़ित करता है। तथाकथित उच्च वर्गीय, सभ्य समाज उसे चरित्रहीन कहकर ठुकराता है, किसी तरह उसकी सहायता नहीं करता।

इन उपन्यास में भारतीय समाज में नारी की परवशता, अनमेल विवाह की पीड़ा, सामाजिक प्रताड़ना, आर्थिक परा–धीनता से उत्पन्न विवशताओं का चित्रण हुआ है। मृणाल जीवनभर संघर्ष करती है, आत्मनिर्भर होकर स्वाभिमान से जीना चाहती है परन्तु समाज की कठोरता के कारण सफल नहीं हो पाती।

● **पवित्रता देह की अथवा मन की** – इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने मृणाल के जीवन के माध्यम से भारतीय समाज की पवित्रता विषयक धारणा पर प्रश्न चिह्न लगाया है। समाज देह की पवित्रता को सर्वोपरि मानता है। कुंवारी लड़की का किसी पुरूष के निकट आना, उससे प्यार करना, समाज की नज़रों में व्यभिचार और चरित्रहीनता है। मृणाल की भाभी जब उसे शीला के भाई से प्यार करता पाती है तो उसे पीटती है, उसकी अनमेल शादी करवा कर दूर भेज देती है। मृणाल देह की पवित्रता से अधिक महत्व मन की शुद्धता को देती है। एक बार दुहाजू अधेड़ व्यक्ति से शादी होने पर वह उसके प्रति समर्पण का भाव रखती है तथा अपने पूर्व प्रेमी से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखती। वह अपने पति को अपने प्रेम सम्बन्ध के विषय में बता कर अपने मन की पवित्रता को सिद्ध करती है। पति उसे चरित्रहीन मानकर त्याग दता है। मृणाल, कोयले वाले पति को भी समर्पित है और उससे किसी तरह का छल नहीं करना चाहती। वह जानती है कि वह पहले से ही विवाहित है और उसके बच्चे भी हैं तथा वह कभी न कभी उसे छोड़कर चला जाएगा। इतना होने पर भी वह दिल से अपने पत्नीव्रत निभाती है। उसने शरीर की पवित्रता से अधिक मन की पवित्रता को सदा बल दिया। अपने अन्तिम दिनों में वह चोर–उचक्कों और वेश्याओं के मुहल्ले में रहती है और मानती है कि वे लोग तथाकथित सभ्य समाज से बेहतर है क्योंकि वे अच्छे होने का ढोंग नहीं करते जबकि तथाकथित सभ्य समाज के लोग मुखौटे लगाकर जीते है। वह जिसे शरीर देती है उसे मन भी देती है। उसका चरित्र पारदर्शी है, विभाजित व्यक्तित्व नहीं है। वह अपने भतीजे प्रमोद को भी स्पष्ट कह देती है कि अब वह उसके सभ्य समाज का हिस्सा नहीं बन सकती। मन की पवित्रता सर्वोपरि है।

● **पारम्परिक नारी के मिथक को तोड़ना** – मृणाल के माध्यम से नारी के परम्परागत मिथक को तोड़ने का प्रयास किया गया है। मृणाल, समाज से विद्रोह नहीं करती, उसकी व्यवस्था को चुनौती भी नहीं देती परन्तु फिर भी आत्म–पीड़न, आत्मदान और आत्मदमन द्वारा समाज की ज्यादतियों का विरोध करती है। वह विवाह संस्था का सम्मान करती है और साथ ही इस संस्था की कमज़ोरियों को भी उजागर करती है। वह बिना किसी आत्मग्लानि के कोयला बेचने वाले के साथ रहती है और वह भी बिना शादी किए। यह वर्तमान के 'लिव–इन' रिलेशन जैसा ही सम्बन्ध है। जब उसे उसका दूसरा साथी ( कोयले वाला ) छोड़ कर चला जाता है तो वह पुनः अपना जीवन संयत करती है और एक डॉक्टर के घर में ट्यूटर का काम करने लगती है। उसके लिए शरीर की पवित्रता से अधिक मन की पवित्रता है। वह पैसे के लिए शरीर नहीं बेचती परन्तु जिसके साथ स्वेच्छा से रहती है उससे शारीरिक सम्बन्ध बनाना अनुचित नहीं मानती। वह वेश्याओं और चोर–उचक्कों के बदनाम मुहल्ले में निर्भय होकर रहती है, उनके बच्चों को पढ़ाती है और उन्हें तथाकथित सभ्य सुसंस्कृत लोगों से बेहतर मानती है क्योंकि वह दिखावा नहीं करते। भतीजे प्रमोद के बार–बार कहने पर भी वह उसके साथ जाने को तैयार नहीं होती क्योंकि वह जानती है कि संभ्रान्त समाज की नैतिकता उसे बदचलन, बेहया और लांछित

नारी के रूप में ही देखेगी, उससे घृणा करेगी। डाक्टर के घर में वह उसके बच्चों की ट्यूटर के रूप में कार्य करती है, सभी उसे पसन्द भी करते हैं। जैसे ही उन्हें पता चलता है कि वह प्रमोद की बुआ है जो किसी कोयलेवाले के साथ भाग गई थी, उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। मृणाल अपने युग की नारियों से कहीं आगे की सोच रखती है। बचपन की चंचल, शरारती, सुन्दर, संवेदनशील लड़की जीवनभर अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष करती है।

● **पारिवारिक–सामाजिक सम्बन्धों का सच प्रकट करना** – प्रस्तुत लघु उपन्यास के माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक मानवीय सम्बन्धों का यथार्थ प्रस्तुत करने पर बल दिया गया है। मृणाल, मातृपितृ विहीन बालिका अपने भाई–भाभी के साथ रहती है। भाई का व्यवहार स्नेहपूर्ण है परन्तु भाभी कठोर है। भतीजा प्रमोद उसे अत्याधिक प्रेम करता है और निरन्तर उसकी हितकामना करता है। जिस प्रकार से अबोध मृणाल को अधेड़ दुहाजू के साथ विवाह करने को विवश किया जाता है वह पारिवारिक सम्बन्धों पर प्रश्न–चिह्न लगाता है। रुग्ण और दुखी मृणाल पति के साथ जाना नहीं चाहती क्योंकि वह उसे प्रताड़ित करता है, पिटता है, परन्तु उसे जाना पड़ता है। मृणाली के प्रति द्वारा उसे त्यागा जाना दुखद है। असहाय मृणाल द्वारा कोयलेवाले को अपनाना, उसके बच्चे की माँ बनना और उससे भी ठगा जाना, मानवीय सम्बन्धों की विद्रपता को प्रकट करता है। रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था में नारी की बुनियादी जीवन स्थितियों का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। मृणाल को यातना, घुटन, टूटन के सिवाय कुछ नहीं मिलता और असमय में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। वह विनयपूर्वक, समाज में ही असहयोग करते हुए मानों सत्याग्रह करती है और हठपूर्वक अपने इच्छित मार्ग पर चलती है तथा भतीजे की सहायता स्वीकार नहीं करती। प्रमोद भी एक सीमा तक ही अपनी बुआ का साथ दे पाता है।

● **जीवन की सार्थकता का प्रश्न** – मृणाल और प्रमोद, दोनों ही जीवन की सार्थकता अपने–अपने ढंग से खोजते हैं। मृणाल अपने मूल्यों, विचारों, मान्यताओं के प्रति ईमानदार रहते हुए कष्टपूर्ण, कठिन जीवनमार्ग का अनुसरण करती है। वह अपने मूल्यों के साथ्ज्ञ जीती और मरती है। उसका मूल्य बोध बचपन में मास्टरजी के हाथों मार खाने से ही स्पष्ट हो जाता है। वह दूसरों को कष्ट न देकर, स्वयं कष्ट सहकर आदर्श प्रस्तुत करती है। वह अपनी दुरावस्था के लिए किसी को न तो दोष देती है न ही स्वयं पश्चाताप व्यक्त करती है। प्रमोद, बुआ मृणाल से प्यार करता है, उसका भला चाहता है, उसकी सहायता भी करना चाहता है परन्तु जीवन में धन, मान, पद भी चाहता है। समाज में ऊँचा उठने के लिए वह मृणाल की भी अपेक्षा करता है। मृणाल की मृत्यु पर उसे अपने स्वार्थ पर पछतावा होता है। वह सन्यासी बनकर अपने पापों का प्रायश्चित करता है।

### 3.3.4 मृणाल का चरित्र–चत्रिण

'त्यागपत्र' लघु उपन्यास की नायिका मृणाल है। मृणाल के पिता वर्मा में जा बसे हैं। वे ओवरसीयर थे। उसकी माँ नहीं है। वह अपने भाई–भाभी और भतीजे प्रमोद के साथ रह रही है। प्रमोद उससे छह–सात वर्ष छोटा है। मृणाल उससे बहुत प्यार करती है और मन की हर बात में उसे हिस्सेदार भी बनाती है। उपन्यास के प्रारम्भ में बुआ दसवीं की छात्रा है। प्रमोद के शब्दों में वह बहुत सुन्दर है। प्रमोद के शब्दों में, 'बुआ का तब का रूप सोचता हूँ तो दंग रह जाता हूँ, ऐसा रूप किस को विधाता देता है जब देता है तब कदाचित उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन–ही–मन नीयत उसकी रहती है।' प्रमोद का मानना है कि बुआ को ईश्वर ने सुन्दरता का वरदान देकर दुःख भरी ज़िन्दगी का शाप भी दिया था। मृणाल बचपन में चंचल, शरारती, कल्पनाशील, दृढ़ प्रतिज्ञ और अपने मूल्यों पर स्थिर रहने वाली बालिका है।

**असफल प्रेम सम्बन्ध**– मृणाल अपनी सहेली शीला के डॉक्टर भाई से प्यार करने लगती है, जिसका पता भाभी को लग जाता है। प्यार करने के अपराध में भाभी उसे बेंत से बुरी तरह पीटती है और उसे शीघ्र ही एक दुहाजू, अधेड़ व्यक्ति से शादी के लिए विवश कर देती है। मृणाल की पढ़ाई समाप्त हो जाती है और साथ ही बचपन की शरारतें भी।

**दुःख ही जीवन की कथा है** – मृणाल का जीवन कष्ट सहन और दुःखों से गुज़रने की करूण गाथा है। जिस अधेड़ पति से उसकी शादी की गई वह स्वभाव से कठोर है और उसे बेंत से पीटता भी है। मृणाल को पुस्तकों और पढ़ाई से प्यार है परन्तु पतिदेव को पुस्तकों से घृणा है। मृणाल जब ससुराल जाने लगती है तो एक भी पुस्तक साथ नहीं ले जाती क्योंकि पति को यह पसन्द नहीं है। मृणाल बीमार है परन्तु पति महोदय उसे 300 मील की यात्रा पर अपने साथ अपने घर ले जाने की ज़िद करते हैं। मृणाल की इच्छा अनिच्छा का उसके लिए कोई महत्व नहीं है। वह नारी को व्यक्ति नहीं, अपनी सम्पति मानता है। मृणाल ऐसे कठोर क्रूर पति को भी मन से अपनाती है। अपने पूर्व प्रेमी को अपनी जिन्दगी से पूरी तरह निकाल फैंकती है तथा पति को भी इस प्रेम के विषय में बता देती है। मृणाल एक मृत बेटी को जन्म भी देती है। पति उसके पूर्व–प्रेम की बात सह नहीं पाता तथा उसे त्याग देता है। स्वाभिमानी मृणाल वापिस अपने घर आने की बजाय अकेली एक कोठरी में रहने लगती है जिसे उसके पति ने उसके लिए किराए पर ले दिया था। असहाय मृणाल, दूसरों के घर पर काम करके अपना पेट पालती है। एक कोयला बेचने वाला उससे सहानुभूति जताता है और उससे प्यार का नाटक करता है। मृणाल उसके साथ भागकर दूसरे शहर में जा बसती है। पति कोयले का व्यापार करता है। मृणाल जानती है कि वह व्यक्ति उसके साथ अपनी काम–वासना के कारण ही जुड़ा है और कुछ ही समय में ऊब जाएगा और उसे छोड़कर पुनः अपने बीवी और बच्चों के पास चला जाएगा। मृणाल उसके प्रति पूरी तरह ईमानदार रहना चाहती है, उसे अपना शरीर भी सौंपती है और वे बिना शादी के विवाहित दम्पति की तरह रहते हैं। प्रमोद के लाख कहने पर भी वह उसे छोड़ उसके साथ घर नहीं जाती। मृणाल जो भी चुनाव मन से करती है, उसे निभाती है भले ही उसके लिए उसे असीम कष्ट सहना पड़े।

**स्वाभिमानी नारी** – मृणाली स्वाभिमानी है। पति द्वारा त्याग दिए जाने के पश्चात्, असहाय होने पर भी लौटकर अपने भाई के घर शरण नहीं लेती और भतीजे प्रमोद के आग्रह पर भी घर नहीं लौटती। इसी प्रकार मिशन अस्पताल में दूसरे पति कोयलेवाले की परित्यक्ता के रूप में एक कन्या को जन्म देती है। मिशन के लोग चाहते हैं कि वह कन्या उन्हें सौंप दे और स्वयं नर्स के रूप में वहां सुख से रहे। वह नौकरी के बदले कन्या को उन्हें देने को तैयार नहीं होती और ठोकरे खाने के लिए मिशन की सुरक्षा त्याग देती है। आठ–दस माह बाद उसकी बेटी का देहान्त हो जाता है। वह अन्ततः एक डाक्टर के यहां एक ट्यूटर की नौकरी करती है। जब घर वालों को उसके अतीत के विषय में पता चलता है तो वे उसे नौकरी से निकाल देते हैं। उपन्यास के अन्त में वह एक गन्दी, बदनाम गली में वेश्याओं और चोर–उचक्कों के बीच रहती हुई कष्ट सहती है, रोग झेलती है परन्तु भतीजे के साथ उसके घर पर चलकर रहने को तैयार नहीं होती। वह जानती है कि प्रमोद का तथाकथित सभ्य समाज उसे स्वीकार नहीं करेगा।

मृणाल में असीम धैर्य है। वह कष्टों से घबरा कर अपना इरादा नहीं बदलती । वह सत्य पर अड़ना जानती है। वह चाहती तो अपने पहले पति को अपने विवाह पूर्व के प्रेम सम्बन्ध के विषय में न बताती और सुख से रहती परन्तु वह सम्बन्धों में सच्चाई और ईमानदारी को महत्व देती है। वह समाज को तोड़ना नहीं चाहती बल्कि समाज के निम्नतम लोगों के बीच रहकर, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ती है और तथाकथित सभ्य समाज से असहयोग करती है।

**तन–मन की पवित्रता में विश्वास**– मृणाल विचारशील महिला है। वह तन की पवित्रता से अधिक मन की पवित्रता को महत्व देती है। वह अपने भतीजे प्रमोद से कहती है कि कोयलेवाले ने उसे मुसीबत मे सहारा दिया और वह उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाए हुए है। वह इसकी कीमत नहीं चाहती बल्कि उसकी सहायता कर अपना कर्तव्य निभा रही है। वह यह जानते हुए भी कि यह व्यक्ति पहले से विवाहित और बच्चों का बाप है और देर सवेर अपने परिवार में लौट जाएगा, उसके प्रति ईमानदार रहती है। वह तन की पवित्रता से अधिक महत्व मन की पवित्रता को देती है। समाज तन की पवित्रता पर बल देता है और मानसिक व्यभिचार को अनदेखा करता है।

**पाप से घृणा, पापी से नहीं** – गांधी के सत्य, अहिंसा और असहयोग को ही उसने नहीं अपनाया बल्कि बाइबल से लिए गांधी के इस सिद्धात को भी मानता है कि हमें पाप से घृणा करनी चाहिए पापी से नहीं। बदनाम मुहल्ले में दुश्चरित्र लोगों के बीच रहते हुए वह पाती है कि वे लोग अपनी बुराइयों को छुपाते नहीं वे अपने व्यवहार में अधिक ईमानदार हैं। वह उन लोगों को छोड़कर भतीजे प्रमोद के साथ जाने को तैयार नहीं होती और उससे कहती हैं, 'दुर्जन लोगों की सद्भावना के सिवा मेरी और पूंजी नहीं हो सकती।' वह कहती है, 'दुर्जनता ही कीमत है, सच्चरित्रता नहीं।' अर्थात् ये लोग बाहर भीतर से एक हैं, सच्चरित्रता का दंभ नहीं करते। इन्हें कंचन की चाह नहीं ये पीतल से परहेज नहीं करते।' मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से कहती है कि वह बस्ती के लोगों के उत्थान के लिए पैसा दे। प्रमोद ऐसा नहीं करता और वापिस अपनी वकालत की दुनिया में चला जाता है। कुछ वर्ष पश्चात् मृणाल की उस बस्ती में मृत्यु हो जाती है।

**सच्चे प्रेम को तरसती नारी**– मृणाल का सारा जीवन सच्चा प्रेम पाने की असफल कोशिश का प्रतीक है। भाई उससे प्यार करते थे परन्तु कठोर भाभी के सम्मुख विवश थे। प्रमोद उसे सच्चा प्यार करता है और उसकी सहायता करना चाहता है परन्तु माता के रहते और बिरादरी के भय से अधिक कुछ कर नहीं पाता। उसकी अपनी महत्वाकांक्षाएं भी आगे बढ़कर मृणाल की सहायता नहीं करने देती। मृणाल के दोनों पति उससे छल करते हैं और उसे असहाय छोड़ जाते हैं। उसकी बच्ची भी मर जाती है और वह अपना प्यार उस पर भी लुटा नहीं पाती। गन्दी बस्ती के लोगों की सहायता कर वह उनका स्नेह प्राप्त करती है परन्तु वे लोग इतने निर्धन हैं कि मुसीबत के समय उसकी आर्थिक सहायता नहीं कर पाते। आर्थिक सहायता के लिए वह लाडले भतीजे प्रमोद को पत्र लिखकर बुलाती है जो प्रसिद्ध वकील बन चुका है। वह भी मनचाही आर्थिक सहायता के लिए वह लाडले भतीजे प्रमोद को पत्र लिखकर बुलाती है जो प्रसिद्ध वकील बन चुका है। वह भी मनचाही आर्थिक सहायता नहीं दे पाता। सारांश में कह सकते हैं कि वह सच्चे प्यार की खोज में आजीवन भटकती रहती है।

### 3.3.5 प्रमोद का चरित्र चित्रण

उपन्यास का नायक प्रमोद ही है जो कालान्तर में जज बनता है। उपन्यास की प्रस्तावना में सर एम. दयाल को जज के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसकी मृत्यु पर उसके कागजों में उसकी आत्मकथा के कुछ पन्ने खोजे गए हैं जिनमें मृणाल और प्रमोद की कथा लिखी थी। एम. दयाल ही प्रमोद थे जो हरिद्वार में सन्यासी बनकर रह रहे थे। इसी प्रमोद की आत्मकथा यह उपन्यास है। प्रमोद के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं सामने आती है–

**1. स्नेहशील, भावुक किशोर** – उपन्यास के प्रारम्भ में हम उसे सातवीं कक्षा में पढ़ने वाले भावुक, स्नेहशील किशोर के रूप में पाते हैं। वह अपनी बुआ मृणाल से ह्रदय से प्यार करता है और उसकी हर बात में रस लेता है। मृणाल का विवाह जब एक विधुर से एकाएक कर दिया जाता है तो वह अत्याधिक दुखी होता है और उसे अपने फूफा पर बहुत क्रोध आता है। अपनी माँ द्वारा मृणाल के साथ कठोरता का व्यवहार होते देखकर भी वह अत्याधिक विचलित होता है। वह चाहता है कि बुआ उसी के साथ रहे और ससुराल न जाए। पगफेरे के लिए आई मृणाल को वह वापिस जाने नहीं देना चाहता परन्तु विवश है।

**2. अध्ययनशील मेधावी छात्र** – प्रमोद पढ़ाई में अच्छा है। वह बी.ए. करने के पश्चात् वकील बनता है। इस बीच उसे मृणाल की बहुत याद आती है परन्तु घर के लोग उसके विषय में बात भी करना नहीं चाहते। उसकी माँ नहीं चाहती कि वह बुआ से कभी मिले क्योंकि उसने कुल को कलंकित किया है। वह अपने पति को छोड़ किसी के साथ भाग गई है। जब प्रमोद बी.ए. करके घर लौट रहा था तो उसे पता चला कि बुआ कहां है। वह उसे मिलने गया और उसे घर चलने को कहा। बुआ ने कहा कि वह स्वेच्छा से कोयले वाले के साथ रह रही है और जब तक वह रखेगा, उसके साथ रहेगी। प्रमोद निराश होकर लौट आता है। प्रमोद वकील बनता है और अन्ततः एक जज बन जाता है।

**3. बुआ के प्रति अत्याधिक संवेदनशील** – प्रमोद की बुआ मृणाल उनके साथ रहती है। उसके माता–पिता ने ही बुआ को पाला–पोसा है। बुआ बचपन में ही अनाथ हो गई थी। प्रमोद उसका बाल सखा बना जिससे वह खुलकर अपने मन की बात कर पाती थी। वह बुआ के प्रति माँ की कठोरता देख अत्याधिक परेशान होता है। समय आने पर बुआ का प्रेमपत्र भी और उसका मौखिक संदेश भी बुआ के प्रेमी तक पहुँचाने का काम करता है। घर के सारे लोग जब मृणाल को चरित्रहीन मानकर उससे सम्बन्ध तोड़ लेते हैं तो भी प्रमोद उसके प्रति संवेदनशील बना रहता है। वह उससे बार–बार मिलने जाता है और उसका दुःख दूर करना चाहता है। अपने अहम् के कारण ठीक समय पर बुआ की समुचित सहायता नहीं करता जिसका उसे अन्ततः बहुत पश्चाताप होता है और वह जज के पद से त्यागपत्र दे देता है।

**4. चिंतनशील व्यक्ति** – प्रमोद संवेदनशील होने के साथ–साथ गहन चिंतन करने में भी समर्थ है। वह जीवन–जगत की समस्याओं पर गहराई से विचार करता है। उसे मृणाल के आचरण में कोई बुराई नज़र नहीं आती। वह सोचता है कि मृणाल को पापी या भ्रष्ट कहने का अधिकार उसे नहीं है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही जज के रूप में अपनी भूमिका पर विचार करते हुए वह कहता है कि – '................. नहीं भाई, पाप–पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून के तराजू की मर्यादा जानता हूँ।'

**5. एक सफल वकील और जज** – उपन्यास के प्रारम्भ में हम उसका परिचय सर एम. दयाल के रूप में पाते हैं जिसके पुराने कागजों में उपन्यास के रूप में प्राप्त आत्मकथा लिखी हुई मिली। प्रमोद वकील से जज बना और फिर उसे 'सर' की उपाधि मिली। इससे यह स्पष्ट है कि वह अत्याधिक सफल रहा होगा।

**6. सामाजिक रूढ़ियों की अपेक्षा मानव मूल्यों में आस्था** – प्रमोद को पूरे उपन्यास में सामाजिक रूढ़ियों के आलोचक एवं विरोधी के रूप में चित्रित किया गया है। जिस बुआ को कुल कलंकिनी और व्यभिचारी मानकर परिवार के लोग भुला देते हैं वह उसकी निरन्तर चिंता करता है और उसके प्रति सहानुभूति भी रखता है। डाक्टर की बेटी राजनन्दिनी से उसकी शादी तय होने वाली थी। वह बुआ के साथ अपनी परिवारिक सम्बन्धों की सूचना गर्वपूर्वक उन्हें देता है। डाक्टर साहब उदार थे परन्तु उनकी पत्नी और बिरादरी एक भ्रष्ट औरत के परिवार से राजनन्दिनी का संबंध जोड़ने को तैयार न हुए। प्रमोद की शादी की बात बीच में ही टूट गई । प्रमोद के मन में बुआ के आचरण को लेकर कोई कुण्ठा नहीं है। वह बुआ के बुलाने पर बदनाम, मलिन बस्ती में भी जाता है और वहाँ भी उसे अपने साथ चलने के लिए कहता है। बुआ, प्रमोद के तथाकथित सभ्य समाज से अपने को बहिष्कृत मानती है। वह अपनी बस्ती के लोगों की भलाई के लिए प्रमोद से आर्थिक सहायता मांगती है। प्रमोद बुआ के लिए तो कुछ करना चाहता है परन्तु इतनी उदारता उसमें नहीं कि बस्ती के बदनाम लोगों पर अपनी सम्पदा लुटा दे। वह जज होने के अहम् से अभी ग्रस्त था। इसलिए वहां से चला आया।

**7. पश्चाताप ग्रस्त प्राणी** – बुआ को उस दुरावस्था में छोड़ आने का अफसोस उसे रहा। सत्रह वर्ष पश्चात् मृणाल की मृत्यु का समाचार उसे मिला तो घोर विवाद और पश्चाताप से भरकर अपने जज पद से त्यागपत्र दे दिया और हरिद्वार में एकान्तवास में रहने लगा। जीवन की आवश्यताएँ कम कर दीं। उसे लगने लगा था कि पद, प्रतिष्ठा, सामाजिक मर्यादाएँ सब व्यर्थ है यदि मन शुद्ध नहीं है और हमारा व्यवहार मानवीय नहीं है। वह बुआ को असहाय अवस्था में छोड़ आने पर, बरसों बाद उसकी मृत्यु का दुखद समाचार पाकर सोचता है – 'चला आया कि फिर नहीं गया और आकर ऐसा वकालत में चिपट गया कि किसी बात के लिए आँखें खुली न रहें, कुछ भी और न देखें। अपने सामने का स्वार्थ देखें और .............. और बस।

पर क्यों ? क्यों बुआ की मांग तुझसे पूरी न हुई। उन्होंने इतना प्रेम किया, इतना विश्वास किया और एक सवाल मुझसे किया तब उसके जवाब में अपना धन मुझसे नहीं बहा डाला गया ? क्यों मेरी मुट्ठी भिच गई। यह भी हुआ, तो फिर क्यों उसके बाद मेरी आत्मा संतप्त नहीं रही ? क्यों ? प्रश्न है, क्यों ?' प्रमोद अपने उस समय के आचरण को स्वार्थपूर्ण और अमानवीय मानता हुआ प्रायश्चित स्वरूप अपने पद से त्याग–पत्र दे देता है। वह अपने पूर्ण व्यवहार को अत्याधिक अमानुषिक मानता है।

### 3.3 स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न

1. त्यागपत्र उपन्यास के लेखक कौन हैं ?
2. त्यागपत्र उपन्यास का रचना वर्ष क्या है ?
3. त्यागपत्र उपन्यास की प्रमुख पात्र कौन हैं ?
4. त्यागपत्र उपन्यास का कथा नायक कौन है ?
5. त्यागपत्र उपन्यास किस कोटि का है ?
6. प्रमोद ने किस पद से त्यागपत्र दिया ?

### 3.4 सारांश

जैनेन्द्र द्वारा रचित 'त्यागपत्र' उपन्यास 1937 ई. में लिखा गया। यह उपन्यास साहित्य जगत में एक क्रांति लाया क्योंकि इसकी नायिका मृणाल अपने जीवन में इस भारतीय समाज के रीति–रिवाजों से समझौता नहीं करती है, बल्कि अपने तरीके से जीवन जीने का फैसला करती है जोकि तत्कालीन समाज की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली कदम था।

### 3.5 कठिन शब्दावली

**तात्विक** – तत्वों के आधार पर

**समीक्षा** – परीक्षण

**उद्देश्य** – प्रयोजन

**सार** – मूलभाव

### 3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. जैनेन्द्र
2. 1937 ई.
3. मृणाल
4. प्रमोद
5. मनोवैज्ञानिक
6. न्यायधीश

### 3.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
2. जैनेन्द्र – त्यागपत्र ।

### 3.8 सात्रिक प्रश्न

1. जैनेन्द्र द्वारा रचित 'त्याग पत्र' उपन्यास का सार अपने शब्दो में लिखिए।
2. त्यागपत्र उपन्यास की तात्विक समीक्षा लिखिए।
3. मृणाल की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

*****

# इकाई–4
# त्यागपत्र : व्याख्या भाग

**संरचना**

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 त्यागपत्र : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

## 4.1 भूमिका

इकाई–तीन के अन्तर्गत हमने उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार द्वारा कृत उपन्यास त्यागपत्र की तात्विक समीक्षा, सार, उद्‌देश्य और पात्रों के चरित्र–चित्रण के बारे में गहनता से अध्ययन किया। आगामी इकाई–चार में हम उपन्यास त्यागपत्र के कारख्या भाग का अध्ययन करेंगे।

## 4.2 उद्‌देश्य

इकाई–चार का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. त्यागपत्र उपन्यास की व्याख्या कैसे करेंगे ?
2. व्याख्या भाग में प्रसंग कैसे लिखेंगे ?
3. गद्यांश का विशेष कैसे लिखेंगे ?

## 4.3 त्यागपत्र : व्याख्या भाग

**1. 'नहीं भाई, पाप–पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी। जज हूँ, कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूँ। पर उस तराजू की ज़रूरत को भी जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि जिनके ऊपर राई–रती नाप–जोखकर पापी को पापी कहकर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें। मेरे बस का वह काम नहीं है।'**

**शब्दार्थ – राई–रत्ती** – पूरी तरह। **जोखकर** – तोलकर। **दायित्व** – जिम्मेदारी।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार जैन विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है। उपन्यास का नायक प्रमोद जो बाद में जज बना और अन्ततः उसने इस पद से त्यागपत्र दे दिया, अपनी आत्मकथा में बताता है कि उसकी बुआ मृणाल का जीवन कैसा रहा और उसकी व्यथा–कथा के लिए वह अपनी को किस सीमा तक जिम्मेदार मानता है। वह लिखता है कि –

**व्याख्या** – वह एक न्यायाधीश है इसलिए कानून की आवश्यकताओं और सीमाओं को जानता है। वह कोई धर्मात्मा या समाज सुधारक नहीं जो अपनी बुआ के पाप–पुण्य की जाँच कर सके। वह कहता है कि वह तो न्याय व्यवस्था की आवश्यकताओं को समझता है और उनके अनुरूप ही अपना निर्णय दे सकता है। वह कहता है कि जिन लोगों पर पाप–पुण्य के निर्णय की जिम्मेदारी है, जो धर्मशास्त्र को समझते हैं वे उन बातों का निर्णय

करें, उसके वश का यह काम नहीं है अर्थात् वह अपनी बुआ के आचरण को पाप–पुण्य, सदाचार या दुराचार की कसौटी पर नहीं कस सकता। उसकी बुआ मृणाल की मृत्यु, उसके लिए भारी धक्का है। उसे लगता है कि मृणाल की समय पर सहायता न करके उसने अन्याय किया है।

**विशेष** – (1) पूरा उपन्यास मानव के आचरण की विशिष्ट परिस्थितियों में विवेचना करता है।

(2) न्याय का काम नियमों के अनुसार ठीक या गलत का निर्णय करना मात्र है।

**2. बुआ का तब का रूप सोचता हूँ तो दंग रह जाता हूँ, ऐसा रूप कब किस को विधाता देता है। जब देता है तब कदाचित उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन–ही–मन नीयत उसकी रहती है। पिताजी तो बुआ की मोहनी मूरत पर रीझ–रीझ जाते थे। खैर, उस बात को छोड़ें। मेरी और बुआ की बहुत बनती थी। वह शहर के बड़े स्कूल में बग्घी में पढ़ने जाती थीं और घर आकर जो नई शरारतें वहां होतीं अकेले में सब मुझको ऐसा सुनाती थीं, आज मास्टर जी को ऐसा झकाया, कि प्रमोद, तुझे क्या बताऊं, कहकर वह ऐसा ठहाका मारकर हंसतीं कि मैं देखता रह जाता, उस समय मुझे कहानी की परियों का ध्यान हो पाता और मैं मुग्ध भाव से अपनी बुआ की ओर आकृष्ट हो रहता।**

**शब्दार्थ** – **विधाता** – ईश्वर। **मोहनी** – मोहने वाली, आकर्षक। **मूरत**– मूर्ति। **आकृष्ट**– आकर्षित।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यावतरण जैनेन्द्र कुमार विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है। बालक प्रमोद अपनी बुआ के सौन्दर्य और शरारतों का वर्णन करता हुआ कहता है कि –

**व्याख्या**– बुआ मृणाल जब स्कूल में पढ़ती थी तब भी उसका सौन्दर्य अद्‌भुत था। जो भी उसे देखता, हैरान रह जाता था। वह सोचता है कि ईश्वर बड़ी मुश्किल से किसी को इतना सुन्दर बनाता है। उसको लगता है कि विधाता कंजूस है जो एक हाथ से सौन्दर्य देता है तो दूसरे हाथ से उस व्यक्ति के भाग्य पर कालिख पोत देता है। मानो वह सौन्दर्य की कीमत तुरन्त वसूल कर लेता है। पिता जी भी उसके सौन्दर्य को देखकर प्रसन्न होते थे। प्रमोद कहता है कि उसकी बुआ से बहुत बनती थी इसलिए वह स्कूल से आकर अपनी कक्षा में की गई शरारतों के विषय में उसे रस ले लेकर सुनाती थी। बुआ स्कूल एक बग्घी में जाती थी। उन दिनों लडकियों को पर्दे में रखा जाता था। प्रमोद कहता है कि बुआ के ठहाकों और उसकी शरारतों को सुनकर उसे परीकथाओं की परियों की याद आती थी। उसकी बातों को सुनकर प्रमोद का लगाव बुआ से और भी अधिक बढ़ जाता था।

**विशेष**– (1) लेखक सौन्दर्य और सौभाग्य के विरोध को विधाता की नीयत से जोड़ता है।

(2) मृणाल के सौन्दर्य और शरारतों का रोचक वर्णन हुआ है।

(3) तत्कालीन समाज में नारी शिक्षा की कठिनाई पर प्रकाश डाला गया है।

**3. उस दिन बुआ रोज़ से अस्थिर को मालूम होती थी। वह प्रसन्न थी और किसी काम में उनका जी नहीं लगता था। उन्होंने मुझसे तरह–तरह के प्रस्ताव किये, तरह–तरह की बातें की। 'प्रमोद एक रोज नहर के पुल चलना चाहिए। चलोगे ? बताओ, तुम्हें मिठाई कौन–सी अच्छी लगती है ? घेवर ! घेवर भी कोई मिठाई है। छिः, देखो 'तुम पतंग नहीं लाये न !' 'प्रमोद, मैं शीला के यहां रह गई थी। तेरी मां कुछ ख्याल तो नहीं हुआ होगा।' 'चल रे चल, प्रमोद, यहां क्या कमरे में बैठना। चलकर ऊपर हवा में बैठेंगे। क्यों ?' एक बात कहती थीं कि झट भूल जाती थीं, उस समय उनके मन में ठहरता कुछ नहीं था। न विचार, न अविचार, जैसे भीतर बस हवा हो और मन हल्का–फुल्का बस उड़–उड़ आना चाहता हो। वह बेबात हंसती थी और बेबात मुझे पकड़ कर इधर से उधर खींचतीं थीं। उस दिन वह मेरी समझ मे नहीं आ रही थी। मैने कहा – 'बुआ, आज क्या बात है ?'**

**शब्दार्थ** – **अस्थिर** – अशान्त। **ख्याल** – चिंता। **झट** – तुरन्त। **अविचार** – बुरे विचार।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यावतरण जैनेन्द्र कुमार विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में वह मानव नियति को विभिन्न पहलुओं से परखते हुए सदाचार– दुराचार, श्लील–अश्लील, पाप–पुण्य, उचित–अनुचित की दृष्टि से परखते हैं। प्रस्तुत गद्यांश में प्रमोद की बुआ मृणाल को अपनी सहेली के भाई से प्यार हो जाता है। अपने प्रेमी से प्रथम मिलन से मृणाल की मनोदशा कैसे अस्थिर होती है इसका चित्रण करते हुए लेखक कहता है कि –

**व्याख्या** – उस दिन जब वह संभवतः शीला के भाई से पहली बार मिलकर आई तो उत्साह और उमंग के कारण उसकी मनोदशा अत्याधिक चंचल थी। उसने प्रमोद के सामने अनेक सुझाव रखे। कहा कि उन्हें नदी के पुल पर चलना चाहिए। फिर कहा घेवर भी कोई मिठाई है, वह उसे बढ़िया मिठाई खिलाएगी और फिर पतंग न लाने के विषय में पूछा। उसने यह भी पूछा कि प्रमोद की माँ और उसकी भाभी ने उसके विषय में पूछा तो नहीं क्योंकि वह स्कूल से आते समय शीला के यहाँ कुछ समय को रूक गई थी। कभी वह प्रमोद से कहती कि चलो ऊपर छत पर खुली हवा में बैठते हैं और फिर तुरन्त ही अपनी कही बात भूल जाती थी। उसका मन मानों खाली, हल्का हो गया था। उसमें विचार या विचार शून्यता कुछ भी न थी। वह मानो हवा कें गुब्बार की तरह अज्ञात खुशी में उड़ी जा रही थी। वह बिना बात के हंसती थी और प्रमोद को इधर–उधर खींचती थी। प्रमोद को समझ नहीं आ रहा था कि बुआ को क्या हुआ है ?

**विशेष** – (1) प्रथम प्रेम की मस्ती और उत्साह का मनौवैज्ञानिक चित्रण यहाँ हुआ है। जैनेन्द्र की मनोविज्ञान पर गहरी पकड़ थी।

(2) बुआ का अटपटा व्यवहार प्रमोद की समझ में नहीं आ सकता था, वह अभी बच्चा था।

**4. यह सुनकर स्तब्ध भाव से वह मुझे देखती रह गई। खींच–कर अपनी गोद में मुझे लिटाकर बोली – 'प्रमोद, सच्ची–सच्ची कहूं तो मैं ही पराई हो गई हूं। तुम सब लोगों के लिए मैं पराई हूं। तेरी मां ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है। पर मुझे जहां भेज दिया है, प्रमोद, मेरा मन वहां का नहीं हैं .. तू एक काम करेगा ?'**

**शब्दार्थ** – **स्तब्ध** – सुन्न हो जाना, कुछ न सूझना।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है। इस उपन्यास में प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की विवाहोपरान्त मनोदशा का वर्णन अपनी आत्मकथा में करता हुआ कहता है कि जब मृणाल पगफेरे के लिए वापिस लौटी तो उसकी मनोदशा क्या थी। वह कहता है कि –

**व्याख्या** – प्रमोद को वह पहले की तरह ही प्यार करती है। प्रमोद को लगता है कि जब बुआ उसे पराया मानने लगी है इसीलिए मन की बात उससे नहीं करती। विवाह के उपरान्त पगफेरे के लिए अपने घर आई मृणाल को प्रमोद की यह बात छू जाती है। वह कहती है कि सच्चाई तो यह है कि विवाह के पश्चात् वही पराई हो गई है। वह कहती है कि भाभी अर्थात् प्रमोद की माँ ने ही जबर्दस्ती उसकी शादी करवा कर उसे पराया कर दिया है। वह प्रमोद से कहती है कि उसे जहां भेजा गया है, वहाँ पर उसका मन नहीं है। वह उस अनमेल विवाह से प्रसन्न नहीं । उसकी शादी एक विधुर से कर दी गई हैं।

**विशेष** – (1) मृणाल को जहां शादी के लिए विवश किया गया था, वहां उसका मन नहीं लग रहा। उसका पति विधुर है और दोनो की रूचियों में ज़मीन–आसमान का अन्तर है।

(2) शादी के पश्चात् प्रायः लड़कियां अपने घर में परायी सी हो जाती हैं। उन्हें पहले का सा अपनत्व महसूस नहीं होता।

**5. बाबूजी कमरे में टहलने लगे। कुछ देर तक वह भी कुछ नहीं बोले। फिर कहा – 'मिनी, सच बताओ, क्या बात है ?' यह कहकर कुछ ठहरे। मृणाल चुप रही, तो फिर टहलने लगे। एकाएक रुक कर बोले – 'मृणाल मैं देखता हूं, तुम्हें तकलीफ है। बताओगी नहीं तो मैं कैसे जानूंगा ? क्या करूंगा ? मिनी, तुझे पिताजी की तो क्या याद होगी। तू नन्हीं सी थी तभी पिता जी उठ गए। मां तो देखी ही कब है। सबकी जगह मैं ही तेरे लिए रह गया। मुझसे न कहेगी तो किससे कहेगी ? मृणाल बेटा? सच बता, क्या बात है।'**

**शब्दार्थ – उठ गए** – मर गए, स्वर्गवास हो गए।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार विरचित उपन्यास 'त्यागपत्र' से लिया गया है। इस उपन्यास में प्रमोद की आत्मकथा के माध्यम से भारतीय समाज की दशा का चित्रण हुआ है जिसमें नारी को प्रताड़ित, लांछित और असहाय बनाकर मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। मृणाल की करुण गाथा इसी का प्रमाण है। विवाहोपरान्त पगफेरे के लिए आई मृणाल की दुर्दशा से द्रवित हो उसका पिता तुल्य बड़ा भाई जिसने उसे माता–पिता की मृत्यु के पश्चात् पाला–पोसा है, उससे पूछता है कि –

**व्याख्या** – वह सच–सच जानना चाहता है कि उसकी बहन को ससुराल में क्या दुख है। उसे लगता है कि कुछ तो है जो उसकी छोटी बहन मिनी ( मृणाल ) उससे छुपा रही है। उसे लगता है कि मिनी कष्ट में है। वह उससे पूछता है कि वह सच–सच उसे बता दे। जब तक वह नहीं बताएगी तब तक उसे उसके कष्ट का कैसे पता चलेगा। वह याद दिलाता है कि जब वह छोटी थी, तभी पिता जी का स्वर्गवास हो गया। मां तो उससे पहले ही चली गई थी। उसकी तो उसे याद भी नहीं होगी। वही उसके लिए माता–पिता के स्थान पर रहा है। वह मनुहार करते हुए मृणाल से पूछता है कि बात क्या है, वह शान्त मन से बैठकर उसे बताए।

**विशेष** – (1) मृणाल का पिता–तुल्य भाई सचमुच उससे स्नेह रखता है और उसकी हालत देख विचलित है। वह मिनी से जानना चाहता है कि उसे कष्ट क्या है।

(2) भाई–बहन की आत्मीयत झलकती है।

**6. जीवन में एक बात तो नहीं है, दसियों बातें हैं। ये जी में ऐसी जगह बैठ गई हैं कि घुमड़ती रहती हैं। उन पर आँखें मीचूँ तो भी नहीं मिच सकती। वे मेरे भीतर अनुकूल वायू में कभी–कभी ऐसी सुलग आती हैं कि उनकी लौ के प्रकाश में मैं देख उठता हूं कि सच्चाई क्या है। तब मेरी जजी मुझे शाप दिखती है और जान पड़ता है यही प्रवंचना है। सच्चाई तो छोटा बनने में है, बलि बनने में है। बहुत कुछ देखा है, बहुत कुछ पढ़ा है लेकिन यह सब झूठ है। राय इतना ही है प्रेम के भार से भारी रहकर जो जीवन के मूल में पैठा है, वह धन्य है। जो गर्व में फूला उस जीवन की फनगियों पर महक रहा है, वह भूला है।**

**शब्दार्थ–प्रवंचना**–धोखा। **बलि**– शक्तिशाली, बलवान। **पैठा**– भीतर धंसा है। **फंगनियों**–चोटियों।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार है। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। जज बनने के पश्चात प्रमोद जब पीछे मुड़कर अपनी बुआ की दुर्गति के विषय में सोचता है, तो उसे बहुत दुख होता है। अतः यह कहता है–

**व्याख्या**— प्रमोद चिंतन करता हुआ कहता है कि जीवन में एक साथ अनेक बातें होती हैं। कुछ बातें दिल में गहरे में अपनी जगह बना लेती हैं और समय—समय पर याद आती रहती हैं। प्रमोद को लगता है कि चाहकर भी वह उन बातों को अनदेखा नहीं कर सकता। जब मन थोड़ा शांत होता है तो ये बातें इस प्रकार प्रकाशित हो उठती हैं कि उनके प्रकाश में उसे अपना चेहरा नजर आने लगता है। प्रमोद कहता है कि तब उसे अपना न्यायाधीश होना, शाप—सा लगता है और महसूस होने लगता है कि यह सब एक धोखा है। उसे लगता है कि छोटा बनने में जीवन की सच्चाई या सफलता है, बड़ा बनने में नहीं। यह कहता है कि उसके जीवन में बहुत कुछ पढ़ा और देखा है परंतु वह सब झूठ प्रतीत होता है। उसे लगता है कि प्रेम के भार से भारी होकर जो झुकता है, वही धन्य है, उसी का जीवन सफल है। जो गर्व से फूलकर जीवन की चोटियों पर ही चहक रहा है, वह सचमुच पथभ्रष्ट है, भूला हुआ है।

**विशेष—1.** जज प्रमोद जीयन का सार प्रेम को मानता है। पद, प्रतिष्ठा, पैसा, सब निरर्थक है यदि जीवन प्रेमरहित है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3 तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**7. पूछता हूँ, मानव के जीवन की गति क्या अंधी है? वह अप्रति—रोच्य है, पर अंधी है। यह तो मैं नहीं मानूँगा मानव चलता जाता है और बूंद—बूंद दर्द इक्ट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है। वही सार है। वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस—मणि है, उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होगा नहीं तो चारों ओर गहन वन है, किसी ओर मार्ग सूझता नहीं है और मानव अपनी क्षुपा—तृषा, राग, द्वेष मान—मोह में भटकता फिरता है। यहाँ जाता है, यहाँ जाता है। पर असल में वह कहीं भी नहीं जाता, एक ही जगह हर अपने ही जुए में बंधा कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारता जा रहा है**

**शब्दार्थ—अप्रति रोध्य**—जो रोकी न जा सके। **क्षुधा**—भूख। **तृषा**—प्यास। **राग**—प्रेम। **द्वेष**—घृणा।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास 'त्यागपत्र' से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवत की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। जज प्रमोद के जीवन के रहस्यों पर विचार करते हुआ इन पंक्तियों में चिंतन करता है।

**व्याख्या**—प्रमोद चिंतन करता हुआ कहता है कि मैं अपने आपसे पूछता हूँ कि मानव जीवन की चाल क्या दिशाहीन है, अंधी है? यह ठीक है कि इसकी गति को बिल्कुल रोका नहीं जा सकता, परंतु फिर भी मैं इसे अंधी अथवा दिशाहीन नहीं मानूँगा। मनुष्य का जीवन ज्यों—ज्यों आगे बढ़ता है, इसमें बूंद—बूँद कर दर्द भरता चला जाता है। वहीं जीवन का सार है। यह जमा हुआ दर्द ही मन में मणि की तरह रहकर प्रकाश देता है। यदि यह मंणि न हो तो मनुष्य चारों ओर अंधकारमय बन में भटकता प्रतीत होता है, उसे अपना रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। प्रेम, घृणा, गान, मोह में वह मटकता रहता है। यह इधर—उधर भटकता रहता है। स्थान—स्थान पर भटकता है। मनुष्य को लगता है कि यह बहुत दूर—दूर तह जा रहा है, नए—नए कार्य करता है परंतु वास्तव में यह कोल्हू के बैल की तरह एक ही स्थान पर चक्कर काटता रहता है। कहने का भाव यह है कि मनुष्य की सारी भटकन, मन की इच्छाओं के कारण ही है।

**विशेष—1.** प्रमोद के माध्यम से स्पष्ट किया गया है कि दर्द ही जीवन का सार है। दर्द, मनुष्य का मार्गदर्शक है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3 तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

6. बूंद–बूंद इक्ट्ठा होना, कोल्हू का बैल होना मुहावरेदार भाषा के उदाहरण हैं।

**8. इतनी उम्र बिताकर बहुतों को मरते और उनसे बहुतों को जीते देखकर अगर मैं कुछ चाहता हूँ तो वह यह कि भीतर का दर्द मेरा ईष्ट हो। धन न चाहूँ, मन चाहूँ, धन मैल है, मन का दर्द अमरित है। सत्य का निवास और कहीं नहीं है। उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी। अन्यथा सब जान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहंकार है।**

**शब्दार्थ**– **इष्ट**–इच्छित, लक्ष्य। **अमरित**–अमृत, सुधा। **साभार**–आभार सहित। **ढकोसला**– छल, धोखा। **अहंकार**–घमंड।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती को पीड़ा के माध्यम से नारी नन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास का नायक प्रमोद मन ही मन विचार करते हुए इन पंक्तियां में कहता है–

**व्याख्या**–प्रमोद चिंतन करते हुए कहता है कि उसने अपने जीवन में अनेक लोगों को संसार में जीते और मरते देखा है इसलिए वह चाहता है कि उसका जीवन साधारण लोगों जैसा निरर्थक न होकर सार्थक बने। इसके लिए वह चाहता है कि उसके अपने भीतर का दर्द ही उसका इच्छित लक्ष्य हो अर्थात् वह जीवन में दर्द से अवश्य गुजरे, उससे अनुभव प्राप्त करे। वह कहता है कि वह सांसारिक धन–दौलत का इच्छुक नहीं, वह तो मन की समृद्धि चाहता है और वह मन में दर्द के संग्रह से ही आएगी, इसलिए वह जीवन में पीड़ा का संग्रह करना चाहता है। जीवन का सत्य पीड़ा सहने में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं है। उस पीड़ा को आभार सहित ग्रहण करने से ही ज्ञान और सत्य का प्रकाश प्राप्त हो सकता है। यदि जीवन में दर्द को विनम्रतापूर्वक स्वीकार नहीं किया तो सारा ज्ञान दिखावा है, धोखा है और सत्य की खोज, कोरा घमंड है।

**विशेष**–**1.** अमरित तद्भव शब्द अमृत से बना है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3 तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**9. मैंने प्रण किया था कि मैं नहीं रोऊँगा। मैं नहीं रोया। मुझे बेहद गुस्सा मालूम होता था कि मैं क्यों कुछ उत्पात नहीं किए डाल रहा हूँ। मेरे मन में हो रहा था कि कोई मुझसे झगड़ता क्यों नहीं है। इससे, उससे, किसी न किसी से टक्कर लेने को जी होता था। बुआ! ऊँह, वह जाएँ तो जाएँ, मेरा उनसे कुछ मतलब नहीं है। मेरा किसी से कुछ मतलब नहीं है। मैं अकेला सब कुछ से निबट लूँगा। हाँ, अकेला, अकेला। मुझसे मत बोलो, कोई मत बोलो, मैं नहीं याद करूँगा बुआ को। यह क्यों चली जा रही हैं? मेरे रहते क्यों चली जा रही है? और वह फूफा कौन बला हैं कि ले जाएँगे? ले जाएँ, तो ले जाएँ। जाएँ अरे टलें तो।**

**शब्दार्थ**–**प्रण**–प्रतिज्ञा। **उत्पात**–दंगा, फसाद, तोड़–फोड़। **बला**–मुसीबत।

**प्रसंग**— प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीडा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इन पंक्तियों में लेखक बालक प्रमोद की उस समय की मानसिक छटपटाहट और परेशानी को व्यक्त करता है, जब उसकी बुआ मृणाल को उसका फूफा लिवाने आता है और अपने साथ ले जाता है। विवश प्रमोद उसे रोक नहीं पाता। अतः वह कहता है कि—

**व्याख्या**—प्रमोद कहता है कि बुआ को जाते देखकर उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की थी कि वह बुआ से बिछुड़ कर बिल्कुल भी रोएगा नहीं। वह सचमुच बुआ के जाने पर नहीं रोया। उसका गुस्सा मन में रह गया। वह सोचता था कि यह कोई तोड़—फोड़ क्यों नहीं कर रहा, अपना गुस्सा किसी पर क्यों नहीं निकाल रहा। यह किसी से झगड़ता क्यों नहीं। उसका दिल होता कि वह किसी न किसी से भिड़ जाए। वह मन ही मन रूठकर अपने से कहता कि बुआ जाती है तो जाए, इससे इसको क्या लेना—देना है। वह सोचता कि वह अकेला ही सब कुछ सह लेगा। कोई उससे नहीं बोलता, न बोले उसे किसी से बातचीत करने की इच्छा भी नहीं है। फूफा न जाने कहाँ से मुसीबत बनकर आ गए। उन्हें क्या अधिकार वा बुआ को ले जाने का। ठीक है, यदि ले जाना ही है तो ले जाएँ, सारी मुसीबत समाप्त हो।

**विशेष—1** प्रमोद के मन की झुंझलाहट स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। उसे समझ नहीं आ रही कि क्या करें। कभी यह अपने पर, कभी बुआ पर, कभी फूफा पर खींझता है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3 तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**10. जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ। तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे? दान स्त्री का धर्म है। नहीं तो उसका क्या धर्म? उससे मन माँगा जाएगा, तन भी माँगा जाएगा, सती का आदर्श और क्या है? पर उसकी बिक्री—न, न, यह न होगा। अगरचे सोचती हूँ कि—''**

**शब्दार्थ**— **तन**—शरीर। **शायद**—संभवतः। **अनिवार्य**— जरूरी। **अगरचे**— यद्यपि।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इन पंक्तियों में मृणाल अपने त्याग के विषय में प्रमोद से कहती है कि—

**व्याख्या**—मृणाल कहती है कि उसने जिस कोयला बेचने वाले के यहाँ शरण ली है और जिसे वह अपना पति मान अपना शरीर सौंप चुकी है उससे इसके बदले में पैसा लेना अनुचित है। वह कहती है कि उसकी समझ में यह नहीं आता कि जिसे शरीर सौंप दिया, उससे इसके बदले में धन कैसे मांगा जा सकता है। शायद शरीर देना मेरी मजबूरी थी, परंतु इसके बदले में लेन—देन करना सर्वथा अनुचित है। वह कहती है कि नारी का धर्म है दान करना। सती का आदर्श यही है कि वह अपना तन—मन दान कर दें। इनकी बिक्री करना उसके लिए असंभव है। यद्यपि वह सोचती है कि उसे कुछ और करना चाहिए।

**विशेष—1**. मृणाल का हृदय शुद्ध है। वह सती धर्म का अर्थ तन—मन को दान करना ही समझती है, शरीर बेचना अर्थात वेश्या कर्म में लिप्त होना वह अनुचित मानती है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3 तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

**11. पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म में नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकार मैंने उनकी आँखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा–'मैं तेरा पति नहीं हूं'' तब मैं में किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है–''**

**शब्दार्थ–पतिव्रता**–पति के प्रति समर्पित। **अधिकार**–हक। **धर्म**–कर्तव्य।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार है। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इन पंक्तियों में मृणाल ने अपने भतीजे प्रमोद को अपने पति से अलग होने के विषय में बात की है।

**व्याख्या**–मृणाल कहती है कि उसने अपने पति को नहीं छोड़ा था, बल्कि पति ने ही उसे छोड़ दिया था। वह कहती है कि वह स्त्री धर्म को पति धर्म ही मानती है। उसकी दृष्टि में उसको अपना कोई स्वतंत्र धर्म नहीं होता। पविव्रता का यह धर्म नहीं हो सकता कि यदि उसे अस्वीकार कर दे तो भी वह उस पर बोझ बनी रहे, उसके साथ रहने की जिद को। उसके पति मुझे देखना भी नहीं चाहते थे इसलिए वह उससे अलग होने को तैयार हो गई। जब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि वे मुझे अपनी पत्नी नहीं मानते और वे मेरे पति नहीं हैं, तब मैं वहां से चली आई। वह पूछती है कि पतिव्रता का यह धर्म नहीं है कि वह पति की इच्छा को स्वीकार करें।

**विशेष**–1 मृणाल ने अपने भतीजे प्रमोद के सामने अपने पतिव्रत्य धर्म की परिकल्पना को स्पष्ट किया है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**12. ''नहीं आना चाहिए। मैं तो तुमको अपनी ओर से भी यही समझाने वाली थी। जो समाज में हैं, समाज की प्रतिष्ठा कायम रखने का जिम्मा भी उन पर है। उनका कर्तव्य है कि जो उसके उच्छिष्ट हैं या उच्छिष्ट बनना पसंद करते हैं, उन्हीं को जीवन के साथ नये प्रयोग करने की छूट हो सकती है। प्रमोद, यह बात तो ठीक है कि सत्य को सदा नये प्रयोगों की अपेक्षा है। लेकिन इन प्रयोगों में उन्हीं को पड़ना और डालना चाहिए जिनकी जान की अधिक समाज–दर नहीं रह गई है–''**

**शब्दार्थ–प्रतिष्ठा**–सम्मान, इज्जत। **कायम** – बना रहना। **उच्छिष्ट**–छोड़ा हुआ, निकाला गया, निरर्थक अंश। **दर** –कीमत।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास 'त्यागपत्र' से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार है। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास में नारी जीवन की विवशताओं का चित्रण किया गया, क्योंकि इससे मृणाल जिस गंदी बदनाम बस्ती में रहती है, वहां सज्जन लोगों को नहीं आना चाहिए क्योंकि इससे उनके नाम पर बट्टा लगेगा। इन पंक्तियों में यही बात मृणाल प्रमोद को समझा रही है।

**व्याख्या**—मृणाल प्रमोद को समझाते हुए कहती है कि जिस बदनाम बस्ती में यह रहती है, उस बदनाम बस्ती में उसे नहीं आना चाहिए था। वह कहती है कि जिन लोगों को समाज ने निकृष्ट समझकर निकाल बाहर किया है उन पर समाज की प्रतिष्ठा की रक्षा का भार नहीं, अपितु जो लोग समाज में स्वीकृत हैं, समाज में रहते हैं उन्हीं का दायित्व है कि ये समाज की प्रतिष्ठा को बचाएँ, उससे खिलवाड़ न करें। सत्य को पाने के लिए निरंतर नए प्रयोग करने पड़ते हैं। समाज से बाहर किए गए लोग निरंतर नए प्रयोग कर अपने को खतरे में डाल सकते है। समाज उनकी जान की कीमत यूँ भी कुछ नहीं मानता इसलिए उनके जीने या मरने से कोई अंतर नहीं पड़ता।

**विशेष**—1 मृणाल ने स्पष्ट किया है कि समाज में बहिष्कृत लोग ही सामाजिक मर्यादाओं पर प्रश्न चिन्ह लगाकर उनके साथ नए प्रयोग कर सकते हैं।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

**13. मन में एक गाँठ—सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि कुछ करो, वह और उलझती और कसती ही जाती थी। जो होता था। कुछ होना चाहिए वा, कुछ करना चाहिए, कहीं कुछ गड़—बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत है, समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे जरूर कुछ होना होगा, कुछ करना होगा। पर क्या—आ? यह क्या जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है?**

**शब्दार्थ—गाँठ पड़ना**—समस्या खड़ी होना। **सृष्टि**—संसार। **भवितव्य**—भविष्य। **कर्तव्य**—धर्म।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास का नायक प्रमोद अपनी बुआ से मिलकर आने के बाद विषय में सोचता हुआ इन पंक्तियों में कहता है।

**व्याख्या**—प्रमोद ज्यों—ज्यों अपनी बुआ के विषय में सोचता था त्यों—त्यों उसके मन में चिंता की एक गाँठ, एक समस्या सी पैदा होती जाती थी। यह गाँठ न तो घुलती थी और न ही खुलती थी अर्थात् उस समस्या का कोई समाधान समझ में नहीं आता था। यह पहेली कठिन होती जाती थी। लगता था कहीं कुछ होना ही चाहिए, कुछ करना ही चाहिए, ऐसा प्रतीत होता था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि कहीं कुछ गड़बड़ है जिसे ठीक करना आवश्यक है। कभी लगता है कि पूरी दुनिया ही गलत है, समाज ही गलत है। हमारा पूरा जीवन ही गलत है। पूरा सृष्टि चक्कर ही ऊटपटांग है। इसमें कोई तर्क नहीं है, सब कुछ विसंगत है। संसार चक्कर में कोई संगति नजर नहीं आती थी। मन करता था इसे अवश्य कुछ बनाना होगा, इसे अवश्य ठीक करना होगा। पर समझ नहीं आता कि क्या होगा या होना चाहिए। भविष्य में क्या लिखा है, मेरा क्या कर्तव्य है, यह समझ में नहीं आता।

**विशेष**—1. प्रमोद अपनी बुआ को लेकर असमंजस में है। यह उसका उद्धार करना चाहता है, परंतु विवश है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**14. ''यहाँ का लाभ–तुम पूछोगे। लाभ बहुत है। यहाँ किसी को यह कहने का लोभ नहीं है कि वह सच्चरित्र है। यहाँ सच्चरित्रता के अर्थ में मानव का मूल्य नहीं माना जाता। दुर्जनता ही मानों कीमत है। यहाँ उसी हिसाब से मानव की घट–बढ़ कीमत है। मैं मानती हूँ कि यह रोग का मूल है। भयानक जड़ता है। किंतु लाभदायक भी है यह। इस जगह आकर यह असंभव है कि कोई अपने को सच्चरित्र दिखाए। दिखाना चाहे, या दिखा सके। यहाँ सदाचार का कुछ मूल्य नहीं है, अपेक्षा ही नहीं है बल्कि ऋण मूल्य है। अगर कहीं भीतर, बहुत भीतर मज्जा तक में, छिपा विकार का कीटाणु है तो यहाँ वह ऊपर आ रहेगा। यहाँ छल असंभव है, जो छल के शिष्ट समाज में जरूरी ही है। यहाँ तहजीब की मांग नहीं है, सभ्यता की आशा नहीं है। बेहवाई जितनी उघड़ी सामने आये उतनी ही रसीली बनती है।''**

**शब्दार्थ–लाभ**–फायदा। **दुर्जनता**–दुष्टता। **सदाचार**–अच्छा आचरण। **छल**–धोखा। **तहजीब**–सुशीलता। **बेहयाई**–बेशर्मी।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा को माध्यम से नारी मन की पीड़ा की अभिव्यक्त करता है। मृणाल मलिन, बदनाम वस्ती में रहती है। इन पंक्तियों में अपने पत्र में वह प्रमोद को वहाँ रहने का लाभ बताती हुई कहती है कि–

**व्याख्या**–मृणाल प्रमोद से कहती है कि तुम पूछते हो कि मेरे यहाँ रहने का मुझे क्या लाभ है? तो सुनो, यहाँ रहने का सबसे बड़ा लाभ यही है कि यहाँ कोई अपने को चरित्रवान सिद्ध करने का प्रयास नहीं करता और न ही चरित्रवान बनने की मांग की जाती है। मृणाल के अनुसार उस बदनाम बस्ती में दुष्टता ही अपेक्षित और सम्मानित है। यहाँ दुष्टता की कभी या अधिकता के आधार पर ही मनुष्य की कीमत आंकी जाती है। इस जगह पर कोई अपने को सच्चरित्र दिखाए या दिखाने का प्रयास करे, यह उचित नहीं, अपेक्षित नहीं। यहाँ सदाचार को कमजोरी या कमी माना जाता है, पुरस्कृत नहीं किया जाता। मनुष्य के भीतर, किसी भी स्तर यदि बुराई के कीटाणु मनुष्य में छुपे हों तो वे ऊपर आ जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं। यहाँ इस बस्ती में छल करना संभव नहीं जबकि सभ्य समाज में ऐसा करना सामान्य बात है। इस वस्ती में सुशीलता की मांग नहीं की जाती, सभ्यता की आशा भी नहीं की जाती। इस बदनाम बस्ती में बेशर्मी जितनी स्पष्ट हो, सामने आए उतनी ही आनंददायक हो जाती है।

**विशेष**–1. अपने पत्र में मृणाल ने स्पष्ट किया है कि बदनाम बस्तियों में रहने वाले तथाकथित घटिया लोग प्रामाणिक जीवन जीते हैं। उनकी बुराइयों सबके समान रहती हैं और वे उन्हें छुपाने की आवश्यकता भी नहीं समझते।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. पत्र शैली का प्रयोग हुआ है।

**15. वह बुआ जिन्होंने बिना लिए दिया। जिन्होंने कुछ किया, मुझे प्रेम ही किया। जिनकी याद अब मेरे अंदर अंगार–सी जलती है। जिनका जीवन कुछ हो, ऊपर उठती लौ की भाँति जलता रहा। धुआँ उठा तो उठा, पर लौ प्रकाशित रही। उन्हीं बुआ को एक तरफ डालकर मैं किस भाँति अपनी प्रतारणा करता रहा।**

**शब्दार्थ–प्रेम**–स्नेह। **याद**–स्मृति। **अंगार**–अंगारा। **प्रकाशित**–रोशन। **प्रतारणा**–धूर्तता, ठगी।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हमारे गद्य पाठ्यक्रम में संकलित उपन्यास **'त्यागपत्र'** से अवतरित है। इसके रचयिता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार हैं। त्यागपत्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है, जो मृणाल नामक युवती की पीड़ा के माध्यम से नारी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास की इन अंतिम पंक्तियों में प्रमोद द्वारा अपनी बुआ मृणाल की दर्दनाक मृत्यु पर गहरा पश्चात्ताप व्यक्त किया गया है।

**व्याख्या**–जज एम. दयाल उर्फ प्रमोद इन पंक्तियों में अपनी बुआ की दर्दनाक मृत्यु पर अपना पश्चात्ताप व्यक्त करता हुआ कहता है कि बुआ मृणाल ने मुझसे कुछ पाने की इच्छा किए बिना ही मुझे बहुत कुछ दिया। उन्होंने हमेशा मुझे अत्यधिक स्नेह किया। अब जब वे नहीं रही हैं, तब उनकी याद ही मेरे भीतर किसी अंगारे की भाँति जलती रहती है अर्थात् उनके न होने के कारण मेरा हृदय दुख से, पीड़ा से जलता रहता है। प्रमोद पुनः पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि उनका जीवन चाहे कैसा भी रहा हो परंतु वह किसी दीपक की ऊपर उठने वाली लौ की भाँति सदैव जलता ही रहा। चाहे उनके दीपक रूपी जीवन में कितना ही धुआँ उठा हो, परंतु उनके दीपक रूपी जीवन की ली हमेशा रोशन रही अर्थात् मृणाल बुआ कष्टों, दुखों एवं पीड़ा में भी सदैव मुस्कुराती रही। दूसरी ओर मैं, जिसे बुआ इतना प्रेम करती थीं, अपनी पद–प्रतिष्ठा के फेर में मैंने उन्हें अपने से दूर कर दिया। मैं हमेशा उनसे घूर्तता ही करता रहा। मैं उनके किसी काम न आ सका।

**विशेष**–1. प्रमोद के पश्चात्ताप का स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. प्रमोद के त्यागपत्र देने का क्या कारण था ?
2. प्रमोद की मृणाल से अंतिम भेंट कहाँ हुई थी ?
2. मृणाल ने प्रमोद से क्या मांगा था ?
3. त्यागपत्र उपन्यास की केन्द्रीय समस्या क्या है ?
4. शीला का भाई क्या या ?
5. मृणाल का प्रेम–प्रसंग किसके साथ था ?

## 4.4 सारांश

वस्तुतः त्यागपत्र में मृणाल के माध्यम से स्त्री जीवन की सबसे बड़ी विडंबनात्मक समस्या 'अनमेल विवाह के दुष्परिणामों' का चित्रण हुआ है। मृणाल अपने घर में प्रताड़ित होती थी और ससुराल में भी उसका पति उसे पीटता था। इसी कारण मृणाल अपने तरीके से जीने का फैसला करती है। मृणाल का इस प्रकार का कदम उठाना एक प्रगतिशील सोच का प्रतीक है।

## 4.5 कठिन शब्दावली

**व्याख्या**– टीका करना, भाषण

**इतवार** – रविवार

**प्रवृत्त** – हीन

**बरबाद** – नष्ट

## 4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. मृणाल की बात न मानने का पश्चाताप
2. गंदी बस्ती में
3. गंदी बस्ती के लोगों के लिए धन
4. गंदी बस्ती में
5. डॉक्टर
6. शीला के भाई के साथ

## 4.7 संदर्भित पुस्तकें

1. जैनेन्द्र – त्यागपत्र
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल–हिंदी साहित्य का इतिहास

## 4.8 सात्रिक प्रश्न

1. प्रमोद की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. त्यागपत्र उपन्यास की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।
3. त्यागपत्र उपन्यास के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

*****

# इकाई—5
# हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास

**संरचना**

5.1 भूमिका
5.2 उद्देश्य
5.3 हिंदी कहानी का उद्भव एवं विकास
5.3.1 कहानी का उद्भव
5.3.2 कहानी का विकास
स्वयं आकलन प्रश्न
5.4 सारांश
5.5 कठिन शब्दावली
5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
5.7 संदर्भित पुस्तकें
5.8 सात्रिक प्रश्न

## 5.1 भूमिका

इकाई चार के अन्तर्गत हमने उपन्यास त्यागपत्र के व्याख्या भाग का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई पाँच में हम हिंदी साहित्य में कहानी के उद्भव एवं विकास का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 5.2 उद्देश्य

इकाई पांच का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. कहानी का उद्भव कहाँ से हुआ ?
2. कहानी का स्वरूप क्या है ?
3 कहानी का विकास कैसे हुआ ?

## 5.3 हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अग्रेजी से हिंदी तक की यात्रा बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम–यमी', 'पुरुरवा–उर्वशी', 'सौपणी'– काद्रव', 'सनत्कुमार– नारद' 'गंगावतरण', श्रृंग', 'नहुष' 'ययाति' 'शकुन्तला' 'नल–दमयन्ती' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्रा, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की ''वृहत्कथा'' को जिसमें उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है। प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के ''दशकुमार चरित'', 'बाणभट्ट' की ''कादम्बरी'' 'सुबन्धु' की ''वासवदत्ता''

'धनपाल' की ''तिलकमंजरी'' 'सोमदेव के ''यशस्तिलक'' तथा ''मालतीमाधव'' ''अभिज्ञान शाकुन्तलम'' ''मालविकाग्निमित्र'' ''विक्रमोर्वशीय'', ''रत्नावली'' ''मृच्छकटिकम'' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ–साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात छोटे आकार वाली ''पंचतंत्र'', ''हितोपदेश'', ''बेताल पच्चीसी'', ''सिंहासन बत्तीसी'' ''शुक सप्तति'' ''कथा सरित्सागर'', ''भोजप्रबन्ध'' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की ओर अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

कवि–आलोचक कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार कहानी की परिभाषा इस प्रकार है 'कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये लिखी गई हो. जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो। हिंदी कहानी को सर्वश्रेष्ठ रूप देने वाले प्रेमचन्द' ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार से की है। कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।'' हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने तीन लेखों में कहानी के सम्बंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं– कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा–विन्यास, सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का संपूर्ण तथा बृहत रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भांति–भांति के फूल, बेल–बूटे सजे हुए है, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है। कहानी की और भी परिभाषाएँ उद्धृत की जा सकती हैं। पर किसी भी साहित्यिक विधा को वैज्ञानिक परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि साहित्य में विज्ञान की सुनिश्चितता नहीं होती। इसलिए उसकी जो भी परिभाषा दी जाएगी वह अधूरी होगी।

**कहानी के तत्व**

रोचकता, प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्व महत्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र–चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा–शैली तथा उद्देश्य। कहानी के ढाँचे को कथानक अथवा कथावस्तु कहा जाता है। प्रत्येक कहानी के लिये कथावस्तु का होना अनिवार्य है क्योंकि इसके अभाव में कहानी की रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कथानक के चार अंग माने जाते हैं आरम्भ, आरोह, चरम स्थिति एवं अवरोह। कहानी का संचालन उसके पात्रों के द्वारा ही होता है तथा पात्रों के गुण–दोष को उनका चरित्र चित्रण कहा जाता है। चरित्र चित्रण से विभिन्न चरित्रों में स्वाभाविकता उत्पन्न की जाती है। संवाद कहानी का प्रमुख अंग होते हैं। इनके द्वारा पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द एवं अन्य मनोभावों को प्रकट किया जाता है। कहानी में वास्तविकता का पुट देने के लिये देशकाल अथवा वातावरण का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतीकरण के ढंग में कलात्मकता लाने के लिए उसको अलग–अलग भाषा व शैली से सजाया जाता है। कहानी में केवल मनोरंजन ही नहीं होता अपितु उसका एक निश्चित उददेश्य।

कहानी एक अत्यंत लोकप्रिय विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है। प्रायः सभी पत्र पत्रिकाओं में पाठकीय माँग के फलस्वरूप कहानियों का छापा जाना अनिवार्य हो गया है। इस देश की प्रत्येक भाषा में केवल कहानियों की पत्रिकाएँ भी संख्या में कम नहीं हैं। रहस्य, रोमांस और साहस की कहानियों के अतिरिक्त उनमें जीवन को गंभीर रूप में लेने वाली कहानियाँ भी छपती है। साहित्यिक दृष्टि से इन्हीं का महत्व है। ये कहानियाँ चारित्रिक विशेषताओं मूड वातावरण जटिल स्थितियों आदि के साथ सामाजिक आर्थिक जीवन से भी संबंद्ध होती है। सामानयतः कहानी भीमांसा के लिए छः तत्वों का उल्लेख किया जाता है–

1. कथावस्तु, 2 चरित्र–चित्रण 3. कथोपकथन 4. देशकाल 5. भाषा शैली और 6. उद्‌देश्य

किंतु इन प्रतिमानों का प्रयोग नाटक और उपन्यासों के लिए भी होता है। ऐसी स्थिति में भ्रांति की सृष्टि हो सकती लेकिन इसका परिहार यह कह कर लिया जाता है कि कहानी की कथावस्तु इकहरी होती है। चरित्र के लिए कि पहलू का चित्रण होता है। कथोपकथन अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म तथा मर्मस्पर्शी होता है। कहानी में एक देश एक काल की जरूरत होती है। सन साठ के बाद की कहानियों का तेवर बदला हुआ है। इन कहानियों को साठोत्तरी कहानी कहा जाता है। इस दौर में कई कहानी आदोलन चले जिनमें अकहानी सहज कहानी, सहज कहानी, सचेत कहानी, समांतर कहानी और सक्रिय कहानी आंदोलन प्रमुख थे। बाद में जनवादी कहानी आंदोलन में इनका समाहार हो जाता है। नब्बे के दशक की कहानी और 21 वीं सदी के पहले दशक की कहानी का अभी तक समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है लेकिन उनमें वैश्वीकरण, सूचना तंत्र और बाजारवाद की अनुगंज साफ सुनी जा सकती है। नब्बे का दशक दलित विमर्श और स्त्ली विमर्श के उभार का दशक भी था। इस दशक में सशक्तिकरण उसके अधिकारों की लड़ाई और अभिव्यक्ति की छटपटाहट की अनुगूंज स्त्री रचनाकारों की कहानियों में बखूबी सुनाई देती है। इसी तरह दलित रचनाकारों ने भी अपनी स्वानुभूतियों के रंग से हिंदी कहानी नया रंग और मोड़ दिया। आज के दौर में तकनीकी विकास को रेखांकित करती हुई और उससे उत्पन्न खतरों व्याख्यायित करने वाली कहानियां भी खूब लिखी जा रही।

### 5.3.1 कहानी का उद्‌भव

हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास भारत की प्राचीन कथाओं जातक कथा, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि में न होक्कर अंग्रेजी साहित्य की 'शॉर्ट स्टोरी' से माना जाना चाहिए। पश्चिम में कहानी एक लोकप्रिय साहित्य विधा के रूप में स्थापित हो चुकी थी। हिन्दी और अन्य भारतीय आषाओं में पश्चिम का कहानी साहित्य धीरे–ध ीरे लोकप्रिय होने लगा था। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में बंगला और मराठी में कहानी लेखन का आरम्भ हुआ। हिन्दी साहित्यकारों ने इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर कहानी लेखन का श्री गणेश किया। देखते ही देखते यह साहित्य विधा अत्यन्त लोकप्रिय हो गई और कहानीकारों का एक विशाल वर्ग सामने आने लगा।

देखा जाये तो हिन्दी के कहानी साहित्य में वास्तविक मोड़ तब आया जब प्रेमचन्द की रचनायें हिन्दी की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। शीघ्र ही कहानी लोकप्रिय और साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हो गई। इस पाठ के अगले पृष्ठों में हिन्दी कहानी के प्रादुर्भाव और विस्तार की रोचक सामग्री आपको देखने को मिलेगी।

**हिन्दी कहानी आविर्भाव**

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी में हम खड़ी बोली के गद्य का उन्मेष देखते हैं और हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही हिन्दी कहानी को उत्पत्ति के सूत्रों को खोजा जा सकला है। सन् 1800 में अपने अफसरों को स्थानीय भाषाएँ सिखाने के लिए अंग्रेजों ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की और कुछ शिक्षकों को हिन्दी कहानी लिखने का कार्य सौंपा जिनमें प्रमुख हैं लल्लूलाल कृत्त बैताल पचीसी और प्रेमसागर, सदल मिश्र कृत ''नासिकेतोपाख्यान''। इसी समय मुंशी ईशा अल्ला खॉ ने रानी केतकी की कहानी लिखी जिसे डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जैसे विद्वान हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। इसी दौरान सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की। किन्तु इन रचनाओं के कथासूत्र संस्कृत से जुड़े हैं और इन रचनाओं में भाषा और शिल्प का प्रदर्शन मात्र है। इनमें से किसी रचना को मौलिक कहानी नहीं कहा जा सकता। ईशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी प्रयोगात्मक रूप से लिखी गयी थी किन्तु कलात्मक दृष्टि से इसका रचना विधान आधुनिक कहानी जैसा नहीं था। हिन्दी कहानी का आविर्भाव हम भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं में पाते हैं। किन्तु 1867 से 1900 ई. तक प्रकाशित रचनाओ में कथा तत्त्व का समावेश तो मिलता है किन्तु स्वतंत्र कथा–रचना नहीं मिलती।

हिन्दी कहानी के विकास में सन् 1900 में सरस्वती का प्रकाशन एक निर्णायक घटना की तरह है। 'सरस्वती' के आरम्भिक अंकों में कहानी को आख्यायिका या गल्प की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। किन्तु यह भी सच है कि हिन्दी कहानी के आरम्भ में जो भी प्रयत्न हुए वे सरस्वती के मंच से ही हुए।

## 5.3.2 कहानी का विकास

हिन्दी की प्रथम कहानी कौन सी है इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद है। 1900 में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी पर 'टैम्पैस्ट' की छाया है। अतः वह मौलिक कहानी नहीं है। 1903 में प्रकाशित रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' से पूर्व 1901 में छत्तीसगढ़ 'मित्र' में माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी को श्री देवीप्रसाद शर्मा हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। स्वयं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल बंगमहिला की दुलाईवाली कहानी. जो 1907 में प्रकाशित हुई थी हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते है। डॉ बच्चन सिह के अनुसार हिन्दी की प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की प्रणयिनी परिणय है जो 1887 में लिखी गयी थी किन्तु स्वयं लेखक ने इस रचना को उपन्यास कहा है। राजेन्द्र यादव हिन्दी की प्रथम कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' को मानते है क्योंकि 1915 में छपी यह कहानी सजीव स्थानीय विवरण और पूर्वाभास शैली के प्रयोग और उपखण्डों के संघटन के कारण प्रथम मॉलिक कहानी है। इस सवाल पर भिन्न गत है किन्तु ऐसा लगता है कि माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिन्दी की पहली कहानी है किन्तु इस दिशा में होने वाले अनुसंधान इस स्थापना को बदल भी सकते हैं।

यह एक सुखद संयोग है कि हिन्दी कहानी को अपने आरम्भिक काल में ही प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद जैसे कहानीकार मिले जिनकी साधना ने हिन्दी कहानी के विकास को ऐसी गति प्रदान की कि यह विधा कलात्मक दृष्टि से बहुत शीघ्र अपने शीर्ष पर पहुंच गयी। यहाँ यह तथ्य भी रेखांकित करने योग्य है कि हिन्दी में जिस युग में कहानी लेखन की परम्परा आरम्भ हुई तब तक पश्चिम में कहानी अपने शीर्ष पर पहुंच चुकी थी। पश्चिम में सभी अग्रणी कहानीकार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से पहले ही हो चुके थे।

प्रेमचन्द और प्रसाद हिन्दी कहानी के विकास युग में दो प्रवृत्तियों के प्रतिनिधियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों का अनुकरण और प्रभाव पूरे विकास युग पर परिलक्षित होता है। प्रेमचंद मूलतः आदर्शोनमुखी यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक है तो प्रसाद भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता है। तुलनात्मक दृष्टि से प्रसाद की भावमूलक परम्परा का अपेक्षाकृत कम कहानीकारों ने अनुकरण किया जबकि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा को अधिक कहानीकारों ने स्वीकार किया। व्यापक रूप से विकास युग की समूची कहानी यात्रा को प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानी कला के माध्यम से समझा जा सकता है। इसलिए इन दोनों कहानीकारों पर विस्तारपूर्वक विचार करना तथा इनकी कहानी कला की विवेचना करना आवश्यक लगता है।

### प्रसाद और उनकी कथाधारा

वस्तुतः प्रसाद मानव मन के चितरे है इसलिए प्रसाद की कहानियों में प्रेम, करुणा, अहिंसा, त्याग, राष्ट्रप्रेम जैसे मूल्यों की स्थापना के प्रति आग्रह मिलता है। कौतूहल, जिज्ञासा, मनोरंजन, रोमांस, साहसिकता के साथ साथ कथा की विधा का जो प्रयोग एक विशेष प्रकार की मूल्यवत्ता को स्थापित करने के लिए प्रसाद करते हैं वह उनकी कहानी कला का वैशिष्ट्य है। उनकी कहानियों में छायावादी, कलात्मकता, भावुकता, प्रतीकात्मकता और मानवीकरण मिलता है। 'प्रतिमा' 'करुणा की हवज्य' 'प्रलय', 'दुखिया' जैसी कहानियों में ये तत्त्व मिल जाते हैं।

प्रसाद की कहानियां शिल्प की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद अपनी कहानियों को रचाव के स्तर पर अलग तरह की ऊंचाई प्रदान करने का प्रयास करते हैं इसलिए उनकी कहानियाँ कहीं गद्यगीत शैली में लिखी गयी हैं तो कहीं प्रतीकात्मक शैली में। वे कहानी के विकास में घटनाओं का संयोजन बड़ी कुशलता से करते हैं पात्रों के अन्तर्दन्द्व को पूरे तीखेपन से उभारते हैं कहानी को धीरे–धीरे चरम सीमा की ओर ले जाते हैं, चरम सीमा कभी किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा करते हैं तो कहीं घटना की नाटकीयता से। किन्तु इसका

तात्पर्य यह नहीं है कि प्रसाद अपने समय की समस्याओं के प्रति पूरी तरह उदासीन थे तथा उनकी कहानियों में यथार्थ जीवन का चित्रण ही नहीं है। तत्कालीन समाज को गरीबी, निरीहता शोषण और असमानता को प्रसाद ने अपनी कहानियों में पूरा स्थान दिया है। 'चूडीवाली' कहानी में एक वैश्या अपनी पवित्रता और संयम के साथ अपनी घृणित दुनिया से निकलकर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति विजयकृष्ण की बहू बनकर अपने संकल्प को सफलता में बदल देती है। 'नीरा' कहानी में एक धनी और प्रतिष्ठित व्यक्ति अकिंचन और अपाहिज नीरा से विवाह कर समाज की सारी मान्यताओं को ठुकरा देता है।

**प्रसाद स्कूल के कहानीकार**

यद्यपि प्रेमचन्द की कहानी कला और प्रसाद की कहानी कला के तत्त्व एक जैसे ही है किन्तु अन्तर यही है कि प्रेमचन्द जहाँ यथार्थवादी हैं वहीं प्रसाद कल्पनाशील। दोनों की जीवन के प्रति दृष्टियाँ भिन्न है तो दोनों में जीवन दर्शन की भिन्नता भी है। प्रेमचन्द जीवन की समस्याओं से रूबरू होते हुए जत्त जीवन के चित्रकार हैं तो प्रसाद की कला दृष्टि भावनात्मकता करुणा, प्रेम, आनन्द और सौन्दर्य से बनी हैं। उनके लिए कहानी का लक्ष्य इन्हीं मूल्यों की अभिव्यक्ति है। प्रसाद स्कूल के प्रमुख कहानीकार इस प्रकार है आचार्य चतुरसेन शास्त्री, रामकृ ष्ण दास, बेचन शर्मा उग्र, वानस्पति पाठक विनोदशंकर व्यास।

**प्रेमचन्द और उनकी कथाधारा**

प्रेमचन्द ने ढाई सौ से अधिक कहानियाँ लिखो तथा अपने पूरे जीवनकाल में वे कहानियाँ लिखते रहे। 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' से लेकर 'कफन' तक उनकी कहानियाँ पर्याप्त लम्बी तथा महत्त्वपूर्ण हैं और इस यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर प्रेमचन्द की रचनात्मक चेतना को विभिन्न स्तरों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, प्रेमचन्द की कहानियों की दुनिया समान नहीं है. इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ कला और विषय वस्तु के लिहाज से काफी ऊँचे नीचे स्तरों की हैं उनके उपन्यासों के बीच उतना बड़ा फासला नहीं है जितना उनकी कहानियों के बीच हैं, किन्तु प्रेमचन्द हिन्दी के पहले कहानीकार है जिन्होंने कहानी विधा की कल्पनाविलास और नीति उपदेश की स्थूलताओं से मुक्त कर सामाजिक यथार्थ की जमीन पर खड़ा किया। उन्होंने कहानी को पाठकों के मनोरंजन तथा मानसिक वृत्ति के साधन के साथ–साथ उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़कर पाठकों में कहानी के द्वारा सामाजिक चेतना के प्रकाश पर बल दिया। प्रेमचन्द के लिए कहानी लेखन का सम्बन्ध बुनियादी तौर पर सामाजिक परिवर्तन से है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि में और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। वे कहानी के विषय मैं जो सोचते थे, इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता हैं हमने जिस युग को भी पार किया है उसे जीवन से कोई मतलब न था हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उसमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते. साहित्य से जीवन का कोई लगाव है, यह कल्पनाहीन था, कहानी है, जीवन है। दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को जीवन तथा उसके सरोकारों के सामने लाकर खड़ा कर दिया।

'पंच परमेश्वर' कहानी में प्रेमचन्द की यह आस्था पूरी तन्मयता के साथ मुखरित हुई हैं किन्तु मनुष्य का सद्वृत्तियों की विजय के चक्कर में प्रेमचन्द उन मूल्यों का अनुमोदन कर जाते हैं जो अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं। बड़े घर की बेटी कहानी में प्रेमचन्द को अहसास तो हो गया है कि संयुक्त परिवार प्रथा अब खण्ड हो चुकी है तथा उसे जिलाए रख सकना अब असम्भव नहीं है. किन्तु कहानी का अन्त जिस काल्पनिक आदर्शवाद की स्थापना के साथ होता है। वह यथार्थ जीवन के विरुद्ध तो है ही. ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द ढहती संयुक्त परिवार व्यवस्था की हिमायत कर रहे हैं।

तीसरे तथा अन्तिम दौर में प्रेमचन्द न केवल जीवन यथार्थ को अपनी रचनात्मक चेतना का अंग बना लेते हैं। प्रत्युत यथार्थ को रुपायित करते समय उनकी आदर्शवादी भंगिमा भी यथार्थवादी हो जाती है, प्रेमचन्द का यह रूप हमें 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी', 'ठाकुर का कुआँ, 'सवा सेर गेहूं', 'गुल्ली डण्डा',

'नशा' 'पूस की रात' तथा 'कफन' जैसी कहानियों में मिलता है। 'शतरंज का खिलाड़ी' के मिर्जा सज्जादअली और मीर रोशन अली राष्ट्र की समस्याओं तथा हलचली से बेखबर अपनी जायदार्दा के सहारे ऐय्याशी का रहे थे तथा अपने शौक शतरंज में डूबे थे।

'पूस की रात' तथा 'कफन' उपर्युक्त कहानियों से आगे की कहानियाँ हैं. 'पूस की रात' में खेत के उजड़ने से हलकू प्रसन्न है जैसे उसने खेल के मालिक से बदला ले लिया है. उसकी पत्नी दुःखी है कि अब मजदूरी करके माल गुजारी भरनी पड़ेगी, पर हलकू इस भयानक स्थिति के अहसास के बावजूद प्रसन्न है क्योंकि खेत उजड़ने पर अब ठंड की रात में खेल पर सोना तो नहीं पड़ेगा. 'कफन' के धीसू माधव में हो सारा पारिवारिक और सामाजिक सद्भाव बुझ चुका है। उन दोनों को उस बुढ़िया के मर जाने की प्रतिष्ठा है जिसने उनके घर को व्यवस्था दी। पर उनके लिए बुढ़िया से ज्यादा कीमत भुने हुए आलुओं की है, गर्म–गर्म आलुओं को जल्दी–जल्दी खाने की घटना उनकी असहाय गरीबी का अहसास देती है। घीसू को वीस साल पहले ठाकुर की बारात में खाये व्यंजनों की याद आती है।

प्रेमचंद की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति इस तथ्य में हैं कि वे कहानी लिखते नहीं, कहते हैं। डी. रामविलास शर्मा ने सवा सेर गेहूँ के प्रारम्भिक अश किसी गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा–सादा गरीब आदमी था. अपने काम से काम. न किसी के लेने में न किसी के देने में उद्धृत करते हुए लिखा है कथा कहने का ढंग हिन्दुस्तान के हर गाँव में कहानी कहने वाला और सुनने वाला जानता है। प्रेमचन्द की हर कहानी का लहजा इतना सहज और सरल है कि पाठक को खींचता है। प्रेमचन्द के दिमाग में शायद यह बात रही हो कि वे केवल बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों के लिए कहानी नहीं लिख रहे, वे देश के अर्थ शिक्षित, अनपढ़ तथा गाँवों में बसने वाले साधारपण व्यक्ति तक अपनी बात पहुंचाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस पद्धति को अपनाया जिससे यहाँ का पाठक या श्रोता अच्छी तरह परिचित था।

**प्रेमचन्द स्कूल के कहानीकार**

प्रेमचन्द की कहानी कला का फलक बहुत विस्तृत है और प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी को वह ऊंचाई प्रदान की जिसका अनुकरण आज तक की पीढ़ियों कर रही हैं। विश्वम्भरनाथ जिज्जा, जी पी श्रीवास्तव, राजा राधिाकारमण सिंह, विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक, पंडित ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, सुदर्शन, वृंदावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी।

**चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'**

विकास युग में ही चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ऐसे कहानीकार हैं जिन्हें प्रसाद या प्रेमचन्द की परम्परा में नहीं रखा जा सकता किन्तु वे इस युग के बहुत महत्त्वपूर्ण कहानीकार है। हो सकता है उन्होंने और भी कहानियाँ लिखी हो किन्तु अभी तक उनकी तीन कहानियां ही प्रकाश में आयी हैं उसने कहा था, सुखमय जीवन, बुद्ध का कांटा। ये तीनों ही सामाजिक कहानियां हैं जिनमें बुद्ध का कांटा और सुखमय जीवन तो पठनीय और रोचक कहानियाँ है। उनकी उसने कहा था हिन्दी की एक क्लासिक कहानी है। कहानी के आरम्भिक युग में यह कहानी एक चमत्कार है क्योकि इस कहानी में शिल्प की नवीनता, वातावरण की सृष्टि भाषा की प्रौढ़ता, चरित्र चित्रण की पूर्णता आदि ऐसे गुण हैं जो इस कहानी को विशिष्ट बनाते हैं। इसीलिए राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'उसने कहा था' हिन्दी कहानी की पहली कहानी है। इस कहानी में पूर्वदीप्ति शैली का प्रथम बार उपयोग हुआ है।

**संक्रान्ति काल–**

हिन्दी कहानी के विकास युग में प्रसाद और प्रेमचंद दो ऐसे कहानीकार हैं जो समूचे विकास युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद और प्रेमचंद की कहानियों दो प्रवृत्तियों की प्रतीक है।

प्रसाद और प्रेमचंद के बाद हम पाते हैं कि कहानी ही नहीं जीवन में ही अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ विकास पर रही है. जीवन दर्शन और व्यक्ति विश्लेषण की सर्वथा नयी प्रविधियों उदित हो रही है। इन प्रविधियों से कहानी कला का विस्तार हो रहा है और नये–नये प्रयोगों का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। इस युग की कहानियों पर विचार करने से पूर्व इस युग की प्रवृत्तियों पर विचार कर आवश्यक है।

**मनोविज्ञान**

प्रेमचंद तो कहानी में किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रतिष्ठा आवश्यक मानते थे। संक्रान्ति युग तक आते–आते रचनाकारों के लिए व्यक्तित्व का मनोजगत भी उतना ही प्रमुख हो गया जितना बाहरी संसार। पश्चिम से आये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के जान ने इस युग के कथाकारों को यह समझने पर विवश किया कि मनुष्य का अन्तर्जगत उसके बाहरी जगत से कहीं अधिक प्रभावशाली है और उसके इस जगत की जटिलताएँ उसे हर क्षण प्रभावित करती रहती है।

मनोविश्लेषण पद्धति से हमें व्यक्ति के अन्तर्जगत की गुत्थियों को समझने की क्षमता भी प्राप्त हुई तथा व्यक्तित्व की जटिलताओं को विश्लेषित करने की समझ भी मिली। मनोविश्लेषण द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र, आचरण और उसके व्यवहार का आकलन किया जाने लगा। अपराध, विद्रोह, पाप, पतन जैसे पत्ययों को नयी तरह से समझने की प्रक्रिया आरम्भ हुई तो पापी विद्रोही अपराधी व्यक्तियों का आकलन भी करुणा और दया के साथ करने की परम्परा आरम्भ हुई। स्त्री पुरुष सम्बन्धों को नये सिरे से व्याख्यायित किया जाने लगा तथा इन सम्बन्धों में भी व्यक्ति के महत्त्व को समझा जाने लगा।

**मनोवैज्ञानिक कहानी**

इस युग के जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय आदि कहानीकार बाहरी सामाजिक टकराहटों की अपेक्षा भीतरी तनावों पर अपनी दृष्टि अधिक केन्द्रित करते हैं। इन कहानीकारों की दृष्टि अब मानव व्यक्तित्व की भीतरी पर्तों में झाँकने की ओर उन्मुख है और इनकी कहानियाँ समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनैतिक से वैयक्तिक और सार्वजनिक से व्यक्तिगत की ओर बढ़ती है। कहानी की यह यात्रा जैनेन्द्र और अज्ञेय से आरम्भ होती है और नयी कहानी के उन्मेष तक चलती दिखायी देती है।

**जैनेन्द्र कुमार**

जैनेन्द्र हिन्दी के पहले कहानीकार हैं जो पाठकों का ध्यान प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियों से हटाकर अपनी ओर खींचते हैं। प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिन्दी कहानी के क्षेत्र में जैनेन्द्र ही बड़े कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। जैनेन्द्र की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे घटनासूत्र तथा कथानक के विकास की अपेक्षा चरित्र चित्रण, वातावरण और मन स्थितियों के अंकन पर अधिक ध्यान देते हैं।

1. मार्कण्डेय का जैनेन्द्र की कहानी कला के बारे में यह वक्तव्य काफी महत्त्वपूर्ण है, पहले जैनेन्द्र ने अपने मूल्यों के स्रोत के रूप में एक काल्पनिक संसार रचकर उसे अशरीरी पा की छाया से आबाद किया और एक झूठी कथावस्तु के सहारे कहानी गढ़नी चाही। राजेन्द्र यादव उनके बारे में नयी बात दूसरी तरह से कहते हैं. जैनेन्द्र काफी हद तक अन्योक्ति, नीतिकथा फैन्टेसी और बुद्धिगम्य स्थितियों के रूप में रचित कहानी का इस्तेमाल दार्शनिक निष्कर्षा के लिए करते हैं।

जैनेन्द्र की कहानी कला का मूलाधार जीवन दर्शन और मनोविज्ञान है। इन्हीं दोनों तत्त्वों से उन्होंने हिन्दी कहानी को समृद्ध किया है क्योंकि उन्होंने संख्या में काफी कहानियाँ लिखी हैं। वे अपनी दार्शनिक दृष्टि के बारे में एक रात की भूमिका में स्पष्ट भी कर देते हैं, दार्शनिक तत्त्व के रूप में सत्य अत्यन्त गरिष्ठ है, इस रूप में वह सत्य अपरोक्ष भी है। वह अधिकांश के लिए अग्राहय है। उसकी दृष्टांतगत चित्रगत और कथागत रूप में परिवर्तित करो, तभी वह रुचिकर और कार्यकारी बनता है। उनकी कहानियों की भाषा जैनेन्द्र की अपनी भाषा है जिसमें कोई जटिलता नहीं, कोई अस्पष्टता नहीं, कोई बोझिलता नहीं। छोटे–छोटे वाक्य और सरल शब्दावली यह जैनेन्द्र की सबसे बड़ी ताकत है जो उन्हें हिन्दी का एक विशिष्ट कहानीकार बताती है।

**अज्ञेय**

सच्चिदानंद हीरानंद ने अपने ही लेख अजेय के बारे में हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ की भूमिका में लिखा है। अज्ञेय प्रथमतः मानव–चरित्र से सम्बद्ध कथाकार हैं। उनकी कहानियों में व्यक्तियों के चरित्र और अभिप्राय का परिष्कृत विश्लेषण किया गया है और कहानी की रचना में कथाबन्ध की असामान्य दक्षता प्राप्त होती है। उनकी कहानी सामाजिक संघर्ष और भेदभाव की तस्वीर भी खींचती है और कई में अन्याय के विरुद्ध एक सशक्त आवाज भी उठायी गयी है किन्तु अज्ञेय का दृष्टिकोण प्राथमिक तौर से एक कवि का है जो सामाजिक संघर्ष के केवल वैयक्तिक, निजी को अपना विषय बनाता है। इससे उनकी रचना दृष्टि स्पष्ट हो जाती है।

जैनेन्द्र को दार्शनिक कहानीकार माना गया है जबकि अजेय को मनोवैज्ञानिक।

अज्ञेय का गद्य अपने आप में अप्रतिम है। शब्द की ताकत को समझते हुए उसका प्रयोग करने की क्षमता जितनी अज्ञेय में है उतनी बहुत कम लोगों में होती है। उन्होंने अपनी कहानियों की कई शैलियों में लिखकर रोचक और पठनीय बनाया है। अज्ञेय की रोज कहानी एक विशिष्ट कहानी है जो संवेदना के स्तर पर नयी कहानी से भी आगे की कहानी है।

**यशपाल–**

यशपाल इस युग के सबसे महत्वपूर्ण कहानीकारों में है। विचारधारा से वामपंथी और जीवन में कान्तिकारी रहने के कारण उनकी रचना दृष्टि का निर्माण द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की चेतना से हुआ है। उनकी कहानियाँ निर्वयक्तिक सामाजिक समस्याओं के धरातल पर टिकी हैं क्योंकि यशपाल के लिए रचनाकर्म मनुष्य के संघर्ष में शामिल होने का माध्यम है। वे अपनी रचनाओं में सर्वहारा की पक्षधरता करते हैं और पूँजीवादी शोषक व्यवस्था का विरोध करते हैं। उनकी कहानियों का एक ओर पक्ष स्त्री–पुरुष संबन्धों की नयी व्याख्या है। उनकी कहानियाँ समस्या प्रधान हैं जिनमें समसामयिकता और यथार्थवादिता के साथ मनोविश्लेषण भी मिलता है। यशपाल का अपनी कहानियों में कथा विधान की विविधता और प्रयोग के प्रति उतना आग्रह नहीं है जितना लक्ष्य के प्रति है। 'फूलों का कुर्ता' कहानी में वे सामाजिक मान्यताओं के खोखलेपन पर प्रहार करते हैं। वे सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत रुढ़ियों के प्रति बहुत तल्ख हैं। 'परदा' यशपाल की एक श्रेष्ठ कहानी है जिसमें वे मध्यवर्ग के व्यक्ति के झूठे अहं का बड़ी कुशलता से चित्रण करते हैं।

**इलाचन्द्र जोशी–**

संक्रान्ति युग में इलाचन्द्र जोशी अकेले ऐसे कथाकार हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिक कहानीकार कहा जा सकता है। उनकी अपनी मान्यता है, आधुनिक समाज में पुरुष की बौद्धिकता ज्यों–ज्यों बढ़ती जा रही हैं त्यों–त्यों उनका अहंभाव तीव से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है। अपने तृप्त न होने वाले अहं भाव की अस्वाभाविक पूर्ति की चेष्टा में जब पग–पग पर स्वाभाविक सफलता मिलती है. तो वह बौखला उठता है और उसके बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्मविनाश के पहले अपने आस पास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है।

**उपेन्द्र नाथ अश्क–**

अश्क जी की कहानियों के पात्र सामान्य जिन्दगी के साधारण पात्र होते हैं उनकी कहानियों में पति–पत्नी किसान, मजदूर, कर्मचारी, व्यवसायी आदि सभी तरह के पात्र मिलते हैं। 'डाची' कहानीकार का बाकर, 'काले साहब' का रिक्शावाला, 'उबाल' का चंदन 'तीन सौ चौबीस' का हैदर आम आदमी है जो जीवन संघर्ष में जूझ रहे हैं। ये पात्र यथार्थवादी पात्र है किन्तु अश्क की कहानियों में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनकी रचना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हुई है और इन्हे 'टाइप' पात्र कहा जा सकता है। पिंजरा कहानी की शान्ति हमारे हासोन्मुख समाज का प्रतीक है तो 'पत्नीव्रत' के खन्ना साहब स्वार्थी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। किन्तु विशेष बात यह है कि अश्क की कहानियों के पात्र मानवीय धरातल पर टिके हैं इसलिए वे जीवंत लगते है।

इनके अतिरिक्त इस युग में अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं। भगवतीचरण वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पहाड़ी आदि। भगवतीशरण वर्मा प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'प्रायश्चित' समाज के अन्धविश्वास की झूठी मान्यताओं पर तीखा व्यंग्य करती है तो मुगलों ने सल्तनत बख्श दी कहानी हमारे देश के निवासियों की कहानी का चित्रण बड़े कल्पनात्मक ढंग से करती है। निराला जी वैसे तो छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तम्भ है किन्तु उन्होने यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी हैं। इसी युग में प्रमुख कहानीकारों में पहाड़ी का नाम भी लिया जाता है। वे मनोवैज्ञानिक धारा के कहानीकार है किन्तु उनकी कहानियों का नाम भी लिया जाता है। वे मनोवैज्ञानिक धारा के कहानीकार है किन्तु उनकी कहानियों को मूल समस्या सैक्स समस्या है।

चौथे दशक में साहित्य का मंच प्रगतिवादियों के हाथ में है किन्तु पाँचवे दशक में भारत में गहरी उथल–पुथल होती है। दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता का आन्दोलन तीव्र होता है। भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव पूरे देश पर पड़ता है। आजादी मिलती है तो देश को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ती है और मारकाट के दृश्य लोगों को देखने पड़ते हैं। तीव्र राजनैतिक गतिविधियों के चलते 20वीं शताब्दी के पाँचवे दशक में हिन्दी कहानी की गति बहुत तेज नहीं रह पाती। किन्तु 1950 के बाद हिन्दी कहानी का विकास अपनी पूरी गरिमा के साथ होने लगता है और साहित्य के क्षेत्र में हम नयी–नयी प्रवृतियों का उन्मेष देखते हैं। हम छठे दशक में पाते हैं कि प्रगतिवादी हिन्दी कविता की उन प्रवृत्तियों पर प्रहार कर रहे हैं जिनका प्रतिनिधित्व अज्ञेय कर रहे थे तो कथा के क्षेत्र में जैनेन्द्र की व्यक्तिवादी चेतना भी उनकी आलोचना के केन्द्र में आ जाती है। इस तरह बहस के स्तर पर भी नयी पीढ़ी के रचनाकारों में एक नयी चेतना और ऊर्जा का उन्मेष हम स्वातन्र्योत्तर काल में पाते है और यही वह प्रस्थान बिन्दु हैं जहाँ से हिन्दी कहानी की नयी कहानी का परिदृश्य उभरता है। संक्षेप में स्वातन्त्रयोत्तर युग में भारतीय जीवन में परिवर्तन के विभिन्न रूपों को हम इन घटनाओं में देख सकते हैं –

**स्वातन्त्रयोत्तर कहानीकार की कथा दृष्टि में परिवर्तन**

हिन्दी कहानी के पारम्भिक काल में कथाकार की दृष्टि घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से किसी नैतिक आदर्श तक पहुंचने की रही। प्रेमचन्द की कहानियों में भी यद्यपि सामाजिक समस्याओं तथा जीवन के यथार्थ के प्रति पूर्ण जागरुकता द्रष्टव्य है तथापि वे किसी सामाजिक आदर्श को सामाजिक या पारिवारिक यथार्थ के बीच स्थापित करते हैं। किन्तु उनकी अन्तिम दौर की कहानियों में 'कफन' 'पूस की रात' आदि में प्रेमचन्द आदर्शवाद के केंचुल को उतारकर जीवन्त यथार्थ के धरातल पर आ जाते हैं। वस्तुतः प्रेमचन्द की ये यथार्थवादी कहानियाँ ही, जिनमें वे मानव को उसके यथार्थ परिवेश में चित्रित करते हैं स्वातन्त्रयोत्तर कहानीकार की जीवन दृष्टि का आधार है।

परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् के कथाकार की दुनिया सर्वथा एक नयी दुनिया थी। स्वतंत्रता मिलते हैं शताब्दियों दासता ही नहीं टूटी बल्कि नैतिक आर्थिक मूल्यों के विघटन की संक्रमण की विडम्बनाओं और मानवीय संकट ने तत्कालीन मध्यवर्गीय जीवन को भी तोड़ दिया। उसने व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय स्तर पर बनते बिगड़ते सम्बन्धों, अवधारणाओं, मान्यताओ, परिस्थितियों, वैचारिक आदर्शों के बीच जुड़ाती मानव प्रतिमा को रचनात्मक आग्रह के साथ स्वीकार किया क्योकि आजादी के कुछ ही दिनों में वे यह महसूस करने लगे कि आजादी के पहले की सरल दुनिया का अंत हो गया। इस परिवेश में जो मानव प्रतिमा अपने अस्तित्व को काम रखने के लिए संघर्षरत थी उसके सघर्ष को कथाकार ने अनुभव किया। क्योंकि स्वयं उसे इन सब सन्दर्भों से गुजरने के बाद ऐसा लगता है जैसे आज वह ठहराव आ गया है जब हमें खुद अपनी ही शक्लें अजनबी लगने लगी है। लगता है स्वतंत्रता के बाद पूरा युग ही हमने भोगा नहीं है वह हम पर लाद दिया गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात की विभिन्न कहानी धाराओं को मोटे तौर पर इन वगों में रखा जा सकता हैं।

1. **आंचलिक कहानी की धारा**– फणीश्वरनाथ रेणु इसके अग्रणी कथाकार थे।
2. **ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध कहानी धारा**– मार्कडेय, काशीनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, लक्ष्गीनारायण लाल, भैरवप्रसाद गुप्त, शैलेश मटियानी, रांगेय राघव, मधुकर गंगाधर, मधुकर सिंह, अवधनारायण सिंह आदि इस धारा के प्रतिनिधि कथाकार है।
3. **अन्तर्राष्ट्रीयता से सम्बद्ध कहानी धारा**– उषा प्रियवदा, निर्मल वर्मा, विजय चौहान आदि इसके प्रमुख कथाकार है।
4. **महानगरीय जीवन से सम्बद्ध कहानी धारा**– कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, अमरकान्त, रमेश बक्षी, ज्ञानरंजन, धर्मवीर भारती, मन्नू भण्डारी, हरिशंकर परसाई, दूधनाथ सिंह आदि इस धारा के प्रमुख कथाकार है।

## हिन्दी कहानी के विभिन्न आन्दोलन

### (क) नयी कहानी

### नामकरण तथा स्वरूप विकास

स्वातन्त्रयोत्तर कहानी को 'नयी कहानी' के नाम से पुकारा गया तो निश्चय ही उसमें कुछ नयापन रहा होगा और यह नयापन ही उसे पूर्ववर्ती कहानी से अलग कर रहा होगा। 'नयी कहानी' शब्द का प्रयोग जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, अश्क, यशपाल के बाद आने वाली पीढ़ी की कहानी के लिए किया गया है तथा इस पीढ़ी का लेखन के क्षेत्र में उदय स्वातन्त्रयोत्तर काल में हुआ। 'नयी कहानी' नामकरण के जन्म का इतिहास खोजते हैं तो हम पाते हैं कि दुष्यन्तकुमार ने सबसे पहले 'नयी कहानी' परम्परा और शीर्षक (कल्पना में प्रकाशित) अपने निबन्ध में नयी पीढ़ी की कहानियों में कुछ नयापन और मौलिकता देखकर उन पर विचार किया था। उन्हें मार्कण्डेय, अमरकान्त, राजेन्द्र यादव, विघ्धासागर नौटियाल, कमल जोशी, धर्मवीर भारतीय की कहानियों में नयेपन और प्रगति के कुछ चिन्ह नजर आये थे। लेकिन दुष्यन्त कुमार अपने लेख में नामकरण की सार्थकता के विषय में किसी प्रकार का तर्कसगत विवेचन नहीं करते।

'नयी कहानी' के नामकरण की आवश्यकता का प्रश्न सर्वप्रथम डॉ नामवर सिंह ने अपने लेख 'आज की हिन्दी कहानी' में उठाया और पूरे बल के साथ इस नाम का समर्थन किया। इस नाम की कहानी के साथ जोड़ने का श्रेय डॉ नामश्वर सिंह को ही जाता है। उन्होंने नयी कविता के सन्दर्भ में नयी कहानी के नामकरण का प्रश्न उठाते हुए कहा 'मेरे मन में यह सवाल उठता है कि 'नयी कविता' की तरह 'नयी कहानी' नाम की कोई चीज है क्या? इसके आगे वे कहते हैं कि 'नयी कहानी' नाम से कोई आन्दोलन अभी तक नहीं चला है। इससे क्या समझा जाये? यह कि कहानी में कुछ नयापन आया ही नहीं कि कहानी में ओ नयापन आया है। वह कविता की अपेक्षा बहुत कम है।

किन्तु 'नयी कहानी' के विषय में नामवर सिंह के विचार समय–समय पर विकसित होते रहे हैं। वे कभी सांकेतिकता को या कभी सूक्ष्म वातावरण को या संगीतात्मकता को या कथा विन्यास को या वास्तव में विविध आयामों की या नवीन दृष्टि को 'नयी कहानी' का आधार मानकर उसका मूल्यांकन करते रहे हैं। उन्होंने एक विभिन्न बात यह भी कही कि कहानी की चर्चा में अनायास ही 'नयी कहानी' शब्द चल पड़ा है और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारों ने भी किया है और आलोचकों ने भी। किन्तु उनका अनायास वाला कथन इसलिए सत्य प्रतीत नहीं होता कि नामकरण की आवश्यकता सबसे पहले उन्होंने ही महसूस की और उन्होंने ही यह नाम दिया।

### नयी कहानी की उपलब्धियाँ

नयी कहानी से हिन्दी साहित्य में एक वातावरण बनाया था, वह बहुत सर्जनात्मक और साहित्यिक वातावरण था। इस आन्दोलन के प्रारम्भिक दौर की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि उसने कहानीकारों को एक

लम्बी पीढ़ी हिन्दी कहानी को दी। नयी कहानी आन्दोलन के दौरान ऐसा वातावरण बनाया गया था कि नये कहानीकारों में यह होड़ लगी कि कौन किससे बेहतर कहानी लिखता है। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन के कारण नये कहानीकारों को खूब लिखने और अच्छा लिखने की प्रेरणा मिलती थी। उस समय जो अच्छी कहानी छपती थी बहुत चर्चित होती थी। यह नयी कहानी आन्दोलन का ही परिणाम था कि कहानीकारों की पीढ़ी के साथ डी. नामवर सिंह, हृषिकेश, सुरेन्द्र चौधरी धनंजय शर्मा, देवीशंकर अवस्थी, मधुरेश जैसे कहानी के व्याख्याकार भी तैयार हुए। कहने का तात्पर्य यह है कि नयी कहानी आन्दोलन सर्जन एवं विवेचना, दोनों दृष्टियों में बहुत समृद्ध और गतिशील आन्दोलन था।

## (ख) सचेतन कहानी

### उद्भव तथा नामकरण

नयी कहानी आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में यह आन्दोलन बहुत थोड़े से कथाकारों तक सीमित रह गया तथा वह धीरे–धीरे सामाजिक समस्याओं से कटने लगा। सन् 1960 तक नयी कहानी रुढ़ होने की स्थिति में आ गयी थी और उसमें एक खास किस्म का मैनरिज्म पैदा हो गया था। नयी कहानी की रुढ़ि और उसके मैनरिज्म को तोड़ने की दृष्टि से हिन्दी कहानी में जो आन्दोलन उभरे उनमें सचेतन कहानी आन्दोलन एक महत्वपूर्ण आन्दोलन है। इसका प्रारम्भ नवम्बर, 1964 में प्रकाशित आधार के सचेतन कहानी विशेषांक के प्रकाशन से माना जाता है जिसका सम्पादन डॉ महीप सिंह ने किया था। उन्हीं के शब्दों में, सचेतन आन्दोलन साहित्यिक संचेतना की सामूहिक प्रतिक्रिया है। इसके सूत्र बम्बई में 'रचना' द्वारा आयोजित गोष्ठियों में हैं। गत अप्रैल में मनीषा द्वारा दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में यह चर्चा और मुखर होकर सामने आयी।

डॉ. महीप सिंह ने ही 'सचेतन कहानी' आन्दोलन का प्रस्तावना किया था। 'आधार' के इस विशेषांक में महीप सिंह, राजीव सक्सेना, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्याम परमार आदि ने सचेतन कहानी सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया तथा इस अंक में आनन्दप्रकाश, जैन कमल जोशी, कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्ता, मधुकर सिंह, मनहर चौहान, महीप सिंह, योगेश गुप्त, वेदराही सुखवीर, हिमांशु जोशी आदि 20 कहानीकारों की कहानियाँ छपी। बाद में महीप सिंह ने 'संचेतना' नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया, जो सचेतन कहानी आन्दोलन का प्रमुख मंच बनी और सुदर्शन नारंग के संपादन में श्रेष्ठ सचेतन कहानियाँ शीर्षक से एक सग्रह भी प्रकाशित हुआ।

## (ग) अकहानी

**पृष्ठभूमि** –1960 तक आते आते कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनीं कि स्वतंत्रता का जिस उल्लास और उत्साह के साथ स्वागत किया था. वह ठंडा होने लगा था और हम एक मोह–भंग की स्थिति में आ पहुंचे थे। हमें लगने लगा था कि समाज में सभी जातीय और राष्ट्रीय मूल्य समाप्त हो चुके हैं और हमारे समक्ष एक अंधकार पूर्णतया निराशापूर्ण भविष्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। हमने स्वतंत्र भारत के विषय में जो स्वप्न संजोए थे, वे सब टूटते हुए दिखायी देने लगे। देश में राजनीतिक उथल–पुथल, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता से स्वतंत्रता के पश्चात् होश सम्हालने वाली पीढ़ी को आहत किया। पतनोन्मुख घटनाओं ने देश की चेतना को धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक सामाजिक सभी स्तरों पर झकझोर दिया। व्यक्ति आशान्वित था किन्तु उसकी तुलना में निराशा अधिक थी अनपेक्षित स्थितियों के कारण उसमें अविश्वास और आश्चर्य की स्थिति उत्पन्न हुई फलस्वरूप व्यक्ति अपनी आन्तरिकता में केवल आहत ही नहीं हुआ अपितु टूट भी गया।

इस निराशा भरे वातावरण में हिन्दी कहानी को जिस नयी धारा का सूत्रपात हुआ उसे कहानीकारों तथा समीक्षकों ने अकहानी के नाम से अभिहित किया। साठोत्तरी कहानी को डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने पहले तो 'समकालीन कहानी' से पुकारा, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने समकालीन, कहानी के स्थान पर अकहानी की व्याख्या प्रारम्भ कर दी और सन 1960 के वाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर 'अकहानी' की व्याख्या प्रारम्भ कर दी और सन व 1960 के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर अकहानी एक आन्दोलन के रूप में उग आयी, जिसके

पक्षधरों में डॉ. गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, ज्ञानरंजन, रमेश बक्षी, श्रीकांत वर्मा, विजय मोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि थे। इसी आन्दोलन की स्थापना के लिए अकहानी शीर्षक से श्याममोहन श्रीवास्तव तथा सुरेन्द्र अरोड़ा के संपादन में एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई जिसकी भूमिका में 'अकहानी' की व्याख्या की गयी तथा जिसमें उक्त कहानीकारों की कहानियों भी संकलित की गयी। अकहानी आन्दोलन एक तत्कालीन जीवन स्थितियों की भयातहता का परिणाम था तो दूसरी ओर नयी कहानी की जड़ता को तोड़ने का प्रयास था जैसा कि विश्वेश्वर ने कहा था, "साठोत्तर या अकहानी की आवाज पुरानी पड़ती जा रही पीढ़ी के ओगे हुए यथार्थ अनुभव की प्रामाणिकता, प्रतिबद्धता जैसे खोखले नारों के खिलाफ एक सख्त कार्यवाही थी। इस आवाज ने नयी कहानी के झंडाबरदारों को उनके पुराने पड़ जाने का अहसास कराया और उन्हें बिलकुल उसी तरह बौखला दिया, जैसे अपने जमाने में उन्होने जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि को बौखलाया था।

**नामकरण तथा स्वरूप**

अकहानी पश्चिम में जन्मी 'एटी स्टोरी' का रुपांतरण है किन्तु 'एटी नॉवेल' पश्चिम का एक स्वीकृत आन्दोलन है। ऐसा प्रतीत होता है कि अकहानी का प्रेरक यही 'एंटी नॉवेल' आन्दोलन है। 'एंटी नॉवेल' नामक आन्दोलन से रॉब्ब ग्रिए, मैडम सारा तथा बार्थस के नाम जुड़े हुए है जिनके लिए अकथा सम्बन्धी आन्दोलन केवल फार्म या शिल्प का आन्दोलन नहीं है– वह एक निश्चित दृष्टिकोण और जीवन दर्शन का आन्दोलन है रॉब्ब ग्रिए के लिए इंसानी हरकते किसी दूसरी वस्तुओं से भिन्न नहीं है। वे सिर्फ उतनी ही हैं जितनी नजर आती हैं दूसरी तमाम वस्तुओं के साथ हरकत करती हुई यात्रिक और ठोस।

इसका अर्थ यह हुआ कि अकहानी में असम्बद्धता है तथा वह कहानी की परम्परागत अवधारणाओं को अस्वीकार करती है। वह अमूर्ति कथा विधा अथवा शिल्पहीन कहानी है. अकहानी कहानी की धारणागत प्रतीति के सभी वर्गीकरणों, मूल्यांकन आधारों और पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अकहानी पारिवारिक, सामाजिक नैतिक और साहित्यिक मूल्यों के विघटनात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति है। अकहानी में व्याप्त मूल्यहीनता देश के राजनीतिक सामाजिक जीवन के अवमूल्यन से सम्बन्ध रखती है। इस अवमूल्यन के सन्दर्भ में हमे 1962 में मिली चीन से पराजय तथा 1965 में रुपये का अवमूल्यन स्मरण हो जाता है। यह अवमूल्यन मुद्रागत ही नहीं था बल्कि इसके साथ गहरे स्तरों पर राष्ट्रीय प्रतिमा की भग्न होती गरिमा और सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन भी शामिल थे।

**उपलब्धियाँ**

अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने कहानी में एक आक्रामक मुद्रा को स्वीकार किया और नयी कहानी में उत्पन्न हुई निजलिजी भावुकता से उसे गुक्त किया। उसने सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार किया और शिल्प के स्तर पर नये प्रतीकों, नये बिम्बों तथा नये संकेतों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अकहानी सुक्ष्म अभिव्यक्ति पर बल देती है, इसलिए उसमें अमूर्तता का आधिक्य है। अकहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यही है कि उसने नयी कहानी घ्द्वारा स्थापित आभिजात्य को तोड़ा तथा हिन्दी कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की। शिल्प के बचकाने दुराग्रह से, कविता के आत्मपरक बिम्बों से, क्षण, चित्रों और अनुभूति के मीठे और रोमानी उपकरणों से भी उसने छुटकारा पाया है कहानी अपने इसी रूप में 'व्यापक' और 'विशेष' दोनों बनी है।

**(घ) समान्तर कहानी**

इसी कारण कमलेश्वर मशीन और मजदूर का, किसान और खेत का रिश्ता तय करने पर बस देते हैं। उनके लिए तो संस्कृति और कुछ नहीं परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्मे मूल्य और विचारों का संस्कारित रूप है। समांतर कहानी का संघर्ष नैतिक मूल्यों के संस्थापन के लिए किये जाने वाला संघर्ष है। 'अंधे कुएँ का रास्ता' (अरुण मिश्र), 'चौथा आश्चर्य' (जवाहर सिंह), 'सुरंग में पहली सुबह' (बसंत कुमार) कहानियों के पात्र अष्ट तंत्र से जूझ रहे हैं। ईमानदार रहकर हानि उठाते हैं किन्तु व अधिक सस्ता नहीं छोड़ते और निराश नहीं होते।

'एक चालू आदमी' (दिनेश पालीवाल) कर नायक जानता है कि इस दैत्याकार व्यवस्था को बदलने की का साम्थर्य उसमें नहीं है, पर वह बराबर प्रयत्न करता रहता है। आंदोलन (कान्हाजी तोमर) कहानी में पिता लड़कों के मौन जुलूस की अग्रिम पंक्ति में शामिल होने का जोखिम उठाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि व्यवस्था को बदलने के लिए यह आवश्यक है। 'आदमी' (आशीष सिन्हा) कहानी का कारिया समझ नहीं पाता कि हाड़तोड़ परिश्रम करने के बाद भी उसका पेट क्यों नहीं भर पाता। मानिया बताता है कि उसकी मेहनत कोई चुरा ले जाता है। श्रमिक का श्रम चुराने वालों के विरुद्ध शोषित जन सतर्क और संगठित हो जाते हैं।

### (च) जनवादी कहानी

जहाँ तक आन्दोलन के रूप में जनवादी कहानी के उदय का प्रश्न है, ''जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अन्तिम वर्षों में माना जाता है। लेकिन उसका वास्तविक उभार आठवें दशक में देखने को मिलता है।'' वस्तुतः जनवादी कहानी आन्दोलन समूचे जनवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। दिल्ली विश्वविघ्यालय में 1977 में 'जनवादी विचार मंच' की स्थापना हुई तथा इसी मंच के तत्वावधान में 14–15 अक्टूबर, 1978 को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया जिसमें दिल्ली उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश पश्चिमी बगाल के लगभग 250 लेखकों ने भाग लिया। शिविर का केन्द्रीय विषय था। 1967 से 1977 तक जनवादी साहित्य के दस वर्ष। इसी शिविर में जनवादी कहानी पर दो निबन्ध पढ़े गये जनवादी कथा रचना की समस्याएँ (असगर वजाहत) तथा जनवादी कहानी : स्वरूप और समस्याएँ (चारु मित्र, प्रदीप मांडव)। इसी शिविर में आज का कथा साहित्य : सार्थकता की तलाश शीर्षक से डा कुंवरपाल सिंह ने भी एक निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने जनवादी कहानी तथा उपन्यास पर समग्र रूप से विचार किया।

इस शिविर को हम जनवादी कहानी आन्दोलन की भूमिका मान सकते हैं किन्तु इस आन्दोलन की तीव्र गति 1982 में जनवादी लेखक संघ की दिल्ली में स्थापना के साथ मिली। 13–14 फरवरी, 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें इस संघ का संविधान भी स्वीकृत हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर 'कलम' (कलकत्ता), कथन (दिल्ली) 'उत्तरगाथा' (मथुरा से प्रकाशित होती थी पर इसे दिल्ली से प्रकाशित किया जाने लगा) उत्तरार्द्ध (मथुरा), कंक (रतलाम) जैसी पत्रिकाओं में व्यापक रूप से चर्चा प्रारम्भ हो गयी। हम जनवादी आन्दोलन का प्रारम्भ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ ही मान सकते हैं।

### (छ) समकालीन कहानी

इसमें दो राय नहीं कि स्वातन्त्रयोत्तर काल में कहानी हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही है। कविता के वर्चस्व के बावजूद कहानी ने केन्द्रीय स्थान ग्रहण किया है। इसमें भी संदेह नहीं कि देश की बदलती परिस्थितियों की जितनी गहराई से कहानी में आत्मसातयिका है उतना अन्य किसी विधा ने नहीं। उठे, सातवें तथा आठवें दशक में हिन्दी में बड़े घरानों से निकलने वाली पत्रिकाओं तथा लेखकों के अपने प्रयासों से निकलने वाली पत्रिकाओं का हिन्दी साहित्य क्षितिज पर पूर्ण आलोक है। आठवें दशक के अन्तिम वर्षों में कुछ व्यापारिक दबावों के चलते बड़े घराने इन पत्रिकाओं के प्रति उदासीन से होने लगते हैं। पहले 'दिनमान' का प्रकाशन बंद होता है फिर 'सारिका', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि का। कहानी नई कहानियाँ, कल्पना आदि पत्रिकाएं भी इनसे पूर्व बंद हो चुकी थीं। इस कारण हम पाते हैं कि आठवें नवें दशक में एक साहित्यिक शून्य उत्पन्न हो गया है। साहित्यिक चर्चाएँ काफी धीमी पड़ने लगी है।

किन्तु इस शून्य को भरने का कार्य वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव द्वारा सम्पादित प्रकाशित 'हंस' का 1986 में प्रकाशन करता है। एक और यह मासिक प्रेमचन्द के 'हंस' की परम्परा को पुनर्जीवित करती हैं दूसरी और नयी बहसों को जन्म देती है। 'हंस' यों कहानी प्रधान पत्रिका है पर उसने सामयिक मुद्दों को पूरी शिद्धत से उठाया है और साहित्यिक बहसों को फिर जीवित किया है। इतना ही नहीं 'हंस' से प्रेरित होकर 'कथादेश'

का प्रकाशन आरम्भ होता है और एक बार फिर सम्बोधन, वागर्भ, तद्भव, 'समय माजरा', सोच, 'संधान', 'पल प्रतिफल', 'वर्तमान साहित्य' जैसी अनेक पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान देती है। 'पहल' पत्रिका का उल्लेख करना यहाँ समीचीन रहेगा क्योंकि 'पहल' ने लघु पत्रिका आन्दोलन को सशक्त बनाए रखा है और लघु पत्रिकाओं की परम्परा को अक्षुण्ण रखा है।

समकालीन कहानी जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से रुपायित करती हैं इसलिए समकालीन कहानियों में वर्तमान युग की सभी विसंगतियों का बड़ा ह्रदय विदारक वर्णन हुआ है। ये कहानियाँ न तो स्तब्ध करती हैं न पाठक का मनोरंजन करती हैं बल्कि पाठक को झकझोरती है। जीवन का चाहे राजनैतिक पक्ष हो चाहे सामाजिक, आर्थिक पक्ष हो चाहे सांस्कृतिक हिन्दी कहानी हर पक्ष को उसकी समस्त विद्रूपताओं के साथ उभारती हैं।

'हस' पत्रिका के मंच से स्त्री विमर्श तथा दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में आए। हिन्दी कहानी में ये दोनों विमर्श समाहित हुए। स्त्री विमर्श को हम दो स्तरों पर कहानियों में देख सकते हैं। स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को लेकर लिखी गयी कहानियाँ तथा स्त्री लेखिकाओं द्वारा लिखी गयी कहानियाँ। औरत को भूमण्डलीकरण तथा बाजारीकरण ने सारे स्त्री मुक्ति आन्दोलन के बावजूद बाजार में लाकर खड़ा कर दिया है और उसे एक उपभोग की वस्तु मात्र में तब्दील कर दिया गया है। इस दृष्टि में हम पाते हैं कि शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर', 'कैशर कस्तुरी', 'कसाईवाड़ा' आदि कहानियों में स्त्री के शोषण की क्रूर व्यथा है। सुवास कुमार की 'मादा' 'स्थानपूर्ति', 'एक डायरी की मौत' आदि कहानियों में वर्तमान जीवन में नारी की स्थिति की पड़ताल करती है। शैवाल की 'दामुल' तथा प्रियंवद की 'एक पवित्र पेड़' कहानियाँ भी इसी श्रेणी में आती है।

समकालीन कहानी के विकास में स्त्री कथाकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरानी पीढ़ी की लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी ने लेखन लगभग छोड़ दिया है। उनकी एकाध कहानी जरूर इस दौरान छपी है। कृष्णासोबती जब लिखती हैं तो कुछ नया देती हैं। ए! लड़की कहानी इसका प्रमाण है। किन्तु इधर महिला लेखिकाओं की एक लम्बी पीढ़ी ने कहानी लेखन के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ दी हैं। मैत्रेयी पुष्पा (चिन्हार, ललमनिया, गोमा बहती है आदि) राजी सेठ (मैं तो जन्मा ही), लवलीन (छिनाल, चक्रवात), मृणाल पाण्डेय (चार दिन की जवानी तेरी), चित्रा मुदुला (जिनावर जगदम्बा बाबू आ रहे हैं) मृदुला गर्ग (समागम मेरे देश की मिट्टी आहा), चन्द्रकान्ता (काफी बर्फ), सुधा अरोड़ा (काला रजिस्टर) अल्का सरावगी (कहानी की तलाश में), क्षमा शर्मा (इक्कीसवीं सदी का लड़का), गीताजंलि श्री (वैराग्य), उर्मिला शिरीष, लता शर्मा, दुर्वासहाय, जयाजादवानी आदि अनेक महिला कहानीकार पूरी रचनात्मकता के साथ कहानी लेखन में सक्रिय है।

समकालीन कहानी में जो सबसे प्रभावशाली लेखक हैं उनमें संजीव, स्वयंप्रकाश, अखिलेश, संजय खाती, उदय प्रकाश, शैलेन्द्र सागर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संजीव के पास अनुभव का व्यापक संसार है इसलिए उनकी कहानियाँ मानव अस्मिता की रक्षा में व्याकुल कहानियां हैं। 'सागर सीमांत' से आरोहण तक संजीव की हर कहानी पाठक के अनुभव को समृद्ध करती है। इस दृष्टि से कि उसकी मानवीय संवेदनाओं को स्पर्श करती है। संजय की 'कामरेड का कोट' कहानी की बहुत अधिक चर्चा रही क्योंकि यह कहानी एक वामपंथी विचारधारा वाले व्यक्ति के विचारों को रेखांकित करती है।

समकालीन कहानीकारों में उदयप्रकाश सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद कहानीकार है। इसके दो कारण हैं वे अपनी हर कहानी किसी प्रसिद्ध परिचित व्यक्ति को आधार बनाकर लिखते हैं जैसे 'रामसजीवन की प्रेम कथा' में गोरख पाण्डेय है, दूसरे, उनकी कहानियों पर किसी भारतीय या विदेशी लेखक की कहानी के प्रभाव का आरोप लगाता रहा है जैसे 'छप्पन तोले का करधन' कहानी पर आरोप लगा था कि यह बिहार के किसी लेखक की कहानी की नकल है। उदय प्रकाश अपनी कहानियों में शिल्प के प्रति बहुत सजग हैं तथा वे अपनी कहानियों में जादुई यथार्थ का खूब उपयोग करते हैं। 'पालगोमरा का स्कूटर' तथा 'वारेन हेस्टिंग्ज का सांड'

कहानियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है। 'पालगोमरा का स्कूटर' कहानी में वे विज्ञापनों दवारा अपसंस्कृति का प्रचार, डंकल का आतंक, शहर में बढ़ते अपराध, उत्तराखण्ड की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार आदि घटनाओं के विवरण मिलते हैं।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. हिन्दी की पहली मौलिक कहानी कौन सी है ?
2. इन्दुमती कहानी के लेखक कौन हैं ?
3. 'उसने कहा था' कहानी के लेखक कौन हैं ?
4. ग्यारह वर्ष का समय कहानी के लेखक कौन हैं ?
5. 'उसने कहा था', कहानी का रचनाकाल क्या है ?
6. लहना सिंह किस कहानी का प्रमुख नायक था ?

## 5.4 सारांश

हिंदी कहानी मुख्य रूप से बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ शुरू हुई। यद्यपि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भी अनेक ऐसी रचनाएं लिखी गई जिनमें कहानी का तत्व मिलता है। पर तात्विक आधार पर सही रूप में हम उन्हें कहानी नहीं कह सकते। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में बंगला और मराठी में कहानी लेखन का आरंभ हुआ। हिन्दी साहित्यकारों ने इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर कहानी लेखन का श्री गणेश किया। देखते ही देखते यह साहित्य विधा अत्यंत लोकप्रिय हो गई।

## 5.5 कठिन शब्दावली

**पराई** – गैर

**ग्रंथि** – गांठ, बंधन

## 5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. एक टोकरी भर मिट्टी
2. किशोरी लाल गोस्वामी
3. चंद्रधर शर्मा गुलेरी
4. रामचन्द्र शुक्ल
5. 1915 ई.
6. उसने कहा था

## 5.7 संदर्भित पुस्तकें


1. मधुरेश – हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास
2. नगेन्द्र (सं.) हिन्दी साहित्य का इतिहास


## 5.8 सात्रिक प्रश्न

1. हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।
2. आरंभिक हिन्दी कहानी की विशेषताओं या वर्णन कीजिए।
3. कहानी के प्रमुख तत्वों की समीक्षा कीजिए।

*****

# इकाई–6
# प्रेमचंद : जीवन परिचय

**संरचना**


6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 प्रेमचंद : जीवन परिचय

6.3.1 व्यक्तित्व

6.3.2 कृतित्व

स्वयं आकलन प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न


## 6.1 भूमिका

इकाई पांच के अंतर्गत हमने हमने हिंदी साहित्य में कहानी का उद्‌भव एवं विकास का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी छः में हम प्रेम चंद के जीवन परिचय के बारे में अध्ययन करेंगे कि उनका व्यक्तित्व की क्या विशेषता है और कृतित्व में उनकी रचनाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 6.2 उद्देश्य

इकाई छः का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. कथासम्राट प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी कौन सी है ?
2. प्रेमचंद का जन्म कहाँ हुआ ?
3. उनका पहली कृति कौन है ?
4. उनका प्रसिद्ध उपन्यास कौन है ?

## 6.3 व्यक्तित्व प्रेमचंद : जीवन परिचय

भारतीय साहित्य के इतिहास में प्रेमचंद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद आधुनिक भारत के उन कथाकारों में में थे जिन्होंने अपने साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने लेखन का सीधा संबध जन जीवन के साथ स्थापित किया। जिससे भारतीय साहित्यिक परंपरा में एक नए युग का प्रारंभ हुआ। इसलिए प्रेमचंद को हिंदी साहित्य का युग प्रवर्तक कहा जाता है।

प्रेमचंद को हिंदी कथा साहित्य का केंद्र बिंदु मानकर साहित्य का काल विभाजन किया जाता है। जैसे प्रेमचंद पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग। प्रेमचंद केवल हिंदी साहित्य में युगांतर लाने वाले साहित्यकार नहीं थे अपितु उनके साहित्य का प्रभाव अधिक मात्रा में भारत के समस्त साहित्य पर पड़ा है।

### 6.3.1 व्यक्तित्व

प्रेमचंद के जन्मतिथि के बारे में कुछ विद्वानों में मतभेद रहा है। लेकिन प्रेमचंद के उपरांत उनके पिताजी ने हिंदू परंपरा के अनुसार उनकी जन्म कुंडली बनवाई थी। 31 जुलाई की तिथि जन्म कुंडली से प्राप्त है। इसलिए यही प्रामाणिक तन्म तिथि है। इस कुंडली के अनुसार प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 ई. को बनारस

के पास लमही गाँव में साधारण 'कायस्थ' परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम अजायबलाल और माता का नाम आनंदीदेवी था। पिताजी डाकखाने में मुंशी थे। आपकी तीन बहनें थी। उनमें से दो तो मर गई, पर तीसरी बहुत दिनों तक जीवित रही थी। माता हमेशा की मरीज थी। पिता ने प्रेमचंद का नाम धनपतराय रखा और चाचा ने प्रेमचंद का नाम स्कूल में नबाबराय लिखवाया। प्रेमचंद ने पहले नबाबराय से लिखना शुरू किया। बाद में उन्होंने यह नाम भी छोड़ दिया और प्रेमचंद नाम अपनाया, जिस नाम से वे आज भी पहचाने जाते हैं।

**बचपन**

प्रेमचंद बचपन में बहुत ही शरारती थे। उन्हें कहानी सुनने का बहुत शौक था। उनकी दादी उन्हें कहानियाँ सुनाती थी। 'कजाकी' नामक हरकारे ने भी उन्हें अनेक प्रचलित कथाएं सुनाई थी। साहित्यकार प्रेमचंद के मन पर इन कथाओं का बहुत प्रभाव पड़ा। बचपन को याद करते हुए उन्होंने अपनी 'चोरी' नामक कहानी में लिखा है ''हाय बचपन! तेरी याद नहीं भूलती् वह कच्चा टूटा घर, वह पुवाल का बिछौना, वह नंगे बदन, नंगे पाँव खेतों में घूमना, आम के पेड़ों पर चढ़ना—सारी बाते आँखों के सामने फिर रही हैं। चमरोधे जूते पहनकर उस वक्त कितनी खुशी मिलती थी, अब 'प्लेक्स' के बूटों से भी नहीं होती। गरम पर्नुए रस में जो मजा था, वह अब गुलाब के शर्बत में भी नहीं, चबेने और कच्चे बेरों में जो रस था, वह अब अंगूर और खीर मोहन में भी नहीं मिलता। उनके पिताजी की आमदनी थोड़ी थी। इसलिए उनका बचपन गरीबी में बीता। उनके पिताजी ने उसे चार आने से ज्यादा गज कपड़ा और बारह आने से ज्यादा जूता कभी नहीं खरीदा था। पिताजी का तबादला जीवनपुर स्थान पर हो जाने के कारण उनको भी वहीं रहना पड़ा। इस तरह उनके बचपन के दिन बहुत निर्धनता में व्यतीत हुए।

आठ वर्ष की आयु में उनके माता का देहांत हो गया। पिताजी ने दूसरा विवाह किरम। विमाता से उन्हें कभी सुख नहीं मिला। उसके दुर्व्यवहार के कारण और अपनी माँ की अकाल मृत्यु से इनके मन पर कठोर आघात हुआ। अपनी माँ को स्मरण करते हुए 'घरजमाई' कहानी में उन्होंने लिखा है ''बच्चों के लिए बाप एक फालतू सी चीज एक विलास की वस्तु है, जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहनभोग। माँ रोटी दाल है। मोहन भोग उम्र भर न मिले तो किसका नुकसान है, मगर एक दिन रोटी दाल के दर्शन न हो, तो फिर देखिए, क्या हाल होता है। पिता के दर्शन कभी कभी शाम सबेरे हो जाते हैं, वह बच्चे को उछालता है, दुलारता है, कभी गोद में लेकर या उंगली पकड़कर सैर कराने ले जाता है और बस, यही उसके कर्तव्य की इति है। वह परदेस चला जाए बच्चे को परवा नहीं होती, लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व है। बालक एक मिनट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता। पिता कोई हो, उसे परवाह, केवल एक उछलने कुदनेवाला आदमी होना चाहिए, लेकिन माता तो अपनी ही होनी चाहिए, सोलहों आने अपनी, वहीं रूप, वही रंग, वही प्यार, बही सब कुछ। वह अगर नहीं है तो बालक के जीवन का स्रोत मानो सूख जाता है, फिर वह शिव का नन्दी है, जिस पर फूल या जल चढ़ाना लाजिमी नहीं, अख्तियारी है।'' उन्होंने अपनी 'सौतेली माँ' कहानी में बहुत प्रभावशाली ढंग से अपने जीवन के उन दिनों की ओर संकेत किया है।

**शिक्षा**

प्रेमचंद की शिक्षा पाँचवे वर्ष से आरंभ हुई। उनकी आरंभिक शिक्षा—दीक्षा घर पर हो गई थी। पहले वे मौलवी साहब से उर्दू फारसी पढ़ते रहे। इसके बाद काशी के क्वींस कॉलेज बनारस में भरती हुए। अपने स्कूल जाने का चित्रण उन्होंने इस प्रकार किया है ''पाँव में जूते न थे। देह पर साबित कपड़े न थे। महंगी अलग। दस सेर के जी थे। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुघ्ट्टी मिलती थी। काशी के क्वींस कॉलेज में पढ़ता था। हेडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इन्तिहान सर पर था और मैं बाँस के फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ाकर छः बजे छुट्टी पाता। वहाँ से मेरा घर देहात में पांच मील गील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता और प्रातःकाल आठ ही बजे फिर घर से चलना पड़ता चा, नहीं तो वक्त पर स्कूल न पहुंचता। रात को खाना खाकर कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाँधे हुए था।''

इसी बीच उनके पिता की मृत्यु होने के कारण वे उस वर्ष की परीक्षा न दे सके। अगले वर्ष उन्होंने द्वितीय श्रेणी में मेट्रीकलेशन की परीक्षा पास की। इसके बाद गणित में कमजोर होने के कारण इंटर की परीक्षा में अनुतीर्ण हुए। प्रेमचंद को पढ़ने की अधिक लालसा थी, पर निर्धनता उसके उत्साह में बाधक हो रही थी। ऐसी दशा में नौकरी करते–करते संवत 1963 में इंटर पास की। बाद में गोरखपुर रहकर उन्होंने संवत 1976 में बी. ए. की परीक्षा पास की।

**विवाह**

प्रेमचंद का विवाह पंद्रह वर्ष की आयु में कर दिया गया। उस वक्त उनकी पढ़ाई जारी थी। तब उनकी शादी हुई तो वे बहुत खुश थे। अपनी शादी में मंडप के लिए बाँस भी उन्होंने खुद काटे थे। उनकी पत्नी बहुत बदसूरत थी। उम्र में भी प्रेमचंद से ज्यादा थी। वह जबान से भी मीठी न थी। जिससे उन्हें अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता था। उनकी सौतेली माँ और पत्नी में कभी नहीं पटी। प्रेमचंद का यह विवाह अनमेल विवाह था। इसके बाद उन्होंने सन् 1909 में बाल विधवा श्रीमती शिवरानी देवी के साथ दूसरी शादी की।

प्रथम पत्नी के जीवित होते हुए भी उन्होंने बाल विधवा से विवाह करने का क्रांतिकारी कदम उठाया। स्वयं शिवरानी देवी ने लिखा है, ''मेरी शादी में आपकी चाची ग़ैरह किसी की राय नहीं थी। मगर यह आपकी दिलेरी थी। आप समाज का बंधन तोड़ना चाहते थे।''

भले ही प्रेमचंद ने दूसरा विवाह किया था, फिर भी वे अपनी पहली पत्नी के मरने तक बराबर नियमित रूप से उसके खर्च के लिए रुपए भेजा करते थे।

**नौकरी**

पारिवारिक स्थिति अच्छी न रहने के कारण प्रेमचंद को छात्र जीवन में ही अर्थ प्राप्ति के लिए नौकरी ढूंढ़नी पड़ी। प्रारंभ में वह ट्यूशन पर काम चलाते थे। इसके पश्चात् वे मासिक 18 रुपए वेतन पर मिशन स्कूल में अध्यापक हो गए। उन्होंने लिखा है कि ''अठारह रुपए उस समय मेरी निराशा व्यथित कल्पना में ऊँची से ऊँची उड़ान से भी ऊपर थे।'' बाद में उन्होंने सरकारी नौकरी प्रारंभ की। फिर वे सब डिप्टी इंस्पेक्टर हुए। इस पद पर कुछ समय तक कान करने के बाद वे बस्ती के राजकीय स्कूल में अध्यापक हो गए।

इस समय राष्ट्रीय आंदोलन अपने पूरे वेग पर था। गांधीजी के गोरखपुर दौरे के भाषण का प्रेमचंद के भावुक ह्रदय पर इतना गहरा परिणाम हुआ कि उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद आर्थिक संकटों में विवश होकर उन्होंने कानपुर के मारवाडी विद्यालय में नौकरी कर ली। वहाँ वे प्रधान अध्यापक हो गए और 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन करने लगे। संपादन का कार्य लगभग डेढ़ वर्ष तक करते रहे। इसके बाद काशी विद्यापीठ के विद्यालय में हडमास्टर हो गए। इस पद पर भी वे अधिक दिनों तक न रह सके।

**अंतिम दिन**

प्रेमचंद को 'हंस' और जागरण पत्रिका में अधिक घाटा हो गया। अतः यह घाटा कैसा पूरा किया जाए, इसकी फिक्र उनको होने लगी थी। इसी बीच वे आर्थिक संकटों से मुक्ति पाने की आशा में कुछ समय के लिए फिल्मों में काम करने बंबई गए। लेकिन वहाँ से वे शीघ्र ही वापस आ गए। अंत में 'मंगलसूत्र' नामक उपन्यास की रचना करते हुए 8 अक्तूबर, 1936 को वे स्वर्गवासी हुए।

प्रेमचंद आजादी के विद्रोही लेखक थे। उनका कहना था कि आजादी रोने धोने से नहीं मिलती। इसके लिए त्याग, बलिदान तपस्या आदि की आवश्यकता होती है। इसलिए उन्होंने अपनी कलम की ताकत से भारतीयों को जड़ निद्रा से जागृत करने का प्रयास किया था। उनका व्यक्तित्व केवल लोगों को अंग्रेजों के विरूद्ध खड़ा करने का नहीं, बल्कि अपनी राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक तथा जातीय आदि अत्याचारी समस्याओं के खिलाफ भी मुखर हुआ था। अपने सामाजिक जीवन में नित्य अनुभवों किसान, मजदूर, विधवा विवाह वेश्या प्रथा, छूआछूत की जटिलताओं पर उन्होंने खुल कर अपना अस्त्र चलाया है। पूँजीपतियों से कमजोरी का शोषण,

ब्राहमणों का व्यर्थ दंभ और बाह्याड्.बर तथा दलितों के प्रति निम्न व्यवहार जैसे दृश्य उन्होंने देखे जिनसे वे बेचैन हो जाते थे। उनमें उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन चाहा था। क्योंकि यहा जमाने की आवश्यकता थी।

प्रेमचंद के विचार विध्वंसक हिंसक या विघातक नहीं थे। उन्हें राजनीति से परहेज नहीं था। उनका लक्ष्य था कि भारत के किसानों, मजदूरो, दीन दलित परिपूर्ण तथा स्वाधीनता से रहो। उसकी प्राप्ति के लिए जो भी सच्चेष्ट हुआ था, उसके साथ प्रेमचंद रहे थे।

### 6.3.2 कृतित्व

प्रेमचंद हिंदी साहित्य के महान कलाकार हैं। उनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य में बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। विशेषतः हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनके आगमन से हिंदी साहित्य का नया युग प्रारंभ हुआ। हिंदी साहित्य के वे एक उच्च कोटि के उपन्यासकार भी थे। उनका जो स्थान उपन्यास साहित्य में है, वही स्थान कहानी साहित्य में भी है। इसी कारण उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की तरह 'कहानी सम्राट' भी कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि किसी भी लोक का सबसे बड़ा परिचय उनकी रचना से ही प्राप्त होता है और पाठक उनकी रचना के जरिए ही उनको पहचानता है। इसलिए उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं का परिचय लेना आवश्यक बन जाता है।

**उपन्यासकार प्रेमचंद**

प्रेमचंद प्रारंभ में उर्दू के लेखक थे और बाद में हिंदी में लिखने लगे। इनका पहला उर्दू उपन्यास 'असरारे मुजा विद' उर्फ 'देवस्थान रहस्य' रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में ईश्वर का नाम लेकर मठों में चलने वाले अनाचारों का चित्रण है। दूसरा उपन्यास 'हमतुरमावा हमशबाब' है। इसका हिंदी में रूपांतर हुआ है, जिसका शीर्षक 'प्रेमा' है।

प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेमचंद का सर्वप्रथम उपन्यास 'रूठी रानी' है। इसके बाद अन्य उपन्यासों की प्रेमचंद ने रचना की। इनमें 'कृष्णा', 'वरदान' 'प्रेमा' और 'श्यामा' आदि का उल्लेख किया जाता है। इनमें से कुछ कृतियाँ अनुपलब्ध भी हैं। प्रेमचंद ने कुल मिलाकर दस उपन्यास लिखे, ग्यारहवाँ मंगलसूत्र उपन्यास वे अधूरा छोड़ गए। कालखंड के अनुसार उनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है

**प्रतिज्ञाः** 'प्रतिज्ञा' उपन्यास को 'प्रेमा' का नवीन रूप कहा जाता है और इसका रचनाकाल सन् 1905–1906 के बीच का है। यह एक समस्या प्रधान उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा विवाह की समस्या को उठाया है। इस उपन्यास में 'पूर्णा' के माध्यम से नारी के वैधव्य और विवश रूप पर प्रकाश डाला है, तो दूसरी ओर 'सुमित्रा' के माध्यम से नारी का एक विद्रोही रूप उपस्थित किया है। जो पुरुष के अन्यायों का विरोध करती है।

**वरदानः** 'वरदान' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1920 में हुआ। इस उपन्यास में ग्रामीण वातावरण की अभावग्रस्त स्थिति और विडंबनाओं का चित्रण विस्तार से हुआ है। इसमें अनमेल विवाह की समस्या को भी चित्रित किया है।

**सेवासदन** : 'सेवासदन' मुंशी प्रेमचंद की प्रारंभिक कृतियों में सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है। इनका प्रकाशन सन् 1916 में हुआ था। यह उपन्यास प्रेमचंद का उर्दू उपन्यास 'बाजारे हुस्न' का हिंदी रूपांतर है। इस उपन्यास ने हिंदी तथा कथा साहित्य के क्षेत्र में एक युगांतर उपस्थित किया।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचंद ने मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की दहेज प्रथा अनमेल विवाह तथा वेश्या समस्या जैसी ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त परिवार में किसी एक व्यक्ति के नैतिक पतन के कारण सारे परिवार को जो तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है, उसका मार्मिक चित्रण इस कृति में किया गया है। इस उपन्यास में वेश्या प्रथा का उन्मूलन करने के लिए 'सेवासदन' की स्थापना करके आदर्शबादी हल उपस्थित किया है।

**प्रेमाश्रम**: प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1922 में हुआ। इसमें ग्रामीण जीवन की प्रधानता है। इसमें मुख्यतः किसान और जमींदारों के प्रश्न को उठाया है। जमींदारी प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई है। पुरानी सामंती और जमींदारी सभ्यता किस प्रकार खोखली हो चुकी है और किल प्रकार वह अपने अंतिम दिनों में भी किसानों के शोषण में व्यस्त है, इन सबका बहुत सजीव और मार्मिक चित्रण किया गया है।

**निर्मला**: 'निर्मला' का प्रकाशन सन् 1923 में हुआ। यह एक समस्या प्रधान उपन्यास है। जिसमें प्रेमचंद ने दहेज प्रथा की कुरीतियों को प्रधान विषय बनाते हुए वृद्ध विवाह, अनमेल वेवाह की समस्याओं की विडंबनात्मक स्थिति का चित्रण किया है। इस उपन्यास में निर्मला की मार्मिक जीवन की करूण गाथा को प्रस्तुत किया है।

**रंगभूमि** : प्रेमचंद के प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1925 में हुआ। आकार की दृष्टि से उनको यह सबसे बड़ा उपन्यास है। इसमें औद्योगिक विकास का प्रश्न प्रमुख है। भारतीय जनता के शोषण, देशी नरेश और जमींदारों की स्थिति, अंग्रेजों के कुटनीतिक जाल, शोषक वर्ग की अत्याचारी मनोवृत्ति तथा सत्याग्रह आंदोलन आदि पर इस उपन्यास में विचार किया गया है।

**कायाकल्प** : प्रेमचंद के इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1928 में हुआ। प्रेमचंद का यह एक अलग ढंग का उपन्यास है। 'कायाकल्प' में अलौकिक कथा का समावेश है। इसमें रानी देवप्रिया की अतृप्त वासना को चित्रित किया है। रियासतों के जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर ही रानी देवप्रिया तथा उसके पति के चरित्र के माध्यम से जन्म मरण के कुछ रहस्यों पर प्रकाशन डालने की कोशिश की है। अध्यात्मिक वातावरण से पृथक इस उपन्यास में सांप्रदायिकता निर्मूलन का उद्देश्य भी विद्यमान है।

**गबन** : सन् 1913 में 'गबन' उपन्यास का प्रकाशन हुआ। यह प्रेमचंद का सामाजिक उपन्यास है। इसमें विशेष रूप से गहनों की समस्या को उभारा है। साथ ही साथ अनमेल विवाह की समस्या, संयुक्त परिवार की समस्या, विधवाओं की समस्या, रिश्वत की समस्या, पुलिस की तानाशाही और शासन के अत्याचार आदि समस्याओं का चित्रण किया है। प्रेमचंद ने 'गबन' उपन्यास में स्त्रियों के आभूषण प्रेम का उल्लेख किया है तथा नारी के आभूषण प्रेम से कितनी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं इसको दिखाया है। उपन्यास के आरंभिक हिस्से में सामाजिक जीवन प्रमुख है तो अंतिम हिस्से में राजनीतिक उपन्यास हो जाता है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने गांधीवादी विचारधारा की व्यंजना की है।

**कर्मभूमि** : प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1932 में हुआ। इसमें लेखक ने समकालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विविध सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत उपन्यास में पारिवारिक संघर्ष, वैचारिक विवाद, सामाजिक कुरीतियों, राजनीतिक आंदोलनों और राष्ट्रप्रेम के लिए किए गए बलिदान का चित्रण उपस्थित किया है।

**गोदान** : 'गोदान' प्रेमचंद का बहुचर्चित उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ। यह प्रेमचंद का ही नहीं, हिंदी साहित्य का भी सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में ग्रामीण और नगर जीवन से संबंधित अनेक पात्र हैं। यह उपन्यास भारतवर्ष के किसानों की दुर्दशा का चित्रण करने वाला उपन्यास माना जाता है।

**मंगलसूत्र** : प्रेमचंद का यह अंतिम एवं अपूर्ण उपन्यास है। 'मंगलसूत्र' शीर्षक से प्रेमचंद ने लिखना शुरू किया था, परंतु इसे वे पूर्ण न कर सके। इसे वे अधूरा छोड़ गए। यह अधूरा उपन्यास 'मंगलसूत्र' नाम से ही बनारस के हिंदूस्थान पब्लिशिंग हाउस से प्रकाशित हुआ है। संयुक्त परिवार के विविध सदस्यों के भिन्न–भिन्न विचारों के कारण घरों में क्लेश और कलह का वातावरण रहता है, इसका उल्लेख प्रस्तुत उपन्यास में विस्तार से मिलता है।

**कहानीकार प्रेमचंद**

मुंशी प्रेमचंद का जो स्थान उपन्यास साहित्य में है, वही स्थान कहानी साहित्य में भी है। इसी कारण उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की तरह 'कहानी सम्राट' भी कहा जाता है। उन्होंने लगभग तीन सौ तक कहानियों लिखी है। उनकी कहानी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। अपनी कहानियों में उन्होंने व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के अनेक अंगों को स्पष्ट किया है। उन्होंने मनुष्य जीवन की अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद की कहानियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

प्रेमचंद प्रारंभिक अवस्था में 'नवाबराय' नाम से लिखते थे। सन् 1908 में उनके पहले कहानी संग्रह 'सोजेवतन' का सर्वत्र स्वागत हुआ। इन कहानियों में देशभक्ति का स्वर गुंज रहा था. उसके कारण ही ब्रिटिश सरकार के कोप का शिकार होना पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार का साहित्य न लिखने का आदेश दिया। उन्होंने 'नवाबराय' के बदले 'प्रेमचंद' नाम से लिखना शुरू किया। उन्होंने उर्दू में लिखना बंद किया और हिंदी में लिखने लगे। सन् 1916 में 'सरस्वती' की मासिक पत्रिका में प्रेमचंद की 'पंचपरमेश्वर' कहानी प्रकाशित हुई, जिसने हिंदी कहानी में युगांतर लाने का घण्टानाद किया। सन 1907 से सन 1936 तक प्रेमचंद ने जो कहानियाँ लिखी हैं, उसमें राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, गनोवैज्ञानिक सभी प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं।

**राजनीतिक कहानियाँ**

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार पर उसके युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। प्रेमचंद ने राजनीतिक परिवेश संबंधित अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उसमें 'माँ', 'नमक का दरोगा', 'आहुति', 'जुलूस', 'सभ्यता का रहस्य', 'जेल', 'समरयात्रा' आदि है।

**सामाजिक कहानियाँ**

प्रेमचंद ने सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक कहानियाँ लिखी। उसमें कुछ कहानियाँ नगर जीवन से संबंधित हैं तो कुछ कहानियों ग्रामजीवन से संबंधित हैं। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। तत्कालीन समाज में स्थित दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षण, पर्दा पद्धति, वेश्या प्रथा आदि संबंधित समस्याओं का चित्रण 'सुभागी', 'लांछन', 'गिला', 'कुसुम', 'उन्माद', 'विद्रोही', 'दो भाई', 'नरक का मार्ग', 'नया विवाह', 'आग पीछा', 'भूत', 'सौत', 'गृहदान', 'विश्वास', 'मिस पदमा' आदि कहानियों में मिलता है।

नारी जीवन से संबंधित कहानियों में 'आहुति', 'शांति', 'कायर', 'बड़े घर की बेटी' आदि। ग्राम्य जीवन से संबंधित 'ठाकुर का कुआँ', 'बलिदान', 'शंखनाद', 'सद्गति', 'सवा सेर गेहूँ', 'घासवाली', 'बेटी का धन' आदि।

**मनोवैज्ञानिक कहानियाँ**

प्रेमचंद ने मानवी मन की गुत्थिओं को सुलझानेवाली कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं। मानव मन की विविध पहलुओं का, चारित्रिक विशेषताओं का उन्होंने खूबी से चित्रण किया है। 'माता का ह्रदय', 'नशा', 'बड़े भाई साहब', 'पंचपरमेश्वर', 'कफन' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

**ऐतिहासिक कहानियाँ**

प्रेमचंद ने कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं। प्रसाद जी की तरह उन्हें ऐतिहासिक कहानी में सफलता नहीं मिली है। फिर भी सभी कहानियों में मनोरंजकता है। जिसमें 'रानी सारंधा', 'शतरंज के खिलाड़ी' 'राता हरदील', 'व्रजपात', 'लैला' आदि।

**प्रेमचंद के कहानी संग्रह**

प्रेमचंद के प्रमुख कहानी संग्रह 'सप्तसरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेमप्रसून', 'प्रेम प्रतिमा', 'प्रेम दवादशी', 'अग्निसमाधि', 'सफसुमन', 'समरयात्रा', 'प्रेम सरोवर', 'प्रेरणा', 'नवजीवन' आदि हैं। मानसरोवर के आठ भाग हैं इन आठ भाग में प्रेमचंद की सभी कहानियाँ संग्रहित हैं।

**नाटककार प्रेमचंद**

प्रेमचंद ने नाटक अधिक नहीं लिखे है। उन्होंने 'संग्राम', 'कर्बला', 'प्रेम की बेदी' केवल तीन नाटक लिखे हैं।

**संग्राम**

प्रेमचंद का यह पहला नाटक है। जिसका प्रकाशन सन् 1923 में हुआ। संग्राम नाटक की कयावस्तु सामाजिक कथावस्तु पर आधारित है। नाटक की कथा एक जमींदार घराने से संबंधित है।

**कर्बला**

प्रस्तुत नाटक मुस्लिम इतिहास की प्रसिद्ध घटना पर आधारित है। इसका प्रकाशन सन् 1924 में हुआ। इस नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक है।

**प्रेम की वेदी**

प्रस्तुत नाटक का प्रकाशन सन् 1933 में 'सरस्वती' प्रेस में हुआ। इस नाटक में विवाह समस्या का विवेचन किया है। ईसाई तथा हिंदू धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन, नारी की दयनीय स्थिति, दांपत्य प्रेम की विषमताएँ आदि अनेक प्रश्नों की उद्‌भावना इस नाटक में की गई है।

**पत्रकार प्रेमचंद**

प्रेमचंद पत्रकारिता का प्रारंभ श्री. दयानारायण निगम के संपादकत्व में निकलने वाले मासिक उर्दू–पत्र 'जमाना' से हुआ। इसके बाद वे नवलकिशोर प्रेस से निकलने वाले मासिक पत्र 'माधुरी' के संपादक रहे। 'माधूरी' का संपादन भार त्यागने के पश्चात् उन्होंने दो पत्र निकाले जिनमें से एक या 'हंस' और दूसरा 'जागरण'। इन दो पत्रों में उन्होंने संपादकत्व में अच्छी ख्याति प्राप्त की।

**निबंधकार प्रेमचंद**

प्रेमचंद सफल निबंधकार के रूप में भी जाने जाते हैं। उनके निबंधों की संख्या अधिक नहीं है फिर भी उन्होंने जो निबंध लिखे उनका संग्रह 'कुछ विचार' नाम से प्रकाशित हुआ है। दूसरा निबंध संग्रह 'साहित्य का उद्देश्य' भी मिलता है। इसमें 'साहित्य का उद्देश्य', 'जीवन में साहित्य का स्थान', 'साहित्य का आधार', 'साहित्य में बुद्धिवाद', 'साहित्य में समालोचना, साहित्यिक उदासीनता आदि उनके साहित्यिक निबंध हैं। इसके अतिरिक्त 'उर्दू, हिंदी और हिंदूस्थानी', 'हिंदी उर्दू की एकता', 'राष्ट्रभाषा हिंदी और समस्याएँ' आदि उनके भाषा संबंधी निबंध हैं।

**प्रेमचंद का बाल साहित्य**

प्रेमचंद का बाल साहित्य में भी विशेष योगदान रहा है। उनकी 'कुत्ते की कहानी', 'मोटे रामशास्त्री' तथा 'बेटों वाली विधवा' रचनाएँ उल्लेखनीय है। प्रेमचंद की बाल साहित्य से संबंधित रचनाएँ इस प्रकार हैं।

1. महात्मा शंखसादी
2. मनमोदक
3. जंगल की कहानियाँ
4. कुत्ते की कहानी
5. राम चर्चा

प्रेमचंद ने बाल साहित्य कम लिखा है फिर भी उनका लिखा हुआ बाल साहित्य अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और बाल साहित्यकार के रूप में योगदान उल्लेखनीय रहा है।

## निष्कर्ष

संक्षेप में प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व संदर्भ में हम इतना ही कह सकते हैं– प्रेमचंद का भारतीय साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका जन्म काशी के निकटवर्ती 'लमही' ग्राम में 31 जुलाई 1880 को हुआ। बचपन में वे बहुत ही शरारती थे। उन्हें कहानियाँ सुनने का बहुत शौक था। बचपन के उनके दिन बहुत ही निर्धनता में व्यतीत हुए। प्रेमचंद की प्रारंभिक शिक्षा दीक्षा घर पर ही हो गई। आर्थिक अभाव के कारण नौकरी करते करते सतुग 963 में इंटर पास की और सवंत 1976 में उन्होंने बी. ए. परीक्षा पास की।

पंद्रह वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ। लेकिन पत्नी की पारिवारिक कटुता के कारण निभा नहीं सके। इसलिए उन्होंने दूसरा विवाह बाल विधवा शिवरानी से किया है। सन् 1920 में उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी। उन्होंने सन् 1923 में 'सरस्वती प्रेस' और 1930 में 'हंस' की स्थापना की। 8 अक्तूबर, 1930 को प्रेमचंद का स्वर्गवास हुआ।

अपने साहित्य जीवन में उन्होंने 'प्रतिज्ञा' 'वरदान', 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' 'निर्मला' 'रंगभूमि' 'रंगभूमि' 'कायाकल्प कर्मभूमि', 'गबन', 'गोदान' उपन्यास लिखे। ग्यारवाँ उनका 'मंगलसूत्र' उपन्यास अधूरा रहा। उपन्यासकार की तरह कहानीकार के रूप में उन्होंने तीन सौ तक कहानियाँ लिखी। उनकी कहानियों में सामाजिक, पारिवारिक, मनोविज्ञानिक, ऐतिहासिक सभी प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं। प्रेमचंद का संपादक और निबंधकार के रूप में भी योगदान रहा है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य के युगप्रवर्तक के रूप में प्रेमचंद का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचंद न केवल हिंदी साहित्य में युगांतर लानेवाले साहित्यकार है, अपितु उनके साहित्य का प्रभाव अधिक मात्रा में भारत के समस्त साहित्य पर पड़ा है।

### स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न

1. प्रेम चंद का जन्म वर्ष क्या है ?
2. प्रेमचंद का मूल नाम क्या था ?
3. प्रेमचंद उर्दू में किस नाम से लिखते थे ?
4. प्रेमचंद के किस कहानी–संग्रह को प्रतिबंधित किया गया था ?
5. गोदान उपन्यास के लेखक कौन है ?
6. प्रेमचंद के गाँव का नाम क्या था ?

## 6.4 सारांश

प्रेमचंद का मूल नाम धपतराय था और उनका जन्म 31 जुलाई 1888 ई. को वाराणसी के नजदीक लमही गाँव में हुआ था। इनके पिता का जन नाम अजायब राय था और वे डाकखाने में मामूली नौकरी करते थे। जब वे आठ साल के थे तब मां का निधन हो गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया लेकिन वे मां के प्यार और वात्सल्य से महरूम रहे। प्रेमचंद को हिन्दी और उर्दू के महानतम लेखकों में शुमार किया जाता है। प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यास में एक नई परंपरा की शुरुआत की जिसने आने वाली पीढ़ी के साहित्यकारों का मार्गदर्शन किया।

## 6.5 कठिन शब्दावली

**परिचय** – किसी को जानना

**निषेध** – मनाही

**छल** – धोखा

**सूत्रपात** – आरंभ होना

## 6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1880 ई.
2. धनपतराय
3. नवाब राय
4. सोजे वतन
5. प्रेमचंद
6. लमही

## 6.7 संदर्भित पुस्तकें

शिवरानी देवी – प्रेमचंद घर में ।

अमृतराय – कलम का सिपाही ।

## 6.8 सात्रिक प्रश्न

1. प्रेमचंद की पारिवारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद के साहित्यिक योगदान पर विस्तारपूर्वक लिखिए।
3. प्रेमचंद की साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

*****

# इकाई–7
# नमक का दरोगा : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**

7.1 भूमिका
7.2 उद्देश्य
7.3 नमक का दरोगा : पाठपरक अध्ययन
7.3.1 'नमक का दरोगा' की तात्विक समीक्षा
7.3.2 'नमक का दरोगा' कहानी का कथानक
7.3.3 वंशीधर का चरित्र–चित्रण
7.3.4 पंडित अलोपीदीन का चरित्र–चित्रण
7.3.5 वंशीधर के पिता का चरित्र–चित्रण
स्वयं आकलन प्रश्न
7.4 सारांश
7.5 कठिन शब्दावली
7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
7.7 संदर्भित पुस्तकें
7.8 सात्रिक प्रश्न

## 7.1 भूमिका

इकार्ड छः के अन्तर्गत हमने हिन्दी साहित्य में कहानी विधा के प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद के जीवन परिचय का गहनता से अध्ययन किया। आगामी इकाई सात में हम नमक का दरोगा कहानी का पाठपरक अध्ययन करेंगे। कहानी की तात्विक समीक्षा, कथासार, पात्रों के चरित्र–चित्रण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 7.2 उद्देश्य

इकाई सात का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. नमक का दरोगा कहानी की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
2. नमक का दरोगा कहानी का सार क्या है ?
3. वंशीधर की चारित्रिक विशेषताएँ कैसी हैं ?
4. पंडित अलोपीदीन के चरित्र की क्या विशेषता है ?
5. वंशीधर के पिता का चरित्र कैसा है ?

## 7.3 नमक का दरोगा : पाठपरक अध्ययन

जब नमक का नया विभाग बना ओर ईश्वर–प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया, तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ। कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौबारह थे। पटवारीगिरी का सर्व–सम्मानित पद छोड़–छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था, जब अंगरेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएं और श्रृंगार रस के काव्य पढ़ कर फारसी–दीं लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते

थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरह कथा समाप्त करके मजनू और फरहाद के प्रेम–वृतांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरूष थे। समझाने लगे – बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास–फूस की तरह बढ़ाती चली जाती है। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूं। अब तुम्ही घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूंढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और फिर घटते–घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्त्रोत है, जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसमें बरकत होती है। तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ ? इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गजरवाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दांव पर पाना ज़रा कठिन है। इन बातों को निगाह में बांध लो। यह मेरी जन्म–भर की कमाई है।

इस उपदेश के बाद पिताजी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनी और घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथदर्शक और आत्मा–वलम्बन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही नमक विभाग के दारोगा–पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशी जी को शुभ संवाद मिला ता फूले न समाए। महाजन लोग कुछ नरम पड़े, कलवार की आशा–लता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आए अभी छः महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने कार्य–कुशलता और उत्तम आचार से अफसरों को मोहित कर लिया था। अफसर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगा जी किवाड़ बन्द किए मीठी नींद सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गये गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती है ? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुंचे। गाड़ियों की एक लम्बी कतार पुल से पार जाते देखी। डांट कर पूछा, किसकी गाड़ियाँ हैं ?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ काना–फूसी हुई, तब आगे वाले ने कहा – पंडित अलोपीदीन की। 'कौन पंडित अलोपीदीन ?' 'दातागंज के।'

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित ज़मींदार थे। लाखों रूपए का लेन–देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लम्बा–चौड़ा था। बड़े चलते–पुरजे आदमी थे। अंगरेज अफसर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशी जी ने पूछा, गाड़ियाँ कहाँ जायेंगी ? उत्तर मिला, 'कानपुर'। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का सन्देह और भी बढ़ा। कुछ देर तक उत्तर की बाट देख कर वह जोर से बोले – क्या तुम सब गूँगे हो गए हो ? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है ?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला, तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते, कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले – महाराज, दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और बाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखण्ड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पंडित जी ने बड़ी निश्चितता से पान के बीड़े लगा कर खाए। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास जाकर बोले – बाबूजी, आशीर्वाद। कहिए, हमसे ऐसा कौन–सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गई। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा–दृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रूखाई से बोले – सरकारी हुक्म।

पंडित अलोपीदीन ने हँसकर कहा – हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आप का तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं ? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जायें और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था।

वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी को कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नई उमंग थी। कड़क कर बोले–हम उन नमक–हरामों में नहीं हैं, जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। कायदे के अनुसार आपका चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फुर्सत नहीं है। जमादार बदलूसिंह ! तुम इन्हें हिरासत में ले लो, मैं हुक्म देता हूँ।

पंडित अलोपीदीन स्तम्भित हो गए। गाड़ीवालों में हलचल मच गई। पंडित जी के जीवन में कदाचित् यह पहला ही अवसर था कि उन्हें ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ी। बदलूसिंह आगे बढ़ा, किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडित जी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया, यह अभी उद्ण्ड लड़का है। माया–मोह के जाल में नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन भाव से बोले – बाबू साहब !

ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएंगे। इज्जत धूल में मिल जाएगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आएगा ? हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं।

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा – हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे खिसकती हुई मालूम हुई। स्वाभिमान और धन–ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किन्तु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले – लालाजी, एक हज़ार के नोट बाबू साहब की भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा–एक हजार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव–दुर्लभ त्याग पर धन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल–उछल कर आक्रमण करने शुरू किए। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पन्द्रह और पन्द्रह से बीस हजार तक नौबत पहुंची, किन्तु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहु–संख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले–अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलूसिंह मन में दारोगा जी को गालियां देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडित जी घबरा कर दो–तीन कदम पीछे हट गये। अत्यन्त दीनता से बोले – बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हजार पर निपटारा करने को तैयार हूं।

'असम्भव बात है।'

'तीस हजार पर ?'

'किसी तरह भी सम्भव नहीं।'

'क्या चालीस हजार पर भी नहीं ?'

'चालीस हजार नहीं चालीस लाख पर भी असम्भव है। बदलू सिंह! इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट–पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियां लिए हुए अपनी तरफ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद यकायक मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

दुनियाँ सोती थी, पर दुनियाँ की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक–वृद्ध सबके मुंह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए, वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका–टिप्पणी कर रहा था, निन्दा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोज़नामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज़ बनाने वाले सेठ–साहूकार, यह सब के सब देवताओं की भांति गर्दनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभीयुक्त होकर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभ भरे, लज्जा से गर्दन झुकाए अदालत की तरफ चले, तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित् आंखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किन्तु अदालत में पहुंचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना मोल के गुलाम थे। उन्हें देखते ही लोग चारों तरफ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया, बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करने वाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए ? प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किन्तु लोभ से डांवांडोल।

यहाँ तक कि मुंशी जी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिचा हुआ दिख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परन्तु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल ? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकद्मा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मैजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज़ में लिखा–पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी है। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उनकी उद्न्ण्डता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न है कि वह अपने काम में सजग और सचेत रहता है, किन्तु नमक के महकमें की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुसकराते हुए बाहर निकले। स्वजन–बान्धवों ने रूपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा, उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले, तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंगबाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक–झुक कर सलाम किए किन्तु इस समय एक–एक कटु वाक्य, एक–एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्जवलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकद्दमें में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय आर विद्वत्ता, लम्बी–चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी–बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं है।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था। उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुंचा। कार्यपरायणता का दण्ड मिला। बेचारे भग्न–हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुंशी जी तो पहले ही से कुड़बुड़ा रहे थे कि चलते–चलते इस लड़के को समझाया था, लेकिन इसने एक न सुनी। बस, मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बन कर बैठें और वहाँ बस, वही सूखी तनख्वाह। हमने भी तो नौकरी की है और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन जो काम किया, दिल खोल कर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अन्धेरा हो, मस्जिद में अवश्य दिया जलाएंगे। खेद ऐसी समझ पर। पढ़ना–लिखना सब अकारथ्ञ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरवस्था में घर पहुंचे और बूढ़े पिता जी ने यह समाचार सुना, तो सिर पीट लिया। बोले–जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता–पछता कर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कही और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते, तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएं मिट्टी में मिल गई। पत्नी ने तो कई दिन तक सीधे मूँह से बात भी नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। संध्या का समय था। बूढ़े मुंशी जी बैठे राम–नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर एक सजा हुआ रथ आकर रूका। हरे और गुलाबी परदे, पछहिएं बैलों की जोड़ी, उनकी गर्दनों में नीले धागे, सींगें पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कन्धों पर रखे साथ थे। मुंशी जी अगवानी को दौड़े। देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुक कर दंडवत की और लल्लोचप्पो की बातें करने लगे –हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आए। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन–सा मूँह दिखावें, मुँह में तो कालिख लगी हुई है। किन्तु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता ? ईश्वर निस्संतान चाहे रखे, पर ऐसी संतान न दे।

अलोपीदीन ने कहा–नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।

मुंशी जी ने चकित होकर कहा–ऐसी सन्तान को और क्या कहूं ?

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा–कुलतिलक और पुरूषों की कीर्ति उज्जवल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं, जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें ?

पंडित अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा–दारोगा जी इसे खुशामद न समझिएगा, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की जरूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था, किन्तु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में आया हूँ। मैंने हज़ारों रईस और अमीर देखे, हज़ारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किन्तु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बना कर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया, किन्तु स्वाभिमान सहित। समझ गए कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आए हैं। क्षमाप्रार्थना की चेष्टा नहीं की, वरन् उन्हें अपने पिता की यह ठकुरसुहाती की बात असह्म–सी प्रतीत हुई। पर पंडित जी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गई। पंडित

जी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सद्भाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शर्माते हुए बोले– यह आपकी उदारता है, जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा– नदी के तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी, किन्तु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले–मैं किस योग्य हूं, किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है, उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टाम्प लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रख कर बोले–इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं बाह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूँगा।

मुंशी वंशीधर ने उस कागज़ को पढ़ा, तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आए। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदार का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छः हजार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोज़ाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने को बंगला, नौकर–चाकर मुफ्त। कम्पित स्वर में बोले–पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किन्तु मैं ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँस कर बोले– मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही ज़रूरत है।

वंशीधर ने गम्भीर भाव से कहा–यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरूष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किन्तु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह अनुभव, जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ, अनुभवी मनुष्य की जरूरत है।

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ मे देकर बोले– न मुझे विद्वता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य कुशलता की। इन गुणों के महत्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है, जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच–विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए।

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उद्यण्ड, कठोर परन्तु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे।

वंशीधर की आँखें डबडबा आई। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडित जी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिए।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

### 7.3.1 'नमक का दारोगा' की तात्विक समीक्षा

किसी भी कहानी की तात्विक समीक्षा का अर्थ है कहानी के तत्वों के आधार पर उस कहानी की विशेषताओं का उद्घाटन और मूल्यांकन करना। 'कहानी' का शाब्दिक अर्थ है 'कहना'। इस अर्थ के अनुसार कही गई बात ही कहानी है। कहानी, किसी न किसी व्यक्ति या वस्तु के रूप में ही होगी इसलिए कहानी का पहला तत्व है कथा या कथानक और दूसरा तत्व है वह पात्र, जिसके विषय में कथा कही जा रही है। सभी पात्र किसी देशकाल विशेष में जीवित या स्थित रहते हैं इसलिए देशकाल, कहानी का तीसरा तत्व है। कहानी के पात्र आपस में वार्तालाप करके कहानी को आगे बढ़ाते हैं अथवा कथावाचक, कहानी को पात्रों के माध्यम से आगे बढाता है। इस प्रकार संवाद कहानी का चौथा तत्व हुआ। संवादों में किसी विशेष भाषा शैली को अपनाया जाता है इसलिए भाषा–शैली को कहानी का पांचवां तत्व माना जा सकता है। पूरी कहानी लेखक अथवा कथावाचक के भावों को प्रकट करती है और वह कहानी किसी विशेष उद्देश्य से सुनाता या लिखता है। इस प्रकार उद्देश्य को कहानी

का छठा तत्व स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार कहानी के छह तत्व स्वीकार किए जाते हैं – कथानक, पात्र–चित्रण, देशकाल, कथोपकथन या संवाद, भाषा–शैली और उद्देश्य। अब हम इन्हीं तत्वों के आधार पर प्रेमचन्द विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' की समीक्षा करेंगे।

**1. कथानक** – फारसी पढ़ा–लिखा युवक मुंशी वंशीधर जब नौकरी की तलाश में घर से निकला तो पिता ने समझाया कि नौकरी कैसी भी हो, वेतन कम भी हो तो भी कर लेना बशर्ते उसमें ऊपर की कमाई अर्थात् रिश्वत की आमदनी की संभावना हो। पिता का मानना था कि रिश्वत निरन्तर बढ़ती है, बरकत देती है, वेतन तो सूखता जाता है।

मुंशी वंशीधर को भाग्यवश नमक विभाग में दारोगा की नौकरी मिल गई जिसका काम था नमक पर लगे कर को उगाहना और स्मलिंग रोकना। एक रात यमुना पर बने पुल के पास अनेक गाड़ियों के आने की भनक मिलते ही वंशीधर वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर पाया कि दातागेत निवासी जमींदार रईस अलोपीदीन की गाड़ियों में नमक की बोरियां चोरी से ले जाई जा रही है। अलोपीदीन समझता था कि घूंस और चापलूसी से किसी भी अधिकारी को वश में किया जा सकता है परन्तु वंशीधर अलग तरह का धर्मनिष्ठ अधिकारी था। उसने अलोपीदीन की चालीस हज़ार तक की रिश्वत ठुकरा दी और उसे बंदी बनाकर अदालत में न्यायधीश, वकील, मुख्तार, मुंशी सभी भ्रष्ट थे और मुंशी वंशीधर के गवाह भी खरीद लिए गए। अलोपीदीन सम्मान सहित मुक्त हुए तथा वंशीधर को चेतावनी दी गई कि वह भविष्य में सज्जन लोगों को तंग न करे। कुछ दिनों के बाद वंशीधर को नौकरी से निकाल दिया गया। भ्रष्ट व्यवस्था में ईमानदार आदमी के लिए जगह नहीं है। वंशीधर घर लौट आया यहां उसके पिता ने उसे मूर्ख माना और माँ और पत्नी ने उसकी उपेक्षा की। कुछ दिनों पश्चात् एक शाम अलोपीदीन अपने सजे–धजे रथ में उसके घर आया। उसने वंशीधर को अपनी सारी जायदार का मैनेजर बनाने का प्रस्ताव रखा। बदले में छह हज़ार वार्षिक वेतन तथा सवारी के लिए घोड़ा, नौकर चाकर और बंगला मुफ्त में देने का प्रस्ताव किया। अलोपीदीन ने उसकी ईमानदारी से प्रभावित होकर ही ऐसा किया था। वंशीधर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

**उद्देश्य**– मुंशी प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से बताना चाहते हैं कि तात्कालीन समाज और सरकारी विभागों में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार फैला था। आम आदमी ऊपरी कमाई को सहज अधिकार मानते थे।

मुंशी जी ने यह भी बताया है कि आदर्शवादी व्यक्ति कष्ट तो सहता है परन्तु दिल से सभी उसकी इज्जत करने को विवश होते हैं। अलोपीदीन इसी कारण वंशीधर के सामने झुकता है।

**2. पात्र–चित्रण** – प्रस्तुत कहानी में मुख्य पात्र हैं –मुंशी वंशीधर, उनके पिता श्री और अलोपीदीन। गौण पात्र हैं जमादार बदलू सिंह, अदालत के कर्मचारी और न्यायाधीश आदि। मूल कथा मुंशी वंशीधर के चारों ओर घूमती हैं, वहीं कहानी का नायक है। उसके पिता साधारण संसारी व्यक्ति हैं, जिन्हें भ्रष्टाचार में कोई बुराई नज़र नहीं आती। वे अपने साहित्यक बेटे को समझने में असमर्थ रहते हैं। वंशीधर आदर्शवादी, कर्त्तव्यनिष्ठ, दृढ़, अच्छे स्वभाव का व्यक्ति है। वंशीधर, प्रेमचंद का आदर्श नागरिक है जो समाज की गंदगी से अलिप्त अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ता है और हानि–लाभ की चिंता नहीं करता। उसका प्रतिद्वन्द्वी और प्रतिनायक अलोपीदीन, धनवान, चालाक, वाचाल और अभिमानी व्यक्ति है। उसे लगता है कि पैसे की चमक और वाणी के छल से अदालत से बरी हो जाता है परन्तु उसकी आत्मा उसे कचोटती है। अन्ततः वह वंशीधर की ईमानदारी और धर्मनिष्ठा का लोहा मानते हुए उसे अपनी सारी जायदाद का मैनेजर बना देता है। उसे ऐसे ही सच्चे और ईमानदार व्यक्ति की ज़रूरत थी। बदलू सिंह एक साधारण सिपाही है जो अलोपीदीन के पैसे और प्रभाव से आतंकित है। विभाग के अन्य कर्मचारी और अदालत के लोग भ्रष्ट और लालची हैं। पैसे के आगे कैसे धर्म और न्याय असहाय हो जाता है यह भी दिखाया गया है। वंशीधर की माँ और पत्नी का व्यवहार भी स्वार्थ प्रेरित और संकीर्ण मनोवृति का सूचक है।

मुंशी प्रेमचंद ने अलोपीदीन और वंशीधर के पिता को वंशीधर के विपरीत पात्रों के रूप में घड़ा है। अलोपीदीन का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है। वंशीधर के पिता अन्त तक नहीं बदलते। पात्र विकासशील भी हैं जैसे अलोपीदीन और स्थित भी जैसे वंशीधर के पिता।

**3. संवाद शिल्प–** मुंशी प्रेमचन्द कहानी को सजीव बनाने के लिए और कथानक को स्वाभाविक तथा गतिशील बनाने के लिए गतिशील संवादों का सहारा लेते हैं। संवाद, पात्र, स्थिति और समय के अनुकूल हैं। संवादों में पात्रों की मनोदशा, आयु, संस्कार आदि का ध्यान रखा गया है। मुहावरे लोकोक्तियों के साथ सजीव बोलचाल की भाषा, संवादों की जान है। वंशीधर और अलोपीदीन के बीच, यमुना तट पर घूँस को लेकर संवाद देखिए – अलोपीदीन– "बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हज़ार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।"

"असम्भव बात है।"

"तीस हज़ार पर।"

"किसी तरह भी संभव नहीं।"

"क्या चालीस हज़ार पर भी नहीं।"

"चालीस हज़ार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है।"

"बदलू सिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो।"

"अब मैं एक शब्द भी सुनना नहीं चाहता।"

इसी तरह के नाटकीय संवाद अन्यत्र भी हैं और रोचक हैं। लम्बे संवादों में वंशीधर के पिता को रोचक सीख देखिए, "नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्त्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, तुम स्वयं विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊँ।" इस प्रकार लम्बा भाषण वह बेटे के समक्ष देते हैं। विषयानुसार संवाद का आकार छोटा बड़ा होता जाता है। भाषा पात्र, देशकाल और कथानक के अनुकूल है। बोलचाल की भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का मुक्त प्रयोग संवादों को आकर्षक बनाता है। संवादों की भाषा देशकाल के अनुरूप है। वंशीधर फारसी पढ़ा लिखा है इसलिए संवादों में उर्दू–फारसी का पुट अधिक है।

**4. देशकाल** – देशकाल से अभिप्राय पात्रों के क्रिया कलापों के स्थान और समय से है। कहानी अंग्रजी शासन की है इसलिए स्वाधीनता से पूर्व का समाज चित्रित है। उस समय अंग्रजी पढ़ना, ईसाई होना समझा जाता था इसलिए लोग फारसी पढ़कर विद्वान् बनते थे। अदालत की भाषा फारसी ही थी। वंशीधर के पिता भी उर्दू में ही बात करते हैं। अंग्रेज़ों ने नमक पर कर लगाया था और इसका व्यापक विरोध गांधी द्वारा नमक सत्याग्रह के रूप में हुआ था। नमक पर टैक्स लगाने का संकेत कहानी में है इसलिए कहानी 1920 के आसपास का वातावरण चित्रित करती है। सरकारी महकमों में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण वंशीधर के पिता की सीख में मिलता है जो अपने बेटे को सिखाता है कि वेतन की अपेक्षा ऊपरी कमाई पर अधिक नज़र रखना।

**5. भाषा–शैली** – प्रस्तुत कहानी की भाषा साधारण बोलचाल की हिन्दुस्तानी है जिसमें उर्दू शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। जहाँ लेखक वर्णन करता है वहाँ भाषा शुद्ध हिन्दी है जिसमें पर्याप्त तत्सम शब्द भी है, यथा, "जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूंस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों की पौ बारह थी।"

इस कहानी की भाषा शैली की एक और विशेषता है मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रचुर प्रयोग। कुछ मुहावरे और लोकोक्तियां जो कहानी में आई हैं, देखने योग्य है, यथा – 'पौ बारह होना' (लाभ ही लाभ होना), 'दांव पर पाना' ( वश में करना ), 'आशा लता लहलहाना' ( आशा बंधना ), 'गोलमाल होना' ( गड़बड़ी ), 'चलते पुरजे' ( चालाक ), 'सदाव्रत होना' ( खुला खर्चा होना ), 'इज्जत धूल में मिलना' ( बेइज्जत होना ), 'भूखे सिंह होना' ( क्रुद्ध होना ), 'जीभ जागना' ( बहुत बोलना ), 'अगाध वन के सिंह' ( बहुत चालाक, कुशल ), 'उछल पड़े' ( प्रसन्न हुए )। इसी प्रकार लोकोक्तियों के उदाहरण देखिए – 'घर में अँधेरा भले हो पर मस्जिद में दीपक जलाएंगें' ( घर की बर्बादी की चिंता नहीं ), 'घाट के देवता को भेंट चढ़ाना' ( अधिकारी को खुश करना ), 'कौडियों पर ईमान बेचना' ( छोटी चीज़ के लिए बेईमानी करना ) आदि।

अनेक स्थलों पर भाषा व्यंग्यात्मक और प्रवाह पूर्ण है। अलोपीदीन को जब वंशीधर ने बन्दी बनाकर अदालत में पेश किया उस समय लोगों की प्रतिक्रिया मार्मिक है। सारे बेईमान अलोपीदीन की निन्दा करने लगे। 'पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोजनामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज़ बनाने वाले सेठ और साहूकार यह सबके सब देवताओं की भांति गर्दन चला रहे थे।' लेखक कुछ ही वाक्यों में समाज में फैले भ्रष्टाचार का चित्र खींच देता है। भाषा व्यंग्यपूर्ण एवं सांकेतिक है।

**6. उद्देश्य–** प्रस्तुत कहानी लिखते समय लेखक के सामने अनेक बाते रही होंगी। प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं –

1. ईमानदारी अन्ततः जीतती है। सिद्धान्तवादी एवं धर्मनिष्ठ भले ही पराजित हो जाए परन्तु उसका आत्मगौरव का भाव बना रहता है। ईमानदारी की प्रशंसा अलोपीदीन जैसे बेईमान भी करने को विवश हो जाते हैं।
2. लेखक अंग्रेज सरकार की अनीति की ओर संकेत करते हैं जिसमें आम आदमी के प्रयोग की वस्तु नमक पर कर लगाना प्रतीकात्मक ढंग से सामने लाया गया है।
3. अंग्रज़ी राज में भ्रष्टाचार का किस प्रकार बोलबाला था उस पर टिप्पणी की गई हैं।
4. शिक्षा–प्रणाली पर व्यंग्य किया गया है। आम लोग अंग्रेज़ी शिक्षा को ईसाइयत से जोड़ते थे। फारसी कोर्ट–कचहरी की भाषा के रूप में प्रचलित थी परन्तु उसका साहित्य प्रेम–कथाओं से भरा था।
5. पुलिस, व्यवसाय और अदालतों में सब जगह भ्रष्टाचार का बोलबाला था। अदालत में अलोपीदीन को दोषयुक्त किया गया और ईमानदार वंशीधर को चेतावनी दी गई। अन्ततः उसे नौकरी से भी निकाल दिया गया।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यह कहानी तात्विक दृष्टि से अत्याधिक सफल कहानी है जिसका पाठक पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

### 7.3.2 प्रेमचन्द विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' का कथासार

अंग्रेज सरकार ने नमक पर कर लगाया और इसके लिए नमक विभाग की स्थापना कर दी। मुंशी वंशीधर फ़ारसी पढ़ा–लिखा विद्वान था। उसके पिता जी ने उसे सिखाया कि नौकरी ऐसी करनी चाहिए जिसमें वेतन भले ही कम मिले, पद भले ही मामूली हो परन्तु ऊपरी आमदनी अर्थात् घूंस पाने की संभावना अधिक हो। उनका मानना था कि वेतन मनुष्य देता है, घूंस ईश्वर की कृपा से मिलती है इसलिए घूंस सदा बढ़ती है, उसी की अधिक चिंता करनी चाहिए।

वंशीधर को नमक विभाग में दरोगा की नौकरी मिल गई जहाँ घूंस बटोरने की असीमित संभावना थी। फारसी की प्रेम कथाएँ पढ़कर बड़ा हुआ वंशीधर ईमानदारी का पुतला था। एक रात वह अपनी चौकी पर सोया था कि जमुना के पुल पर हलचल सुनाई दी। जब वह पुलिस पार्टी के साथ वहाँ पहुँचा तो पाया कि दातागेज

के जमींदार रईस पं. अलोपीदीन की गाडियों में नमक के ढेले लदे हैं जिन्हें वह बिना कर दिए कानपुर ले जा रहा था। पं. अलोपीदीन गाड़ियों के पीछे अपने सजे रथ में सवार चले आ रहे थे। उनके गाडीवानों ने उन्हें डरते–डरते सूचना दी कि दारोगा ने उनकी गाडियाँ रोक दी हैं। लक्ष्मी की महिमा में अपार शक्ति मानने वाले पं. अलोपीदीन ने दारोगा को अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से फुसलाना चाहा। मुंशी वंशीधर की दृढ़ता देख उसे चालीस हज़ार तक की रिश्वत पेश की। अपनी इज्ज़त उतरने की दुहाई दी। मुंशी वंशीधर पर इसका कोई असर नहीं हुआ और उन्होंने पं. अलोपीदीन को गिरफ्तार कर लिया।

पं. अलोपीदीन को अदालत में पेश किया गया। वकील, जज, मुख्तार, चपड़ासी सबको उनके पैसे ने खरीद लिया। मुंशी जी के खड़े किए गवाह भी बदल गए। पं. अलोपीदीन ससम्मान बरी हो गए। जो लोग पहले पंडित अलोपीदीन की बुराई कर रहे थे अब मुंशी वंशीधर की आलोचना करने लगे। अदालत ने वंशीधर को चेतावनी देकर छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद वंशीधर को नौकरी से हटा दिया गया। उन्हें अपनी ईमानदारी की बड़ी सजा मिली।

मुंशी वंशीधर को घर पर पिता के व्यंग्य बाण सुनने को मिले, पत्नी ने उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया और माँ की तीर्थ यात्रा की इच्छा अधूरी रह गई थी इसलिए वह भी उससे कई दिन रुष्ट रही। मुंशी वंशीधर बहुत दुखी थे कि अचानक एक शाम सुन्दर सजा हुआ रथ उनके कच्चे मकान के आगे आकर रूका। वंशीधर के पिता ने देखा कि रथ से स्वयं अलोपीदीन उन्हें मिलने आए हैं। वंशीधर के पिता ने उनसे क्षमा मांगते हुए अपने बेटे की नालायकी की बात कहीं। स्वयं वंशीधर को लगा कि अलोपीदीन उसे अपमानित करने आए हैं।

पं. अलोपीदीन ने विनयपूर्वक वंशीधर के पिता से कहा कि उसके पुत्र जैसा धर्मपरायण व्यक्ति तो कुल का आभूषण है। उसने वंशीधर से प्रार्थना की कि वह जो प्रस्ताव लेकर आए हैं, उसे अवश्य स्वीकार कर लें। अपनी जेब से स्टाम्प लगा पत्र निकाल कर उन्होंने वंशीधर को थमा दिया। उसमें पं. अलोपीदीन ने वंशीधर को छह हजार रूपया वार्षिक वेतन तथा सवारी के लिए घोड़ा, नौकर–चाकर, बंगला देने की पेशकश की थी और अपनी जायदार का स्थाई मैनेजर बनाने का प्रस्ताव रखा था। मुंशी वंशीधर ने विनयवश कहा कि वह इस पद के योग्य नहीं तो पं. अलोपीदीन ने कहा कि उसे विद्वान्, योग्य व्यक्ति नहीं, उस जैसा धर्मनिष्ठ, ईमानदार व्यक्ति ही चाहिए। पं. अलोपीदीन ने कहा कि वह ऐसा मोती है जिसकी चमक अन्य सभी से अधिक है।

पं. अलोपीदीन की उदारता, सद्भावना और विनय देख मुंशी वंशीधर का अहंभाव पिघल गया और उन्होंने यह नौकरी स्वीकार कर ली।

**उद्देश्य** – प्रस्तुत कहानी के माध्यम से मुंशी जी ने एक ओर आदर्श कर्त्तव्यनिष्ठ मुंशी वंशीधर का आदर्श समाज के सामने रखा है तो दूसरी ओर अपने समय में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया है। सरकारी विभाग, न्यायालय, साधारण पदाधिकारी तथा आम लोग भी रिश्वत लेना गलत नहीं मानते थे। वंशीधर के पिता तो घूंसखोरी के अंध समर्थक थे। ऐसे पिता के यहाँ वंशीधर सा ईमानदार पुत्र पैदा हुआ यह आश्चर्य की बात है।

### 7.3.3 वंशीधर का चरित्र–चित्रण

'नमक का दारोगा' कहानी का नायक वंशीधर है। वह एक फारसी पढ़ा–लिखा युवक है जो लैला–मजनू, शीरी–फरहाद और युसूफ–जुलैखां की प्रेम कथाएं पढ़कर बड़ा हुआ है । नल–नील का पराक्रम उसे इनके सामने तुच्छ लगता है। उसके पिता जी सांसारिक दृष्टि से चतुर और व्यावहारिक व्यक्ति हैं। उसके पिता उसे सीख देते हैं कि वह ऐसी नौकरी खोजे जिसमें पद–प्रतिष्ठा, वेतन भले ही कम हो परन्तु 'ऊपर की कमाई' अर्थात् रिश्वत पाने का मार्ग खुला हो। वह पिता की बात सुन लेता है परन्तु विवाद नहीं करता। लेखक के अनुसार, "इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथ प्रदर्शक और आत्मावलम्बन ही अपना सहायक था।" कहने का भाव यह है कि वह पूरा सिद्धान्तवादी युवक था।

वह नमक विभाग में दारोगा पद पर नियुक्त होने पर पूरी कर्मठता और ईमानदारी से काम करता है तथा विभाग के अधिकारी भी उसका सम्मान करते हैं। वह दातागंज के प्रसिद्ध रईस और बड़े जमींदार की नमक से भरी गाड़ियां पकड़ लेता है जिन्हें वह कर दिए बिना चोरी से बेचने को जा रहा था। चालीस हज़ार रूपए को रिश्वत की पेशकश उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर पाती। अदालती भ्रष्टाचार के कारण भले ही अलोपीदीन मुक्त हो जाता है और उसे चेतावनी दी जाती है परन्तु उसका आत्मगौरव बना रहता है।

वंशीधर कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार है इसलिए भ्रष्ट व्यवस्था से लडता है। उसके माता–पिता, यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी उससे इसी कारण भले ही अलोपीदीन मुक्त हो जाता है। लेखक आदर्शवादी है इसलिए ईमानदारी की विजय दिखाता है। वंशीधर के सामने अलोपीदीन झुक जाता हैं। वह उसकी धर्मनिष्ठा, सिद्धान्तप्रियता और निर्भीकता की प्रशंसा करता है और ऊँचे वेतन ओर सुविधाओं सहित अपनी सारी जायदाद का मैनेजर नियुक्त करता है। वंशीधर अन्ततः उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है क्योंकि उसे लगता है कि अलोपीदीन सचमुच उसकी ईमानदारी की कद्र कर रहा है। वंशीधर निश्चय ही आदर्श पात्र है जो आज भी युवकों के लिए अनुकरणीय है।

### 7.3.4 पंडित अलोपीदीन का चरित्र चित्रण

पंडित अलोपीदीन, 'नमक का दारोगा' कहानी का सबसे सशक्त पात्र है। उसको गांधीवादी 'हृदय परिवर्तन' का नमूना कहा जा सकता है। वह दातागंज का बहुत बड़ा जमींदार है और इलाके का बड़ा रईस है। बड़े–बड़े लोग उसके कर्ज़दार हैं। वह बड़ा व्यापारी भी है। जब से नमक पर सरकारी नियन्त्रण हुआ उसने नमक की तस्करी प्रारमी कर दी। चोरी से नमक देश के दूसरे भागों में बिक्री के लिए भेजने लगा।

अलोपीदीन को अपनी दौलत और अपनी वाक् शक्ति पर बड़ा भरोसा है। जब उसकी नमक लदी गाड़ियां वंशीधर पकड़ लेता है तो वह अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से उसे फुसलाना चाहता है। बातों से काम न बनते देख वह उसे चालीस हज़ार तक की घूंस देने का प्रस्ताव करता है। वह अपनी इज्जत लुटने की दुहाई भी देता है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि जीवन में पहली बार वंशीधर के रूप में ऐसा व्यक्ति मिला था जिसके सामने उसकी दौलत निरर्थक हो गई तथा वाक् शक्ति बेकार गई।

अलोपीदीन चलता पूर्जा है। कचहरी में वकीलों और जजों को पैसे से खरीद लेता है और बरी हो जाता है। वंशीधर द्वारा प्रस्तुत गवाह भी उसके पैसे के सामने खड़े न रह सके। वंशीधर को अपमान का घूंट पीना पड़ा।

पंडित अलोपीदीन कहानी के अन्तिम भाग में एक उदार, विवेकशील, पश्चातापग्रस्त व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। जिस वंशीधर को सरकार ने नौकरी से निकाल दिया था उसी को वह अपनी जायदाद के लिए मैनेजर बनाते हैं और उसे छह हज़ार वार्षिक वेतन, नौकर, बंगला, सवारी के लिए घोड़ा जैसी सुविधाएं देते हैं। वे सच्चे दिल से वंशीधर के समझ अपनी हार स्वीकार करते हैं और उसकी कर्त्तव्य निष्ठा तथा सिद्धान्तवादिता की प्रशंसा करते हैं। अलोपीदीन का पूरी तरह हृदय–परिवर्तन होता दिखाया गया है। कहानी के पूर्वार्द्ध में वह दौलत के घमण्ड में चूर, काइयां व्यापारी सा लगता है परन्तु कहानी के उत्तरार्द्ध में वह गुणग्राही उदारमना सज्जन दिखाई पड़ता है।

### 7.3.5 वंशीधर के पिता का चरित्र–चित्रण

'नमक का दारोगा' कहानी का प्रमुख पात्र है जो कहानी की मुख्य समस्या 'भ्रष्टाचार' का प्रकाश डालता है। वह गांव में, गरीबी में रहने वाला साधारण, अनपढ़ व्यक्ति है। उसे लगता है कि पद–प्रतिष्ठा और वेतन से अधिक महत्वपूर्ण 'ऊपर की कमाई' अथवा रिश्वत है जो किसी नौकरी को आकर्षक बनाती है। कहानी के प्रारम्भ में लेखक की भी टिप्पणी है कि पटवारी के पद को भी त्याग कर लोग 'नमक विभाग' की नौकरी खोजने में लगे थे क्योंकि वहाँ रिश्वत पाने के अवसर अधिक थे। वंशीधर को भी उसके पिता ऐसी ही 'ऊपरी कमाई' वाली नौकरी खोजने की बात कहते हैं।

बेटे वंशीधर को नमक विभाग में दारोगा की नौकरी मिलने से वह प्रसन्न थे। अच्छी कमाई की आशा बंध गई। गाँव में भी उनका रसूख बढ़ा और लेनदार ढीले पड़ गए कि अब तो पैसा वापिस मिल ही जाएगा। उसके घर की हालत अच्छी नहीं थी। कच्चा घर था, कर्ज़ चढ़ा था, लड़कियां विवाह योग्य थीं और आय का निश्चित साधन नहीं था। यही कारण है कि वह चाहता है कि बेटा अधिक से अधिक कमाए। 'ऊपर की कमाई' को वह ईश्वर की देन मानता है, बुराई नहीं।

बेटे ने बड़े जमींदार को कटघरे में खड़ा कर दिया इससे वह दुखी होता है। उसे लगता है कि उसके बेटे को दुनियादारी का पता नहीं। जब उसकी नौकरी छूट जाती है और वह घर पर आ जाता है तो भी वह अपने बेटे को नालायक और कुल कलंक मानता है। पंडित अलोपीदीन के सामने वह बेटे को बुरा–भला कहता है और बेटे के कृत्य पर शर्मिन्दा होने की बात कहता है। अलोपीदीन जब उसके बेटे की ईमानदारी, निडरता की भरपूर प्रशंसा करता है तो उसे खुशी होती है और वह अलोपीदीन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।

वंशीधर के पिता समाज के उन करोड़ों लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो समाज की धारा के साथ बहने में ही सुख का अनुभव करते हैं। उनकी परिस्थितियां, सांसारिक अनुभव, ज्ञान का स्तर, सभी उन्हें भ्रष्ट व्यवस्था का पुर्जा बनने को उकसाते हैं, उससे लड़ने को प्रेरित नहीं करते।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. 'नमक का दारोगा' पाठ की विधा क्या है ?
2. नमक विभाग में दारोगा के पद के लिए कौन ललचाते थे ?
3. नमक की कालाबाजारी कौन कर रहा था ?
4. नमक का दारोगा कहानी किस वर्ष प्रकाशित हुई थी ?
5. वंशीधर किस मद मर प्रतिष्ठित था ?
6. अलोपीदीन अपनी गाड़ियाँ कहाँ ले जा रहा था ?

### 7.4 सारांश

इसमें एक ईमानदार नमक निरीक्षक की कहानी को बताया गया है जिसने कालाबाजारी के विरुद्ध आवाज उठाई। यह कहानी धन के ऊपर धर्म के जीत की है। कहानी में मानव मूल्यों का आदर्श रूप दिखाया गया है और उसे सम्मानित भी किया गया है। सत्यानिष्ठा, धर्मनिष्ठा और कर्मपरायणता को विश्व के दुर्लभ गुणों में बताया गया है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यह संदेश दिया है कि असत्य, अन्याय, भ्रष्टाचार आदि कैसा ही अंधेरा क्यों न आच्छदित कर ले किन्तु सत्य की चमक में वह शक्ति है कि वह इन दुराचरणों को भेद सकता है।

### 7.5 कठिन शब्दावली

**स्तंभित** – जड़वत

**नौतत** – हालत

**अलौकिक** – दिव्य

**अगाध** – गहरा

### 7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. कहानी
2. वकील
3. अलोपीदीन

4. 1914 ई.

5. दारोगा

6. कानपुर

## 7.7 संदर्भित पुस्तकें

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रेमचंद – नमक का दारोगा

## 7.8 सात्रिक प्रश्न

1. नमक का दारोगा कहानी का सार लिखिए।
2. तत्वों के आधार पर नमक का दारोगा कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. नमक का दारोगा कहानी का प्रतिपाद्य एवं उद्देश्य लिखिए।

*****

# इकाई–8
# जयशंकर प्रसाद : जीवन परिचय

**संरचना**


8.1 भूमिका

8.2 उद्देश्य

8.3 जयशंकर प्रसाद : जीवन परिचय

8.3.1 व्यक्तित्व

8.3.2 कृतित्व

स्वयं आकलन के प्रश्न

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्दावली

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भित पुस्तकें

8.8 सात्रिक प्रश्न


**8.2 उद्देश्य**

इकाई आठ का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. जयशंकर प्रसाद का जन्म कहाँ हुआ ?
2. जयशंकर प्रसाद का बचपन का नाम क्या था ?
3. जयशंकर प्रसाद की पहली रचना कौन थी ?
4. जयशंकर प्रसाद की छायावादी कृति कौन है ?
5. जयशंकर प्रसाद की किस रचना से छायावाद का आरंभ माना जाता है ?

**8.1 भूमिका**

इकाई सात के अन्तर्गत हमने नमक का दरोगा कहानी को पाठपरक अध्ययन किया, जिसमें कहानी की तात्विक समीक्षा, कथासार और पात्रों के चरित्र – चित्रण का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी आई आठ में हम जयशंकर प्रसाद के जीवन परिचय का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

**8.3 जयशंकर प्रसाद : जीवन परिचय**

प्रत्येक साहित्यकार का कृतित्व उसके व्यक्तित्व से प्रभावित रहता है और उसका व्यक्तित्व अंश रूप में उसके द्वारा अभिव्यक्त होने वाली क्रियाओं प्रतिक्रियाओं में आभास पाता है। यद्यपि व्यक्तित्व का अधिकांश भाग अव्यक्त रहते हुए भी साहित्यकार को प्रेरित करता है। तथापि उसका अभिव्यक्त किया गया व्यक्तित्व उस रचनाकार की रचनाओं को समझने और उनका सर्वांगीण अध्ययन करने में सहायक होता है। वस्तुतः व्यक्तित्व और कृतित्व का गहरा संबध होता है। लेखक का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं मे सर्वत्र व्याप्त रहता है।

**8.3.1 व्यक्तित्व**

लेखक का व्यक्तित्व उसके साहित्य में नजर आता है और व्यक्तित्व का निर्माण उसके सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक और धार्मिक परिवेश में ही होता है। जिसके बीच रहकर वह बड़ा हुआ है। जीवन में घटित घटनाएँ साहित्य सृजन लिए प्रेरक होती है। इसके लिए जन्म, माता–पिता, परिवार, शिक्षा, विवाह, संतान, साहित्य सृजनारंभ, कृतित्व का परिचय आदि को विस्तार से जानना आवश्यक है। अंत प्रसाद जी के समग्र व्यक्तित्व की जानकारी प्रस्तुत है।

**जन्म :** हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ साहित्यकार जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल सन् 1889 में काशी के माहेश्वर कुल में बहुप्रतिष्ठित एव दशमी विक्रमीय संवत् सुसंपन्न परिवार में हुआ था। प्रसाद जी के पिताजी का नाम शिव रतन साहु और माताजी का नाम देवी प्रसाद साहु था। उनके भ्राता का नाम श्री शंभुराम था।

**परिवार :** प्रसाद जी सुंघनी साहु नाम से विख्यात समृद्व परिवार में जन्मे थे। वह ऐश्वर्यवान पिता की प्रिय संतान होने के कारण परिवार में सब के आँखो के तारे थे। उनके पिताजी काशी के लब्ध प्रतिष्ठ नागरीक थे। पिताजी की उदारता और कलाप्रेम विख्यात था। प्रसादजी के पिता परम शैव भक्त थे। पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने शिवजी की कठोर आराधना की थी। शंकर के प्रसाद से कवि जयशंकर प्रसाद का जन्म हुआ था।

**शिक्षा :** प्रसाद को बचपन से ही लेखनी से खेलना अच्छा लगता था। उनकी साहित्यिक अभिरूची में नजर आता है। प्रसाद का बचपन वैभव पूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ। प्रसाद के पिता उदार–दानी थे। प्रसाद ने बचपन में विभिन्न रमणीय धार्मिक स्थलों की यात्रा की, जिसका प्रभाव उनके काव्य में नजर आता है। प्रसाद नौ वर्ष की आयु में समस्या पूर्ति करने लगे थे।

प्रसाद की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। विधिवत् शिक्षाभ्यास हेतू दस वर्ष की आयु में उन्हे काशी के स्थानीय क्वींस कालेज में भेजा गया। प्रसाद ने हिन्दी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन घर पर ही क्रिया। 'रस सिद्व' उनके प्रधान गुरू थे। क्वींस कालेज में शिक्षा प्राप्त करके भी दीन बन्धु ब्रम्हचारी से इन्होने संस्कृत का अध्ययन किया। परिवारिक समस्या के कारण नियमित शिक्षा पाने में असमर्थ रहें। माता–पिता और भाई के देहावसान से परिवार की जिम्मेदारी प्रसाद पर पड़ जाती है। सम्पत्ति कर्ज में चली जाती है।

कालेज की पढ़ाई छोड़कर प्रसाद ने घर पर ही शिक्षा प्रारंभ की सगे–संबंधियों से भी उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट सहने पड़ते है।

**विवाह :** प्रसाद जी का विवाह बीस वर्ष की आयु में होता है। दस वर्ष बाद इनकी पत्नी का देहांत हो जाता है। भाभी के आग्रह के कारण प्रसाद को दूसरा विवाह करना पड़ता है। किन्तु किस्मत उनका साथ नहीं देता विवाह के एक वर्ष बाद उनकी दूसरी पत्नी दिवंगता हो जाती है। पुनः भाभी के आग्रह के कारण पाँच वर्ष के बाद उनका तीसरा विवाह हो जाता है।

**संतान :** प्रसाद जी को उनकी तीसरी पत्नी से एक पुत्र की प्राप्ति हो जाती है। उनके पुत्र का नाम रत्नशंकर था। प्रसाद ने अपने पुत्र का नाम अग्रज की स्मृती में उनके नाम को परिवार्तित कर रखा था।

**साहित्यिक प्रेरणा :** प्रसाद के पिता साहित्यिक रूचि के व्यक्ति थे। उनके घर पर कवि–गोष्टियों का आयोजन होता और प्रसाद बचपन से ही उनमें भाग लिया करते थे। भारत के अतीत का गहराई से अध्ययन किया था। भारतीय संस्कृति पर उन्हें गर्व था।

**पाठ–पाठन** : प्रसाद जी में छोटी उम्र में ही पठन–पाठन की प्रवृत्ति आ गई थी। दीन बन्धु ब्रम्हचारी से संस्कृत का अध्ययन किया। वैदिक वाड्मय तथा भारतीय दर्शन का स्वाध्याय कर ज्ञानार्जन किया।

### 8.3.2 कृतित्व

हिंदी साहित्य के प्रख्यात साहित्यकार जयशंकर प्रसाद जी का रचना संसार विस्तृत है। उन्होंने काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना, निबंध, आदि विविध विधाओं में लेखन कार्य किया है। उनका साहित्य सामाजिक और संस्कृत परिवेश से जुड़ा है।

''प्रसाद जन्मजात कवि थे। उनकी साहित्यिक जीवन–यात्रा का आरंभ ब्रजभाषा की समस्या–पूर्तियों से हुआ। उनके प्रारंभिक जीवन की कविताओं मे अतीत की दुःखद स्मृतियां, हल्के विषाद का आवरण तथा श्रृंगार की अतृप्त भावनाओं का आभास मिलता है।''

''बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न जयशंकर प्रसाद ने साहित्य सर्जन की एक लंबी यात्रा तय की है और हिन्दी साहित्य को उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं से गौरवान्वित किया है। उनकी उन्मेषशालिनी प्रतिभा ने नौ वर्ष की अल्पवय में ही सुंदर छंद की रचना कर डाली थी। घर में होने वाली साहित्यिक गोष्टियों ने प्रसाद के कोमल ह्रदय में साहित्य रचना का बीज वपन कर दिया था। समस्या पूर्ति से प्रभावित हो उन्होंने एक छंद की रचना कर गुरू और प्रसाद को महाकवि बनने का आशीर्वाद दिया। यहीं से उनके साहित्य जीवन का शुभारंभ हुआ और उन्होंने पदय के साथ–साथ गदय के क्षेत्र में भी साहित्य की रचना की। वे कवि एवं नाटकाकर पहले थे, गदयकार बाद में अतः सर्वप्रथम उनकी काव्य (रचनाओं का) परिचय अपेक्षित है। उनकी प्रमुख कृतियां है चित्राध ाार (सन १६१८ ई.) कानन कुसुम (सन १६३१ ई) झरना (सन १६८१ ई), आँसू (सन १६२३ ई) एवं 'कामायनी'।''

''प्रसाद के 'कानन 'कुसुम', 'चित्राधार' 'झरना' में इन्हीं दबी हुई भावनाओं का रूप प्राप्त होता है। 'आँसू' में यह पक्ष उभर कर आया है लेकिन दार्शनिक समाधान के साथ इसमे श्रृंगार की असाधारण मार्मिकता तो है ही, किन्तु दार्शनिक चिन्तन के सुन्दर संयोग ने कृक्ति को महत्वपूर्ण बना दिया है। 'आँसू' काव्य के बाद श्रृंगार का उव्देग उनके काव्य मे नही मिलता। पश्चात की कृक्तियों में प्रकृति सौंदर्य की भावधारा त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है, वह 'कामायनी' में काव्य, दर्शन और आनन्द के महोदधि में समाहित होती है।

''प्रारंभिक (रचनाएँ) प्रसाद ने ब्रजभाषा में लिखी किन्तु बाद में खड़ीबोली को उन्होने अपनी काव्य रचना का माध्यम बनाया। 'आँसू' उनकी प्रसिद्व रचनाओं में से एक है। इस श्रेष्ठ विरहकाव्य में कवि की आत्माभिव्यक्ति है।

**कहानीकार के रूप में प्रसाद**

कहानीकार के रूप में प्रसाद एक श्रेष्ठ कहानीकार है। प्रसाद की कहानियाँ श्रेष्ठ और उच्चकोटि की कहानियाँ मानी जाती है। प्रसाद ने कुल पाँच कहानी संग्रह लिखे है। सभी कहानियाँ उद्देश्य पूर्ण है।

''हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कहानीकारों में प्रसाद का अपना विशिष्ट स्थान है। उनकी कहानी कला का विकास सर्वधा निजी रचना तंत्र के आधार पर प्रायः मौलिक शैली में हुआ है। इस नए रचना–विधान का भावसौष्ठव अपना विशिष्ट मूल्य रखता है। इतिहास के सदर्भ में समाज की वस्तु–स्थिति का सतर्क अवलोकन तथा काव्य सुलभ भावुकता के साथ कवि का निगूढ़ जीवन दर्शन इन कहानियों में सरल, स्वाभाविक तथा प्रेषणीय रूप से प्रस्फुटित हुआ है। 'प्रसाद' की कहानियों का उद्‌गम परिष्कृत भावनाओं के स्त्रोत से हुआ है। काव्यात्मक भाव पक्ष ने इस रचनातंत्र को महत्व दिया है। इसका प्रसाद का कहानी साहित्य पाँच संग्रहो के रूप में उपलब्ध है। जिनमें कुल सत्तर कहानियाँ हैं। प्रसादजी के कहानी संग्रह निम्मलिखित है –

1) छाया (1992 ई.)

2) प्रतिध्वनि (1926 ई)

3) आकाशदीप (1926 ई.)

4) आँधी (1929 ई.)

5) इंद्रजाल (1936 ई.)

**उपन्यासकार के रूप में प्रसाद**

प्रसाद ने कहानी के साथ–साथ उपन्यास में भी अपना योगदान दिया है। प्रसाद के उपन्यास हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण है। प्रसाद के तीन उपन्यास है–

'कंकाल', 'तितली', 'इरावती'।

### 1) कंकाल

''प्रसाद की औपन्यासिक कृतियों मे 'कंकाल' उनका प्रथम उपन्यास है। जो उनकी परिवार्तित सामाजिक दृष्टि और युग दर्शन का – आभास देता है। इसे प्रथम बार आचार्य वाजपेयी जी ने 'यथार्थवादी', उपन्यास कहा है। कृति में समाज की निर्बलता और सार्वजनिक हेयता का पर्दाफाश हुआ है। 'कंकाल' में आदयन्त किसी भी पात्र की नैतिकता का निर्वाह नहीं हो सका है। प्रत्येक चरित्र अपने अन्तरम में शिथिल है। प्रत्येक पात्र वर्ण संकर और पाप–सन्तान है, प्रत्येक सुधारक विपथगामी है। समाज का ऐसा जीवित कंकाल साहित्य में अब तक उपलब्ध नहीं था। यह ऐसी विचार प्रधान कृति है. जहाँ सर्वत्र अभिजात्य पर शंका प्रकट की गई है। प्रत्येक आदर्श की अग्निपरीक्षा ली गई है। ऐसी त्रस्त मानवता का दर्शन व्यक्ति को आपाद–मस्तक झकझोर देता है और मन में इस प्रकार का आक्रोश उत्पन्न करता है कि समस्त सामाजिक रूप–रचना के प्रति तीव्र अनास्था उत्पन्न हो जाती है। कंकाल 'प्रसाद' की तीव्र अनुभूति और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का प्रतीक है।''

'कंकाल' यह प्रसाद की बुद्विवादी प्रेरणा है। बुद्विवादी विजय का 'कंकाल' समाज की रूढ़ और निस्सार मान्यताओं के भार से दबे हुए व्यक्त चेतना के अनेक शवों का प्रतीत हैं। इस कारण ही इसमें प्रथम बार यथार्थवादी प्रवृत्ति मिलती है। हिन्दू समाज का यह नग्न खोखलापन प्रस्तुत करने और उसका दिग्दर्शन कराने का साहस अभी तक किसी को इस दिशा में प्रेरित नहीं कर सका था। इस दृष्टि से 'प्रसाद' का साहस सराहनीय है। 'कंकाल' में समाज की यथार्थवादी तथा निर्मम विक्ति द्रष्टव्य है। बाल–वैधव्य, सतान लालसा, धर्म के दुश्चरित्र ठेकेदार, वेश्यावृत्ति और स्त्री–पुरूष सम्बन्ध की मूल प्रेरणाएँ यहाँ उभरी गई हैं। 'कंकाल' में 'प्रसाद' का शिव–पक्ष अन्तस में परिष्कार और विशुद्वीकरण की क्रांतिकारी भावना है।''

### तितली

'तितली' 'प्रसाद' की औपन्यासिक कलाकारिता, का दूसरा सोपान है। जिसमें मूर्तिमान नारित्व, आदर्श भारतीय पत्नित्व या सतित्व जागृत हुआ है। कथा संयोजन में अतिशय भावूकत है और उसी के आधार पर ही स्निग्ध और मधूर दाम्पत्य संबंध का निर्देशन हुआ है। विधेयात्मक दृष्टिकोण की देन है। यह उनकी निर्माण 'तितली' लेखक के शक्ति का साक्ष्य है। जीवन के सामान्य धरातल पर इस कृक्ति का संगठन हुआ है। यद्यपि इन दोनों कृक्तियों में यथार्थवादी प्रवृत्ति है. किन्तु 'तितली' का यथार्थ आदशोन्मुख है, क्योंकि उसका निष्कर्ष ध्वंस की ओर न जाकर सृजन की राह पर मुड़ गया है। सामाजिक व्यंग्य की यहाँ वक्र दृष्टि नहीं है। समाज के प्रति यहाँ सहानुभूती है। 'तितली' में साधारण शक्ति सम्पन्न लौकिक पात्र हैं, जिनकी गतिविधि सामान्य है। सामन्तवादी पद्वति का समर्थ विरोध, कृषक जीवन के प्रति सहानुभूति और श्रम की महत्ता, इस गरिमामयी कृक्ति में मुखरित है।

''जीवन की कटु अनुभूतियाँ, सौहार्द और स्नेह की छिन्नता, वैयक्तिक चेतना का वैषम्य नारी की अनिश्चित आर्थिक पराधीनता, उनकी सच्ची आत्म–प्रतीति है। 'प्रसाद' के अनुसार सामाजिक दुर्दशा के कारणों में मुख्य है– संग्रह की भीषण प्रवृत्ति। इसके कारण ही क्षुद्र स्वार्थों की होड़ निरन्तर लगी रहती है। इन समस्याओं से सम्बन्धित समाधान प्रस्तुत करने में 'प्रसाद' का सर्जनात्मक रूप अत्यन्त सजग दिखाई पड़ता है। वस्तुतः इस अपरिमित और असाध्य समस्या को उन्होंने उपन्यासों के परिमित आकार में नाटकीय ढंग से रखने का प्रयास किया है।

### (3) इरावती

'इरावती' प्रसाद का आखरी उपन्यास है। प्रसाद ने कुल मिलाकर तीन उपन्यास लिखे जिसमें पहला है। 'कंकाल', दूसरा है 'तितली' और तीसरा उपन्यास है – 'इरावती'। 'इरावती' इस उपन्यास में प्रसाद ने दिखाया है की, ''प्रतिभा की सहज क्रीड़ा–भूमि तो भारत का स्वर्णिम इतिहास था। वर्तमान सामाजिक गुत्थियों को सुलझाते हुए वे कुछ अनमने हुए कि अतीत ने उनका पुनः आह्वान किया ''इरावती'' 'प्रसाद' की ऐतिहासिक कृति है। जिसमें दर्शन और कल्पना के संश्लिष्ट चित्र भास्वर हुए हैं। अनात्मवादी बौध्द दर्शन पर प्रवृत्ति – मूलक

आनन्दवाद की विजय घोषणा इस कृक्ति का प्रतिपादय है। अपुर्णता के कारण इस अनन्य कृति का अन्तिम निष्कर्ष अंसदिग्ध रूप से नहीं घोषित किया जा सकता, किन्तु 'प्रसाद' की वैचारिक गति–विधि और कथा–प्रवाह के सम्भावित कथा सूत्रों के आधार पर इसका निष्कर्ष सिध्द किया जा सकता है। अपने सीमित कलेवर में ''इरावती'' निसःसन्देह एक गौरव ग्रन्थ के बीज विद्यमान है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. प्रसाद का जन्म कब हुआ था ?
2. प्रसाद को किस वाद का जनक माना जाता है ?
3. प्रसाद का संबंध किस घरोन से था ?
4. आकाशदीप कहानी के लेखक कौन हैं ?
5. आकाशदीप कहानी की प्रमुख महिला प्राप्त कौन है ?
6. प्रसाद का निधन किस वर्ष में हुआ ?

**8.4 सारांश**

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के प्रमुख व्यक्ति थे और हिंदी नाटक के विकास में महत्वपूर्ण योगदानकर्ता रहे। उनका जन्म 30 जनवरी 1890 को काशी उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री देवी प्रसाद था। हिंदी साहित्य और नाटक के जयशंकर प्रसाद के योगदान को कम नहीं समझा जा सकता है। जयशकर प्रसाद छायावाद हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद का योगदान अग्रणी है।

**8.5 कठिन शब्दावली**

**अम्बर** – आकाश

**पवन** – हवा

**विकट** – भयंकर

**सौरभ** – सुगन्ध

**8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर**

1. सन् 1889 ई.
2. छायावाद
3. सुंघनी साहु
4. प्रसाद
5. चंपा
6. 1937 ई.

**8.7 संदर्भित पुस्तकें**


1. नगेन्द्र (सं) हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
2. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास ।


**8.8 सात्रिक**

1. जयशंकर प्रसाद के जन्म, शिक्षा एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।
2. प्रसाद के व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. जयशंकर प्रसाद की प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

*********

# इकाई–9
# आकाशदीप : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**


9.1 भूमिका

9.2 उद्देश्य

9.3 आकाशदीप : पाठपरक अध्ययन

9.3.1.'आकाशदीप' कहानी की तात्विक समीक्षा

9.3.2 'आकाशदीप' कहानी का सार

9.3.3 'आकाशदीप' कहानी का उद्‌देश्य

9.3.4 चंपा का चरित्र–चित्रण

9.3.5 बुद्धगुप्त का चरित्र–चित्रण

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्दावली

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.7 संदर्भित पुस्तकें

9.8 सात्रिक प्रश्न


**9.2 उद्‌देश्य**

इकाई नौ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. आकाशदीप कहानी की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
2. आकाशदीप कहानी का सार क्या है ?
3. आकाशदीप कहानी का मूल प्रतिपाद्य क्या है ?
4. बुद्धगुप्त की चारित्रिक विशेषताएँ कैसी हैं ?
5. चम्पा का चरित्र कैसा है ?

**9.1 भूमिका**

इकाई आठ के अन्तर्गत हमने छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद के जीवन परिचय का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई नौ में हम कहानी 'आकाशदीप' कहानी का पाठपरक अध्ययन करेंगे जिसमें उस कहानी की तात्विक समीक्षा, सार, उद्देश्य और पात्रों के अध्ययन करेंगे।

**9.3 आकाशदीप : पाठपरक अध्ययन**

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा ?"

"मिल जाएगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?"

"हाँ।"

समुद्र में हिलोरे उठने लगी। दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक–दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा–स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अँधकार में मुक्त हो गए। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा दिया। सहसा उस बन्दी ने कहा – "यह क्या ? तुम स्त्री हो ?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है ?" – अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है–तुम्हारा नाम ?"

"चंपा।"

तारक–खचित नील अम्बर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अँधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकरानती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ–प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा – "आँधी।"

आपत्ति–सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था, पर युवक बन्दी लुढ़ककर उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गए। तरंगें उद्वेलित हुई, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक–क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिलाकर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

अनन्त जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बन्दी मुक्त है।

नायक ने कहा – 'बुधगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया ?'

कृपाण दिखाकर बुधगुपत ने कहा–"इसने।"

नायक ने कहा – "तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा।"

"किसके लिए ? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा–नायक ! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

"तुम ? जलदस्यु बुधगुप्त ? कदापि नहीं।" – चौंककर नायक ने कहा और वह अपनी कृपाण टटोलने लगा। चंपा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ, जो विजयी होगा, वह स्वामी होगा।" – इतना कहकर बुधगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चंपा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दी।

भीषण घात–प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुधगुप्त ने अपनी कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चंपा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गए, परन्तु बुधगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुधगुपत की विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठी। नायक की कातर आंखें प्राण–भिक्षा माँगनें लगी।

बुधगुप्त ने कहा– "बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं ?"

"मैं अनुचर हूँ, वरूणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा।" बुधगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चंपा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना–विहीन कर दिया। बुधगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त–बिन्दु विजय–तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुधगुप्त ने पूछा "हम लोग कहाँ होंगे ?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना–जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे ?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डांट लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया। बुधगुप्त के पूछने पर उसने कहा – "यहाँ एक जलमग्न शिलाखंड है। सावधान न रहने से नाव टकराने का भय है।"

"तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक मणिभद्र की पाप–वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जान्हवी के तट पर। चंपा – नगरी की एक क्षत्रिय बालिका है। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल–समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ– अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से बन्दी बना दी गई।" – चंपा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चंपा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी ?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूंगी। वह जहाँ ले जाए।" – चंपा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरूद्देश्य थी। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन में सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र–वक्ष पर विलम्बमयी राग–रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरूण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी – कोमलता।

उसी समय नायक ने कहा– "हम लोग द्वीप के पास पहुँच गए।"

बेला से नाव टकराई। चंपा निर्भीकता से कूद पड़ी। मांझी भी उतरे। बुधगुप्त ने कहा–"जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चंपा–द्वीप कहेंगे।"

चंपा हँस पड़ी।

**पांच बरस बाद–**

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चंद्र की उज्जवल विजय पर अन्तरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चंपा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरूणी चंपा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली–भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थी। डोरी धीरे–धीरे खींची गई। चंपा की कामना थी कि उसका आकाशदीप नक्षत्रों से हिलमिल जाए; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशाभरी आँखें फिरा ली।

सामने जल–राशि का रजत श्रृंगार था। वरूण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल–मालाएँ बन रही थीं और वे मायाविनी छलनाएँ अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थी। दूर–दूर से धीवरों का वंशी–झनकार उनके संगीत–सा मुखरित होता था। चंपा ने देखा कि तरल संकुल जल–राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त–व्यस्त था। यह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा–"जया !"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नल नभोमंडल से मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चंपा को रानी कहती; बुधगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।" चंपा ने कहा। जया चली गई। दूरागत पवन चंपा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरूष ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कर कहा –"बुधगुप्त !"

"बावली हो क्या ? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?"

"क्षीरनिधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश–दीप जलवाऊँ ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो ? उसको, जिसको तुमने भगवान मान लिया है ?"

"हाँ, वह भी कभी भटकते हैं, भूलते है; नहीं तो, बुधगुपत को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चंपा रानी।"

"मुझे इस बन्दीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिजय केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक। परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चंपा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे– इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी अलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुधगुप्त! उस विजन अनन्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम–तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक–दूसरे का मुँह क्यों देखते थे ? वह नक्षत्रों की मधुर छाया...."

"तो चंपा। अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं–नहीं, तुमने दस्युवृति छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरूण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश–दीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक! उस प्रचंड आँधी में प्रकाश की एक–एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे – मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भगीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टांग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती– 'भगवान्। मेरे पथ–भ्रष्ट नाविक को अँधकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते– 'साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने संकटों में मेरी रक्षा की है।' वह गदगद हो जाती। मेरी मां ? आह नाविक! यह उसी की पुण्य–स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जल–दस्यु। हट जाओ।"–सहसा चंपा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हँस पड़ा।

"यह क्या, चंपा ? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।" – कहता हुआ चला गया। चंपा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी–सी घूमती रही।

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकराकर लहरें बिखर जाती थी। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शान्त गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चंपा और जया धीरे–धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गई। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्त–व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी–सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चंपा मुग्ध–सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

"इतना जल! इतनी शीतलता। हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूंगी ? नहीं। तो जैसे वेला में चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ ? या जलते हुए स्वर्ण–गोलक सदृश अनन्त जल में डूबकर बुझ जाऊँ ?" – चंपा के देखते–देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे–धीरे सिन्धु में चौथाई, आधा, फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निश्वास लेकर चंपा ने मुँह फेर लिया। देखा, तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुधगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चंपा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गइ। दोनों पास–पास बैठ गए।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैल–खंड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, चंपा तो ?"

"अच्छा होता, बुधगुप्त। जल में बन्दी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।"

"आह चंपा, तुम कितनी निर्दय हो। बुधगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे नए द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, इसकी परीक्षा लेकर देखो तो...। कहो, चंपा! वह कृपाण से अपना हृदय–पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।"– महानाविक– जिसके नाम से बाली, जावा और चंपा का आकाश गूंजता था, पवन थर्राता था–घुटनों के बल चंपा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर हरियाली में विस्तृत जल–देश में, नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी। उस सौरभ से पागल चंपा ने बुधगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का, किन्तु परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चंपा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल ली।

"बुधगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध की कृपाण अतल जल में डुबो देती हूँ। हृदय ने छल लिया, बार–बार धोखा दिया।" – चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधती हुई विलीन हो गई।

"तो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया ?" – आश्चर्य–कंपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

"विश्वास ? कदापि नहीं, बुधगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।" – चंपा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तुमसे अपनी आँखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निश्वास लेकर महानाविक ने कहा – "इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश–गृह बनाऊँगा, चंपा। यहीं उस पहाडत्री पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाए।"

चंपा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधुजल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाए था। आज उसी शैलमाला पर चंपा के आदि–निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चंपा को वनदेवी–सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक नाविकों की श्रेणी में वन–कुसुम–विभूषिता चंपा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचें शिखर पर चंपा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ द्वीप–स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुधगुप्त स्तम्भ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चंपा को उसने उतारा। दोनों के भीतर पदार्पण किया था कि बांसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम–भूषण से सजी वन–बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगी।

दीप–स्तम्भ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चंपा ने जया से पूछा–"यह क्या है जया ? इतनी बालाएँ कहाँ से बटोर लाई ?"

"आज राजकुमारी का ब्याह है न ?" – कहकर जया हँस दी।

बुधगुपत विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसने झकझोरकर चंपा से पूछा– "क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चंपा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाए हूँ।"

"चुप रहो, महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चंपा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुधगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह । तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।"

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुधगुप्त और चंपा एकान्त में एक–दूसरे के सामने बैठे थे।

बुधगुप्त ने चंपा के पैर पकड़ लिए। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा – चंपा, हम लोग जन्मभूमि–भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इंद्र और शची के समान पूजित हैं, पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परंतु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ। मेरा पत्थर–सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांतमणि की तरह द्रवित हुआ।

"चंपा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता, पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कुराने लगी। पशु–बल और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और एकान्त कामना की हँसी खिलखिलाने लगी; पर मैं न हँस सका।"

"चलोगी चंपा ? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी–सी जन्मभूमि के अंक में ? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुधगुप्त की आज्ञा सिंधु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत–पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगी। आह चंपा! चलो।"

चंपा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पलभर के लिए हमारे दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चंपा ने कहा– "बुधगुप्त! मेरे लिए सब मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चंपा। यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूं, इसमें संदेह है। आह! उन लहरों में मेरा विनाश हो जाए।" महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा– "तुम अकेली यहाँ क्या करोगी ?"

"पहले विचार था कि कभी इस दीप–स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी, किंतु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश–दीप।"

एक दिन स्वर्ण–रहस्य के प्रभात में चंपा ने अपने दीप–स्तम्भ पर से देखा– सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चंपा का उपकूल छोड़कर पश्चिम–उतर की ओर महा जल–व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों में आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चंपा आजीवन उस दीप–स्तम्भ में आलोक जलाती रही, किंतु उसके बाद भी बहुत दिन, दीपनिवासी, उस माया–ममता और स्नेह–सेवा की देवी की समाधि–सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

### 9.3.1 आकाशदीप कहानी की तात्विक समीक्षा

जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी आकाशदीप एक मार्मिक कहानी है जिसमें एक आदर्शप्रिय युवती की दुःख गाथा का चित्रण हुआ है। कहानी के तत्वों के आधार पर हम इसकी समीक्षा निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

**1. कथानक** – आकाशदीप कहानी के केंद्र में एक सुंदर युवती चंपा है जो मणिभद्र नामक समुद्री व्यापारी द्वारा कैद कर ली जाती है। मणिभद्र उस पर मुग्ध है परंतु चंपा उससे संबंध नहीं बनाना चाहती। चंपा के पिता मणिभद्र के ही जलपोत पर कर्मचारी थे। बंदी चंपा को एक नौका में डाल दिया जाता है जो एक रस्सी से जलपोत से बंधी थी। बुधगुप्त नामक जलदस्यु अपने साथियों सहित मणिभद्र के जलपोत पर आक्रमण करता है परंतु पराजित होने पर बंदी बना लिया जाता है और उसी नौका में डाल दिया जाता है जिसमें चंपा कैद थी। चंपा के पिता उस लड़ाई में बुधगुप्त के हाथों मारे जाते हैं।

एक तूफानी रात में चंपा की सहायता से बुधगुप्त मुक्त हो जाता है और चंपा भी उसके साथ मुक्त हो जाती है। नौका का नायक बुधगुप्त से पराजित होकर उसका सहायक बनता है और नौका को बालीद्वीप के निकट एक निर्जन द्वीप पर ले जाता है। इस द्वीप का नाम बुधगुप्त चंपाद्वीप रखता है। वह चंपा से प्यार करने लगता है।

चंपा भी बुधगुप्त से मन ही मन प्यार करने लगती है, उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर उसने आलिंगन में भी बंधती है परंतु फिर भी वह अपने पिता के हत्यारे बुधगुप्त को पूरी तरह क्षमा नहीं कर पाती। बुधगुप्त उसे रिझाने के लिए एक अन्य द्वीप पर प्रकाश स्तम्भ का निर्माण करवाता है और वही चंपा से शादी करने का प्रस्ताव करता है। वह उसके साथ भारत लौट जाना चाहता है। चंपा उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है और एकाकी, उसी प्रकाश स्तम्भ में आकाशदीप जलाते हुए अनेक बरसों तक जीवित रहती है। द्वीप के लोग उसे पूजते हैं। इसी प्रकार एक दिन उसके एकाकी जीवन का अंत हो जाता है।

**2. देशकाल और वातावरण** – कहानी भारत के प्राचीन इतिहास से संबंधित है जब भारत के दक्षिणी राज्यों से व्यापारी, जलपोतों में बैठकर दक्षिण–पूर्व एशिया के द्वीपों में व्यापार और प्रचार के लिए जाते थे। उस समय के वातावरण का सृजन करने के लिए भाषा संस्कृतनिष्ठ रखी गई है। जलदस्यू, पोत, पोताध्यक्ष, मणिभद्र और बुधगुप्त जैसे नाम भी प्राचीनता से कथा को जोड़ते हैं। समुद्र का सजीव वर्णन है तथा समुद्र में स्थित द्वीपों का आकर्षक चित्रण किया गया है। कथानक के अनुरूप प्राचीन वातावरण एवं देशकाल के सृजन में लेखक सफल रहा है।

**3. संवाद अथवा कथोपकथन** – कहानी को सजीवता प्रदान करने के लिए और वर्तमान में घटित होने का आभास देने के लिए संवाद–शिल्प का बहुत महत्व है। प्रसाद जी हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककार भी हैं। कहानी का प्रारम्भ नाटकीय ढंग से अत्याधिक संक्षिप्त संवादों से होता है, यथा –

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।

यह संवाद अवसरानुकूल, पात्रानुकूल भी है और कौतुहल जगाने वाले तथा रोचक भी।

**4. भाषा शैली** – संवाद पात्रानुकूल, परिस्थिति अनुकूल तथा कथ्य के अनुकूल तभी बनते हैं जब उपयुक्त शब्दावली और शैली का चुनाव किया जाए। प्रसाद जी ने इस कथा में प्राचीनता का भ्रम पैदा करने के लिए भाषा सामान्यतः तत्सम शब्दावली प्रधान, संस्कृतनिष्ठ ही रखी है। उदाहरण के लिए –

"नहीं, नहीं, तुमने दस्युवृति छोड़ दी परन्तु ह्रदय वैसा ही अकरूण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान के नाम पर हंसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक ! उस प्रचंड आंधी में प्रकाश की एक–एक किरण के लिए हम कितने व्याकुल थे।" इसी प्रकार प्रकृति का चित्रण करते हुए कवि की कल्पना जागृत हो जाती है और भाषा बिम्बों और प्रतीकों से भर जाती है। डूबते हुए सूर्य का दृश्य, समुद्र में तैरती नौका से कैसा दीखत है, उसका उदाहरण है –

"निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकराकर लहरें बिखर जाती थी। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत, गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।" यहां सूर्य और समुद्र का मानवीकरण आकर्षक है। चंपा की मृत्यु पर प्रकाश स्तम्भ के गिरने का प्रतीकात्मक भाषा में वर्णन प्रसाद जी करते हैं –

"एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।" इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी की भाषा शैली पात्र एवं परिस्थिति के अनुरूप भी है और विषय वस्तु के रोमांटिक स्वरूप के अनुसार काव्यात्मक भी।

**5. पात्र–चित्रण** – प्रस्तुत कहानी में केंद्रीय पात्र तो चंपा ही है। बुधगुप्त के माध्यम से चंपा के चरित्र की अनेक विशेषताएँ उद्घाटित होती है। व्यापारी मणिभद्र दासी जया तथा नौका प्रबन्धक नायक का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है। चंपा के पिता का नाम नहीं दिया गया है परंतु कहानी पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है यद्यपि वे एक पात्र के रूप में साकार नहीं होते। मातृविहीन बालिका चंपा, विषम परिस्थितियों में मणिभद्र के पोत पर पल कर बड़ी हुई तो वणिक मणिभद्र की कुदृष्टि उस पर पड़ी। चंपा ने उसका विरोध किया तो बंदी बना दी गई। आगे की कहानी बुधगुप्त नामक जलदस्यु के साथ उसके प्रेम और घृणा की है। चंपा एक द्वन्द्वग्रस्त युवती के रूप में सामने आती है जो बुधगुप्त को प्रेमी के रूप में चाहती भी है और पिता का हत्यारा होने के कारण उससे शादी करना तो दूर, घृणा भी करती है। प्रेम और घृणा का अद्भुत संयोग चंपा के चरित्र को जटिल बनाता है। बुधगुप्त कठोर, जलदस्यु है जिसे ईश्वर पर भी विश्वास नहीं परंतु चंपा के संपर्क में आकर वह कोमल भावनाओं से परिचित होता है और चंपा से प्रणय निवेदन कर उससे विवाह करना चाहता है। पांच साल तक वह उसके साथ रहता है परंतु उसे बलात अपनी पत्नी नहीं बनाता और अन्त में चंपाद्वीप में ही उसे छोड़कर चला जाता है। उसमें देश–प्रेम का भाव भी है इसी कारण वह अपनी जन्मभूमि भारत में ताम्रलिप्त की ओर चला जाता है। पात्र चित्रण सशक्त, सजीव एवं विकासनशील है।

**6. शीर्षक और उद्देश्य** – प्रसाद जी की इस कहानी का लक्ष्य नारी जीवन की विडम्बनात्मक स्थिति का उद्घाटन करना है। वह एक ही समय में किसी व्यक्ति से एक साथ प्यार और घृणा कैसे कर सकती है, इसका चित्रण इस कहानी में चंपा के माध्यम से हुआ है। चंपा अपने पिता के हत्यारे को चाह कर भी क्षमा नहीं कर पाती और बुधगुप्त की पत्नी बनना स्वीकार नहीं करती। वह वैभवपूर्ण, प्रेममय जीवन ठुकरा कर, निर्जन द्वीप में प्रकाश स्तम्भ में दीप जलाती हुई जीती है। उसका त्याग, उसकी आदर्शवादिता दिखाना ही प्रसाद जी का उद्देश्य है। इस कहानी का शीर्षक भी रोचक है। बुधगुप्त अपनी प्रेयसी चंपा के लिए द्वीप पर प्रकाश स्तम्भ का निर्माण करवाता है जिसमें ऊपर जाकर वह आकाशदीप प्रतिदिन स्थापित कर सके। कहानी का शीर्षक प्रकाश स्तम्भ अथवा 'चंपा और बुधगुप्त की कथा' न रखकर 'आकाशदीप' रखा गया जो प्रतीकात्मक भी है। चंपा अपने पिता की आत्मा को राह दिखाने के लिए आकाशदीप जलाती है। इससे पूर्व उसकी माँ अपने पति की सुरक्षित समुद्र यात्रा के लिए आकाशदीप जलाती थी। स्वयं चंपा का जीवन भी आकाशदीप की तरह एकाकी, निरंतर जलने वाले दीपक की तरह है। उकसा पिता के प्रति समर्पण और आत्म सम्मान का भाव प्रशंसनीय है। शीर्षक उपयुक्त एवं प्रतीकात्मक है।

### 9.3.2 'आकाशदीप' का सार

प्रसाद जी की प्रस्तुत कहानी चंपा नामक एक वीर बाला की कहानी है। उसके पिता व्यापारी मणिभद्र के जलपोत पर काम करते थे। उसकी माता का देहान्त हो गया तो वह पिता के साथ्ज्ञ ही जलपोत पर रहने लगी और बड़ी हुई। मणिभद्र की नज़र उस पर पड़ी और उसने चंपा को अपनी बनाना चाहा। चंपा ने विरोध किया तो उसे जलपोत से बंधी एक नौका में बंदी बनाकर डाल दिया गया। नौका में इस सिपाही और पहरेदार थे।

जलपोत पर समुद्री डाकू बुधगुप्त ने आक्रमण किया। चंपा के पिता ने वीरतापूर्वक युद्ध किया और दस समुद्री डाकुओं को मार डाला। अन्ततः वह बुधगुपत के हाथों मारा गया। मणिभद्र के रक्षकों ने बुधगुप्त को बंदी बनाकर उसी नौका में डाल दिया जिसमें चंपा पहले से कैद थी।

रात्रि के अंधकार में, समुद्र में तूफान उठने लगा। चंपा ने दूसरे बंदी बुधगुप्त को नौका के नायक की कृपाण चुराकर दी ताकि वह उस रस्सी को काट सके जिससे नौका जलपोत से बंधी थी। बुधगुप्त ने रस्सी काट दी और स्वतंत्र होने की खुशी में उसने दूसरी बन्दी अर्थात् चंपा को गले लगा लिया। उस समय उसे पहली बार पता चला कि अंधकार में जिस बंदी ने उसकी मुक्त होने में सहायता की थी, वह नारी थी।

प्रातः के प्रकाश में नौका के नायक ने बंदी बुधगुप्त को स्वतंत्र देखकर ललकारा। द्वन्द्वयुद्ध में नायक पराजित हुआ और उसने बुधगुप्त का साथ देने का वायदा किया। नौका खेते हुए नाविक एक नए द्वीप के पास पहुंचे जो जावा और बाली द्वीप के निकट था। बुधगुप्त ने उस द्वीप को चंपा द्वीप का नाम दिया। वह चंपा से प्यार करने लगा था।

बुधगुप्त ने चंपा द्वीप में चंपा को महारानी की तरह रखा परंतु वह उसका दिल न जीत सका। चंपा को पता था कि वह समुद्री डाकू ही उसके पिता का हत्यारा था। चंपा के हृदय में पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने का भाव भी बना रहा और कहीं पर बुधगुपत की उदारता, प्रेम निवेदन का प्रभाव भी पड़ रहा था। पांच वर्ष बीत गए।

बुधगुप्त ने चंपा की सेवा के लिए एक दासी, सखी जया के रूप में दी थी। एक दिन चंपा और जया छोटी नौका में जल विहार करने निकलीं तो बुधगुप्त उधर अपनी बड़ी नौका लेकर आ निकला। उसने चंपा को अपनी नौका में बिठा लिया और उसे समझाया कि इतनी छोटी नौका में समुद्र में जाना उचित नहीं। पहली बार चंपा और बुधगुप्त का प्रणय मिलन नौका में हुआ। चंपा के प्रतिशोध के लिए रखी कृपाण समुद्र में फैंक दी। बुधगुप्त ने उसे बताया कि वह ताम्रलिप्त (तमिलनाडू) का एक क्षत्रिय था जो दुर्भाग्य से समुद्री लुटेरा बन गया था।

बुधगुप्त ने एक अन्य छोटे से द्वीप पर विशाल प्रकाश स्तम्भ का निर्माण करवाया। चंपा अनेक बरसों से बाँस पर अभ्रक की पेटी में दीपक जलाकर प्रकाश स्तम्भ की तरह स्थापित करती आई थी। बुधगुप्त ने शायद इसीलिए यह प्रकाश स्तम्भ बनवाया था। समारोहपूर्वक उसके उद्घाटन के लिए जया के साथ चंपा को पालकी में बुलाया गया। जया ने बताया कि यह आयोजन बुधगुप्त के साथ उसकी शादी के लिए भी है। बुधगुप्त ने पुनः प्रणय निवेदन करते हुए उससे कहा कि भले ही वह आज अनेक द्वीपों का स्वामी है। उसे अपने देश भारत की बहुत याद आती है और वह चंपा को अपनी रानी बनाकर, अपने देश ले जाना चाहता है। चंपा को अपने पिता की याद आई जिसकी आत्मा को मार्ग दिखाने के लिए वह आकाशदीप जलाती आई थी। उसने बुधगुप्त का प्रणय निवेदन और विवाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

अगले दिन बुधगुप्त अपनी नौकाओं और साथियों के साथ भारत की ओर चल दिया। चंपा उस द्वीप में अपनी प्रजा और अनुचरों के साथ रह गई। वह जब तक जीवित रही उस प्रकाश स्तम्भ में आकाशदीप जलाती रही। प्रजा का भरपूर प्यास उसे मिला। इस प्रकार अनेक बरसों पश्चात् उसका जीवन समाप्त हुआ।

**उद्देश्य** – प्रस्तुत कहानी के माध्यम से विद्वान लेखक जयशंकर प्रसाद भारतीय नारी के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व को चंपा के माध्यम से हमारे सामने लाते हैं। वह मणिभद्र के धन–दौलत के प्रलोभन को ठुकरा कर बंदी बनना पसंद करती है। वह अपने आत्माभिमान की रक्षा करती है।

वह वीरबाला है इसलिए विपत्ति में साहस से काम लेती है और मणिभद्र की कैद से मुक्त होने के लिए बुधगुपत के साथ काम करती है।

वह पितृभक्त भी है इसलिए चाहकर भी अपने पिता के हत्यारे बुधगुप्त को दिल से क्षमा नहीं कर पाती और उसका प्रणय निवेदन ठुकरा देती है। इस प्रकार यह कहानी भारतीय नारी के गौरव की गाथा भी है और प्रेम तथा घृणा के अंतर्द्वन्द्व की कथा भी है।

### 9.3.3 'आकाशदीप' कहानी का उद्देश्य

उत्तर–जयशंकर प्रसाद मूलतः एक कवि थे, लेकिन उन्होंने असंख्य नाटक और कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कहानियाँ प्रायः भाव–प्रधान हैं जिनमें कल्पना और इतिहास का सुन्दर मिश्रण देखा जा सकता है। वे प्रायः मानव भावनाओं को कथाबद्ध करने के लिए कल्पना का आश्रय लेते हैं। आकाशदीप एक घटना प्रधान कहानी है, जिसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। इस कहानी की मूल संवेदना प्रेम और कर्तव्य की भावना से जुड़ी हुई है। कहानी के अन्त में कर्तव्य ही प्रेम पर विजय प्राप्त कर लेता है और पाठक भौंचक्का रह जाता है।

प्रस्तुत कहानी का कथा नायक जलदस्यु बुद्धगुप्त ताम्रलिप्त प्रदेश का निवासी है। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण वह दुर्दान्त जलदस्यु बन जाता है। कहानी की नायिका चम्पा नगर की एक क्षत्रिय बालिका चम्पा है। कहानी की सभी घटनाएँ इन्हीं दोनों पात्रों पर केन्द्रित हैं। चम्पा का पिता समुद्री जहाज पर काम करता है। माँ की मृत्यु के पश्चात् चम्पा भी समुद्री जहाज पर ही रहने लगी। उसका पिता मणिभद्र की जहाज पर पहरेदार का काम करता था। जलदस्यु बुद्ध गुप्त ने उसी जलपोत पर आक्रमण कर दिया। चम्पा के पिता ने सात जलदस्युओं को मारकर स्वयं भी जल–समाधि ले नी। पिता की मृत्यु के पश्चात् जहाज के मालिक मणिभद्र ने चम्पा के समक्ष घृणित प्रस्ताव रखा। लेकिन चम्पा ने उसे ठुकरा दिखा। फलस्वरूप वह बन्दी बना ली गई। बुद्धगुप्त भी बन्दी हो चुका था। चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों ही अपनी विवेकशीलता और कुशलता के कारण कैद से मुक्त हो गए। बुद्धगुप्त ने पोत के नायक को द्वन्द्व युद्ध में हराकर स्वयं पोत पर अधिकार स्थापित कर लिया।

अब बुद्धगुप्त ने अपनी सेना बना ली और वे एक सुनसान द्वीप पर जा पहुँचे। मन–ही–मन बुद्धगुप्त चम्पा से प्रेम करने लगा। उसने उस सुनसान द्वीप का नाम चम्पा द्वीप रख दिया। यद्यपि चम्पा भी बुद्धगुप्त से प्रेम करती थी, लेकिन उसके मन में यह सन्देह था कि बुद्धगुप्त ही उसके पिता का हत्यारा है। अतः वह बुद्धगुप्त से घृणा भी करती थी। अन्ततः एक दिन बुद्धगुप्त ने चम्पा के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने चम्पा के पिता की हत्या नहीं की। अन्ततः बुद्धगुप्त चम्पा से आग्रह करता है कि वह उसके साथ अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष को लौट चले। बुद्धगुप्त को बार–बार अपने देश की याद आ रही है। उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि बुद्धगुप्त चम्पा से प्रेम करता है तो वह भी बुद्धगुप्त से प्रेम करने लग जाती है। यहीं कारण है कि बुद्धगुप्त उस नये द्वीप का नाम भी चम्पा द्वीप रख देता है। लेकिन चम्पा के मन में एक सन्देह घर किये हुए है। वह समझती है कि बुद्धगुप्त ने ही उसके पिता का वध किया या। इसीलिए वह मन–ही–मन बुद्धगुप्त से घृणा भी करती है। वह उसे कहती भी है– **''विश्वास ? कदापि नर्ती, बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ। मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी लिए मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ।**

यह सब होने पर भी बुद्धगुप्त चम्पा को रानी बनाकर अपने देश भारत ले जाना चाहता है। परन्तु चम्पा को यह स्वीकार नहीं है। वह चम्पा द्वीप में ही रहकर वहाँ के मूल निवासियों की सेवा करना ही अपना मूल कर्तव्य समझती है। इसलिए वह अपने प्रेम का त्याग करती है। अतः इस कहानी की मूल संवेदना प्रेम पर कर्तव्य की विजय का प्रतिपादन है। अपने कर्तव्य के लिए वह बुद्धगुप्त के प्रेम को ठुकरा देती है। उसके लिए द्वीपवासियों की सेवा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी को वह अपना कर्तव्य मानती है। उसकी दृष्टि में कर्तव्य प्रेम से बढ़कर है। एक बार तो वह प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष के कारण तनिक उलझ भी जाती है, लेकिन बाद में उसकी सोच और

दृष्टि पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है और वह बुद्धगुप्त से कहती है– **''बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''**

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस कहानी की मूल संवेदना प्रेम पर कर्तव्य की विजय का प्रतिपादन है। चम्पा मानव–सेवा को ही अपना कर्तव्य समझती है, अतः उसकी दृष्टि में कर्तव्य के सामने प्रेम का कोई महत्त्व नहीं। इसलिए वह द्वीप पर रहकर वहाँ के निवासियों की सेवा करना चाहती है। चम्पा का चारित्रिक अन्तर्दन्द्व दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो वह यह समझती है कि बुद्धगुप्त ही उसके पिता का हत्यारा है। इसलिए वह उससे प्रेम करती हुई भी घृणा करती है। वह इस अन्तर्दन्द्व से तभी मुक्त होती है जब बुद्धगुप्त उसे यह विश्वास दिलाता है कि वह उसके पिता का हत्यारा नहीं है। दूसरा वह कर्तव्य और प्रेम के अन्तर्दन्द्व का भी शिकार बनी हुई है। आखिर की 3 उसका अन्तर्दन्द्व समाप्त होता है और वह बुद्धगुप्त के प्रस्ताव को ठुकरा कर द्वीप के भोले–भाले निवासियों की सेवा का व्रत धारण करती है। उसकी दृष्टि में कर्तव्य प्रेम से बड़ा है।

सत्य तो यह है कि प्रस्तुत कहानी का प्रतिपाद्य भी यही है–**प्रेम पर कर्तव्य की विजय।** कर्तव्य के लिए वह अपने प्रेम को बलिदान कर देती है। कहानी के अन्त में जलदस्यु बुद्धगुप्त अपने पोत और साथियों के साथ स्वदेश लौट जाता है। चम्पा द्वीप के निवासियों की सेवा के लिए वह वहीं रह जाती हैं। यही कारण है कि उस द्वीप के निवासी चम्पा को देवी मानकर उसकी पूजा करते हैं।

**आकाशदीप कहानी के आधार पर चंपा और बुधगुप्त का चरित्र–चित्रण –**

आकाशदीप कहानी के दो ही प्रमुख पात्र हैं, वे हैं चंपा और बुधगुप्त। प्रसाद जी ने दोनों का चरित्र सावधानी से गढ़ा है।

**9.3.4 चंपा का चरित्र–चित्रण**

**चंपा**– आकाशदीप की नायिका चंपा है जिसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती है –

**1. अबोध एवं अभागी बालिका** – चंपा के पिता वणिक मणिभद्र के जलपोत पर रक्षक कर्मचारी के रूप में नियुक्त थें चंपा की माँ की मृत्यु पर उस बालिका को अनेक बरसों तक जलपोत पर समुद्र में ही रहना पड़ा। वह बचपन भी एकाकी और कठिन रहा होगा। जब वह यौवन को प्राप्त हुई ता वणिक मणिभद्र की कुदृष्टि का शिकार हो गई जिसके परिणामस्वरूप उसने मणिभद्र का विरोध किया और वह बन्दी बना ली गई।

**2. अभागी, अनाथ बालिका** – बुधगुप्त नामक समुद्री लुटेरे ने मणिभद्र के जलपोत पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चंपा का पिता पोत की रक्षा करते हुए मारा गया। बन्दी चंपा अनाथ हो गई।

**3. साहसी और मुक्तिकामी** – रस्सियों से बंधी, बंदी रूप में नौका में कैद चंपा ने पाया कि एक और कैदी उसके निकट लेटा है। उसने उसे आजाद होने के लिए उकसाया और नौका को पोत से बाँधने वाली रस्सी काटने के लिए, नौका के नायक की कृपाण भी चुरा कर दी। इस काम में उसका साहस और स्वतंत्र होने की बलवती इच्छा स्पष्ट झलकती है।

**कोमल हृदय और प्रेम विह्वल** – उसे पता चला कि जिस कैदी ने उसे मुक्त होने में सहायता की वह समुद्री लुटेरा बुधगुप्त ही है। बुधगुप्त की विनय, उदारता और नायक के साथ हुए युद्ध में दिखाए शौर्य से वह प्रभावित हुईं। बुधगुप्त उसे एक निर्जनद्वीप में ले गया जो बाली द्वीप के निकट था। उस द्वीप का नाम उसने चंपा के नाम पर चंपा द्वीप रख दिया। वह मन ही मन महानाविक बुधगुप्त से प्रेम करने लगी और एक अवसर पर उसके सम्मुख आत्म समर्पण भी कर दिया।

**प्रतिशोध की आग में जलती, आदर्शप्रिय नारी** – वह निरन्तर बुधगुप्त से अपने पिता की हत्या का बदला लेने की सोचती रही और अपने पास सदा कृपाण छुपा कर रखती रही ताकि अवसर आने पर बुधगुप्त के प्राण ले सके। एक अवसर पर, प्रेम के ज्वार में उसने अपने प्रतिशोध की बात बुधगुप्त को बता दी और कृपाण समुद्र में फैंक दी। संभवतः प्रतिशोध का विचार छोड़ दिया।

चंपा आदर्शवादी नारी है। वह अपने पिता के हत्यारे से विवाह नहीं करती और बुधगुप्त के प्रणय–प्रस्ताव को ठुकरा कर एकाकी जीवन जीने का निर्णय लेती है। बुधगुप्त द्वारा निर्मित प्रकाश स्तम्भ में वह अपने मृत पिता की आत्मा को राह दिखाने के लिए आजीवन आकाशदीप जलाती रही।

प्रसाद जी द्वारा निर्मित चंपा एक भावुक, आदर्शप्रिय, त्यागमयी, आत्मगौरवयुक्त तथा सहज प्रेममयी युवती के रूप में सामने आती है।

### 9.3.5 बुधगुप्त

**बुधगुप्त** – आकाशदीप कहानी में बुधगुप्त एक सशक्त पात्र है। वह साहसी और पराक्रमी समुद्री लुटेरा है जो व्यापारियों के जहाज लूटता है। मणिभद्र नामक व्यापारी का जहाज लूटने के लिए वह उस पर आक्रमण करता है और मणिभद्र के सैनिकों द्वारा बन्दी बनाकर, जलपोत से बंधी नौका में बन्दी बनाकर डाल दिया जाता है। यह कहानी यही से प्रारम्भ होती है।

**वीर योद्धा** – वह चंपा से कृपाण पाकर अपने और चंपा के बंधर काटता है तथा नौका को भी जलपोत से मुक्त कर लेता है। वह नौका के नायक को द्वन्द्व युद्ध की चुनौती देता है और उसे पराजित कर अपने लिए काम करने को विवश करता है। वह आसपास के द्वीपों पर अपना राज्य स्थापित कर अपार सम्पति अर्जित कर लेता है। समुद्र पर उसका शासन चलता है।

**समर्पित प्रेमी** – बंदी जीवन में चंपा से पहली मुलाकात में ही वह प्रभावित हुआ है और उससे प्यार करने लगा। पांच वर्ष तक उसने चंपा को महल में रानी की तरह रखा। एक दिन उसने चंपा के समक्ष प्रेम प्रकट कर दिया। चंपा ने क्षणिक प्रेमावेश में उसके समक्ष समर्पण भी कर दिया परंतु शीघ्र ही उसे अपने पिता का हत्यारा बताकर उससे दूर हो गई।

वह पूरी तरह चंपा के प्रति समर्पित है। वह उसके प्यार में, द्वीप के एक कोने पर ऊँचा प्रकाश स्तम्भ बनवाता है ताकि चंपा उसमें आकाशदीप रखकर अपने मृत पिता की आत्मा का मार्गदर्शन कर सके।

**देशभक्त** – बुधगुपत चंपा को बताता है कि वह ताम्रलिप्त (तमिलनाडू) का क्षत्रिय है और परिस्थितिवश समुद्री लुटेरा बनने को विवश हुआ था। उसने अनेक द्वीपों पर अधिकार कर लिया और राजा की तरह सुख भोग रहा था परंतु फिर भी अपनी मातृभूमि लौटने की इच्छा उसमें प्रबल रही। अन्ततः वह अपनी संपदा नौकाओं में लाद कर अपनी मातृभूमि की ओर चल देता है।

**चरित्रवान** – वह लुटेरा है परंतु चरित्रहीन नहीं है। निहत्थे नायक को वह द्वन्द्व युद्ध के लिए शस्त्र देता है और फिर उससे युद्ध करता है। यह बात उसकी वीरता और न्यायप्रियता को दर्शाती है। चंपा उसकी प्रेयसी थी और पांच वर्ष तक वह उसके समक्ष प्रणय निवेदन करता रहा। वह उसके साथ किसी तरह की ज़बर्दस्ती नहीं करता। चंपा के द्वारा उसे ठुकरा दिया जात है और वह धैर्यपूर्वक सब सहता है और चुपचाप अपने देश की ओर चला जाता है। चंपा उसके द्वारा जीते द्वीपों की रानी बनकर रहती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि बुधगुप्त का चरित्र–चित्रण भी विकासमान है। वह निष्ठुर, निर्दय, नास्तिक समुद्री लुटेरा था परंतु चंपा के संपर्क में आकर सहृदय प्रेमी और मानव–मूल्यों का रक्षक बन गया।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. प्रसाद जी किस दर्शन से प्रभावित थे ?
2. प्रसाद ने कितने कहानी संग्रह लिखे हैं ?
3. आकाशदीप में बुद्व गुप्त क्या कार्य करता है ?
4. प्रसाद द्वारा रचित महाकाव्य कौन सा है ?
5. बुद्वगुप्त किस राज्य का क्षत्रिय है ?
6. चम्पा को कौन अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है ?

## 9.4 सारांश

'आकाशदीप' प्रसिद्व कहानीकार एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार जयशंकर प्रसाद की एक चरित्रप्रधान कहानी है। आकाशदीप कहानी सन 1930 के दशक में प्रकाशित हुई थी। उसमे मूलरूप से चम्पा का चरित्र अभियोजित है। कहानी कला के प्रमुख तत्वों के आधार पर यह कहानी अप्रतिम है।

## 9.5 कठिन शब्दावली

**निर्जन** – सूना

**पथिक** – यात्री

**जलनिधि** – सागर

**स्पर्श**– छूना

## 9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. आनंद दर्शन

2 पांच संग्रह

3. समुद्री डाकू

4. कामायनी

5. ताम्रलिप्त

6. मणिभद्र

## 9.7 संदर्भित पुस्तकें

1. प्रसाद, आकाशदीप
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास

## 9.8 सात्रिक प्रश्न

1. आकाशदीप कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।
2. चम्पा व बुद्ध गुप्त की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. आकाशदीप कहानी का प्रतिपाद्य एवं उद्देश्य अपने शब्दों में लिखिए।

*****

# इकाई–10
# यशपाल : जीवन परिचय

**संरचना**


10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 यशपाल : जीवन परिचय

10.3.1 व्यक्तित्व

10.3.2 कृतित्व

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न


**10.1 भूमिका**

इकाई नौ के अन्तर्गत हमने 'आकाशदीप' कहानी का पाठपरक अध्ययन किया, जिसमें कहानी की तात्विक समीक्षा, सार, उद्देश्य और पात्रों के चरित्र – चित्रण का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई दस में हम यशपाल के जीवन परिचय का विस्तापूर्वक अध्ययन करेंगे।

**10.2 उद्देश्य**

इकाई दस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. यशपाल का जन्म कहाँ हुआ ?
2. यशपाल का किस राज्य से संबंध है ?
3. यशपाल की मृत्यु किस स्थान पर कब हुई ?
4. यशपाल के कथा साहित्य में कौन–सी कृति है ?
5. यशपाल का कौन–सा उपन्यास है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ ?

**10.3 यशपाल, जीवन परिचय**

**10.3.1 व्यक्तित्व**

**जन्म** : – जब हमारा देश गुलामी की जजीरों में फंसा हुआ था और सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल नहीं थी उसी समय साहित्यकार श्री यशपाल जी का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को फिरोजपुर छावनी पंजाब में 3 हुआ।

**पारिवारिक स्थिति** :– यशपाल के पिताजी का नाम हीरालाल तथा माताजी का नाम प्रेमदेवी था। उनके पिता एक साधारण व्यवसायी थे और पहाड़ी इलाके कांगड़ा के रहने वाले थे। इसी कारण यशपाल अपने आपको पहाड़ी समझते थे। उनकी माता प्रेमदेवी शिक्षित तथा अच्छे घराने की थी। हिन्दी के प्रायः सभी लेखकों की भाँति यशपाल का प्रारंभिक जीवन भी आर्थिक कठिनाई के कारण सुखमय न था। प्रेमदेवी ने अपने पति की आर्थिक स्थिति तथा पिछड़े हुए कांगड़ा के वातावरण को अपनी भावी संतान के विकास के लिए उचित नहीं

समझा, इसलिए उन्होंने बच्चे के जन्म के पहले ही कागड़ा छोड़कर फिरोजपुर छावनी में अध्यापिका की नौकरी स्वीकार कर ली। उस समय पति से अलग रहकर नौकरी करना एक साहसिक कदम था। यशपाल जी नारी के साहसिक व्यक्तित्व का पहला परिचय अपनी माता के रूप में पाते हैं।

**प्रारंभिक शिक्षा और संस्कार** :– यशपाल की माता अध्यापिका थी। इसलिए उन्होंने अपने बेटे की पढ़ाई की व्यवस्था की। उनकी प्रारंभिक शिक्षा कागड़ा के गुरूकुल में हुई। सातवीं कक्षा तक वे यही रहे। बचपन का संस्कार किसी भी व्यक्ति के जीवन को स्थायी रूप से प्रभावित करता है। यशपाल का बचपन आर्यसमाजी वातावरण में बीता था। इनकी माता प्रेमदेवी कट्टर आर्यसमाजी थी। उन्होंने अपने पुत्र यशपाल को समाज सुधारक स्वामी दयानंद के आदर्शों के अनुकूल आर्य धर्म का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बना देने के उद्देश्य से सात आठ वर्ष की आयु में गुरूकुल कागड़ा में प्रवेश कराया था। गुरूकुल में पुरानी परंपराओं का पालन ही होता था। नंगे पाँव या खड़ाऊँ पहनकर चलना, काठ के तख्त पर सोना, सख्त सर्दी में सूर्योदय से पहले ठंडे पानी से नहाना और भोजन के बाद अपना लोटा–थाली स्वयं मांजना, संध्या समय आंखे मूंदै ऊँचे स्वर में मंत्रोच्चारण करना आदि नित्य का नियम–सा था। यशपाल के बाल मानस में इन्हीं सस्कारों और परंपराओं के प्रति वितृष्णा ही उत्पन्न हुई थी।

यशपाल के व्यक्तित्व को बड़ी गहराई तक प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनकी गरीबी भी है। घर की गरीबी के कारण गुरूकुल में निःशुल्क पढ़ता था। वहाँ सब विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार का नियम था। परंतु संपत्ति के प्रति आदर की भावना वहीं भी पहुंच गयी थी। स्कूल में निःशुल्क पढ़ने की खबर पाकर सहपाठी उसका तिरस्कार करते थे। यह उन्हे उस छोटी आयु में ही असह्य था। इसके सम्बन्ध में यशपाल ने अपनी आत्मकथा सिंहाललोकन भाग–1 मे लिखा है कि ''कगुरूकुल में समता की भावना और अधिकार अनुभव हो चुके थे और अपनी गरीबी के लिए तिरस्कार पाने से मेरे मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा। गरीब होने के अपराध के पति में अपने आपको किसी भी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझ सकता था। अमीर घर के लोगों के प्रति आदर के उदाहरण भी सामने आते रहते थे। मन में सोचता था, मैं खूब अमीर घर की संतान होता तो कितना आदर और सुख मिलता। इस प्रभाव से गरीब से अपमान के प्रति में कभी उदासीन नहीं हो सका, न हो सकूंगा।''

गुरूकुल की पढ़ाई समाप्त होने पर उन्हें आर्य समाज द्वारा स्थापित एवं संचालित लाहौर के डी ए वी स्कूल में भरती किया गया। इन्हीं दिनों उन्होंने 'अन्दमान की गूंज', 'आनंदमठ' जैसी पुस्तकें पढ़ी। नवीं से मैट्रिक तक की शिक्षा मनोहरलाल मेमोरियल हाईस्कूल में हुई। नवीं कक्षा में पढ़ते समय यशपाल जी ने अपने मित्र लाजवंतराय से मिलकर विदेशी वस्त्रों की होली जलायी और खद्दर पहनने का निश्चय किया। यही नहीं, स्वतंत्रता आदोलन के प्रचार के लिए वे देहातों में जाने लगे और कांग्रेस के हर कार्य में सहयोग देते रहे। सन् 1921 ई. में मैट्रिक की परीक्षा में जिले में अव्वल आकर उन्होंने 1921 अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया।

आर्य समाजी वातावरण में पलकर बड़े होने का प्रभाव यशपाल के व्यक्तित्व पर कई रूपों में पड़ा। इसमें पहला प्रभाव उनके विचारने की स्वतंत्रय में दिख पड़ता है। आर्य समाज का धर्म विषयक दृष्टिकोण अन्य संप्रदायों से बिलकुल भिन्न है। उसमें तर्क करने की स्वतंत्रता थी। आर्य समाजी यह मानता है कि तर्क के सहारे धर्म अनुसंधान करने वाला व्यक्ति ही धर्म के सच्चे स्वरूप को जान सकता है, अन्य कोई नहीं। आर्य समाज की इसी विचार–स्वातंत्रय में पलकर यशपाल का व्यक्तित्व विद्रोही बना। यह विद्रोही भावना उनके व्यक्तित्व और कृतित्त्व में पायी जाती है। यही कारण था कि आगे चलकर 1938 में उन्होंने एक पत्रिका का पारंभ किया था जिसका नाम 1938 'विप्लव' रखा गया। इस 'विप्लव' के माध्यम से प्रगतिविरोधी संस्कारों एव रूढ़ियों से देशवासियों को मुक्त करने का प्रयत्न किया। वे स्वयं रूढ़ियों से मुक्त रहे। अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर कन्यादान विधि के मंत्रों पाठ करने से इन्कार किया किया था। उन्हें कन्या को वस्तु समझकर दान करने की विधि में नारी का शोषण दिखायी पड़ा। आर्य समाजी वातावरण में पलने से दूसरा प्रभाव हमे यशपाल की प्रखर राष्ट्रीयता में दिखायी पड़ता है। विदेशी दासता के विरोध की चेतना उन्हें आर्य समाज के वातावरण से प्राप्त हुई थी।

**क्रांतिकारी जीवन :** — गुरूकुल से लौटने के बाद आपने लाहौर नेशनल कालेज में प्रवेश प्राप्त किया। मशहूर क्रान्तिकारी सुखदेव तथा भगतसिह उन्हें यहीं मिले थे। ऐसे क्रान्तिकारी के संपर्क में रहकर यशपाल ने बहुत कुछ ग्रहण किया। बचपन से साहित्य के प्रति उनकी अभिरूचि थी पर विद्यार्थी जीवन में गुरूकुल की तथा नेशनल कालेज की शिक्षा ने क्रान्ति के बीज को पल्लवित कर दिया। नेशनल कालेज में अध्ययन का क्या प्रयोजन है ? पंडितजी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, ''सरकारी नौकरी का द्वार बन्द हो जाएगा यह तो मैं जानता हूँ। क्योंकि मैं अपने देश में विदेशी शासन जमाएँ रखने के पक्ष में नहीं हूं।'' इस प्रकार विद्यार्थी जीवन से ही उनमे देश–प्रेम की भावना झलकती थी। इसके अतिरिक्त युगीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण वे क्रान्ति की ओर प्रेरित हुए थे।

क्रान्तिकारी स्वभाव के कारण यशपाल का जीवन अनेक घटनाओं से भरा हुआ है। अपने साहित्य की भाँति उनका क्रान्तिकारी जीवन भी विविधतापूर्ण है। वह नीरश और निष्क्रिय नहीं। लाहौर में लाला लजपतराय पर आक्रमण करने के कारण दिसम्बर 1928 में पुलिस सार्जेण्ट साण्डर्स गोली 1928 के शिकार हुए। उधर मार्च 1929 में भगतसिह ने 'दिल्ली असेम्बली' में बम 1929 फैंका तथा अप्रैल 1929 में एक बम बनाने की फैक्टरी पकड़ी गयी। इन 1929 घटनाओं के कारण यशपाल को लाहोर से फरार होना पड़ा। दिसम्बर 1929 में वायसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट की घटना में यशपाल का हाथ रहा। यशपाल अनेक शस्त्र आन्दोलनों में सहयोग देते हुए तथा क्रान्तिकारी दल और अंग्रेज सरकार के मध्य सशस्त्र संघर्ष में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया।

यशपाल जिस क्रान्तिकारी संगठन के सदस्य थे, उसका लक्ष्य सामूहिक–सशस्त्र क्रान्ति द्वारा अपने देश के विदेशी सत्ता का उन्मूलन करना था और इसका उद्देश्य था मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त। यशपाल का कथन है कि 'इस काम के लिए दल के विशेष योग्य व्यक्तियों को कुर्बान करने का प्रयोजन केवल यही था कि चम विस्फोट कर पैदा किए गये वातावरण में अपना उद्देश्य और नीति जनता के सम्मुख रखी जाए। 'हिन्दुस्तान समाज वाटी स्वतंत्रता संघ' के इस व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है कि इस समय सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा करने वाले लोग आतंक की अपेक्षा जनमत और संगठन को अधिक महत्त्व दे रहे थे। एक ओर से क्रान्तिकारी अपनी हथेली पर जान रखकर अपने लक्ष्य के लिए जूझ रहे थे। दूसरी ओर विरोधियों द्वारा इनकी सशस्त्र क्रान्ति को आतंकवाद का नाम देकर जनता में इस लोगों के प्रति पूणा पैदा करने के प्रयास किए जा रहे थे। ये क्रान्तिकारी युवक दल के प्रति जनता की सहानुभूति प्राप्त करने और उनमें सशस्त्र क्रान्ति की चेतना जगाने लिए बराबर सजग थे। ये कान्तिकारी युवक जनमानस में अपनी 'इमेज' हर कीमत पर बनाना चाहते थे। इसी का परिणाम था भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम फेंककर गिरफ्तार हो जाने का निश्चय यशपाल दल के क्रान्तिकारियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे थे। लाहौर की बम फैक्टरी का कार्य यशपाल के जिम्मे था। भगत सिंह की गिरफ्तारी के बाद जब लाहौर की बम फैक्टरी पकड़ी गयी और यशपाल कैसे ही बच निकले और काफी दिनों फरार रहे। इस जिन्दगी का मार्मिक रूप से उल्लेख यशपाल ने अपनी आत्मकथा 'सिंहावलोकन' में कुछ इस प्रकार किया है ''उन दिनों मेरा कलेजा बराबर धक–धक करता था, जान पड़ता था कि में बड़े भारी संकट से गुजर रहा हूँ। सभी की आखे सन्देह से मुझे ही खोजती जान पड़ती। फरारी के सबसे बड़े गुरू 'आत्मविश्वास' का रहस्य समझकर उसी लाहौर में, जब सभी जगह बड़े–बड़े इश्तहार मेरी गिरफ्तारी के लिए इनाम की घोषणा में लगे हुए थे, मामूली सी सावधानी से निधड़क घूम लेता था। उसी लाहौर स्टेशन पर जेब में रखा पिस्तौल भूल से दिखाई दे जाने पर भी बेपरवाही दिखाकर मुख से सोटी बजाते हुए, हाथ में कारतूस उछालते हुए गाड़ी चढ़ जाता था।''

साम्राज्यवादी शोषण ओर दास्ता के विरूद्ध उद्वेलित भारत ने जिन नौजवानों को जन्म देकर सशस्त्र क्रान्ति की दिशा में बढ़ने को प्रेरित किया उनमें यशपाल अत्यन्त तेजोदीप्त और सबसे भिन्न दिखाई पड़ते हैं। भिन्न इस अर्थ में कि अन्य क्रातिकारियों के निकट क्रान्ति जब ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध हिंसात्मक कार्यों और

लूटमार तक सीमित थी, तब यशपाल के निकट इसका कुछ और महत्तर और अधिक व्यापक अर्थ था और यह वह कि शोषण परक विदेशी शासन से राजनीतिक मुक्ति तो मिले ही, शासन व्यवस्था (समाज–व्यवस्था) भी बदले। अर्थात् शासन सूत्र का हस्तान्तरण तो वे चाहते ही थे, शासन पद्धति में भी परिवर्तन चाहते थे।

**दाम्पत्य जीवनः–** यशपाल और प्रकाशवती ने दाम्पत्य जीवन का सुंदर आदर्श समाज के सामने रखा है। उनकी आर्थिक समस्या का चित्रण करते हुए शंकर सुल्तानपुरी ने लिखा है कि ''कान्तिकारी दम्पति ने बुरे से बुरे दिन भी देखे। रोटी के लिए गिट्टी, कागज के खिलौने बनाए सड़को पर पड़ी बेकार सुतलियों इक्ट्ठी करके थैले बनाए और बेचे। दांतों की डाक्टरी की और मेहनत मशक्कत से एक छोटा मोटा प्रेस भी खड़ा कर दिया।'' हमें लगता है कि श्रीमंत परिवार में पली हुई प्रकाशवती की भीतरी भावना एवं संस्कार इतने ऊंचे थे कि वह वैभव विलास में भी जल कमलवत रहीं और यशपाल के साथ संघर्ष पूर्ण और सुचारू रूप से दाम्पत्य जीवन व्यतीत किया।

साहित्यकार यशपाल के व्यक्तित्व निर्माण में प्रकाशवती का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अपने सुखी दाम्पत्य जीवन की भावना अभिव्यक्त करते हुए प्रकाशवती ने बताया है कि ''यशपाल जो प्यार से मुझे 'रानी' कहकर पुकारते थे।'' प्रकाशवती ने सुखी दाम्पत्य जीवन का निर्देश इस प्रकार किया है– 'मुझे यशपाल के साथ काम करने का बड़ा सुख मिला है। यदि शादी न हुई तो यह तत्सल्ली रहेगी कि में किसी का प्राणनाथ रहा हूँ।' इस वार्तालाप से सुखी दाम्पत्य जीवन के साथ यशपाल का विनोद स्वभाव भी प्रकट हुआ है।

**यशपाल की मृत्यु** :– 26 दिसम्बर 1976 के अपराहन में यशपाल का देहावसान हो गया। पिछले 19 साल से उनका शारीरिक कष्ट बढ़ने लगा था। पिछले कुछ दिनों से ह्रदय रोग से पीड़ित थे। मृत्यु से पहले अंतिम तीस दिन से उनके पास सिर्फ मीना पुत्रवधू) थी और वोर्ड मास्टर था। रात को उनकी तबियत गंभीर हो गई थी, साँस लेने में कष्ट हो रहा था। ब्लड प्रेसर भी जाँचा गया। उस समय उनका चेहरा वेदना एवं विषाद से घिरा था। उस समय वह ठीक ढंग से बोल सकते थे न समझ सकते थे। दिनांक पूछी जाय तो समय बता देते थे। खबर पूछने आने वाले मित्र, रिश्तेदार आदि को पहचानने में देर लगती थी। पहचान लेने से तुरंत ही चेहरे पर स्मित फैल जाता था। देखते ही देखते एक सच्चा सैनिक, एक सच्चा क्रान्तिकारी योद्धा और हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा साहित्यकार 26 दिसम्बर 1976 के दिन दोपहर के वक्त इस फानी दुनिया को छोड़कर खुदा को प्यारा हो गया।

यशपाल जी परंपरा के विरोधी थे इसलिए उनका पुत्र आनंद राजकीय सम्मान युक्त शवयात्रा के लिए मना कर रहा था। परंतु पुलिस बेण्ड पार्टी ने उपस्थित होकर शोकपूर्ण ब्यूगल बजाये, सैनिकों ने अंतिम सलामी दी, पुत्र आनंद ने पिताजी के अग्नि संस्कार की अंतिम क्रिया की। 27 दिसम्बर दोपहर को स्मशान से अस्थियाँ लेने गये थे। इस सबंध में प्रकाशवती ने लिखा है कि ''आज उनकी याद में उनके अस्थि कलश की उन्हीं के उद्यान में स्थापित कर उनकी राख घर के चारों ओर की मिट्टी में मिला दी गई है। यह बगीचा, यह फूल–पौधे यशापालमय हो गए है। बगीचे के हर फूल–पौधे को उन्हें प्यार करते देखती हूँ।''

इस प्रकार यशपाल की जीवन यात्रा से स्पष्ट होता है कि संघर्ष ही उनका आदि से अन्त तक साथी रहा। जन्म से मृत्यु तक की यात्रा कोई सामान्य मनुष्य की यात्रा नहीं थी। वह एक राष्ट्रप्रेमी, समाजप्रेमी और साहित्यप्रेमी व्यक्ति की भाव एवं चिन्तपूर्ण यात्रा थी।

### 10.3.2 कृतित्व

यशपाल बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। उन्होंने गद्य की प्रायः सभी विद्याओं पर लेखनी चलायी है। वे व्यष्टि एवं समष्टि में नव मानव का संचार करना चाहते थे। इस प्रकार वे एक सोद्देश्य साहित्य के पक्षधर रहे।

यशपाल निरे सिद्धान्तवादी ही नहीं बल्कि कर्मठ साहित्यकार तथा विवेकशील विचारक भी है। यशपाल ने अपने क्रान्तिकारी जीवन में पंजाब तथा उसके आसपास के जिन स्थानों का विचरण किया उनका सजीव

चित्रण उनकी रचनाओं में प्राप्य है। वह केवल कल्पना के महल ही नहीं बनाते बल्कि यथार्थ जगत में आकर पाठक को भी उसके बारे में जानकारी देते है ''अपने विचारों और विश्वासों को अपने ही ऊपर लागू करना खासा मुश्किल''।

**यशपाल का कहानी साहित्य** : — यशपाल की लेखन प्रक्रिया कहानी से शुरू हुई है। जब वे पाँचवीं कक्षा में थे तब 'अँगूठी' नामक कहानी लिखी थी। जो उनकी सर्वप्रथम कहानी थी। सन् 1939 से 1979 तक सत्रह कहानी संग्रह उन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रदान किए हैं। उन्होंने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अपने ढंग से कहानियाँ लिखी है। सामाजिक जीवन के यथार्थ के कहानी का विषय बनाया है। सामाजिक कुप्रथा, रूढ़ियों, अन्याय, अनीति, अत्याचार एवं अराजकता के सामने विद्रोहात्मक दृष्टि बिंदु को प्रकट किया है। उन्होंने विभिन्न समस्याओं को लेकर कहानियाँ लिखी है। जैसे आर्थिक समस्या, शोषण की समस्या, वेश्या जीवन की समस्या, सेक्स की समस्या, वर्गभेद की समस्या धार्मिक समस्या, सामजिक समस्या, राजनीतिक समस्या, वर्णभेद की समस्या, शिक्षा की समस्या आदि समस्याओं के आधार पर कथा का प्लोट तैयार किया है। इन समस्याओं को लेकर यशपाल जी ने हमारे समाज पर कटु व्यंग्य किया है।

**यशपाल की कहानियों का क्रमिक विकास**

| क्रम | कहानी संग्रहों के नाम | प्रकाशन काल | कहानियों की संख्या |
|---|---|---|---|
| 1. | पिजड़े की उड़ान | 1939 | 20 |
| 2. | वो दुनिया | 1941 | 12 |
| 3. | तर्क का तूफान | 1943 | 16 |
| 4. | ज्ञानदान | 1943 | 13 |
| 5. | अभिशप्त | 1944 | 16 |
| 6. | भस्मावृत्त चिनगारी | 1946 | 15 |
| 7. | फूलों का कुर्ता | 1946 | 8 |
| 7. | धर्मयुद्ध | 1950 | 10 |
| 8. | उत्तराधिकारी | 1951 | 9 |
| 9. | चित्र का शीर्षक | 1952 | 13 |
| 10. | तुमने क्या कहा था मैं सुंदर हूं | 1954 | 13 |
| 11. | उत्तमी की माँ | 1955 | 11 |
| 12. | ओ भैरवी | 1957 | 12 |
| 13. | सच बोलने की भूल | 1962 | 12 |
| 14. | खच्चर और आदमी | 1965 | 9 |
| 15. | भूख के तीन दिन | 1968 | 11 |
| 16. | लेप शेड (मरणोपरान्त प्रकाशित) | 1979 | 6 |

यशपाल के समस्त कहानी संग्रह में संकलित कहानियों का अति संक्षिप्त परिचय कुछ इस प्रकार प्रस्तुत है।

**पिंजरे की उड़ान**

यशपाल का यह प्रथम कहानी संग्रहों है। 20 कहानियों का यह संग्रह 1939 में प्रकाशित किया गया। इसकी अधिकांश कहानियाँ जेल में लिखी गयी थी। 'पिंजड़ा' जेल का प्रतीक है और 'उड़ान' से अभिप्राय अतीत व्यक्ति व्यंजक आदि बातो को इन निबंधों में उन्होंने उतारा है। यशपाल ने अपने अनुभव, अनुभूति, अध्ययन और चिन्तन को अभिव्यंजना देने के लिए निबंध को ही आधार बनाया।

**कालक्रमानुसार यशपाल के निबध–संग्रह निम्न प्रकार है–**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | न्याय का संघर्ष | 1940 |
| 2. | मार्क्सवाद | 1940 |
| 3. | गांधीवाद की शवपरीक्षा | 1941 |
| 4. | चक्कर क्लब | 1942 |
| 5. | बात बात में बात | 1950 |
| 6. | चीनी कम्युनिस्ट पार्टी | (अनुदित) 1951 |
| 7. | राम राज्य की कथा | 1951 |
| 8. | देखा सोचा समझा | 1951 |
| 9. | बीबीजी कहती हैं, मेरा चेहरा रोबीला है | 1951 |
| 10. | जग का मुजरा | 1962 |
| 11. | मैं क्यों लिखता हूँ (संपादित) | |

कुछ विद्वान यशपाल के यात्रा–वर्णन को भी निबंधों के अंतगर्त मानते है। परतु विधा निर्धारण और विषय वस्तु की दृष्टि से वह अनुचित है।

यशपाल के निंबधों को हम निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं जैसे सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक, व्यक्ति व्यंजक आदि।

यशपाल ने अपनी जीवनी से संबंधित महत्त्वपूर्ण सूचनाएं अपनी पुस्तक 'सिंहावलोकरन' के तीन भागों में दी है। यशपाल का जीवन संघर्षपूर्ण रहा है। निरन्तर सात्यि–साधना में रत रह कर उन्होंने हिन्दी का साहित्य–भण्डार भरा है। प्रेमचंद की तरह ही कहानी बुनने में उन्हें अद्‌भुत कुशलता प्राप्त हुई। यशपाल का देहान्त 1974 में लखनऊ में हुआ।

यशपाल हिन्दी के महान गद्य लेखक के रूप में सर्वमान्य है। आप ने उपन्यास, कहानी, निबंध तथा नाटक भी लिखे है। आपकी प्रमुख रचनाएँ अग्रलिखित हैं –

**1. उपन्यास** – 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'दिव्या' (1945), 'पार्टी कामरेड' (1947), 'मनुष्य के रूप' (1949), 'अमिता' (1956), 'झूठा सच' (दो खण्ड 7 1958 और 1960), 'बारह घण्टे' (1962), 'अत्सरा का श्राप' तथा 'तेरी मेरी उसकी बात' (1974)।

**2. यशपाल का कहानी साहित्य** – यशपाल हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकार हैं। दो सौ के लगभग कहानियां उन्होंने लिखी। उनकी कहानियों में सोये हुए सजा को जगाने का प्रयास है। उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है – 'पिंजरे की उड़ान' (1941), 'वो दुनिया' (1941), 'ज्ञानदान' (1943), 'अभिशप्त' (1944), 'तर्क का तूफान' (1944), 'भस्मावृत चिंगारी' (1946), 'फूल का कुर्ता' (1949), 'धर्मयुद्ध' (1950, 'उत्तराधिकारी' (1951) तथा 'चित्र का शीर्षक' (1951)। इन संग्रहों के अतिरिक्त भी उनकी अनेक कहानियाँ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है।

**3. यशपाल के नाटक** – यशपाल का एक एकांकी संग्रह 'नशे–नशे की बात' भी प्रकाशित हुआ है। इसमें तीन एकांकी हैं। प्रथम एकांकी 'नशे–नशे की बात में' आध्यात्मिक नशेबाज़ी पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है। दूसरा एकांकी 'रूप की परख' है जो कि दहेज प्रथा को लेकर लिखा गया है। तीसरा एकांकी 'गुड बाई दर्दे दिल' है। इसमें लेखक ने स्पष्ट किया है कि केवल यौनाकर्षण में दर्दे दिल होना उपहासप्रद है। जो व्यक्ति समाज में व्याप्त दुःख दर्द से पीड़ित नहीं होता उसे प्यार की पीड़ा का क्या पता होगा ?

**4. यशपाल के निबंध** – यशपाल के लिए निबंध–लेखन एक शौक भी रहा है और एक विवशता भी। यशपाल का समस्त लेखन समाज के लिए है और उनके निबंध भी समाज को बदलने की लिए ही लिखे गये हैं। यशपाल के निबंधों में काव्य की काव्यात्मकता, नाटक की नाटकीयता और कहानी की रोचकता है फिर भी ये अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। यशपाल ने निबंधों को कहानी के रूप में लिखा है। यशपाल के प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं – 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'बात–बात में बात', 'राम राज्य की कथा', 'देखा सोचा समझा', 'गांधीवादी की शव परीक्षा', 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' आदि हैं। यशपाल की मार्क्सवादी चेतना का जितना सुन्दर चित्रण निबंधों में हुआ उतना अन्यत्र नहीं।

यशपाल, आजीवन सहित्य–रचना करते रहे। अंतिम क्षणों तक वे साहित्य–सृजन में लीन रहे। भले ही उनकी दृष्टि कमज़ोर हो गई थी।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. यशपाल का जन्म कब हुआ था ?
2. परदा कहानी के लेखक कौन है ?
3. यशपाल का सबन्ध हिमाचल प्रदेश के किस जिले से था ?
4. यशपाल ने किस आन्दोलन से प्रभावित होकर पढ़ाई छोड़ी ?
5. यशपाल का देहांत कब हुआ ?
6. यशपाल का विवाह किससे हुआ था ?

**10.4 सारांश**

प्रेमचंदोत्तर युग के प्रतिष्ठित रचनाकार यशपाल का जन्म 3 दिसंबर 1903 को हिमाचल प्रदेश के हमीरपुर जिले के भूंपल ग्राम में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा हरिद्वार के आर्य समाज गुरुकुल में हुई और वहीं उन्हें देशभवित का पहला पाठ मिला। हाईस्कूल की शिक्षा के दौरान ही गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में आ गए थे और गाँव–गाँव घूमकर असहयोग आन्दोलन का प्रचार करने लगे थे। यशपाल राजनीतिक तथा साहित्यिक दोनों क्षेत्रो में क्रान्तिकारी है।

**10.5 कठिन शब्दावली**

**सफेदपोशी** – भलमन साहत

**जाहिल** – गंवार

**ताब** – सामर्थ्य, शक्ति

**अवलंब** – सहारा

**10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर**

1. 1903
2. यशपाल
3. हमीरपुर
4. असहयोग आन्दोलन
5. 1976
6. प्रकाशवती से

## 10.7 संदर्भित पुस्तकें

1. नरेश कुमार– यशपाल के उपन्यासों के मध्यवर्ग।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास।

## 10.8 सात्रिक प्रश्न

1. यशपाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. यशपाल की साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. समकालीन साहित्यकारो में यशपाल के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

*****

# इकाई–11
## परदा : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**

11.1 भूमिका
11.2 उद्देश्य
11.3 परदा : पाठपरक अध्ययन
11.3.1 परदा कहानी की तात्विक समीक्षा
11.3.2 परदा कहानी का सार
11.3.3 पीरबख्श का चरित्र–चित्रण
11.3.4 बबर अली खान का चरित्र–चित्रण
11.4 सारांश
11.5 कठिन शब्दावली
11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
11.7 संदर्भित पुस्तकें
11.8 सात्रिक प्रश्न

### 11.1 भूमिका

इकाई दस के अन्तर्गत हमने कथाकार यशपाल के जीवन परिचय का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी अकाई ग्यारह में हम यशपाल द्वारा कृत कहानी परदा का पाठपरक अध्ययन करेंगे, जिसमें कहानी को तत्वों के आधार, सार, उद्देश्य और पात्रों के चरित्र–चित्रण का विस्तारपूर्वक अमन करेंगे।

### 11.2 उद्देश्य

इकाई ग्यारह को अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. परदा कहानी की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
2. परदा कहानी का सार क्या है ?
3. परदा कहानी का मूल पतिपाद्य क्या है ?
4. पीरबक्श का चरित्र किस प्रकार का है ?
5. बबर अली खान की चारित्रिक विशेषताएँ कैसी हैं ?

### 11.3 परदा : पाठपरक अध्ययन

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमें में दारोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनों लड़के एण्ट्रेंस पास कर रेलवे में और डाकखाने में बाबू हो गये। चौधरी साहब की ज़िन्दगी में लडकों के ब्याह और बाल–बच्चे भी हुए, लेकिन ओहदे में खास तरक्की न हुई; वही तीस और चालीस रूपये माहवार का दर्जा।

अपने जमाने की याद कर चौधरी साहब कहते– "वो भी क्या वक्त थे! लोग मिडिल पास कर डिप्टी–कलेक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेस तक अंग्रेज़ी पढ़कर लड़के तीस–चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।" बेटों को ऊँचें ओहदों पर देखने का अरमान लिये ही उन्होंने आँखें मूंद ली।

इंशा अल्ला, चौधरी साहब के कुनबे में बरक्कत हुई। चौधरी फज़ल कुरबान रेलवे में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियां दी। चौधरी इलाही बख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ बख्शीं।

चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर जगह तंग ही रही। दारोगा साहब के जमाने में जनाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी ज़नाने में शामिल हो गयी और घर की दयोढ़ी पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का ख्याल था, इसलिए पर्दा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का रहता।

जाहिर है, दोनों भाइयों के बाल–बच्चे एक ही मकान में रहने पर भी भीतर सब अलग–अलग था। डयोढ़ी का पर्दा कौन भाई लाये ? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दारोगा साहब के जमाने की पलंग की रंगीन दरियाँ एक के बाद एक डयोढ़ी में लटकाई जाने लगी।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह–शादी होने लगे। आखिर चौधरी–खानदान की औलाद को हवेली छोड़ दूसरे जगहें तलाश करनी पड़ी। चौधरी इलाही बख्श के बड़े साहबजादे एण्ट्रेंस पास कर डाकखाने में बीस रूपये की क्लर्की पा गये। दूसरे साहबजादे मिडिल पास कर अस्पताल में कम्पाउण्डर बन गये। ज्यों–ज्यों जमाना गुजरता जाता, तालीम और नौकरी दोनों मुश्किल होती जाती तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने वज़ीफा पाया। जैसे–तैसे मिडिल कर स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गये।

चौथे लड़के पीरबख्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम माँ–बाप पर खर्च के बोझ के सिवा और है क्या ? स्कूल की फीस हर महीने, और किताबों, कापियों और नक्शों के लिए रूपये–ही–रूपये।

चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया मौला के करम से बीबी की गोद भी जल्दी ही भरी। पीरबख्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्ज़त के ख्याल से एक तेल की मिल मैं मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्ज़त का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीज़ें न थी। चौकी पर बैठते। कलम–दवात का काम था।

बारह रूपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रूपया था। आस पास गरीब और कमीने लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों–बीच, गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आयी थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी थी, जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं ओर बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते।

इस सारी बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही पढ़े–लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ उनके ही घर ही डयोढ़ी पर पर्दा था। सब लोग उन्हें चौधरीजी, मुंशी ली कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियाँ चार–पाँच बरस तक किसी काम–काज से बाहर निकलती और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीर बख्श खुद ही मुस्कुराते हुए सुबह–शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख्वाह पद्रह बरस में बारह से अठारह हो गयी। खुदा की बरक्कत होती है, तो रूपये–पैसे की शक्ल में नहीं, आल–औलाद की शक्ल में होती है। पंद्रह बरस में पाँच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में लड़के।

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिए आयीं। वालिद साहब का इंतकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फिक्र करने आया नहीं; वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगी।

जहाँ बाल–बच्चे और घर–बार होता है, सौ किस्म की झंझटें होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ है, तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में कर्ज़ की ज़रूरत कैसे न हो? घर बार हो, तो कर्ज भी होगा ही।

मिल की नौकरी का कायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनख्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत ज़रूरत पर ही मेहरबानी करते। ज़रूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी–मोटी चीज़ गिरवी रख कर उधार ले आते। गिरवी रखने से रूपये के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज़ के घर लौट आने की सम्भावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्ज़त थी। इज्ज़त का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका पर्दा। भीतर जो हो, पर्दा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींचखाँच या बेदर्द हवा के झोकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से हाथ सुई–धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल! मकान की डयोढ़ी के किवाड़ गलते–गलते बिलकुल गल गय। कई दफे कसे जाने से पेच टूट गये और सुराख ढीले पड़ गये। मकान मालिक सुरजू पांडे को इसकी फिक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते–सुनते तो उत्तर मिला – "कौन बड़ी रकम थमा देते हो ? दो रूपल्ली किराया और वह भी छः–छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है। न हो मकान छोड़ जाओ।" आखिर किवाड़ गिर गये। रात में चौधरी उन्हें जैसे–तैसे चौखट से टिका देते। रात–भर दहशत रहती कि कहीं कोई चोर न आ जाये।

मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्ज़त होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता; पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा!

चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर पर्दा ही आबरू का रखवाला था। वह परदा भी तार–तार होते–होते एक रात आँधी में किसी भी हालत में लटकने लायक न रह गया।

दूसरे दिन घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज़ दरी दरवाज़े पर लटक गयी। मुहल्लेवालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी – 'अरे चौधरी, इस ज़माने में दरी यों–काहे खराब करोगे? बाज़ार से ला टाट का टुकड़ा न लटका दो!' पीरबख्श टाट की कीमत भी आते–जाते कई दफे पूछ चुके थे। दो गज़ टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हँसकर बोले– "होने दो क्या है? हमारे यहाँ पक्की हवेली में भी डयोढ़ी पर दरी का ही पर्दा रहता था।"

कपड़े की महँगाई के इस ज़माने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं; पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफे किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटा के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामें में जब पैबन्द संभालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुर्ता–पायजामा जरूरी हो गया, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिए घर में जब कुछ भी न हो गरीब का एक मात्र सहायक है पंजाबी खान। रहने की जगह–भर देखकर वह रूपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बर्कत के जन्म के समय पीरबख्श को रूपये की जरूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबंध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबर अलीखाँ से चार रूपये उधार ले लिये थे।

बबर अलीखाँ का रोज़गार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा–खासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मज़दूर और कभी–कभी रमजानी धोबी सभी बबर मियाँ से कर्ज लेते रहते। कई दफे चौधरी पीरबख्श ने बबर अली को कर्ज और सूद की किश्त न मिलने पर अपने हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाज़ा पीटते देखा था। उन्हें साहूकार और ऋणी में बीच–बचौवल भी करना पड़ा था।

खान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की शरण लेनी पड़ी। चार आना रूपया महीने पर चार रूपया कर्ज लिया। शरीफ खानदानी, मुसलमान भाई का ख्याल कर बबर अली ने एक रूपया माहवार की किश्त मान ली। आठ महीने में कर्ज अदा होना तय हुआ। खान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाज़े पर फज़ीहत हो जाने की बात का ख्याल कर चौधरी के रोएं खडे हो जाते। सात महीने फाका करके भी वे किसी तरह स किश्त देते चले गये; लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गयी और बाजरा भी रूपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना संभव न रहा। खान सात तारीख की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख्श ने खान की दाढी छू और अल्ला की कसम खा एक महीने की मुआफी चाही। अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया। खान टल गया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गयी। बच्चों की माँ की तबीयत रोज–रोज गिरती जा रही थी। खाया–पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिए उसको गेहूँ की रोटी देना ज़रूरी हो गया। गेहूँ मुश्किल से रूपये का सिर्फ ढाई सेर मिलता। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज के टुकड़े या धनिये की खुशबू के लिए ही मचल जाता। कमी पैसे की सौंफ, आजवायन, काले नमक की ही ज़रूरत हो, तो पैसे की कोई चीज़ मिलती ही नहीं। बाज़ार में ताँबें का नाम ही नहीं रह गया। नाहक इकन्नी निकल जाती है। चौधरी को दो रूपये महंगाई–भत्ते के मिले; पर पेशगी लेते लेते तनख्वाह के दिन केवल चार ही रूपये हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ्ते लगभग फाके–से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौराई खरीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा–कटोरा भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रूपयों में से सवा रूपया खान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय वे मंडी की ओर टहल गये। दो घंटे बाद जब समझा, खान टल गया होगा और अनाज की गठरी ले वे घर पहुंचे। खान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने–फिरने से लाचार अपनी ज़ईफ माँ की भूख से बिलबिलाती सूरतें आँखों के सामने नाच जाती। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते – "मौला सब देखता है, खैर करेगा।"

सात तारीख की शाम को असफल हो खान आठ की सुबह तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डंडा हाथ में लिये दरवाजे पर मौजूद हुआ।

रात–भर सोच–सोचकर चौधरी ने खान के लिए बयान तैयार किया। मिल के मालिक लालाजी चार रोज के लिए बाहर गये हैं। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी तनख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रूपया हाज़िर करेगा। माकूल वजह बताने पर भी खान बहुत देर तक गुर्राता रहा – "अम वतन चोड़ के परदेस में पड़ा है– ऐसे रूपिया नई देगा, तो अब तुमारा.... कर देगा।"

पाँचवें दिन रूपया कहाँ से आ जाता! तनख्वाह मिले अभी हफ्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ इनकार कर दिया। छठे दिन किस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी रहने पर भी चौधरी खान के डर से सुबह ही बाहर निकल गये। जान–पहचान के कई आदमियों के यहाँ गये। इधर–उधर बातचीत कर वे कहते – "अरे भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो–एक रोज के लिए देना। ऐसे ही ज़रूरत आ पड़ी है।"

उत्तर मिला– "मियाँ, पैसे कहां इस ज़माने में! पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम!"

दोपहर हो गयी। खान आया भी होगा, तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा – चौधरी ने सोचा, और घर की तरफ चल दिये। घर पहुँचने पर सुना खान आया था और घण्टे भर तक डयोढ़ी पर लटके दरी के परदे को डंडे से ठेल–ठेलकर गाली देता रहा है! परदे की आड़ से बड़ी बीबी के बार–बार खुदा की कसम खा यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गये हैं, रूपया लेने गये हैं, खान गाली देकर कहता – "नई, बदजात चोर बीतर में चिपा है! अम चार घंटे में पिर आत है। रूपिया लेकर जायेगा। रूपिया नई देगा, तो उसका खाल उतारकर बाजार में बेच देगा। हमारा रूपिया क्या अराम का है?"

चार घंटे से पहले ही खान की पुकार सुनाई दी – "चौदरी! " पीरबख्श, के शरीर में बिजली–सी दौड़ गयी और वे बिलकुल निस्सत्त्व हो गये, हाथ–पैर सुन्न और गला खुश्क।

गाली दे परदे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर–निर्जीवप्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गये। खान आग–बबूला हो रहा था – "पैसा नहीं देने का वास्ते चिपता है। . ..” एक–से–एक बढ़ती हुई तीन गालियाँ एक–साथ खान के मुँह से पीरबख्श के पुरखों–पीरों के नाम निकल गयीं। इस भयंकर आघात से पीरबख्श का खानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। खान के घुटने छू, अपनी मुसीबत बता वे मुआफी के लिए खुशामद करने लगे।

खान की तेजी बढ़ गयी। उसके ऊँचें स्वर से पड़ोस के मोची और मज़दूर चौधरी के दरवाजे के सामने इकट्ठे हो गये। खान क्रोध में डंडा फटकाकर कह रहा था– "पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। अम तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा नई है, तो घर पर परदा लटका के शरीफज़ादा कैसे बनता?... तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ तो भी दो, अम ऐसे नई जायेगा।"

बिलकुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठा खुदा से खान के लिए दुआ माँग पीरबख्श ने कसम खायी, एक पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं; खान चाहे तो बेशक उसकी खाल उतारकर बेच ले।

खान और आग हो गया– "अम तुमारा दुआ क्या करेगा ? तुमारा खाल क्या करेगा ? उसका तो जूता भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो यह टाट अच्वा।" खान ने डयोढ़ी पर लटका दरी का पर्दा झटक लिया। डयोढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गयी। वह डगमगाकर ज़मीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा–घर की लड़कियाँ और औरतें परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आंगन के बीचों–बीच इकट्ठी हो खड़ी काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड गयीं, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर–भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक–तिहाई अंग ढंकने में भी असमर्थ थे!

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर ली। उस नाग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से थूक, परदे को आंगन में वापिस फेंक, क्रुध निराशा में उसने "लाहौल बिला...।" कहा और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छँट गयी। चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, डयोढ़ी का परदा आंगन में सामने पड़ा था; परंतु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी।

### 11.3.1 'परदा' की कहानी की तात्विक समीक्षा

यशपाल हिन्दी के ऐसे कहानीकार हैं जो कि विचार के आधार पर कहानी गढ़ते है। जब उनके पास कहने के लिए कुछ होता है तब वे उस विचार के गिर्द कहानी बुनने लगते हैं। परदा कहानी में एक परिवार की तीन पीढ़ियों का वर्णन है जिसकी आर्थिक स्थिति निरंतर गिरती जाती है। आर्थिक स्थिति गिरने का मुख्य कारण वे बढ़ती महँगाई, शिक्षा का गिरता स्तर और नौकरियों का कम होना मानते हैं। चौधरी पीर बक्श के दादा के समय परिवार की आर्थिक हालत अच्छी थी परंतु चौधरी साहब के पोते के समय हालत इतनी खराब हो गई कि उधार लेकर गुजारा करना पड़ता है। गिरती आर्थिक अवस्था का कारण बड़े परिवार को भी माना है। कहानी की तात्विक समीक्षा निम्न प्रकार हैः–

**1. कथानक** – परदा कहानी में एक ही परिवार की चार पीढ़ियों का वर्णन है। चौधरी पीर बक्श के दादा ने चुंगी के दारोगा के रूप में पैसा कमाया और पक्का घर बनवाया जिसे चौधरी परिवार शान से हवेली

कहता हैं दादा के दो लड़के फजल कुर्बान और इलाही बक्श हुए जिनकी क्रमशः सात और छह सन्तानें थीं। कुर्बान रेलवे में और इलाहीबक्श डाकखाने में क्लर्की करते थे। यह कहानी इलाही बक्श के चौथे लड़के पीरबक्श के परिवार की है। पीर बक्श मात्र प्राइमरी पास था और हाथ का काम करना नहीं चाहता था। तेल मिल में मुंशी का काम करने लगा था। वेतन बारह रूपये मासिक था जो पन्द्रह साल में बढ़कर मात्र 18 रूपये बना। पुश्तैनी घर में जगह कम थी इसलिए शादी के बाद पीर बक्श का सितवां की कच्ची बस्ती में सुरजु पांडे के घर में किराए पर रहने लगे। दो रूपये प्रति माह किराया देते थे। पीर बक्श का परिवार बढ़ता गया। उसके तीन लड़के और दो लड़कियां हुई। बूढ़ी माँ भी उसके साथ रहने लगी थी। इतने कम वेतन में परिवार का गुजारा कठिन था। घर में सदस्य अधिक थे इसलिए पूरा घर ही जानखाना बन गया था। डयोढ़ी पर पर्दा टांगा गया था ताकि घर की इज्ज़त ढकी रहे। गरीबी के मारे घर की औरतों के पास नाममात्र के वस्त्र रह गये थे। प्रायः फाके होते थे और बाजरा आदि उबाल कर पीकर गुजारा होता था। नितान्त गरीबी में अन्ततः उसे बबर खान से चार रूपए का उधार लेना पड़ा । वह समय पर उधार न चुका सका इसलिए एक दिन बबर खान ने उसे बुरा भला कहा और घर आकर उसके दरवाज़े पर लगा परदा खींचकर गिरा दिया। सामने, आंगन में घर की औरतों को फटे–पुराने चीथड़ों में अधनंगा सहमे खड़े देखकर बबर खान भी शर्मिन्दा होकर चला गया। मुंशी पीर बक्श की इज्ज़त उस परदे के साथ ही धूल में आ गिरी थी। वह पूरी बस्ती के सामने सपरिवार निर्वस्त्र सा हो गया था। परदा ही उसकी इज्ज़त बचाए था।

**2. पात्र–चित्रण**– पात्र–चित्रण की दृष्टि से देखा जाए तो इस कहानी में अनके पात्रों के नाम आते हैं। चौधरी पीर बक्श, उसके दादा, उनके चाचा फज़ल कुर्बान और पिता इलाहीबक्श तथा इन दोनों की तेरह सन्तानें। वास्तव में यह कहानी चौधरी इलाही बक्श के बेटे पीर बक्श की कहानी है जो तेल मिल में मुंशी है और सितवां की कच्ची बस्ती में रहता है जहाँ निर्धन कामगर लोग रहते है। इस कहानी में इन्हीं पीर बक्श के परिवार की गिरती आर्थिक अवस्था का चित्रण हुआ है। निर्धनता, महँगाई, बड़े परिवार के बोझ में दबा पीर बक्श कैसे एक परदे की ओट में परिवार की इज्ज़त बचाकर रहता है, यह स्पष्ट किया गया है। पठान बबर अली खान से चार रूपये, चार आने प्रति माह पर कर्ज लेने के पश्चात् उसकी दुर्दशा होती है। वह उधार की सवा रूपये की अंतिम किश्त लौटा नहीं पाता और एक दिन बबर खान पूरी बस्ती क सामने उसके घर की डयोढ़ी पर टंगा परदा उतार कर फैंक देता है। वह कहता है कि जब उधार नहीं चुका सकते तो परदा टांग कर संभ्रान्त बने रहने का क्या औचित्य है। परदे के पीछे की गरीबी, विवशता और शर्मिंदगी सबके सामने आ जाती है जिसे देख कठोर सूदखोर बबर अली खान भी लज्जित होकर लौट जाता है। घर का परदा गिरना प्रतीकात्मक है। घर की औरतें परदे के पीछे अपनी भूख, गरीबी और अर्द्धनग्नता को छुपाए थी। जो परदा गिरते ही सामने आ गया। पीर बक्श को लगा कि बबर खान ने उसे पूरी बस्ती के सामने नंगा कर दिया, इसकी इज्ज़त उतार ली है। पीर मुहम्मद और बबर खान के चरित्र ही प्रभाव डालते हैं। पात्र–चित्रण की दृष्टि से यह कहानी अनावश्यक रूप से तीन पीढ़ियों को लेकर चलती है।

**3. कथोपकथन** – 'परदा' कहानी में कथोपकथन कम है। लेखक ने अधिकतर कथा, वर्णन शैली में प्रस्तुत की है। इस कहानी में बबर अली खान के संवाद अधिक आकर्षक बन पड़े हैं, क्योंकि उसका उच्चारण अलग तरह का है। एक उदाहरण प्रस्तुत है – माकूल वजह बता देने पर भी खान बहुत देर गुर्राता रहा, 'अम वतन चोड के परदेस में पड़ा है, ऐसे रूपिया चोड देने का वास्ते ? अमारा भी बाल–बच्चा है। चार रोज में रूपिया नहीं देगा तो अम तुम्हारा..... कर देगा।' इसी प्रकार जब पीर बक्श उधार लेने जाता है तो लोग उसे टका सा जवाब देते हुए देते है, "मियाँ, पैसे कहां इस ज़माने में!" दूसरा कहता "पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम!" खान का अंतिम संवाद तो मार्मिक है, यथा – "अम तुमारा दुआ क्या करेगा ? तुमारा खाल क्या करेगा ? उसका तो जूता भी नई बनेगा।

तुमारा खाल से तो यह टाट अच्छा।" यह कहकर वह डयोढ़ी पर लटका परदा खींचकर गिरा देता है। इसी के साथ चौधरी साहब की लाज का परदा भी मानों गिर गया। परदा कहानी में कथोपकथन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है परंतु जितने भी हैं वे पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल होने के साथ कहानी को आगे बढ़ाने वाले तथा पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने वाले हैं। कहानी वर्णात्मक शैली में लिखी गई है।

**4. देशकाल अथवा वातावरण** – कोई भी कहानी किसी विशेष सामाजिक परिवेश में विकसित होती है। परदा कहानी का परिवेश आज़ादी से पूर्व के भारत का उत्तरी क्षेत्र हे। मुस्लिम परिवेश को लेकर लिखी इस कहानी में दादा चौधरी की तीन पीढ़ियों की कहानी कही गई है। चौधरी पीर बक्श के दादा का भी जिक्र है और कहानी उसी के परिवार को मध्य में रखकर चलती है। शिक्षा के गिरते स्तर, बढ़ती महँगाई, पर्दा प्रथा तथा बेरोज़गारी और गरीबी में डूबे परिवार की यह मार्मिक कहानी है जो तत्कालीन परिवेश को हमारे सामने लाती है। गंदी बस्ती का वातावरण जहाँ पीर बक्श का परिवार रहता है, निम्न शब्दों में उभर कर आया है, "चौधरी पीरबक्श को मकान सितवाँ की कच्ची गली में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रूपए था। आस–पास गरीब लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों–बीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से निरंतर टपकते पानी की काली धार बहती रहती थी, नाली के किनारे घास उग आयी थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते थे। सामने रमजानी धोबी की भट्टी थी जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबले कपड़ों की गंध उड़ती रहती थी। दायीं ओर नागरा बनाने वाले बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते थे।" इस प्रकार कहानी का परिवेश साकार हो उठा है।

**5. भाषा–शैली** – यशपाल जी प्रगतिवादी लेखक हैं। उनकी भाषा सरल एवं संप्रेषणीय है। प्रायः आम आदमी द्वारा बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग अधिक करते हैं। भाषा को पात्रानुकूल बनाने के लिए उनकी शिक्षा, आयु तथा परिवेश का ध्यान रखते हैं। प्रस्तुत कहानी के सारे पात्र मुस्लिम परिवेश से आये हैं इसलिए उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। भाषा का यह नमूना देखा जा सकता है–

"जान–पहचान के कई आदमियों के यहाँ गये। इधर–उधर की बातचीत कर वे कहते, "अरे भाई, हों तो बीस आने पैसे दो एक रोज के लिए देना। ऐसी ही ज़रूरत आ पड़ी है।"

"मियाँ, पैसे कहां इस ज़माने में!" उत्तर मिलता, "पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया है।" भाषा मुहावरेदार है।

**6. उद्देश्य** – यशपाल का सम्पूर्ण लेखन सोद्येश्य लेखन है। समाज की सोच में परिवर्तन लाना, समाज को बदलना ही उनका लक्ष्य है। इस कहानी में पीर बक्श के परिवार की कहानी सहै जिसकी आर्थिक हालत इनती गिर गई कि बच्चे फाके करने को विवश हो गए, बीबी और बच्चियाँ चीथड़े लपेट जैसे तैसे इज्ज़त ढांपती है और घर की डयोढ़ी पर दरी का परदा ही उनकी इज्ज़त बचाता है। सूदखोर बबर खान जब वह पर्दा भी गिरा देता है तो परिवार की विवशता, निर्धनता सबके सामने आ जाती है। इस कहानी के माध्यम से लेखक बताना चाहता है कि देश में शिक्षा का स्तर निरंतर गिरा, बेकारी और गरीबी बढ़ती चली गई। कर्ज़ लेकर जीना अभिशाप से कम नहीं। बाहर आना जाना बन्द हो गया। मुंशी जी मुहल्ले के नल से पानी भरने के लिए भी घर की औरतों को न भेजकर यह काम खुद ही किया करते थे। लेखक व्यंग्यपूर्वक लिखता है कि –

मुहल्ले में चौधरी पीबक्श की इज्ज़त थी। उस इज्ज़त का आधार था, घर के दरवाज़े पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सलामत रहता था। कभी बच्चों की खींच–खांच या बेर्दद हवा के झोकों से उसमें छेद हो जाते तो परदे की आड़ में जनाने हाथ सुई–धागा लेकर उसकी मुरम्मत कर देते थे।" पीरबक्श की गरीबी का यह हाल था कि परदा फट जाने पर आठ आने का टाट का पर्दा खरीद कर टांगने की हैसियत नहीं रही। खानदानी निशानी, पुरानी दरी को ही पर्दे की जगह टांगकर काम चलाया गया।

**7. सुदखोर बबर खान के चंगुल में फंसा पीरबक्श** – पीर बक्श ने देखा था कि उस बस्ती में पंजाबी खान ने अनेक लोगों को कर्ज़ दे रखा था। हाथ में दो हाथ का डंडा लिए वह कर्ज़ उगाहने मुहल्ले में आता रहता था। बीबी की बीमारी के कारण चार आने रूपया प्रतिमाह पर उसने भी बबर खान से चार रूपए कर्ज़ ले लिए। सवा रूपए की आखिरी किश्त देने में असमर्थ था क्योंकि परिवार भूखों मर रहा था। बाजरा उबाल कर पीया जा रहा था और दो पैसे की चौलाई भूनकर पूरा परिवार पेट पालता था। फाके भी करने पड़ते थे। पीर बक्श, बबर अली खान से छुपता फिरता, उसकी मिनते करता, उससे बहाने बनाकर कुछ दिनों की मोहलत मांगता रहा परंतु कर्ज़ तो आखिर देना ही था। एक दोपहर बबर अली खान ने पीरबक्श को घर पर आ दबोचा। खरी–खोटी सुनाई, अपशब्द कहे और यहाँ तक कह दिया कि उसकी चमड़ी भी उसके किसी काम की नहीं जिससे जूती तक नहीं बन सकती। अन्ततः क्रोध में बबर अली खान उसकी डयोढ़ी पर लटका पर्दा खींचकर गिरा देता है। पीरबक्श उस परदे के गिरने के साथ ही मानों सारी बस्ती के सामने नंगा हो जाता है। जिस इज्ज़त को वह ढक कर बचाता आया था वह उतर गई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि पीरबक्श अपनी सारी कोशिश के बावजूद अपनी इज्ज़त नहीं बचा सका।

### 11.3.2 'परदा' कहानी का सार

प्रस्तुत कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसकी आर्थिक स्थिति निरंतर गिरती जाती है और अन्ततः उसके एक सदस्य पीरबक्श को उधार लेना पड़ता है। उधार न चुकाने पर उसकी इज्ज़त पर पड़ा परदा भी अन्ततः उठ जाता है और वह अपने ही समाज में अत्याधिक अपमानित महसूस करता है। कहानी का सार निम्न प्रकार से है–

चौधरी पीरबक्श के दादा ने एक छोटा सा पक्का घर बनवाया था। वे चुंगी कार्यालय में दारोगा थे और उस सस्ते जमाने में 40 रूपया वेतन पाते थे। उनके घर के भीतरी भाग में 'जनाना' अर्थात् स्त्रियों के रहने की जगह थी, उसके आगे बैठक थी जिसमें वे बैठकर हुक्का पीते और पुरूष मित्रों से बतियाते थे। बैठक और जनाना के बीच परदा टंगा रहता था जो उनकी सम्पन्नता का सूचक था। उनके दो लड़के थे चौधरी फजल कुर्बान और इलाही बक्श। फज़ल कुर्बान रेलवाई में काम करता था, उसकी तीन बेटियाँ और चार बेटे हुए। दूसरे लड़के इलाहीबक्श ने भी एंट्रेंस पास की थी और डाकखाने में काम पा गए थे। उनके चार बेटे और दो लड़कियाँ हुई। यह कहानी इन्हीं इलाहीबक्श के चौथे बेटे पीरबक्श के परिवार की है।

पीर बक्श अपने चारों भाइयों में सबसे छोटा और सबसे कम पढ़ा–लिखा था। परिवार में सदस्य बढ़ जाने पर उसे अपनी पुश्तैनी हवेली छोड़कर सितवां की कच्ची गन्दी बस्ती में सुरजु पांडे का मकान किराये पर लेना पड़ा जिसका किराया दो रूपये मासिक था। पीर बक्श का कच्ची गली में बना घर एक गन्दी बस्ती में था। उसके आसपास धोबी, चमड़े का काम करने वाले तथा अन्य कामगार रहते थे। उबलते कपड़ों से सज्जी (कपड़े धोने का सोडा) तथा कच्चे चमड़े की बदबू आती थी। पानी का नल जहाँ लगा था वहाँ घास उगी थी, गन्दगी चारों ओर फैली थी तथा मक्खी मच्छरों का राज था। पीर बक्श तेल मिल में मुंशी का काम करता था। प्राइमरी पास पीरबक्श इस बस्ती में एकमात्र पढ़ा–लिखा व्यक्ति था। उसके घर की डयोढ़ी पर परदा टंगा रहता था। उसका वेतन मात्र 12 रूपये मासिक था जो पन्द्रह साल में कछुए की चाल से बढ़कर 18 हो गया था। पीर बक्श का परिवार वेतन की अपेक्षा तेज़ी से बढ़ा था।

उसके तीन लड़के और दो लड़कियाँ हुई। बूढ़ी माँ भी उसी के पास रहती थी क्योंकि अन्य तीनों भाइयों में से कोई उसे रखने को तैयार न था। इस प्रकार पीरबक्श के घर में आठ प्राणी रहते थे। घर में घोर दरिद्रता छाई थी। अठारह के वेतन में गुजारा मुश्किल था इसलिए समय–समय पर उसे घर की वस्तुएं गिरवी रखकर उधार लेना पड़ता था। एक रूपये पर चार आने मासिक का ब्याज देने पर उसके लिए यह संभव ही न था कि गिरवी रखी वस्तु छुड़वा पाए। घर की सारी वस्तुएं धीरे–धीरे निकल गईं। घर की इज्ज़त बचाने वाला एकमात्र

परदा भी फट गया था। बाज़ार से टाट का परदा आठ आने का आता था जिसे खरीदने की सामर्थ्य उसमें न थी। पुश्तैनी दरी को ही उसने परदे की जगह लटका दिया। पीरबक्श की माँ, पत्नी और दोनों लड़कियों को कभी किसी ने मुहल्ले में आते–जाते नहीं देखा था। वे परदे में ही रहती थी। पानी भरने के लिए भी पीर बक्श ही बाल्टी उठाकर नल पर आता था। मुहल्ले में उसकी इज्ज़त थी। घर के लोग परदे के पीछे रहते थे और बस्ती के लोग उसे सफेदपोश, इज्ज़तदार मुंशी मानते थे।

पीरबक्श की गरीबी की हालत यह थी कि उसका कुरता–पजामा फट गया था, जगह जगह थेगलियाँ लगी थीं परंतु मारकिन का नया कुरता–पजामा खरीदना संभव न था। घर की औरतों के वस्त्र फट कर चीथड़े हो रहे थे इसलिए उनके लिए घर से बाहर आना संभव ही नहीं रहा था। घर के किवाड़ टूट कर गिर गए परंतु मकान मालिक, सुरजु पांडे ने कह दिया कि वह कुछ नहीं करेगा, पीरबक्श चाहे तो मकान खाली कर दे। रात को किवाड़ जैसे तैसे खड़े कर दिए जाते परदा ही घर की इज्ज़त का रक्षक रह गया था।

सितवां बस्ती के गरीब लोग पठान बबर खान से प्रायः उधार लिया करते थे। वह कठोरता से कर्ज़ वसूल करता था। पीरबक्श ने भी उससे चार रूपये का उधार लिया। चार आने प्रति रूपया प्रति माह का ब्याज तय हुआ। आठ महीनों में यह कर्ज सवा रूपये की मासिक किश्तों में वापिस किया जाना था। पीरबक्श ने जैसे तैसे सात महीने तो एक रूपया प्रतिमाह की किश्त लौटा दी परंतु अंतिम किश्त न दे सका। पत्नी बीमार थी। महँगाई के कारण बाजरे की रोटी भी खानी मुश्किल हो रही थी। बच्चे फाके कर रहे थे। चौलाई को भून कर खाते या बाजरा उबाल कर परिवार द्वारा पिया जात था। बीमार पत्नी को गेहूँ की रोटी देनी ज़रूरी हो गई थी। प्याज, नमक, धनियाँ आदि खरीदना उसके लिए कठिन हो गया था। बबर अली को पीरबक्श ने मिन्नत करके मना लिया कि वह एक माह की रियायत दे दे। अगले महीने भी परिवार के हालात नहीं सुधरे। बबर अली बार–बार चक्कर काटने लगा। उस माह पेशगी के रूपये काटकर पीरबक्श को मात्र चार रूपये मिले थे जिसमें वे सवा रूपया उधार चुकाने में देना उसको असंभव लगा। बबर खान से बचने के लिए पीर बक्श बहाने बनाता और उसके घर आने के समय वह घर से दूर चला जाता। आखिरकार एक दिन दोपहर के पश्चात् बबर खान घर आ धमका। पीरबक्श घर पर ही था। बबर खान ने उसे अपशब्द कहे, उसके पुरखों को बुरा–भला कहा। पीर बक्श से उसने गुस्से में कहा कि जब उधार नहीं चुका सकता तो घर में परदे टांग कर इज्ज़तदार व्यक्ति की तरह रहने का ढोंग क्यों करता है। उसने यह कहते हुए कि वह परदा ही उधार के बदले ले जाएगा, परदा खींच कर गिरा दिया। परदे के पीछे का दृश्य करूण था। परिवार की अधनंगी, चीथड़ों में लिपटी औरतें आंगन में खड़ी, कांप रही थी। परदा गिरते ही वे ओट लेने भागी। बबर खान भी उस दृश्य को देखकर शर्म से गड़ा गया और वहाँ से चला गया। मुहल्ले के सामने मुंशी पीरबक्श की गरीबी उजागर हो गई थी। अब उसमें परदा टांगने की हिम्मत न रही थी। शायद अब उसकी ज़रूरत भी न थी।

### 11.3.3 पीरबक्श का चरित्र–चित्रण

प्रस्तुत कहानी में एक ही परिवार की तीन पीढ़ियों का उल्लेख है। कहानी पीर बक्श चौधरी के परिवार की है। उसके पिता इलाही बक्श थे जो चालीस रूपए वेतन पाते थे। पीर बक्श के दादा ने एक छोटा सा पक्का घर भी बनवाया था। पीरबक्श के चाचा का परिवार काफी बड़ा था। उसके अपने भी तीन भाई और दो बहनें थीं। यही कारण है कि उसे पुश्तैनी घर छोड़कर किराए का घर लेना पड़ा था।

**सफेदपोश नौकरी और आर्थिक तंगी**– पीरबक्श कम पढ़ा–लिखा अर्थात् मात्र प्राइमरी पास था परंतु फिर भी हाथ से काम करना छोटेपन की निशानी मानता था। वह तेल की मिल में बाहर रूपए की मुंशीगिरी करने लगा। पाँच बच्चों और माँ तथा बीबी का गुज़ारा इतने पैसे में हो नहीं सकता था इसलिए एक–एक कर सारी वस्तुएँ गिरवी रखी गई जो कभी लौटकर घर नहीं आई। लेखक व्यंग्यपूर्वक उसकी मानसिकता पर टिप्पणी करता है कि –

"तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेद पोश खानदान की इज्ज़त का पास तो था। मज़दूरी और दस्तकारी उनके करने की चीज़ न थी। वह चौकी पर बैठते, कलमदवात का काम था।" पीरबक्श का परिवार बढ़ता गया और आमदनी ज्यों की त्यों रही परिणामस्वरूप घर में दरिद्रता बढ़ी। कभी पेशगी तनख्वाह लेकर, कभी सामान गिरवी रखकर कभी कर्ज़ लेकर काम चलाने लगा। वह गंदी बस्ती में एकमात्र पढ़ा–लिखा आदमी था इसलिए बस्ती के लोग उसे मुंशी जी कहकर आदर देते परंतु उसकी हालत अपने आसपास रहने वाले कामगारों से बेहतर न थी। वे सब बबर अली के कर्ज़ से दबे थे और अंततः पीर बक्श को भी उसी से कर्ज़ लेना पड़ा।

**घर की इज्ज़त और परदे वाला घर**– पीरबक्श अपनी आर्थिक स्थिति को ड्योढ़ी के परदे के पीछे छुपाए रहते थे। पूरी बस्ती में वही एक पढ़े–लिखे सफेद पोश थे जिसकी ड्योढ़ी पर परदा था। सब लोग उन्हें चौधरी जी, मुंशी जी कहकर सलाम करते थे। उनके घर की औरतें घर से बाहर न जाती थी। लड़कियाँ भी चार–पाँच बरस की हुई तो उनका भी घर से बाहर निकलना बंद हुआ।

### 11.3.4 बबर अली खान का चरित्र–चित्रण

प्रस्तुत कहानी में बबर अली खन एक सूदखोर पठान के रूप में चित्रित है। वह ऐसा साहूकार है जो बिना कुछ गिरवी रखे भी ज़रूरतमंदों को कर्ज़ दे देता है। कर्ज उगाहने में वह कठोर हें प्रायः अपना दो हाथ का डंडा लिए वह कर्ज़दारों के घर पर कर्ज़ उगाहता हुआ घूमता रहता है। सितवां बस्ती के अधिकांश गरीब लोग उसके कर्ज़दार हैं। वह रूपए पर चार आने महीना के हिसाब से ब्याज लेता है। एक माह में इस प्रकार पच्चीस प्रतिशत और वार्षिक 300 प्रतिशत ब्याज बनता है।

चौधरी पीरबक्श बीबी की बीमारी और बच्चों की भूख की लाचारी से परेशान था। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के लिए उसने खान से चार रूपए कर्ज़ लिए। खान ने उसे शरीफ मुसलमान भाई समझकर एक रूपया महावार की किश्त पर धन लौटाने की रियायत भी दे दी। आठ किश्तों में से सात किश्तें तो वह दे देता है परंतु अंतिम किश्त नहीं दे पाता। खान बबर अली उसके साथ कोई रियायत नहीं करता और कर्ज़ उगाहने के लिए बार–बार उसके घर पर जाता है। वह उसे गालियाँ देता है, उसका अपमान करता है। जब पीरबक्श उसे दुआएँ देता है, मिन्नतें करता है, अपनी खाल की जूती तक बनाने की पेशकश करता है तो वह कठोरता से कहता है, "आम तुम्हारा दुआ का क्या करेगा, अम तुम्हारा खाल क्या करेगा; उसका तो जूती भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्छा।"

खान, कर्ज़ उगाहने में कठोर अवश्य है परंतु मानवीय गुणों से हीन नहीं है। महिलाओं की वह इज्ज़त करता है। जब परदा गिराने के बाद उसे आंगन में पीर अली की चीथड़ों में लिपटी, अधनंगी महिलाएँ दिखती हैं तो लेखक कहता है, "उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूक कर परदे को आंगन में वापिस फैंक, क्रुद्ध निराशा में उसने कहा – लाहौल बिला.....।" इतना कहकर वह लौट गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि खान एक कठोर सूदखोर व्यक्ति है, परंतु उसमें कुछ मानवीयता भी विद्यमान है।

'परदा' कहानी में बबर अली खान एक सूदखोर पठान के रूप में चित्रित है। वह ऐसा साहूकार है जो बिना कुछ गिरवी रखे भी जरूरतमंदों को कर्ज दे देता है। कर्ज उगाहने में वह बड़ा कठोर है। प्रायः अपना दो हाथ का डंडा लिए वह कर्जदारों के घर पर कर्ज उगाहता हुआ घूमता रहता है। सितवां बस्ती के अधिकांश गरीब लोग उसके कर्जदार हैं। वह रुपए पर चार आने महीना के हिसाब से ब्याज लेता है। इस प्रकार एक माह में पच्चीस प्रतिशत और वार्षिक 500 प्रतिशत ब्याज बनता है।

चौधरी पीरबकश बीबी की बीमारी और बच्चों की भूख की लाचारी से परेशान था। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के लिए उसे बबर खान से चार रुपए कर्ज लिए। खान ने उसे शरीफ मुसलमान भाई समझकर एक रुपया महावार की किश्त पर धन लौटाने की रियायत भी दे दी। आठ किश्तों में से सात किश्तें तो वह दे

देता है परंतु अंतिम किश्त नहीं दे पाता। बबर अली खान उसके साथ कोई रियायत नहीं करता और कर्ज उगाहने के लिए बार–बार उसके पर पर जाता है। यह उसे गलियों देता है, उसका अपमान करता है। जब पीरबक्श उसे दुआएँ देता है, मिन्नतें करता है, अपनी खाल की जूती तक बनाने की पेशकश करता है तो भी वह कठोरता से कहता है, **''आम तुम्हारा दुआ का क्या करेगा, अम तुम्हारा खाल का क्या करेगा, उसका तो जूती भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्छा।''**

खान, कर्ज उगाहने में कठोर अवश्य है परंतु मानवीय गुणों से हीन नहीं है। महिलाओं की वह इज्जत करता है। जब परदा गिराने के बाद उसे आंगन में पीर अली की चीथड़ों में लिपटा, अधनंगी महिलाएँ दिखती हैं तो लेखक कहता है. **''उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से चूक कर परदे को आंगन में वापिस फेंक, कुद्ध निराशा में उसने कहा–लाहौलबिला .।''** इतना कहकर वह लौट गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि खान एक कठोर सूदखोर व्यक्ति है, परंतु उसमें कुछ मानवीयता भी विद्यमान है।

### स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न

1. पीरबक्श के पिता का क्या नाम था ?
2. 'पीरबक्श' के कितने पुत्र थे ?
3. परदा कहानी का नायक कौन है ?
4. 'झुण सच' किए विधा की रचना है ?
5. तेल मिल में काम करने पर पीरबवश को कितने रुपए महीना मिलता था ?
6. पीरबक्श किस कक्षा तक पढ़ा था ?

### 11.4 सारांश

यशपाल की कहानी 'परदा' दरअसल मध्यवर्गीय समाज की विडंबनाओं की कहानी है। जिन लोगों की सारी कोशिश हमेशा अमीर बनने की होती है, जो खुद से रईस लोगों की दिनचर्या का पालन करते हैं उनके जैसा बनना चाहते हैं और अपनी गुरबत को छिपाते रहते हैं। इस कहानी में एक ऐसे गरीब मुस्लिम परिवार का चित्रण है जो निर्धन होते हुए थी अपने पुराने परिवारिक गौरव को बचाए रखने की कोशिश करता है। यह कहानी मनुष्य के मन की खोखली कल्पनाओं का पर्दाफाश करने वाली है।

### 11.5 कठिन शब्दावली

**भय** – डर

**बेसुध** – बेहोश

**घृणा** – नफरत

**फिक्र** – चिंता

### 11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. इलाहीबक्श
2. चार
3. पीरबक्श
4. उपन्यास
5. बारह रुपये
6. प्राइमरी

## 11.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामचन्द्र तिवारी – गद्य साहित्य
2. यशपाल – परदा

## 11.8 सात्रिक प्रश्न

1. यशपाल कृत 'परदा' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'परदा' कहानी की तत्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।
3. पीरबक्श का चरित्र–चित्रण कीजिए।

*****

# इकाई—12
# उषा प्रियंवदा : जीवन परिचय

**संरचना**

12.1 भूमिका
12.2 उद्देश्य
12.3 उषा प्रियंवदा : जीवन परिचय
12.3.1 व्यक्तित्व
12.3.2 कृतित्व
स्वयं आकलन प्रश्न
12.4 सारांश
15.5 कठिन शब्दावली
12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
12.7 संदर्भित पुस्तकें
12.8 सात्रिक प्रश्न

## 12.1 भूमिका

इकाई ग्यारह के अंतर्गत हमने यशपाल रचित कहानी 'परदा' का पाठपरक अध्ययन किया, जिसमें कहानी की तात्विक समीक्षा, सार और पात्रों के चरित्र—चित्रण का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई में हम उषा प्रियंवदा के जीवन परिचय का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 12.2 उद्देश्य

इकाई बारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि —

1. उषा प्रियंवदा का जन्म स्थान कहाँ है ?
2. उषा प्रियंवदा की प्रसिद्धि का आधार कौन सी कहानी है ?
3. उषा प्रियंवदा की मृत्यु तिथि क्या है?
4. रुकोगी नहीं राधिका किसका उपन्यास हैं ?

5 उषा प्रियंवदा के कौन—कौन से कहानी—संग्रह है ?

## 12.3 उषा प्रियंवदा का जीवन परिचय

### 12.3.1 व्यक्तित्व

**जन्म तथा पारिवारिक पृष्ठ भूमि** : उषा प्रियंवदा का जन्म लगभग 24 दिसम्बर, 1930—31 को कानपुर (उत्तर प्रदेश) के एक सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ था। इनकी माता जी का नाम प्रियंवदा देवी और इनके पिता, जो शहर के मशहूर वकील थे, की मृत्यु इनके बाल्यावस्था में ही हो चुकी थी। दो बड़ी बहने कमला और कामिनी, दो बड़े भाई शिब्बन लाल और होरी लाल सक्सेना के बाद परिवार की सबसे छोटी सन्तान उषा सक्सेना थी। इनका बाल जीवन कानपुर, लखनऊ और फतेहगढ़ में व्यतीत हुआ। कानपुर में इनका ननिहाल है। उषा प्रियंवदा ने स्वयं लिखा कि मैं कानपुर जैसे भीड़ भरे नगर में मिल की चिमनियों के धुएँ में मटमैले आकाश के नीचे पली हूँ। इनके दादा मेधावी शिब्बन लाल प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार हो गये। उन्नीस सौ बयालिस के क्रान्ति आन्दोलन के दौरान कई बार वर्षों तक जेल यात्रा भी की। स्वतन्त्रता मिलने के

बाद जेल से छूट कर दादा संसद के सदस्य हो गये। उषा की पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यन्त दयनीय थी। कानपुर में इनका सम्मिलित परिवार था। कानपुर वाले बड़े से शानदार घर पर पिता के चाचा का अधिकार था, उसमें इनकी युवा एवं विधवा माँ, किसी भी सन्तान का कोई हिस्सा नहीं था। पूरा घर चाचा की पत्नी को मिल गया था, क्योंकि वे भी विधवा थी और उन्हें बेटे पालने थे। एक आश्रयहीन महिला के प्रति भारतीय सामाजिक क्रूरता एवं कठोरपन का वीभत्स रूप उषा ने अपने बाल्य जीवन में ही अपनी माँ के जीवन में प्रत्यक्षतः देखा और समझा था। माँ की हर अवज्ञा और अपमान को देख कर उथा का बाल ह्रदय फटने लगता, उनका मन तीक्ष्ण तीरों से बिंध जाता पर छटपटाने और चुप रहने के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं था। धीरे–धीरे बड़े होने पर जब अनुभव से दिमाग विकसित होने लगा तब उषा को बात समझ में आई कि माँ के प्रति निरादर, निष्ठुर व्यवहार भारतीय परम्परा की रूढ़िवादी मान्यता है, जिसमें एक स्त्री को स्त्री मात्र ही होने से हीन और शुद समझा जाता है। एक परिपाटी थी, एक रूढ़िग्रस्त अचेतना और अज्ञान, जिसमें किसी स्त्री का गुण, शील न देखकर केवल यह देखा जाता या कि उसका पति कौन है, क्या है ? ये मायने रखता था। इसलिए आज भी उनके मानस पटल पर नारी के प्रति इस असभ्य व्यवहार की छाप पड़ी हुई है, जो इनकी प्रारम्भिक कहानियों में प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती है। किसी भी स्त्री की किसी प्रकार अपने 'स्व' की पहचान, अपने अनुसार जीवन यापन करने की स्वतन्त्रता तो दशकों बाद मिली। ननिहाल (कानपुर) में भी पुत्र–पुत्री या स्त्री–पुरुष की उच्चता निम्नता की भेद भावना चरम सीमा पर थी। बचपन से ही उषा ये सब देख कर आक्रोशित हो जाती थी कि में क्यों भाइयों के कार्य और गतिविधियों से अलग रखी जाती हूँ। जवाब मिलता था क्योंकि तुम लड़की हो. विचित्र प्रकार की खिन्नता से मन भर उठता था।

**शिक्षा एवं शिक्षण** : उषा पढ़ने–लिखने में बहुत तेज थी। बचपन से ही पढ़ने की शौकीन उषा ने कई प्रसिद्ध कृतियों को दीमक की तरह चाट डाला था। 'चन्द्रकान्ता संतति', 'माधवी कंकण', 'शंशाक', 'आनन्द–मठ' से पढ़ने का नशा बढ़ता गया। प्रेमचन्द, कौशिक, भगवती चरण वर्मा आदि के उपन्यासों को पढ़ने पर उन्हें पहली बार अनुभव हुआ कि स्त्री जाति की परवशता उसे समाज से मिली है। उषा के ह्रदय में विद्रोह और आक्रोश के जो बीज रूप ये वे धीरे–धीरे प्रकट होने लगे थे। लेकिन वे सामाजिक दायरों में अब भी बँधी हुई थी। उनकी गतिविधियों मर्यादित और संकुचित थी, उनका दृष्टिकोण सीमित या। उषा की प्रारम्भिक कहानियों में अधिकतर स्त्री पात्र समाज और परिस्थितियों से उबर नहीं पाये, उनमें एक प्रकार की हताशा भरी स्वीकृति थी। इसका मूल कारण उषा की बाल्य जीवन में पटित नारी की उपेक्षित दशा थी।

**उषा प्रियंवदा को शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त हुई उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण–**

1. 1952 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में एम.ए. और 1955 में वहीं से प्रेमचन्द के उपन्यासों पर पी–एच.डी.। इसी दौरान रिसर्च फैलो की हैसियत से विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य।
2. तीन साल 1959–1961 के दौरान दिल्ली के लेडी श्री राम कॉलिज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन कार्य।
3. 1961–62 में फुलब्राइट और स्मिथ–मुन्ड्ट स्कॉलरशिप पर अमेरिका प्रस्थान किया, जहाँ ब्लूमिंगटन, इंडियाना विश्वविद्यालय, यू.एस.ए. में दो वर्ष पोस्ट–डॉक्टरल स्टडी की।
4. 1963–72 में विस्कासिन विश्वविद्यालय, मैडीसन में साउथ एशियन स्ट्डीज विभाग के एसिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में नियुक्त होकर हिन्दी भाषा और साहित्य में अध्यापन कार्य।
5. इंडियन स्ट्डीज विभाग से संलग्न रहते हुए 1977 में उन्हें 'फुल प्रोफेसर ऑफ इण्डियन लिट्रेचर' के रूप में पदोन्नति।
6. सन् 2002 में अवकाश लेकर अब अपना पूरा समय लेखन, अध्ययन और बागवानी में बिता रही है।

**सृजन का आरम्भ और पहली कृति :** इन सब उथल पुथल और विरोधी दिशाओं में तनाव के बावजूद उषा के अन्तर्मन में कब एक कहानीकार को जन्म मिल गया, ये खुद उषा न जान पायी। उषा की पहली कहानी बालिका विद्यालय की स्कूल पत्रिका में छपी थी उदासी भरी, करूण और दुःखद अन्त के साथ। शायद आठवीं या नवीं कक्षा में पढ़ने वाली, अन्तर्मुखी, चुप रहने वाली, एकान्त प्रिय लड़की के अनुभवों का जीवन दर्शन इसके अतिरिक्त क्या हो सकता था। जीवन की इस प्रौढ़ावस्था में ही उषा ने यही देखा या दुःख को चुपचाप घूँट लेना, अन्याय के बावजूद कोई प्रतिक्रिया न दिखाना, परिस्थितियों को रो धोकर स्वीकार कर लेना, सीमित दायरों में बद्ध रहना, उषा ने अपने बाल्य–काल में हर ओर यही देखा था और यही स्थितियाँ उषा की सारी प्रारम्भिक कहानियों में चित्रित हुई है। उषा के लेखन का यह प्रथम सोपान था, उस समय की जनप्रिय पत्रिका 'सरिता', जिसमें 'उषा सक्सेना' के नाम से इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थी और इसके लिए उषा को बीस रूपये हर कहानी के पारिश्रमिक के रूप में मिलते थे। फिर ये नियमित रूप से लिखती रही। इनके नाम के सन्दर्भ में एक बात यह है कि 'उषा' नाम उस समय प्रचलित होने के कारण कुछ भ्रामक स्थितियाँ उत्पन्न होने लगी इनकी लेखन क्रिया पर बुरा असर पड़ने लगा। इसलिए 'उषा सक्सेना के स्थान पर उषा ने अपने नाम के साथ माँ का नाम 'प्रियंवदा' जोड़कर अपना नाम 'उषा प्रियंवदा' रख लिया और इस उषा प्रियंवदा में एक ललक थी, एक लौ थी, लिखने की और कुछ अच्छा लिखने की। उषा को इलाहाबाद जाकर पढ़ने को इनके दादा ( बड़े भाई) ने प्रोत्साहित किया। इनके अध्ययन विषय ये अँग्रेजी, हिन्दी और फिलॉसफी। इलाहाबाद में जाकर उषा को कवियों, लेखकों और समीक्षकों का जैसे अथाह सागर मिल गया। रघुपति सहाय 'फिराक', हरिवंशराय बच्चन और सुमित्रानन्दन पंत, कहानी के सम्पादक श्रीपतराय साथ ही अन्य प्रसिद्ध लेखकों का भरपूर संरक्षण मिलने से उषा प्रियंवदा को नये–नये विषय, नई–नई पुस्तकें पत्रिकाओं की जानकारियों और अपने व्यक्तित्व और कल्पनाओं को परिपक्व एव समृद्ध बनाने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ। उनकी वाचालता, हाजिर जवाबी और विनोदप्रियता में निखार आ गया। विशिष्ट साहित्यकारों के अतिरिक्त इलाहाबाद में एक बार फिर नया परिवेश, मानसिक परिपक्वता और गम्भीर पुस्तकों के अध्ययन से उषा के अन्तर्मन में एक नई भावभूमि का सृजन हुआ, जिसकी पहली पहचान 'कल्पना' में प्रकाशित हुई कहानी 'पूर्ति' थी और यहाँ से प्रारम्भ हुआ 'उषा प्रियंवदा' नाम से लेखन कार्य।

'वापसी' कहानी उषा प्रियंवदा ने इलाहाबाद में लिखी, यह कहानी 'नई कहानियों में प्रकाशित हुई और नई कहानी उद्‌घोषित भी हुई। इसी दौरान उपा फुलब्राइट स्कॉलर प्रोग्राम के अन्तर्गत अमेरिका के लिए चल पड़ी थी। इनके सामने कई विकल्पभी ये पहला विकल्प उषा इलाहाबाद में रहकर पूरी तरह हिन्दी लेखिका बन जाए जिस तरह हिन्दी के तमाम कवि और लेखक केवल अपनी लेखनी के बलबूते ही जीवन यापन कर संघर्ष कर रहे ये, लेकिन उषा इस बात से बिलकुल भी सहमत नहीं थी कि जीवन में उन्हें कभी भी बिना छत या दाना–पानी के रहना पड़े और न ही इतना आत्मविश्वास ही या कि केवल कहानी–उपन्यास लिखकर ही वे अपने जीवन का निर्वाह कर सकें।

दूसरा विकल्प : विवाह का या परन्तु तय किया हुआ विवाह उषा को बिल्कुल भी ग्राह्य नहीं था और उनके जीवन में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं था जिसके साथ वे पूरी जिंदगी बिताने का कदम उठाती इसलिए इस विकल्प को भी उषा ने गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। अमेरिका जाकर आगे पढ़ने के निर्णय से परिवार में कोई भी प्रसन्न नहीं था, परन्तु पहली बार उषा ने बड़ों की पसन्द–नापसन्दगी की परवाह किये बगैर एकदम अकेले जाकर रहने और पढ़ने का निर्णय ले लिया। उषा की जिन्दगी का यह पहला और अहम् निर्णय या, जिसमें उन्होंने अपने को स्वार्थी या पलायनवादी न समझकर अपने व्यक्तित्व को और समृद्ध करके अपने बौद्धिक विकास के लिए लिया। विदेश जाते समय उपा के मन में एक रूपरेखा बनी हुई थी कि विदेश में अँग्रेजी के बीच रहते हुए भी हिन्दी में लिखना त्यागकर किसी और भाषा में चलताऊ चीजे नहीं लिखेंगी। इसका सारा श्रेय इलाहाबाद

विश्वविद्यालय के विशिष्ट साहित्यकारों विशेषकर रघुपति सहाय 'फिराक' और हरिवंशराय 'बच्चन' को जाता है, जो अँग्रेजी विभाग में पढ़ाते हुए भी उर्दू और हिन्दी में कविताएँ लिखते थे। भारत छोड़ने के उपरान्त उषा के 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' (कहानी संग्रह) भारतीय ज्ञानपीठ से, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (उपन्यास) राजकमल से और प्रारम्भिक कहानियों का संग्रह 'फिर बसन्त आया' सरिता प्रेस से एक ही वर्ष में प्रकाशित हुए। उषा की ये तीनों ही रचनाएँ बहुचर्चित और लोकप्रिय हुई। विदेश जाकर इंडियाना विश्वविद्यालय में अमेरिकन साहित्य पढ़घ्ना, छात्रावास में रहना, नये—नये विषय, नई—नई किताबें पढ़ना, देश—विदेश के विद्यार्थियों के बीच रहना, सब कुछ नया था, साथ ही उत्तेजक और रोचक भी, उषा को अनुभव हो रहा था जैसे उनकी सारी भावनायें पिंजरे से मुक्त हुए पक्षी की तरह पंख पसारकर खुले आकाश में थी, न कोई बंधन, न प्रतिबंध। उषा के अन्दर एक ही जुनून था कि उस विदेशी वातावरण में भारत की सन्तान होने का अभिमान लिए पढ़ाई और परीक्षा में उच्च—स्तरता, जिंदगी में कामयाब होने का हौसला। अमेरिका में अपने पहले वर्ष नये अनुभव और नई हताशाओं के बीच उषा की कथा—यात्रा में एक निश्चित मोड 'एक और विदाई', 'वनवास' आदि कहानियों से आया। दिन—प्रतिदिन जीवन में अनुभवों में वृद्धि होने के कारण उषा की आगे की कहानियाँ भाव स्थल पर दुरूह और उलझी हुई प्रतीत होती है। इसी दौरान उषा प्रियंवदा के जीवन में एक ऐसा व्यक्ति आया, जो इनसे बिल्कुल भिन्न या, रूप, रंग, भाषा, देश सब कुछ, जिसका नाम 'किम निल्सन' था, जिससे उषा प्रियंवदा विवाह करके 'उषा निल्सन' बन गई। उसी वर्ष विस्कांसिन विश्वविद्यालय, मैडीसन में उषा को नौकरी मिल गई। मैडीसन में नये मित्र, नया जीवन, नई—नई चुनौतियों के बीच उपा का लेखन पक्ष कहीं नीचे दब गया फिर भी कभी—कभी लिखने की हुड़क या उमंग से छिटपुट कहानियाँ लिखती गयीं। अमेरिका में प्राध्यापन करना, पढ़ाई करना और अंग्रेजी तथा अमरीकी साहित्य पर शोध करने के साथ ही उन्हें मैडीसन ने 'इंडियन स्टडी' विभाग में भारतीय साहित्य पढ़ाने का अवसर प्रदान हुआ। नई सभ्यता और संस्कृति, नये आचार—विचार, नये प्रकार से गृहस्थी चलाना, भारतीय अतिथियों का सत्कार—भार आदि इन सबके बीच उषा नाम की लेखिका एकदम दब ही गई। उसका अस्तित्व धीरे—धीरे धूमिल होता गया। उस समय उषा प्रियंवदा कहाँ चली गयी ? पता नहीं। तब 'गुनाहो के देवता' के प्रख्यात लेखक और उषा प्रियंवदा के स्नेहिल बन्धु धर्मवीर भारती ने फिर से उस उषा में जान डाली, उसको पुनर्जन्म दिया। भारती जी 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक भी थे और उन्होंने ही उषा को उपन्यास लिखने को बाध्य किया। उथा के मन में भारती के लेखन, सम्पादकीय क्षमता और व्यक्तित्व के प्रति सहज रूप से आदर था, जिसकी प्रेरणा से उषा ने 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास लिख डाला। हड़बड़ी और घसीटरूप से लिखने पर भी यह उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ। इस सबका परिणाम यह हुआ कि उषा की सुप्त और निष्क्रिय लेखनी एक बार फिर जागरूक होकर पटरी पर आ गई अमरीकी जीवन की व्यस्ततायें, विश्वविद्यालय की उठापटक, राजनीति, मौलिक अन्वेषण, आलेखों और समीक्षा पर अधिकाधिक जोर और जीवन के उतार—चढ़ाव भी उसके वेग और रफ्तार को न रोक सकें। गल्प, डायरी, रोजनामचे और कभी—कभी कवितायें भी लिखती थी। पच्चीस वर्ष की डायरियों और जर्नल भी लिख कर एक बक्से में सुरक्षित रखे हुए है। यह सब भी इनके लेखन की एक अभिन्न प्रक्रिया है, जो इनका आत्म—परिचय और पहचान है। अपनी सृजन क्षमता के बारे में उथा प्रियंवदा स्वयं कहती है कि, ''बहुत से पाठक पाठिकायें, मेरी रचनाओं का परिवेश विदेश में होने के कारण उन्हें आत्मकथात्मक समझने लगते हैं, पर ऐसा नहीं है। मैं यही लिखती हूँ जिससे मैं परिचित हूँ यानी भारत और विदेश का परिवेश। मेरे चारों ओर की घटनाये, लोग, उनके जीवन की उलझने और समस्यायें हर समय मेरी सृजनता को प्रभावित करती रहती हैं। उन सबके सम्मिश्रण से पात्र एक आकार लेकर गानस को ऐसा जकड़ लेते हैं कि उन्हें नाम, मानव प्रवृत्तियाँ देकर, विभिन्न घटनाओं को पिरोकर एक कहानी अपने आप बन जाती है. बस उसे लिखने का काम मेरा होता है। मैं अपने प्रति अन्याय करूँगी यदि में किसी—किसी कहानी या पटना में अनायास उतर आये 'स्व' को नकारूँगी।'' आगे उषा कहती है कि, **''मेरी कथा—यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई है। मेरे अन्दर अभी**

**भी तमाम चरित्र, घटनायें, अनुभव शब्दों में अभिव्यक्ति पाने के लिए आतुर हैं। पर आगे क्या लिखा जायेगा, यह तो मेरे अन्दर की अदृश्य सृजन कर्जी के हाथों में है।''** जीवन की विसंगतियों पर इनकी नजर जरूर गई है इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। नये जीवन मूल्यों की वकालत के साथ समसामयिक परिवेश विषयक सच्चाइयाँ सर्वत्र दृष्टव्य है, जहाँ कहानी–विधा विषयक परम्परागत ढाँचे का निषेध व अभिव्यक्ति की नूतनता को सर्वत्र बनाये रखने में लेखिका पुर्णतः सफल रही है. यह एक उल्लेखनीय बात है।

**12.3.2 कृतित्व**

उषा प्रियंवदा की गणना हिंदी के उन कथाकारों में होती है. जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को अनुभूति के स्तर पर पहचाना तथा उनका अंकन करने में अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है। उनके कथा साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूतिप्रवण चित्र है। एक नारी होने के नाते उन्होंने नारी जीवन के कई अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। वास्तव में उनका कथा साहित्य नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का ऐसा बयान है, जिसे शायद ही किसी सबूत की जरूरत हो। उनके नारी– चरित्र स्वयं एक सबूत बनकर हमारे गामने आ खड़े होते हैं। उन्होंने ऐसे हर चरित्र के भावनाशील मनोजगत और आत्मद्वंद्व को बारीकी से पढ़ने–परखने का कार्य किया है और चाहा है कि वह साहस और संघर्ष से अपनी दारूण नियति को बदलने में कामयाब हो।

उषा प्रियंवदा ने अपने साहित्य में आधुनिक काल में हो रहे मूल्य विघटन को यथार्थता से चित्रित किया है। आज का मानव पथभ्रष्ट हो गया है। समाज परिवेश में स्थित अनेक कारणों ने मूल्यों को चकनाचूर कर दिया है। पाश्चात्य सभ्यता एवं भौतिक साधनों के भूलभुलैया में वह जकड़ गया है। उषा प्रियंवदा ने इसी स्थिति का यथार्थ चित्रण अपने साहित्य में किया है, ताकि पाठक आने वाली समस्याओं के प्रति सचेत हो जाए। आधुनिक युग में उषा प्रियंवदा का साहित्य पथप्रदर्शक सिद्व हो सकता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

उषा प्रियंवदा ने कहानी एवम् उपन्यास विधा में अपनी कलम चलायी है। उन्होंने जिन कहानियों और उपन्यासों से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है वे इस प्रकार है।

**कहानी–संग्रह :**

(1) फिर बसन्त आया 1961

(2) रुकोगी नहीं राधिका 1967

(3) शेष यात्रा 1984

(4) भया कबीर उदास 2007

इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य, लोककथा एवं मध्यकालीन भक्ति काव्य पर अनेक लेख जो अंग्रेजी में समय–समय पर प्रकाशित हुए। मीराबाई और सूरदास के अंग्रेजी अनुवाद साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने पुस्तक रूप में प्रकाशित किए। उन्होंने आधुनिक हिंदी कहानियों के भी अनुवाद किए।

**फिर बसन्त आया :**

यह उषा प्रियंवदा का पहला कहानी संग्रह है। इसमें वे कहानियाँ संकलित हैं जो उनके प्रारंभिक दौर में पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। संग्रह की पहली कहानी 'मेनका : विवाह की समस्या को लेकर लिखी गई है। विनोद की चाची स्वयं अत्यंत खूबसूरत हैं। अतः वह अपने तीनों बेटों के लिए सुंदर बहुएँ लाना चाहती है। किन्तु परिस्थितियों ऐसी करवट बदलती है कि उसका सपना सपना बन कर रह जाता है। बड़ा बेटा विदेश पढ़ने के लिए जाना चाहता है। इसलिए सुंदर लड़की को ठुकराकर पैसों के लिए एक काली असुंदर लड़की में विवाह कर लेता है। दूसरे बेटे के लिए सुंदर लड़की ढूँढी जाती है किन्तु वह लड़की बीमार पड़ने से तया उसके भाई की

मृत्यु से विवाह आगे बढ़ा दिया जाता है। डेढ़ वर्ष प्रश्चात् विवाह होने पर चाची की आशाओं पर पानी फिर जाता है, क्योंकि रवि की बहू बहुत मोटी हो जाती है। तीसरे बेटे के लिए सुंदर लड़की की तलाश फिर से होती है किन्तु अंततः अनाथ, फूफा के घर पलनेवाली असुंदर लड़की के प्रति ममत्व एवं सहानुभूति और रवि का ह्रदय भर आता है और रेखा से रवि का विवाह निश्चित होता है।

**उपन्यास :**

(1) पचपन खम्भे लाल दीवारे (१९६२)

(2) जिन्दगी और गुलाब के फूल 1961

(3) एक कोई दूसरा 1966

(4) मेरी प्रिय कहानियाँ 1974

(5) शून्य तथा अन्य रचनाएँ 1996

**अन्य कहानियाँ :**

(1) लाल चुनर

(2) अपना–अपना भाग्य

(3) अभाव की आँधियाँ

(4) सूनसान खंडहर

(5) बाजे की धुन, मन के तार

(6) अवलंबन

(7) नागफनी के फूल

(8) खुले हुए दरवाजे

(9) प्रश्न और उत्तर

(10) बनवास

(11) एक और विदाई

(12) अध्यापक

(13) केवल इतवार को नहीं

उषा प्रियम्वदा की गणना हिन्दी के उन कथाकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को अनुभूति के स्तर पर पहचाना और व्यक्त किया है। आपका जन्म इलाहाबाद मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा भी इलाहाबाद में ही हुई और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आपने अंग्रेज़ी में एम.ए. की परीक्षा पास की। तीन वर्ष तक आप लेडी श्रीराम कालेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापन का कार्य करती रही। फुलब्राइट स्कालरशिप पर अमरीका प्रस्थान किया, जहाँ ब्लूसिंगटन, इण्डियाना में दो वर्ष 'पोस्ट–डाक्टरल स्टडी' की।

आजकल आप विस्कांसिन विश्वविद्यालय में दक्षिण एशियाई विभाग की प्रोफैसर है। जिस समय प्रियम्वदा जी ने हिन्दी साहित्य लेखन में प्रवेश किया उस समय हिन्दी कहानी निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी तथा राजेन्द्र यादव के हाथों नया आकार ग्रहण कर रही थी। जैनेन्द्र और यशपाल की पीढ़ी से अलग हट कर आधुनिक जीवन और परिवेश को प्रियम्वदा जी ने अपनी कहानियों में स्थान दिया। 'नई कहानी' आन्दोलन को आगे बढ़ाने में उषा जी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। 'वापसी' कहानी अत्याधिक चर्चित रही और सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह जी ने आपकी इस कहानी के लिए भरपूर प्रशंसा की थी। आप अधिकतर विदेश में रही

हैं। इसलिए आपकी कहानियों में विदेशी परिवेश का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। आप मानती रही हैं कि सभी जगह युवा वर्ग में आक्रोश, विरोध, तोड़–फोड़ का भाव है। अमरीका के युवक का आक्रोश भरे पेट का है तो भारतीय युवक का आक्रोश आधे पेट या रीते पेट का है। उषा जी के कथा साहित्य में शहरी परिवारों के बड़े ही अनुभूति प्रवण चित्र हैं।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों में, 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'एक और दूसरा', 'कितना बड़ा झूठ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' तथा 'रूकोगी नहीं राधिका' और 'शेष यात्रा' ( उपन्यास ) आदि है। कुछ हिन्दी कहानियों के अंग्रेज़ी अनुवाद भी आप के प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत कहानी 'वापसी' उषा जी की बहुत ही मार्मिक कहानी है। इस कहानी में 'वापसी' शीर्षक व्यंजनात्मक है। सतही धरातल पर यह गजाधर बाबू की रेलवे की नौकरी से अपने घर वापस जाना और कुछ ही दिनों में तंग आकर वापस नौकरी के लिए चल देना है। यह वापसी गजाधर की एकाकी जिन्दगी की भी हैं। गजाधर बाबू की पत्नी उनके वापस लौटते ही जैसे उसकी चारपाई कोठरी से बाहर फिंकवाती है और बच्चे जिस तरह निश्चिंत होकर पुराने ढर्रे की ज़िंदगी जीने लगते हैं, यह भी उस परिवार के लिए वापसी है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. उषा प्रियंवदा का जन्म कब हुआ ?
2. उषा प्रियंवदा का जन्म स्थान कहाँ पर है ?
3. उषा प्रियंवदा को किस वर्ष पद्मभूषण पुरस्कार मिला ?
4. उषा प्रियंवदा किस प्रकार की साहित्यकार है ?
5. उषा प्रियंवदा ने किस विषय को अपने लेखन का क्षेत्र चुना ?
6. उषा प्रियंवदा ने किस विषय में एम.ए. किया है ?

## 12.4 सारांश

उषा प्रियंवदा प्रवासी हिन्दी साहित्यकार है। कानपुर में जन्मी उषा प्रियंवदा के इलाहाबाद विश्व विद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम. ए. तथा पी.एच.डी. की पढ़ाई पूरी करने के बाद दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। उषा प्रियंवदा हिन्दी साहित्य में नई कहानी आन्दोलन की प्रमुख लेखिका मानी जाती है। उषा प्रियंवदा ने अपनी रचनाओं में मुख्य रूप से स्त्री विषयक और मध्यवर्गीय जीवन पर केन्द्रित विषय पर साहित्य सृजन किया।

## 12.5 कठिन शब्दावली

**हैसियत** – औकात

**नितान्त** – बिल्कुल

**निमित**– कारण मात्र

**दृष्टि** – नजर

## 12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1930
2. कानपुर
3. 2007
4. प्रवासी साहित्यकार
5. स्त्री विषयक
6. अंग्रेजी

## 12.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. मंजू भट्ट, उषा प्रियवंदा उपन्यासों का समग्र अध्ययन, स्पेश पब्लिशिंग हाउस।
2. डॉ. मानवती देवी निगम, विमर्श का स्त्री पक्ष उषा प्रियवंदा का साहित्य, हंस प्रकाशन, दिल्ली।

## 12.8 सात्रिक प्रश्न

प्रश्न–1 उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–2 उषा प्रिययंदा की साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–3 महिला साहित्यकारों में उन प्रियंवदा का स्थान निर्धारित कीजिए।

*****

# इकाई—13
# वापसी : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 वापसी : पाठपरक अध्ययन

13.3.1 वापसी कहानी की तात्विक समीक्षा

13.3.2 वापसी कहानी का सार

13.3.3 वापसी कहानी का उद्देश्य

13.3.4 गजाधर बाबू का चरित्र—चित्रण

स्वयं आकलन प्रश्न

13.5 कठिन शब्दावली

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तकें

13.8 सात्रिक प्रश्न

## 13.1 भूमिका

इकाई बारह के भन्तर्गत हमने उषा प्रियंवदा के जीवन परिचय का गहनता में साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई तेरह में हम वापसी कहानी की तात्विक समीक्षा, सार, उद्देश्य और पात्रों के चरित्र—चित्रण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 13.2 उद्देश्य

इकाई तेरह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि —

1. वापसी कहानी की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
2. वापसी कहानी का सार क्या है ?
3. वापसी कहानी का प्रतिपाद्य क्या है ?
4. गजाधर बाबू की चारित्रिक विशेषताएं कैसी हैं ?

## 13.3 वापसी : पाठयपरक अध्ययन

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नज़र दौड़ाई— दो बक्स, डोलची, बाल्टी — "यह डिब्बा कैसा है गनेशी?" उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला, "घर वाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिये हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे, अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पायेंगे।" घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

"कभी—कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहियेगा।" गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

"कभी कुछ ज़रूरत हो तो लिखना गनेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछी, "अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा। आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।"

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान–पहचान के लोग ले गये थे, और जगह–जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी बाल–बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठ कर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर हो कर जा रहे थे। इन वर्षो में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रह कर काटा था। इन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियाँ कर दी थी, दो बच्चे ऊँचीं कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे, और उनके बच्चे और पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौट कर बच्चों से हँसते–बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते – उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी, उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहती। दोपहर में, गरमी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाये रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम–गरम रोटियाँ सेंकती– उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा–सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह, थके हारे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती, और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठती। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास हो उठते... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतार कर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोल कर नीचे खिसका दिये, अन्दर से रह–रह कर कहकहों की आवाज़ आ रही थी, इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे हो कर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गयी। उसी तरह मुस्कुराते हुए, वह बिना खाँसें अंदर चले आयं। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गये किसी नृत्य की नकल कर रहा था, और बसन्ती हँस–हँस कर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन–बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठा कर मुँह से लगा लिया। बहू हो होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह–रह कर हँसी दबाने का प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कुराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, "क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी?" "कुछ नहीं बाबूजी।" नरेन्द्र ने सिटपिटा कर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गये, उससे उनके मन में थोडी–सी खिन्नता उपज आयी। बैठते हुए बोले, "बसन्ती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या ?" बसन्ती ने माँ की कोठरी की ओर देखा, "अभी आती ही होंगी," और प्याले में उनके लिये चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गयी थी, अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूँट पी कर उठ खड़ा हुआ, केवल बसन्ती, पिता के लिहाज़ में, चौके में बैठी माँ की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी, फिर कहा, "बिट्टी – चाय तो फीकी है।"

"लाइये, चीनी और डाल दूँ।" बसन्ती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मां जब आयेंगी, तभी पी लूँगा।"

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ मे अर्घ्य का लोटा लिये निकली और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गयी। पत्नी ने आ कर गजाधर बाबू को देखा और कहा, "अरे, आप अकेले बैठे हैं – यह सब कहाँ गयें ?" गजाधर बाबू के मन में फाँस–सी कर के उठी, "अपने–अपने काम में लग गये हैं – आखिर बच्चे ही हैं।"

पत्नी आ कर चौके में बैठ गयी– उन्होंने नाक–भौं चढ़ा कर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, "सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम–करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसों।" फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देख कर बोली, "बहू ने भेजा होगा बाज़ार।" और एक लम्बी साँस ले कर चुप हो गयी।

गजाधर बाबू बैठ कर चाय और नाश्ते का इंतज़ार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गयी। रोज़ सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म–गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठ कर तैयार होते, उनके लिये जलेबियाँ और चाय ला कर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के ग्लास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत–भरा स्वर सुन कर उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थी, सारा दिन इसी खिच–खिच में निकल जाता है। इसी गिरस्थी का धंधा पीटते–पीटते उमर बीत गयी। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता।

"बहू क्या किया करती हैं?" गजाधर बाबू ने पूछा।

"पड़ी रहती है। बसन्ती को तो फिर कहो कि कालेज जाना होता है।"

गजाधन बाबू ने जोश में आ कर बसन्ती को आवाज़ दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, "बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की ज़िम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनायेंगीं।"

बसन्ती मुँह लटका कर बोली, "बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।"

गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया, "तुम सवेरे पढ़ लिया करों। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिल कर काम में हाथ बँटाना चाहिए।"

बसन्ती चुप रह गयी। उसके जाने के बाद, उसकी माँ ने धीरे से कहा, "पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी नहीं लगता, लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े–बड़े लड़के हैं उस घर में, हर वक्त वहाँ घुसा रहना, मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।"

नाश्ता कर, गजाधर बाबू बैठक में चले गये। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिये कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिये कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटा कर बीच में गजाधर बाबू के लिये पतली–सी चारपाई डाल दी गयी थी– गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े, कभी–कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आती और थोड़ी रूक कर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबंध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर उसमें एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बे से घिरा था– दूसरी ओर पुरानी रजाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बंधी रखी थीं, उसके पास एक बड़े–से टीन के बक्स में घर–भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक अलगनी बँधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसन्ती के कपड़े लापरवाही से

पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नही जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुर्सियों पर नीली गद्यियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थी। तो वह एक दिन चटाई ले कर आ गई। गजाधर बाबू ने घर–गृहस्थी की बातें छेड़ी, वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हलके–से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।

"सभी खर्च तो वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़–गाँठ करते–करते बूढ़ी हो गयी, न मन का पहना, न ओढ़ा।"

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करती, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाध ान बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय–बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो, तो उन्हें चिंता कम, सन्तोष अधि ाक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिये वही ज़िम्मेदार थे।

"तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ– घर में बहू है, लड़के–बच्चे हैं, सिर्फ रूपये से ही आदमी अमीर नहीं होता।" गजाधर बाबू ने कहा और कहने के साथ अनुभव किया, यह उनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति थी ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकती। "हाँ, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गयी है, देखो क्या होता है," कह कर पत्नी ने आँखें मूँदीं, और सो गयी। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते हर गये – यही थी क्या उनकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था?

उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गयी और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिये नितान्त अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी–सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेट कर छत की ओर ताकने लगे।

अंदर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ा कर उठ बैठीं, "लो बिल्ली न कुछ गिरा दिया शायद," और वह अंदर भागी, थोड़ी देर में लौट कर आई तो उनका मुँह फूला हुआ था, "देखो बहू को, चौका खुला छोड़ आई, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं, अब क्या खिलाऊँगी?" वह साँस लेने को रूकी और बोलीं, "एक तरकारी और चार पराँठें बनाने में सारा डिब्बा घी उड़ेल कर रख दिया। ज़रा–सा दर्द नहीं है, कमाने वाला हाड़ तोड़े और यहाँ चीज़े लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बस का नहीं है?"

गजाधर बाबू हो लगा कि पत्नी कुछ और बोलेंगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। होंठ भींच, करवट ले कर उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

रात का भोजन बसन्ती ने जान–बूझ कर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खा कर उठ गये, पर नरेन्द्र थाली सरका कर उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।"

बसन्ती तुनक कर बोली, "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।"

"तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?" नरेन्द्र चिल्लाया।

"बाबूजी ने।"

"बाबूजी को बैठे–बैठे यही सूझता है।"

बसन्ती को उठा कर माँ ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बना कर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, “इनती बड़ी लड़की हो गयी और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया।” “अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती,” पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदल कर बसन्ती बाहर आई तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, “कहाँ जा रही हो?“

“पड़ोस में, शीला के घर।” बसन्ती ने कहाः

“कोई ज़रूरत नहीं है, अंदर जा कर पढ़ो।” गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा।

कुछ देर अनिश्चित खड़ी रह कर बसन्ती अंदर चली गयी। गजाधर बाबू शाम को रोज़ टहलने चले जाते थे, लौट कर आए ता पत्नी ने कहा, “क्या कह दिया बसन्ती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।”

गजाधर बाबू खिन्न हो गये। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची–बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती।

गजाधर बाबू ने दो–एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, “रूठी हुई है।”

गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिजाज़, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

“क्यों?” गजाधर बाबू ने चकित हो कर पूछा।

पत्नी ने साफ–साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा–सा समझते थे, और मौके–बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब–तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थी। “हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?” गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिला कर जताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बन कर रहता था – बहू को कोई रोक–टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता–चाय तैयार हो कर जाता रहता था। बसन्ती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, “अमर से कहो, जल्दबाजी की कोई ज़रूरत नहीं है।”

अगले दिन वह सुबह घूम कर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अंदर आ कर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अंदर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है; पर कुछ याद कर चुप हो गये। पत्नी की कोठरी में झाँका तो आचार, रज़ाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पायी। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नज़र दौड़ायी, फिर उसे मोड़ कर अलगनी के कुछ कपडे खिसका कर, एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाये बिना ही चारपाई पर लेट गये। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह–शाम दूर टहलने अवश्य चले जाते, पर आते–आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा–सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चित जीवन, सुबह पैसंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल–पहल, चिरपरिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट–खट, जो उनके लिये मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल की मिल के कुछ लोग कभी–कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वहीं उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोयी निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह ज़िन्दगी द्वारा ठगे गये हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अंदर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी–सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज़, रसोई के बरतनों की खटपट और उसी में दो गौरयों का वार्तालाप–और अचानक की उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिये पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गयी, तो वहाँ चले जायेंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिये कहीं स्थान नही, तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे... और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रूपये दे दिये–बसन्ती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो उन्होंने कुछ नहीं कहा– पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन–ही–मन कितना भार ढो रहे हैं इससे वह अनजान ही बनी रही। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शांति ही थी। कभी–कभी कह भी उठती, "ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गये हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।"

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिये केवल धनोपार्जन के निमित मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती हैं। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई हैं कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गयी है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते, तो अब उनकी शादी के लिये भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के लिये निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गयी।

इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थी, "कितना कामचोर है, बाज़ार की हर चीज़ में पैसा बचाता है, खाने बैठता है, तो खाता ही चला जाता है।" गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन–सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। पत्नी की बात सुन कर लगा कि नौकर का खर्च बिलकुल बेकार है; छोटा–मोटा काम है, घर में तीन मर्द हैं, कोई–न–कोई कर ही देगा, उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, "बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।"

"क्यों?"

"कहते हैं, खर्च बहुत है।"

यह वार्तालाप बहुत सीधा–सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गये थे। आलस्य में, उठ कर बत्ती भी नहीं जलायी–इस बात से बेखबर नरेन्द्र माँ से कहने लगा, "अम्माँ, तुम बाबूजी से कहतीं क्यों नहीं? बैठे–बिठाये कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साईकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा तो मुझसे यह नहीं होगा।" "हाँ अम्माँ" – बसन्ती का स्वर था, "मैं कालेज भी जाऊँ और लौट कर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।"

"बूढ़े आदमी हैं", अमर मुनमुनाया, "चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं।" पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, "और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गयी तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में बना कर रख दिया।" बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके मे घुस गयी। कुछ देर में अपनी कोठरी में आयीं और बिजली जलायी तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटायी। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बन्द किये लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिये अंदर आये और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिये निकलीं और आँचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुई। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी–मिल में नौकरी मिल गयी है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आयें, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था।" फिर कुछ रूक कर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिंगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, "मैने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पा कर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जानार है। तुम भी चलोगी?"

"मैं?" पत्नी ने सकपका कर कहा, "मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की..."

बात बीच में काट गजाधर बाबू ने थके, हताश स्वर में कहा, "ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।" और गहरे मौन में डूब गये।

गजाधर बाबू की चारपाई कब की बैठक से निकार कर आचार मुरब्बों वाले तंग कमरे में डाल दी गई थी। घर में उनका कोई आदर–सत्कार नहीं था। वे उपेक्षित थे। पत्नी के पास भी उनसे बात करने का समय नहीं था। परिवार के लोगों को उनकी हर बात अनाधिकार चेष्टा–सी लगती थी। वे अनमने से अपनी चारपाई पर पड़े रहते थे। गजाधर बाबू के सपने टूट चुके थे। उन्हें जिस सुखी पारिवारिक जीवन की तलाश थी, वह यहाँ नहीं था। एक दिन उसने पत्नी को शुभ समाचार दिया कि सेठ रामजी लाल की मिल में उसे नौकरी मिल गई और वह जा रहा है। किसी ने उसे रूकरने का आग्रह नहीं किया और न ही इस बुढ़ापे में नौकरी न करने की सलाह दी। गजाधर बाबू का अस्तित्व इस परिवार के लिए पैसा कमा कर भेजने वाली मशीन के समान था। उनके लिए गजाधर बाबू का इससे अधिक असितत्व न था। बाबू जी जब रिक्शा में बैठ वापस नौकरी पर चले तो परिवार खुश था। नरेन्द्र और बसंती पिक्चर जाने की तैयारी करने लगे। पत्नी ने बाबू जी के साथ जाने से इन्कार कर दिया था। जिसमें चारपाई के कारण चलने की भी जगह नहीं रह गई थी।

प्रस्तुत कहानी मे लेखिका ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से स्पष्ट किया है कि अवकाश प्राप्त बुढ़े के लिए हमारे परिवार में कोई स्थान नहीं रह गया। वृद्धावस्था में घर का मुखिया बन कर अनुशासन लाने की बात सोचना बेकार है।

यह कहानी नयी काहनी के दौर में सामने आई थी। इसमें अवकाश प्राप्त गजाधर बाबू का अपने ही घर परिवार में फालतू या पराया हो जाने का बोध और उससे उत्पन्न पीड़ा ने पाठकों को विचलित किया था। कहानी में चित्रित गजाधर बाबू का अकेलापन अस्तित्ववादी भाववादी है अथवा मार्क्सवादी इस पर बहस की जा सकती है।

### 13.3.1 'वापसी' कहानी की तात्विक समीक्षा

उषा प्रियम्वदा कृत कहानी 'वापसी' साठ के दशक में नयी कहानी की पहचान बनी थी। इस कहानी में मनुष्य के अकेलेपन और निरर्थक हो जाने के बोध को स्पष्ट किया गया है। कहानी की तात्विक समीक्षा निम्न प्रकार से है–

**1. कथानक** – इस कहानी का कथानक संक्षिप्त है। गजाधर बाबू पैंतीस वर्ष रेलवे की नौकरी के पश्चात् अवकाश ग्रहण करके अपने घर जा रहे थे। उनके विश्वस्त नौकर गणेशी ने उसका सामान बंधवाया और रास्ते के लिए बेसन के लड्डू डिब्बे में रखवा दिए। गजाधर बाबू शादी के बाद कुछ समय ही पत्नी के साथ रह पाए थे। उनका बड़ा बेटा अमर और बेटी कान्ता विवाहित थी। छोटा बेटा और लड़की बसंती अविवाहित थे। दोनों बेटे और अविवाहित बेटी अपनी माँ के साथ शहर में उनके द्वारा बनवाए पक्के मकान में रहते थे। गजाधर बाबू छोटे–छोटे स्टेशनों पर काम करते आए थे, इसलिए परिवार से दूर रहने को विवश थे। बच्चों की पढ़ाई आदि

के लिए उन्हें शहर में ही रहने दिया था। आज पैंतीस वर्ष पश्चात् उन्हें पत्नी के साथ बिताए प्रारम्भिक वर्ष याद आए जब वह उनको गर्म भोजन बनाकर देती थी और पूरी तरह समर्पित थी। गजाधर बाबू ने सोचा था कि घर के मुखिया बनकर रहेंगे और भरे पूरे परिवार में आनंद मनाएंगे।

गजाधर बाबू अपने घर तो पहुँच गए परंतु शीघ्र उन्हें लगने लगा कि घर और परिवार में उनके लिए अब स्थान नहीं है। उनकी चारपाई बैठक में कुर्सियाँ हटाकर लगा दी गई। एक कमरा विवाहित बेटे अमर और उसकी पत्नी के पास था, बैठक को छोड़ एक छोटा–सा कमरा उसकी पत्नी के पास था जो स्टोर का काम भी करता था। पतली सी चारपाई अन्ततः गजाधर बाबू के लिए वहीं डाल दी गई।

गजाधर बाबू ने घर की कमान अपने हाथ में लेनी चाही। उसने बसंती को रात का खाना बनाने को कहा और बहू को सवेरे का खाना। बसंती को पड़ोस में शीला के यहाँ जाने से मना कर दिया क्योंकि वहाँ जवान लड़के भी थे। नौकर को छुट्टी दे दी गई ताकि खर्चा घटे। अमर और उसकी बहू अलग जाकर रहने की सोचने लगे क्योंकि गजाधर बाबू के आने से पूर्व घर पर अमर का अधिकार था और उसकी पत्नी को किसी तरह की रोक–टोक न थी। बसंती अपने पर लगी रोक से नाराज़ थी। बैठक में नरेन्द्र, बसंती और अमर तथ उसकी बहु का बैठना मुश्किल हो गया क्योंकि गजाधर बाबू के सामने वे खुलकर हँस खेल नहीं सकते थे और न ही अपने मित्रों को बुला सकते थे। पूरा परिवार, यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी उनसे नाराज़ दिख रही थी। घर की पूरी व्यवस्था ही गजाधर बाबू के आने से हिल गई थी। गजाधर बाबू ने पत्नी के समझाने पर घर से उदासीन रहने का निर्णय लिया परंतु फिर भी घर के अन्य सदस्य उनसे उखड़े–उखड़े ही रहे। गजाधर बाबू अपने ही घर में पराए हो गए थे। जिस पत्नी के साथ रहने का सपना लेकर वे आए थे वह भी टूट चुका था क्योंकि पत्नी बच्चों के साथ थी।

एक दिन गजाधर बाबू ने पत्नी और बच्चों को बताया कि सेठ रामजी की चीनी मिल में उसे पुनः नौकरी मिल गई है। उसकी पत्नी ने बच्चों को छोड़कर उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया। नरेन्द्र ने तत्परता से उनका सामान बांध दिया और पत्नी ने रास्ते के लिए खाना बना दिया। रिक्शा में बैठ गजाधर बाबू वृद्धावस्था में वापस नौकरी के लिए चल दिए। उन्हें रूकने के लिए किसी ने नहीं कहा। गजाधर बाबू को नौकरी करते हुए अपने साथियों और कर्मचारियों से अथाह प्यार मिला। वे स्वयं भी स्नेहशील प्राणी थे। वे निरंतर अपने बीते जीवन की सुखद स्मृतियों को याद करने को विवश हो गए थे।

**2. पात्र चित्रण** – पात्र चित्रण की दृष्टि से यह कहानी अत्याधिक सशक्त है। गजाधर बाबू, उनकी पत्नी, बेटी बसंती, बेटा अमर और उसकी पत्नी प्रमुख पात्र हैं। गजाधर बाबू जीवनभर पैसा कमा कर परिवार के पालन के लिए पत्नी को भेजते रहे। शहर में पक्का मकान बनवा कर दिया ताकि बच्चे सुखी रहें और सुशिक्षित हो सकें। वह परिवार के लिए पैसा कमाने की मशीन बन गए थे। पारिवारिक जीवन का सुख विवाह के पश्चात् कुछ वर्ष ही पा सके थे। पैंतीस वर्ष तक वे लगातार घर से बाहर पराए लोगों के बीच रहे परंतु अपने सरल एवं मृदु स्वभाव के अनुसार स्नेह पाते रहे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् घर पहुँच कर उन्हें लगा कि घर में उनके लिए स्थान नहीं हैं। परिवार के लोगों की निश्चित जीवन–प्रक्रिया में गजाधर बाबू के लिए स्थान नहीं। पत्नी से गजाधर बाबू को स्नेह और सहानुभूति की उम्मीद थी परंतु वह भी बच्चों का पक्ष लेती है। वह बच्चों के साथ सदा से रही है और आगे भी उन्हीं के साथ रहेगी यह उसे लगता है। युवा लड़का और लड़की को पिता का घर में बने रहना और हर बात में दखल देना पसंद नहीं। अमर से घर की सरदारी छिन गई है और उसकी पत्नी के अधिकार सीमित हो गए हैं इसलिए वह अलग घर में रहने की इच्छा बताती है। पात्र–चित्रण अत्यंत मनोवैज्ञानिक स्तर पर हुआ है। गजाधर बाबू के मन में, मस्तिष्क में बहुत कुछ घटित होता जाता है और अन्त में वे घर छोड़ने का निर्णय लेते हैं। पात्र चित्रण सहज है। गजाधर के नौकर गणेशी का चरित्र भी अत्यंत स्नेहशील एवं मार्मिक है।

**3. कथोपकथन** – किसी भी कहानी को सजीव बनाने के लिए कथोपकथन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कथोपकथन सटीक, संक्षिप्त एवं मार्मिक हैं। जब गजाधर की पत्नी शिकायत करती है कि घर का सारा काम उसे ही करना पड़ता है तो उन्होंने घर को व्यवस्थित करने के लिए घर की कमान हाथ में ली और बसंती को बुला कर कहा, "बसंती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेवारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएँगी।" बसंती मुँह लटकाकर बोली, "बाबू जी, पढ़ना भी तो होता है।" गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया, "तुम सवेरे पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उसके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर हाथ बंटाना चाहिए।" बसंती जानबूझकर खराब खाना बनाती है ताकि खाना बनाने से मुक्ति मिले। गजाधर बाबू वह खाना न खा सके इसलिए चुपचार उठ गए। नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।" बसंती तुनककर बोली, "तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।"

"तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था ?" नरेन्द्र चिल्लाया।

"बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है।"

कहानी में गजाधर बाबू के वापिस नौकरी पर चले जाने पर किसी को अफसोस नहीं हैं। पत्नी उनकी चारपाई को कोठरी से बाहर तुरंत निकलवा देती है।

**4. देशकाल एवं वातावरण** – गजाधर बाबू जिस कमरे में रहते थे उसके खाली हो जाने पर उसकी हालत कैसी हो गई इसका सटीक चित्रण हुआ है, यथा "गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान–पहचान के लोग ले गए थे, और जगह–जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी बाल–बच्चों के साथ्ज्ञ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।" गजाध ार बाबू के रेलवे क्वार्टर का, स्टेशन का, गाड़ियों के आने–जाने का सुंदर चित्रण हुआ है। गजाधर बाबू के घर का चित्रण भी मार्मिक ढंग से हुआ है।

**5. भाषा–शैली** – प्रस्तुत काहनी भाषा–शैली की दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली है। जब गजाधर बाबू को अपनी जवानी के दिन याद आते हैं और वे अपनी पत्नी के समर्पण भाव को याद करते हैं तो उनकी भाषा भावुकतापूर्ण एवं मार्मिक हो जाती है, यथा – "कवि न होने पर भी, उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहती। दोपहर में, गर्मी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रखती और उनके स्टेशन से वापिस आने पर गर्म–गर्म रोटियां सेंकती – उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा–सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़ी प्यार से आग्रह करती। जब वह थके–हारे बाहर से आते, तो उनकी आहअ पर वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठतीं।" घर के उपेक्षापूर्ण वातावरण के मुकाबले रेलवे क्वार्टर की स्नेहपूर्ण ज़िन्दगी की तुलना अत्यंत मार्मिक है– "गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पेसेंजर आने से पहले वह गर्म–गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी, और गाढ़ी मलाई। पेसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देरी नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।" जब गजाधर बाबू सेठ राम जी की चीनी मिल में गए। उन्होंने पत्नी को भी अपने साथ चलने का सुझाव दिया तो पत्नी का उत्तर चौंकाने वाला है, "मैं ?" पत्नी ने सकपका कर कहा, " मैं चलूंगी तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की। गजाधर बाबू के चले जाने पर मुक्ति का एहसास करते हुए पत्नी लड़के नरेन्द्र से कहती हैं।, "अरे नरेन्द्र, बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं हैं।" भाषा सरल बोलचाल की है।

**6. उद्देश्य** – प्रस्तुत कहानी में मनुष्य जीवन के अकेलेपन का सुंदर चित्रण हुआ है। गजाधर बाबू अपने परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सदा रानीपुर जैसे छोटे स्टेशनों पर रहने को विवश हुए थे। आजीवन अकेले रहने के पश्चात् जब वह अपने परिवार के साथ सुखमय जीवन जीने की लालसा से घर जाते हैं तो अपने घर में अपने को एकदम अकेला पाते हैं पत्नी भी उसका साथ नहीं देती। अवकाश प्राप्त लोगों को अपने घर में किस तरह अकेलेपन और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है इस कहानी में बताया गया है।

**13.3.2 'वापसी' कहानी का कथासार**

उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' एक मार्मिक कहानी है। अवकाश प्राप्त बाबू गजाधर को केंद्र में रख कर लिखी यह कहानी मनुष्य की प्यार, आदर तथा सम्मान पाने की ललक और वास्तव में मिलने वाली उपेक्षा, अनादर तथा तिरस्कार की मार्मिक व्यथा का अंकन करती है। बुढ़ापे में कोई किसी का साथ नहीं देता।

पैंतीस वर्ष तक निरंतर रेलवे की नौकरी करने के पश्चात् अवकाश प्राप्त कर गजाधर बाबू अपने परिवार के साथ रहने के लिए जाने को तैयार हो रहे हैं। उनका पुराना और विश्वस्त नौकर उनका सामान बंधवाते समय रो रहा था। बाबू जी को भी वह स्थान छोड़ कर जाना अच्छा नहीं लग रहा था, परंतु अपने परिवार के साथ रहने का जो अवसर उन्हें पैंतीस वर्षों पश्चात् मिलने वाला था, उससे वे बहुत प्रसन्न थे। गणेशी ने रास्ते के लिए उन्हें बेसन के लड्डू दिए जो उसकी घरवाली ने बानये थे। गजाधर बाबू बीते यौवन की मधुर यादों में खोए थे जब उनकी पत्नी उनके साथ रही थी। वह उनकी प्रतीक्षा करती थी और सदा गर्म–गर्म रोटियां सेंक कर दिया करती थी।

गजाधर बाबू के परिवार में उनकी पत्नी के अतिरिक्त, उनकी अविवाहित बेटी बसन्ती और बेटा नरेन्द्र था। विवाहित पुत्र अमर अपनी पत्नी के साथ भी परिवार के साथ रहता था। इस प्रकार उनका संयुक्त परिवार था। गजाधर बाबू के घर पहुँचने पर ऊपरी तौर पर सब ने प्रसन्नता दिखाई। बैठक में एक पतली–सी चारपाई उनके लिए डाल दी गई। प्रायः अस्थायी रूप से आने वाले मेहमानों के लिए यही किया जाता था।

दूसरे दिन से ही गजाधर बाबू को घर में अपने अवांछित होने का आभास होने लगा। प्रातः नाश्ते की मेज पर नरेन्द्र, अमर और उसकी पत्नी तथा बेटी बसन्ती आपस में हँस रहे थे कि गजाधर बाबू भी वहाँ जा पहुँचे। नरेन्द्र का मृत्यु की नकल करना रूक गया। अमर और उसकी बहू धीरे से चले गए। बसंती पिता के कहने पर उनके लिए चाय बनाने रसोई में चली गई। गजाधर बाबू की पत्नी ने पूजा से निकल कर उन्हें चाय दी। जूठे बर्तनों के ढेर को देखकर काम की अधिकता की शिकायत की।

गजाधर बाबू घर के मुखिया थे इसलिए परिवार की बागडोर अपने हाथ में लेने के उद्देश्य से उन्होंने बसंती से कहा कि रात्रि का खाना वह बनाए और प्रातः का खाना अमर की बहू बनाएगी। उन्हें लगा कि उनकी बूढ़ी पत्नी को अब घर के कामकाज से मुक्ति मिलनी चाहिए। बहू ने घी आदि खुले हाथों खर्च किया तो सास की शिकायत बढ़ गई। बसंती ने खाना इतना घटिया बनाया कि मुश्किल से गले के नीचे उतरा। नरेंन्द्र ने तो खाना खाने से इन्कार ही कर दिया। माँ ने दुबारा उसके लिए खाना बनाया। बाबू जी के इस आदेश से परिवार के सभी सदस्य असंतुष्ट दिखने लगे।

गजाधर बाबू ने सोचा कि जवान बेटी बंसती पर कुछ अंकुश लगाया जाए। पड़ोस में शीला के यहाँ उसका जाना इसलिए रोक दिया क्योंकि उस घर में युवक थे। इस पर बसंती ने पिता से बोलना ही छोड़ दिया। अब वह जाती तो चुपके से, पिछले दरवाज़े से।

बाबू जी की पत्नी के पास उनकी देख–रेख का समय नहीं था। वह पूजा–पाठ और घर–गृहस्थी में रमी थी। उसे प्रायः नौकर के कामचोर होने की शिकायत रहती थी। बाबू जी को लगा कि घर में तीन–तीन पुरूषों और स्त्रियों के रहते नौकर अनावश्यक है। घर का खर्चा भी बढ़ गया है। उन्होंने नौकर को निकाल दिया। बाबू जी के इस कार्य से अमर और उसकी पत्नी सर्वाधिक असंतुष्ट दिखाई दिए। वे अलग घर बसाने की सोचने लगे।

**पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार से आहत** – गजाधर बाबू अवकाश प्राप्ति तक घर के सदस्यों के लिए पैसा कमाने की मशीन मात्र थे। जब वे अवकाश प्राप्त कर घर लौट आए तो घर के सदस्यों को उन्हें समरस करना, परिवार में समेटना मुश्किल हो गया। उनकी उपस्थिति से उनकी आजादी में बाधा पड़ती है। उनके नियंत्रण को मानने को भी वे लोग तैयार नहीं है। गजाधर बाबू को सबसे बड़ा आघात पत्नी के व्यवहार से लगा। पत्नी उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने की जगह, उन्हें भी परिवार की अशांति का कारण मानती है। गजाधर बाबू जब दुबारा नौकरी पर जाने की तैयारी करते हैं तो उसके पीछे कहीं यह विश्वास है कि अब परिवार में उनके लिए कोई स्थान नहीं रह गया है।

### 13.3.3 'वापसी' कहानी के उद्देश्य

'वापसी' कहानी उषा प्रियंवदा की एक प्रसिद्ध कहानी है। प्रस्तुत कहानी बुजुर्ग पीढ़ी और युवा पीढ़ी के अंतराल को चित्रित करती है। दोनों पीढ़ियों के बीच आई दरार और तकरार को लेखिका ने मनोवैज्ञानिकता के माध्यम से चित्रित किया है।

गजाघर बाबू रेलवे विभाग में पैंतीस साल नौकरी करने के पश्चात् घर लौटे हैं। घर आने से पूर्व वे घर के सदस्यों के साथ रहकर खुशी और उल्लास की कल्पनाएँ करते हैं। ये सोचते हैं कि परिवार के साथ रहकर उनकी जिन्दगी बसूरत बीतेगी। परन्तु जब वे घर लौटते हैं तो उन्हें अपना परिवार कुछ बदला–बदला सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने बेटे अमर और बेटी कान्ति की शादी नौकरी करते समय ही कर दी थी तथा शहर में एक मकान भी बनवा लिया था। अब घर में उनकी पत्नी के साथ अमर व छोटा बेटा नरेन्द्र, अमर की बहू और छोटी बेटी बसन्ती रहती है। नरेन्द्र और बसन्ती दोनों कॉलेज में पढ़ते हैं। वे दोनों आधुनिकता के रंग में रंग चुके हैं उनकी पत्नी को चौके चूल्हे के सिवा और कोई दूसरा काम नजर नहीं आता। उसने अपनी सारी उम्र इसी के इर्द–गिर्द काट दी थी। गजाधर बाबू के खुश और दही होने से उसे कोई सरोकार नहीं है। उसने कभी समय निकालकर गजाधर बाबू के साथ बैठकर सुख–दुख की बात ही की थी। उसे तो बस चूल्हा जलाने की फिक्र थी।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् बैठक में गजाधर बाबू के लिए एक चारपाई डाल दी जाती है ये सारा दिन इसी चारपाई पर पड़े रहते हैं। घर के अन्दर पूरे परिवार की हंसी के ठहाके उनके कानों तक पहुंचते रहते हैं। गजाधर बाबू परिवार में रहकर भी अकेले महसूस करते हैं। एक प्रातः नाश्ते के समय नरेन्द्र, अमर और उसकी पत्नी तथा बेटी बसन्ती आपस में हँस रहे थे कि गजाधर बाबू भी वहाँ आ गए। उनके आते ही नरेन्द्र ने नृत्य करना बन्द कर दिया। अमर और उसकी पत्नी पीरे–से घर के भीतर चले गए। बसन्ती चाय बनाने के लिए रसोई में चली गई उनकी पत्नी पूजा घर में थी। जूठे बर्तनों के ढेर को देखकर उसने काम की अधिकता की शिकायत चलते–चलते गजाधर बाबू से की।

गजाधर बाबू ने अनुभव किया कि परिवार बड़ा हो जाने के कारण अब उनकी पत्नी से घर का सारा काम और भोजन नहीं बनता। इस कारण उन्होंने बसन्ती को रात का और अमर की पत्नी को सुबह का भोजन बनाने को कहा। जानबूझ कर अमर की पत्नी घर का ठीक से खर्च न करके रसोई का खर्च बढ़ा देती है तथा बसन्ती जानबूझ कर खाना खराब बना देती है। उन दोनों के साथ–साथ अमर और नरेन्द्र को भी नौकर की छुट्टी कर देना बुरा लगता है। वे गजाधर बाबू के द्वारा नौकर के हटा देने से असन्तुष्ट थे। गजाधर बाबू को बसन्ती का देर से घर आना पसन्द नहीं है। वे उसके घर लेट आने पर रोक लगा देते हैं तथा उसे घर जल्दी लौटने की सलाह देते हैं, तो बसन्ती घर के पिछले दरवाजे से घर में आती जाती रहती है। नरेन्द्र को भी घर का काम बुरा लगता है। वह घर का काम करने में अपनी बेइज्जती समझता है। गजाधर बाबू की बातें पूरे परिवार को बुरी लगती हैं। फलस्वरूप अमर अब अलग होने की सोचने लगा था। अमर तथा उसकी पत्नी को यह बात अखरती थी कि पिता जी बैठक में चारपाई डालकर पड़े रहते हैं और उनके मेहमानों और दोस्तों के घर आने पर सही जगह नहीं मिलती।

एक शाम जब गजाधर बाबू टहलकर घर लौटे तो बैठक में उनकी चारपाई नहीं थी। उनकी चारपाई अब बैठक से निकाल कर आचार, मुरब्बों वाले छोटे कमरे में डाल दी गई। गजाधर बाबू को अनुभव हुआ कि उनका अपने ही घर में जरा भी आदर–सत्कार नहीं है। इतना ही नहीं वे अपने ही घर में अपने आपको उपेक्षित समझे जाने लगे थे। परिवार को उनकी प्रत्येक बात कड़वी–सी लगती थी। वे सदैव उदास–भाव से चारपाई पर लेटे रहते थे। उनके परिवार के साथ खुश रहने के सभी सपने चकनाचूर हो गए थे। उन्होंने जैसे सुखी परिवार की कल्पना की थी, वैसा उन्हें वहाँ कुछ भी नहीं मिला।

एक दिन गजाधर बाबू ने अपनी पत्नी को शुभ समाचार देते हुए कहा कि मुझे सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है तथा अब वे वहीं रहेंगे। उनकी रही–सही आशा उस समय निराशा में बदल गई जब परिवार के किसी एक सदस्य ने भी उन्हें रुकने का आग्रह नहीं किया और न किसी ने उन्हें बुढ़ापे में नौकरी न करने की सलाह दी।

परिवार में उनका अस्तित्व केवल पैसे कमाने की मशीन जैसा ही था। उनके प्रति परिवार के किसी सदस्य को बिल्कुल सहानुभूति न थी। गजाधर बाबू जब अपना बिस्तर लेकर नौकरी पर जाने के लिए रिक्शे पर बैठकर चले तो परिवार के सभी सदस्य खुश हो गए तथा अमर और उसकी पत्नी ने तो पिक्चर देखने का प्रोग्राम बना लिया। यहाँ तक कि उनकी पत्नी ने भी उनके साथ जाने से इंकार कर दिया, क्योंकि घर में जवान बेटी जो थी। उनके चले जाने के बाद उनकी पत्नी ने उस चारपाई को बाहर निकालने का आदेश दिया, जिसके कारण उस छोटे–कमरे में चलने–फिरने का भी स्थान नहीं बचा था।

लेखिका उषा प्रियंवदा ने 'वापसी' कहानी के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयास किया है कि अवकाश प्राप्त बूढ़े व्यक्ति के लिए उस घर में कोई जगह नहीं है, जिस घर को उसने अपनी कमाई से बनाया है। परिवार की युवा पीढ़ी के अपने अलग–अलग रास्ते हैं। बुजुर्गों के साथ उनकी कोई सहानुभूति नहीं है। बड़ों का हस्तक्षेप उनके लिए असहनीय हैं। इस प्रकार कहानी में दो पीढ़ियों के अन्तराल को स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है।

आलोच्य कहानी में जीवन मूल्यों के परम्परागत पहलुओं तथा पारिवारिक विसंगतियों का अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक चित्रण किया गया है। दरिद्रता एवं आर्थिक तंगी पारिवारिक जीवन में विविध समस्याओं को जन्म देती है। इसका चित्रण मार्मिक ढंग से किया गया है। गजाधर बाबू की पत्नी के कथन में उसकी आर्थिक बेबसी की सुन्दर अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है। वह गजाधर बाबू से कहती है–

**''सभी खर्च तो वाजिव–वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ ? जोड़–गाँठ करते–करते बूढ़ी हो गई–न मन का पहना, न ओढ़ा।"** आधुनिक पीढ़ी का अपने घर के काम करने में कोई रुचि नहीं है। मध्यम वर्गीय परिवार के युवा घर के काम करने में अपनी बेइज्जती समझते हैं। पारिवारिक जीवन में ये छोटी–छोटी बातें बड़ी होकर अशान्ति को जन्म देती हैं। वापसी कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत है। नरेन्द्र अपनी माँ से कहता है–

**''अम्मा तुम बाबू जी से कहती क्यों नहीं ? बैठे–बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर वे समझे कि मैं साइकिल पर गेहूँ रखकर आटा पिसाने जाऊँगा, तो यह मुझसे नहीं होगा।''**

इस प्रकार 'वापसी' कहानी एक युवा पीढ़ी के मोह भंग की कहानी है। कहानी का प्रमुख उद्देश्य है कि पुरानी पीढ़ी के विश्वासों, आस्थाओं और सोच के प्रति नई पीढ़ी के युवाओं में बिल्कुल भी रुचि नहीं है। इस प्रकार दोनों पीढ़ियों के बीच अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वस्तुतः स्थूल कथानक पर आधारित होने पर भी प्रस्तुत कहानी मानसिक स्तर पर पारिवारिक स्थितियों को उजागर करती है। यही कहानी. का प्रमुख प्रतिपाद्य है, जिसमें लेखिका पूर्णतः सफल रही है।

**13.3.4 गजाधर बाबू का चरित्र–चित्रण**

'वापसी' उषा प्रियंवदा की एक चर्चित कहानी है। गजाधर बाबू आलोच्य कहानी के प्रमुख पात्र हैं। कहानी का सम्पूर्ण कथानक उनके ही चरित्र की धुरी के इर्द–गिर्द घूमता है। कहानी की प्रमुख समस्या को इन्हीं के चरित्र के द्वारा व्यक्त किया गया है। वस्तुतः गजाधर बाबू को ही कहानी का नायक कहा जा सकता है। उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

**1. स्नेहशील व्यक्ति**–गजाधर बाबू एक स्नेही व्यक्ति हैं। सम्पूर्ण कथानक में गजाधर बाबू एक स्नेहपूर्ण जीवन बीते दिखते हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। जब वे अपने परिवार के साथ होते हैं तो वे बच्चों के साथ खूब हँसते–खेलते थे तया पत्नी के साथ मनो–विनोद करते थे। सेवानिवृत्त होने के बाद अपने घर वापिस आने पर एक दिन जब उन्हें बच्चों के कहकहों की आवाजें सुनाई दी तो उनका मन उनके साथ मिलकर हंसने–बोलने के लिए लालायित हो उठता है। लेखिका उनके इसी स्वभाव के बारे में कहती भी है– **''गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार सांय या, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते–बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते उन सबके चले जाने के बाद उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे टिका न जाता।''**

**2. भावुक व्यक्ति**–भावुकता गजाधर बाबू के चरित्र की एक अन्य विशेषता है। जब वह अपने परिवार के सदस्यों में ही अपने आप को अकेला पाता है तो उसका हृदय पीड़ा एवं वेदना से भर जाता है। रेल विभाग से सेवानिवृत्त होकर उसकी यह दशा होगी, उसने कभी सोचा भी नहीं था। वह अपने परिवार में अपनी बेबस स्थिति पर दुःखी है। परिवार के सदस्य जब गजाधर बाबू से कन्नी काटते हैं तो गजाधर बाबू की स्थिति दयनीय दशा में पहुँच जाती है और वे भावुक होकर सोचने लगते हैं। अपनी पुरानी बातें याद करके भावुक हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि जब उनका परिवार केवल पति–पत्नी तक सीमित था तो उनकी पत्नी उनकी इच्छाओं का कितना ध्यान रखती थी परन्तु समय के चलते उसके स्वभाव में भी कितना अन्तर आ गया है। इसी संदर्भ में लेखिका कहती है कि– **''कवि प्रकृति के न होने पर भी, उन्हें पत्नी और उमा की याद आती। पत्नी दोपहर में दो बजे तक आग सुलगाए रहती और उनके लिए खाना गरम रखती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा–सा कुछ और वाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब के बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह चौके के द्वार पर निकल आती और उसकी सलञ्ज आँखें मुस्करा उठती।. .. गजाधर बाबू को हर छोटी बात याद आती और वे उदास हो उठते... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था, जब वे फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।''**

**3. सहनशील**– गजाधर बाबू सहनशील एवं धैर्यपूर्ण जीवन जीने के आदी हैं। वे बहुत जल्दी अपना ध ैर्य नहीं छोड़ते। सहनशीलता उनकी खास पहचान है। कठिन से कठिन समय में भी वे सहनशील बने रहते हैं। जब वे सेवानिवृत होने के पश्चात् अपने परिवार में वापिस लौटते हैं तो उन्हें अपना परिवार बदला–बदला सा दिखाई देता है। उसकी तरफ कोई ध्यान देने वाला नहीं है। परिवार का कोई भी सदस्य उनकी मानने के लिए तैयार नहीं है। उसके बेटे अमर और नरेन्द्र दोनों की अपनी–अपनी राह हैं। बहू तथा बेटी बसन्ती आधुनिकता के रंग में रंगी हुई है। घर की रसोई आदि के कामों से उन्हें कोई सरोकार नहीं है। सेवानिवृत्ति के पश्चात् घर लौटने की खुशी का अनुभव गजाधर बाबू जो महसूस कर रहे थे उसका कहीं भी नामों–निशान नहीं था। वे अपने ही घर में फालतू हो गए थे। उनके लिए छोटी–सी चारपाई बैठक में बिछा दी गई थी। वस्तुतः उनके बेटे अमर और बहू को यह भी मंजूर नहीं था तथा उन्होंने उनकी चारपाई उनकी पत्नी की कोठरी में कनस्तरों आदि को हटा कर डाल दी थी, क्योंकि बैठक में उनके मिलने वालों के लिए कहीं जगह नहीं बची थी। इतना सब होने पर भी गजाधर बाबू धैर्य का दामन नहीं छोड़ते। लेखिका के अनुसार– **''अचानक उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल नहीं देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं**

**है, तो यही पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे... और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले।''** इस प्रकार गजाधर बाबू एक सहनशील प्राणी हैं।

**4. अन्तर्मुखी प्रवृत्ति**—गजाधर बाबू अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। उनकी अपनी ही एक दुनिया है जिसमें वे सदैव खोये रहते हैं। वाचालता से वे कोसों दूर हैं। परिवार में अपनी स्थिति को पाकर वे दुःखी हैं परन्तु वे उस दुःख को किसी के सामने प्रकट नहीं करते। जब परिवार में अपने को उपेक्षित पाते तो वे सदैव स्मृतियों में खो जाते। घर में उनकी चारपाई के लिए कहीं जगह नहीं है। उनका अन्तर्मन इस बात से आहत है कि जिस परिवार के लिए मैंने पूरा जीवन कमाया वही परिवार आज उनकी उपेक्षा कर रहा है तो उन्हें अपनी नौकरी के दिन याद आने लगते हैं– **''गजाधर बाबू को अपना बड़ा–सा खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिन्त जीवन, सुबह पैसंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल–पहल, चिर परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खटखट जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी–कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वही उनके साथ। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिंदगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।''**

**5. कर्मठ**—गजाधर बाबू एक परिश्रमी एवं कर्मठ व्यक्ति हैं। वे रेलवे विभाग में पैंतीस साल नौकरी करने के पश्चात् सेवानिवृत (रिटायर) हुये थे। उन्होंने अपना लगभग सारा जीवन कार्य करने और अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने में लगा दिया। इतना लम्बा समय उन्होंने लगभग अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे उन्होंने अपने अभाव का बोझ ढोया था। अपने प्रयास से उन्होंने शहर में एक मकान बनवाया। बड़े लड़के 'अमर' और लड़की 'कांति' की शादियां की थी, उनके दो बच्चे (नरेन्द्र और बसन्ती) ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। परन्तु सेवानिवृत के पश्चात् भी उन्हें अपने ही घर में आराम करने का स्थान नहीं मिलता। यह उनका दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि जिस घर के निर्माण में उन्होंने अपना जीवन लगाया, वही परिवार उन्हें फालतू मानता है और एक दिन वे अपनी पत्नी से कहते हैं–**''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएं, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था।''** अभिप्राय यह है कि साठ तक कार्य करने के पश्चात् भी गजाधर बाबू काम करने के लिए सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी करने के लिए घर छोड़ देते हैं। यह घटना उनके कर्मठ एवं परिश्रमी होने का परिचायक है।

**6. कर्तव्यनिष्ठ** : 'वापसी' कहानी गजाधर बाबू को एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के रूप में चित्रित करती है। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन अपने परिवार तथा सन्तान के प्रति अपने कर्तव्य को भली–भाँति निभाते हुए बिताया है। नौकरी पर रहते हुए ही उन्होंने अपनी बेटी कांति और बेटे अमर की शादियों की तथा उनके दो बच्चे (नरेन्द्र और बसन्ती) उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अपने परिवार को उन्होंने कदापि आर्थिक तंगी से नहीं गुजरने दिया, परिवार के लिए एक घर बनवाया तथा सभी सुख–सुविधाएँ भी जुटाई। सरकार ने उन्हें नौकरी पर रहते जो जिम्मेवारी दी, उसे ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ पूरा किया। अकेलेपन के बावजूद भी वे अपनी नौकरी के प्रति सजग एवं सचेत रहे। जब वे अपनी पत्नी से सुनते हैं कि घर में पैसे की तंगी रहने लगी, तो वे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी कर लेते हैं। वस्तुतः गजाधर बाबू सम्पूर्ण जीवन कर्तव्य को निभाते रहे। यही उनके जीवन की महानता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गजाधर बाबू वापसी कहानी के नायक हैं। वे एक सीधे–सादे, कोमल–हृदय, स्नेहशील, भावुक, कर्मठ, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वाले, कर्तव्यनिष्ठ, सहनशील एवं अपनों के बीच एक उपेक्षित व्यक्ति हैं।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. वापसी कहानी के लेखक का नाम लिखिए।
2. वापसी कहानी किसकी वापसी की कहानी है ?
3. गजाधर बाबू किस विभाग में काम करते थे ?
4. गजाधर काबू कितने वर्षों की सरकारी नौकरी के बाद घर जा रहे थे ?
5. गजाधर बाबू की पुत्री का क्या नाम था ?
6. गजाधर बाबू को किस सेठ की मिल में नौकरी मिली थी ?

## 13.4 सारांश

वापसी कहानी में परस्परा और आधुनिकता का द्वंद है। आधुनिकता के इस दौर में दो सीढ़ियों के बीच हो रहे बदलाव व टकराहट का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। कहानी में सेवानिवृत्त होकर घर लौटे गजाधर बाबू को अपने ही घर में पराया कर दिए जाने के कटु अनुभवों को चित्रित किया गया है।

## 13.5 कठिन शब्दावली

**अवधि** – समय सीमा

**स्वच्छंदता** – आजादी

**आश्रुपूर्ण** – आंसुओं से भरी

**कृतज्ञ** – आजादी

**छल** – धोखा

## 13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. उषा प्रियंवदा।
2. गजाधर बाबू
3. रेल विभाग
4. 35 वर्ष
5. बसंती
6. राजजी लाल

## 13.7 संदर्भित पुस्तकें

1. उषा प्रियंवदा, प्रतिनिधि कहानियां, राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. डॉ. मानवती देवी निगम विमर्श का स्त्री पल : प्रियंवदा का साहित्य हंस प्रकाशन, नई दिल्ली।

## 13.8 सात्रिक प्रश्न

1. वापसी कहानी का उद्देश्य सिद्ध कीजिए।
2. गजाधर बाबू की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. वापसी कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।

*****

# इकाई–14
# नमक का दरोगा, आकाशदीप, परदा, वापसी : व्याख्या भाग

**संरचना**

14.1 भूमिका
14.2 उद्देश्य
14.3 नमक का दरोगा, आकाशदीप, परदा, वापसी : व्याख्या भाग
        स्वयं आकलन प्रश्न
14.4 सारांश
14.5 कठिन शब्दावली
14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
14.7 संदर्भित पुस्तकें
14.8 सात्रिक प्रश्न

## 14.1 भूमिका

इकाई तेरह के अन्तर्गत हमने 'वापसी' कहानी की तात्विक समीक्षा, सार, उद्देश्य और पात्रों के चरित्र–चित्रण का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई चौदह में हम 'नमक का दरोगा', 'आकाशदीप', 'परदा', 'वापसी' कहानी के व्याख्या भाग का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 14.2 उद्देश्य

इकाई चौदह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. 'नमक का दरोगा' कहानी की व्याख्या कैसे करेंगे ?
2. 'आकाशदीप' कहानी की सप्रसंग व्याख्या कैसे करेंगे ?
3. 'परदा' कहानी की व्याख्या कैसे करेंगे ?
4. 'वापसी' कहानी की सप्रसंग व्याख्या कैसे करेंगे ?

## 14.3 नमक का दरोगा, आकाशदीप, परदा, वापसी : व्याख्या भाग

**● नमक का दरोगा : व्याख्या भाग**

**( 1 )**

**जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वरप्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध को गया तो लोग चोरी–छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल–प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ–बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़–छोड़ कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था जब अंग्रेज़ी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और श्रृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसी दाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे।**

**प्रसंग–** प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस गद्यांश में लेखक अंग्रेज़ी शासन मे नमक व्यापार को आधार बनाकर उस समय के समाज की स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि –

**व्याख्या** – नमक, ईश्वर की दी हुई भेंट है परन्तु जब अंग्रेजों ने उसे सरकारी नियन्त्रण में ले लिया और उसके व्यापार को नियमित कर उस पर टैक्स लगा दिया तब कुछ लोगों ने कालाबाज़ारी का सहारा लिया और नमक चोरी से बेचने लगे। व्यापारियों ने अनेक नए तरीके खोज लिए जिससे कर से बच सकते थे। कोई घूंस देकर नमक का व्यापार करता तो कोई चालाकी से काम चलाता। अधिकारियों को ऊपरी कमाई से बहुत लाभ हो रहा था। लेखक के अनुसार नमक विभाग को नौकरी पाने के लिए पटवारी जैसे सम्मानित पद को छोड़कर लोग नमक विभाग में नौकरी खोजते फिरते थे। इस विभाग में दारोगा बनने के लिए तो वकील भी तरसते थे। यह पराधीन भारत में ऐसा समय था जब लोग अंग्रेज़ी शिक्षा प्रापत करने का अर्थ इसाई होना मानते थे और इससे दूर ही रहते थे। फारसी ही शिक्षा का माध्यम और सरकारी कामकाज की भाषा थी। फारसी का रोमानी साहित्य यद्यपि इस कार्य के लिए प्रशिक्षित नहीं करता था फिर भी फारसी पढ़े–लिखे लोग उच्च पद पा जाते थें

**विशेष** – (1) प्रस्तुत गद्यांश में मुंशी प्रेमचंद अंग्रेज़ी राज पर व्यंग्य करते हैं जो 'नमक' जैसी दैनिक आवश्यकता की वस्तु को अपने नियन्त्रण में लेकर उससे लाभ कमाते थे।

(2) भारतीय समाज में उस समय भी भ्रष्टाचार का बोलबाला था। 'ऊपरी कमाई' की संभावना वाली नौकरियों को पाने के लिए लोग सम्मानित नौकरियां छोड़ देते थे।

(3) गद्यांश की भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान होते हुए भी सरल और प्रवाह युक्त है। 'पौ–बारह होना' मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

**( 2 )**

**उनके पिता एक अनुभवी पुरूष थे। समझाने लगे, बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास–फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मजार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है, जो एक दिन दिखायी देता है और घटते–घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्त्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान् हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरज वाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज को दाँव पर पाना ज़रा कठिन है। इन बातों को निगााह में बाँध लो। यह मेरी जन्म भर की कमाई है।**

**शब्दार्थ–कगारे**–नदी तट का। **मुख्तार**–मालिक। **लुप्त**–खो जाना। **उपरांत**–पश्चात्। **मजार**–कब्र।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस गद्यांश में लेखक वंशीधर के पिता की सोच को स्पष्ट करते है। वंशीधर के पिता अपने युवा पुत्र को समझाते हुए कहते हैं कि–

**व्याख्या** – 'बेटा वंशीधर ! तुम स्वयं घर की दुर्दशा देख रहे हो। घर परिवार पर उधार का बोझ है। लड़कियां देखते–देखते घास फूस की तरह बढ़ती जा रही हैं, उनकी शादी भी करनी है। मैं स्वयं नदी तट पर पेड़ हूँ, न जाने कब नदी की धारा मुझे बहा कर ले जाए, मरी मृत्यु हो जाए।' उसने बेटे को समझाया कि अब तो वही घर का मालिकम है, उसी के कन्धों पर परिवार की देखरेख का भार है। वह बेटे को समझाता है कि नौकरी खोजते समय पद, प्रतिष्ठा और वेतन पर ध्यान न देकर, ऊपरी कमाई पर ध्यान दे। वह समझाते हैं कि नौकरी तो मज़ार की तरह होती है।

जहाँ बैठकर उस पर चढ़ने वाली चादरों और उस पर रखे चढ़ावे पर ध्यान रखना चाहिए। वह समझाते हैं कि वेतन तो पूर्णमासी का चांद है जो माह में एक बार पूरा दिखता है जबकि ऊपरी कमाई तो निरन्तर होती रहती है। ऊपरी आय बढ़ती जाती है, सदा बहने वाला स्त्रोत है। वह यहाँ तक समझाते हैं कि वेतन तो मनुष्य देता है परन्तु ऊपरी आय बढ़ती जाती है, सदा बहने वाला स्त्रोत है। वह यहाँ तक समझाते हैं कि वेतन तो मनुष्य देता है परन्तु ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है। इसमें बरकत ज्यादा है । वह कहते हैं कि उनके बेटे को स्वयं इस बात को समझना चाहिए। वह उसे समझदारी से काम लेने की बात कहते है। वह उसे समझाते हुए कहता है कि आदमी को समझकर, उसकी ज़रूरत या मजबूरी को समझ कर घूंस की मांग करनी चाहिए। जरूरतमंद के साथ सख्ती की जा सकती है परन्तु जो गरजमंद नहीं उसको साधना अधिक कठिन होता है। वह उसे समझाता है कि वह उसकी बातों को ठीक से समझ ले क्योंकि यह उनके जीवन भर के अनुभव का सार है।

**विशेष** – (1) वंशीधर के पिता नितान्त व्यावहारिक स्वार्थपूर्ण और चालाकी भरी बातें बेटे को समझाते हैं। उन्हें लगता है कि जीवन में सफलता का यही मार्ग है।

(2) भाषा सरल बोलचाल की, मुहावरेदार, प्रवाहयुक्त हिन्दुस्तानी है। अनपढ़ पिता के अनुरूप है।

**( 3 )**

**पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मी जी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या है, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं नचाती हैं। लेटे ही लेटे गर्व से बोले, चलो हम आते हैं। यह कहकर पंडित जी ने बड़ी निश्चिंतता से पान के बीड़े लगाकर खाये। फिर लिहाफ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले, बाबू जी आशीर्वाद ! कहिए, हमसे ऐसा कौन–सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गयीं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपादृष्टि रहनी चाहिए।**

**शब्दार्थ – अखंड** – पूर्ण, पक्का। **निश्चिंतता** – लापरवाही, बेफिक्री।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस गद्यांश में लेखक ज़मींदार अलोपीदीन की मनोस्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि –

**व्याख्या** – पंडित अलोपीदीन को पैसे की ताकत पर पक्का विश्वास था। उनका मानना था कि इस संसार में ही नहीं, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य था। संभवतः उनका यह कहना उचित ही था। लेखक कहता है कि न्याय और नीति भी दौलत के ही गुलाम हैं। दौलत जैसे चाहती हैं, इन्हें अपनी उंगलियों पर नचाती है। जब अलोपीदीन को गाड़ीवानों ने बताया कि उसकी नमक भरी गाड़ियों को दारोगा वंशीधर ने रोक लिया है तो उन्हें अधिक चिन्ता नहीं हुई। उन्हें विश्वास था कि अपनी वाक्पटुता और पैसे की ताकत से मामला अवश्य सुलझा ही लेंगे। उन्होंने गाडीवानों को कहा कि वे नदी के पुल की ओर जाएं, वह स्वयं भी आ रहे हैं। इसके पश्चात् बड़ी लापरवाही के साथ उन्होंने पान के बीड़े मुंह में दबाए और लिहाफ ओढ़े दारोगा के सामने जा खड़े हुए। ब्राह्मण होने के कारण आशीर्वाद देते हुए वंशीधर दारोगा से पूछा कि उनकी गाड़ियों को क्यों रोका गया है ? उनसे ऐसा कौन –सा अपराध हो गया है ? चापलूसी करते हुए कहा कि उन जैसे ब्राह्मणों पर तो सरकारी अधिकारी की कृपा बनी रहनी चाहिए।

**विशेष** – (1) अलोपीदीन के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। पैसे की ताकत का अभिमान उन्हें था।

(2) भाषा सरल, संवाद पात्र और परिस्थिति के अनुकूल है।

**( 4 )**

**दुनिया सोती थी पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक–वृद्ध सब के मुँह से यही बात सुनायी देती थी। जिसे देखिए वही पंडित जी के इस व्यवहार पर टीका–टिप्पणी कर रहा**

**था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचने वाला ग्वाला, कल्पित रोज़नामचे भरने वाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफर करने वाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज़ बनाने वाले सेठ और साहूकार यह सब के सब देवताओं की भाँति गर्दनें चला रहे थे।**

**शब्दार्थ – जीभ जागती थी** – जुबान चलती थी, बातें फैल रही थी। **रोज़नामचा** – रजिस्टर।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस कहानी में विद्वान् लेखक समाज के आचरण पर तीखी टिप्पणी करता है। जो जितना अधिक भ्रष्ट है वही सबसे अधिक भ्रष्टाचार का विरोध करता हुआ दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत गद्यांश में लेखक कहता है कि –

**व्याख्या** – पंडित अलोपीदीन के बन्दी बनाए जाने पर समाज में चारों ओर उसकी निंदा होने लगी। रात होने पर दुनिया सो जाती थी परन्तु निंदा की बातें चलती रहती थीं। बालक–वृद्ध सभी के मुंह पर एक ही बात थी और वह थी अलोपीदीन की निंदा। ऐसा लगता था कि एक अपराधी के पकड़े जाने से सारा भ्रष्टाचार संसार से मिट गया है। वे ग्वाले जो दूध में पानी मिलाकर बेचते थे, वे अधिकारी जो झूठे रजिस्टर तैयार कर पैसा कमाते थे, रेलगाड़ी में बिना टिकट यात्रा करने वाले बाबू, जाली दस्तावेज बनाने वाले सेठ और साहूकार, सभी देवता बने हुए अलोपीदीन की निंदा करने में लगे थे। कहने का भाव है कि सारे भ्रष्टाचारी अपने भ्रष्टाचार को छुपाने के लिए, अलोपीदीन की निंदा कर रहे थे।

**विशेष**– (1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक 'जीभ जगाना', 'बौछारे होना', 'गर्दनें चलाना', आदि मुहावरों का प्रयोग हुआ है। भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण एवं हिन्दुस्तानी है।

(2) भ्रष्ट लोग अपने भ्रष्टाचार को छुपाने के लिए सबसे आगे बढ़कर भ्रष्टाचारियों की निंदा करते हैं।

**( 5 )**

**वकीलों ने यह फैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुस्कराते हुए बाहर निकले। सज्जन बांधवों ने रूपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंगवाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक–झुककर सलाम किये। किंतु इस समय एक–एक कटुवाक्य, एक–एक संकेत उनकी गर्वाग्नि को प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकद्दमें में सफल होकर वह इस तरह अकड़ते न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वता, लम्बी–चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी–बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।**

**शब्दार्थ – उछल पड़े** – अत्याधिक प्रसन्न हुए। **सागर उमड़ पड़ा** – बहुत अधिक प्रवाह होना। **कटु वाक्य** – कड़वीं बातें। **गर्वाग्नि** – गर्व की आग।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इसमें प्रेमचंद जी अलोपीदीन के अदालत से मुक्त होने पर वकीलों की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं कि –

**व्याख्या** – जब अदालत ने अलोपीदीन को अपराध मुक्त घोषित कर ससम्मान बरी कर दिया तब उसके वकील खुशी से उछलने लगे। पंडित अलोपीदीन भी हंसते हुए अदालत से बाहर आ गए। उसके मित्रों और संबंधियों ने उस पर पैसे न्यौछावर किए। ऐसा लगता है कि लोगों की उदारता अलोपीदीन पर बरस रही थी। वकीलों की खुशी की लहरों में मानों अदालत की नींव ही उखड़ गई थी। दूसरी ओर जब वंशीधर अदालत से बाहर आए तब उन पर चारों ओर से व्यंग्य बाणों की वर्षा होने लगी। चपड़ासी उसे झुक कर सलाम कर रहे थे। इस समय प्रत्येक कटु उक्ति उसके गर्व को तीव्र कर रही थी। यदि वह मुकदमा जीत जाता तब भी वह इतने गर्व से अकड़ कर न चलता जितना हारने पर चल रहा था। वंशीधर की समझ में आ गया कि जो लोग सचमुच सम्मानित लगते हैं, वे शायद सम्मान के योग्य नहीं हैं। न्याय की कुर्सियों पर बैठे, विद्वतापूर्ण व्यक्ति, लम्बी चौड़ी उपाधियों को धारण करने वाले व्यक्ति, ढीले चोगे पहने धर्मात्मा सचमुच आदर के योग्य नहीं है।

**विशेष**–(1) अलोपीदीन का अदालत में दोष मुक्त किया जाना, न्याय प्रणाली के भ्रष्ट होने का प्रमाण है।
(2) वंशीधर का उच्च संस्थाओं और तथाकथित सम्मानित व्यवसायों, संस्थाओं पर से विश्वास उठ गया है।
(3) भाषा सरल एवं प्रवाहयुक्त है।

**( 6 )**

**वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा – यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरूष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान् कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की ज़रूरत है।**

**अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले, न मुझे विद्वता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य–कुशलता की। इन गुणों के महत्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच–विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला, बेमुरौवत, उदंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ट दारोगा बनाये रखे।**

**शब्दार्थ – कीर्तिवान** – यशस्वी। **त्रुटियों** – कमियों। **सुअवसर** – अच्छा मौका। **बेमुरौवत** – जो किसी का लिहाज न करे, दृढ़। **धर्मनिष्ठ** – धर्मात्मा।

**प्रसंग** – प्रस्तुत गद्यांश उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचंद विरचित कहानी 'नमक का दारोगा' से लिया गया है। इस गद्यांश में अलोपीदीन और वंशीधर की मुठभेड़ का अंकन किया गया है। पश्चाताप ग्रस्त अलोपीदीन वंशीधर को अपनी जायदाद मैनेजर बनाने का प्रस्ताव रखता है और वंशीधर अपनी असमर्थता बताते हुए कहता है कि –

**व्याख्या** – वैसे तो मैं आपका दास हूँ। आप जैसे यशस्वी और सज्जन व्यक्ति की सेवा करने में उसे आनन्द आएगा फिर भी उसे लगता है कि इस दायित्व को निभाने के लिए उसके पास न तो विद्वता है, न बुद्धि और न ही ऐसा स्वभाव जिससे इन चीज़ों की कमी को छुपाया जा सके। कहने का भाव यह है कि वह विनयवश अपने को पद के लिए अयोग्य कहता है। अलोपीदीन उसे आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि उसे विद्वान्, मर्मज्ञ, कुशल और अनुभवी व्यक्ति की खोज नहीं है। अब सौभाग्य से उसे, उसके रूप में ऐसा मोती मिल गया है जिसकी चमक इन सबसे कहीं अधिक है। अलोपीदीन कहता है कि अब वंशीधर को अधिक संकोच नहीं करना चाहिए और उसके लाए दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर कर अपनी मंजूरी दे दे। वह कहता है कि उसे तो वही वंशीधर चाहिए जो नदी के किनारे मिला था, कठोर, उदंड, बेलिहाज और धर्म की राह पर चलने वाला है। उसे सचमुच ईमानदार आदमी की ज़रूरत है।

**विशेष** – (1) लेखक ने तात्कालीन पक्षपातपूर्ण न्याय व्यवस्था पर गहरी चोट की है।
(2) भाषा सरल, सुबोध एवं प्रभावशील खड़ी बोली है।
(3) तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
(4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
(3) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

● **आकाशदीप : व्याख्या भाग**

**(1)**

**तारक–खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था, समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री**

**सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर फिर लुढ़कते हुए नदी के समीप पहुँच गई।**

**शब्दार्थ–तारक–खचित** = तारों से परिपूर्ण। **अम्बर** = आकाश। **पवन** = हवा। **ऊधम मचाना** = कोलाहल मचाना। **दुष्ट** = नीच, बुरा। **आन्दोलन** = हलचल। **विकल** = व्याकुल, बेचैन। **सतर्कता** = सावधानी।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत कहानी में प्रसाद जी ने बुद्धगुप्त और चम्पा के प्रेम का वर्णन किया है। यहाँ कहानीकार उस स्थिति का वर्णन करता है जब चम्पा रात के अन्धकार में बुद्धगुप्त और अपने–आपको कैद से मुक्त करने का प्रयास करती है।

**व्याख्या**–लेखक कहता है कि नीले आकाश में तारे जगमगा रहे थे। नीले–काले सागर में हलचल मची हुई थी और वायु तीव्र गति से प्रभावित हो रही थी अर्थात् बड़ी तेज हवाएँ चल रही थीं। अन्धकार के मिश्रण के कारण वायु निरन्तर भयानक रूप धारण करती जा रही थी। सम्पूर्ण सागर में हलचल मची हुई थी। पानी की उठती और गिरती लहरों के कारण नौका व्याकुल होकर डगमगा रही थी। नौका में स्थित स्त्री अर्थात् चम्पा लुढ़कती हुई दूसरे कैदी की ओर अग्रसर होने लगी। अचानक वह एक लापरवाह नाविक के शरीर से जा भिड़ी। वस्तुतः वह स्त्री जान–बूझकर नाविक के पास पहुँचकर उसे कैद से मुक्त करना चाहती थी। उसने बड़ी सावधानी से उस नाविक की तलवार निकाल ली और फिर लुढ़कती हुई उस कैदी के पास पहुँच गई जिसका नाम बुद्धगुप्त था। तात्पर्य यह है कि सागर की हलचल रात के अन्धकार और तेज हवाओं का लाभ उठाकर चम्पा ने स्वयं को और दूसरे कैदी को आजाद करने की योजना बनाई।

**विशेष**–1. यहाँ लेखक ने रात्रिकालीन आकाश, अंधकार और सागर की लहरों का यथार्थ वर्णन किया है।
2. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के कारण परिनिष्ठित खड़ी बोली का सफल प्रयोग हुआ है।
3. शब्द–प्रयोग सर्वथा उचित एवं देशकाल के अनुसार है।
4. वाक्य विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।
5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
6. वर्णनात्मक शैली का सफल प्रयोग हुआ है।

(2)

**भीषण घात परिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों तत्काल गति वाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपनी कृपाण दाँतों में पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धघ्गुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्ध गुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कायर आँखें प्राण भिक्षा माँगने लगीं।**

**शब्दार्थ–भीषण** = भयंकर, भयानक। **घात–परिघात** = चोट देना। **त्वरित** = तेज, शीघ्र। **निपुणता** = कुशल, प्रवीणता। **कृपाण** = तलवार। **विकट** = भयंकर। **हुँकार** = तेज आवाज, गर्जना। **कटि** = कमर। **प्रभात** = समय, सवेरा। **कायर** = डरपोक।

**प्रसंग**–प्रस्तुत जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ लेखक ने बुद्धगुप्त तथा नाविक के स्वामी के बीच हुए संघर्ष का यथार्थ वर्णन किया है।

**व्याख्या**—जलदस्यु बुद्धगुप्त और चम्पा अपनी चालाकी से कैद से मुक्त हो गए थे। यही नहीं, उन्होंने अपनी नौका को समुद्री जहाज से अलग कर लिया। रात्रि का घना काला अन्धकार था और तूफान जोरों पर था। फलस्वरूप नौका समुद्री जहाज से बहुत दूर निकल गई। नौका का स्वामी कौन बने इसके लिए बुद्धगुप्त और नाविक के बीच ढन्द—युद्ध छिड़ गया। दोनों एक—दूसरे पर भयंकर प्रहार करने लग गए। दोनों युद्ध—कला में कुशल थे और दोनों ही तीव्र गति से एक—दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। बुद्धगुप्त ने बड़ी कुशलता के साथ अपनी तलवार को दाँतों में पकड़ लिया और जोर लगाकर अपने दोनों हाथों को छुड़ा लिया। चम्पा बड़ी हैरानी के साथ यह सब देख रही थी, वह डरी हुई थी। लेकिन अन्य सभी नाविक बड़े खुश थे। बुद्धगुप्त ने बड़ी चालाकी के साथ नाविक का वह हाथ पकड़ लिया जिसमें तलवार थी। भयंकर गर्जना करते हुए उसने अपना दूसरा हाथ नाविक की कमर में डाल दिया और फिर उसे नीचे पटक दिया। भाव यह है कि जलदस्यु बुद्धगुप्त ने बड़ी वीरता और कुशलता के साथ नौका के नाविक को पराजित कर नीचे गिरा दिया था। अगले ही पल प्रातःकाल की किरणें चमक रही थीं। साथ ही विजय प्राप्त करने वाली तलवार बुद्धगुप्त के हाथों में चमक उठी थी। बुद्धगुप्त पूर्णतया विजयी था। अन्त में नाविक की डरी हुई आँखे बुद्धगुप्त से अपने प्राणों की भीख माँगने लगीं। तात्पर्य यह है कि बुद्धगुप्त ने अपनी वीरता के कारण नौका के नाविक पर विजय प्राप्त कर ली थी।

**विशेष**—1. यहाँ प्रसाद जी ने जलदस्यु बुद्धगुप्त और नाव के नाविक के बीच हुए द्वन्द्व—युद्ध का यथार्थ वर्णन किया है।

2. यहाँ लेखक ने सहज, सरल एवं बोधगम्य खड़ी बोली का प्रयोग किया है।
3. शब्द—प्रयोग सर्वथा उचित एवं सटीक है।
4. वाक्य—विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।
5. ओज गुण और वीर रस का परिपाक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**(3)**

**चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे, धवल अपांग में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन में सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र वक्ष पर विलम्वमयी रागरंजित संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका। वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक वही वस्तु का पता चला, वह थी कोमलता।**

**शब्दार्थ—निस्सीम** = असीम। **निरुद्देश्य** = उद्देश्यहीन। **आकांक्षा** = इच्छा। **धवल** = सफेद। **अपांग** = आँख का कोना। **सदृश** = समान। **सम्भ्रमपूर्ण** = घबराहट पूर्ण। **वक्ष** = छाती। **राग रंजित** = लालिमा से युक्त। **असंयत कुन्तल** = बिखरे हुए बाल। **तरुण बालिका** = युवती। **दुर्दान्त दस्यु** = भयानक डाकू। **विस्मय** = हैरान।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। यहाँ कहानीकार ने सागर की लहरों में विद्यमान नौका और उसके नाविकों के साथ चम्पा तथा बुद्धगुप्त का वर्णन किया है।

**व्याख्या**—चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों ही नौका पर कैद थे, लेकिन उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ स्वयं को कैद से मुक्त कर लिया और नौका भी पोत से अलग हो गई थी। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहता

है कि चम्पा बेसहारा होकर उस अनन्त सागर प्रदेश में उद्देश्यहीन होकर चारों ओर देख रही थी। उसकी आँखों में कोई आशा अथवा आकांक्षा नहीं थी इसलिए उसकी आँखें लाल नहीं थीं, बल्कि उसकी आँखों के श्वेत कोयों में बच्चों जैसा विश्वास था। हत्या का व्यवसाय करने वाला वह दस्यु अर्थात् बुद्धगुप्त भी उसे देखकर डर गया था। उसके मन में अब चम्पा के नवयौवन के प्रति श्रद्धा की भावना जागृत हो गई थी। भाव यह है कि कैद से मुक्त होने के पश्चात् चम्पा बिना किसी उद्देश्य के चारों ओर देख रही थी। उसके चेहरे को देखकर लगता था कि उसके मन में कोई आशा शेष नहीं बची है। इसलिए उसका व्यवहार बच्चों जैसा हो गया था।

दूसरी ओर सागर की छाती पर सायंकाल का अन्धेरा उतरने लगा था। चम्पा के सिर के लम्बे–लम्बे बाल उसकी पीठ पर फैलकर बिखर गए थे। चम्पा के नवयौवन तथा शरीर की कोमलता को देखकर क्रूर हृदय बुद्धगुप्त के मन में भी करुणा की भावना उत्पन्न होने लगी थी। उसे लगा कि मानो कोमलता जैसी नई वस्तु उसे प्राप्त हो गई है। बुद्धगुप्त के जीवन का यह सर्वथा एक नवीन अनुभव था। वह बड़ा हैरान होकर अपनी हृदयगत भावनाओं में उलझ गया था।

**विशेष–1.** अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् चम्पा का जीवन उद्देश्यहीन हो गया था। यहाँ लेखक ने उसकी मनोस्थिति का वर्णन किया है।

2. यहाँ लेखक ने सहज, सरल एवं बोधगम्य खड़ी बोली का प्रयोग किया है।
3. शब्द–प्रयोग सर्वथा उचित एवं सटीक है।
4. वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।
5 . प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**(4)**

**सामने जल–राशि का रजत श्रृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल–मालायें बना रही थी और वे मायाविनी छलनायें अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थी। दूर–दूर से धीवरों की वंशी–झनकार उनके संगीत–सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल–राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त–व्यस्त था, वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई।**

**शब्दार्थ–जल–राशि** = पानी का समूह। **रजत श्रृंगार** = चाँदी का–सा सौन्दर्य। **शैल–मालायें** = पर्वत की चोटियाँ। **मायाविनी** = जादू करने वाली। **छलनायें** = धोखा। **कलनाद** = कल–कल की ध्वनि। **धीवर** = मल्लाह। **वंशी–झनकार** = बत्ती की ध्वनि। **संकुल** = युक्त। **कंडील** = दीपक। **तरल** = चंचलता।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत गद्यांश में कहानीकार ने सागर और द्वीप की प्रकृति तथा चम्पा की मनःस्थिति का चित्रण किया है। उस निर्जन द्वीप पर चम्पा एक दीप जलाकर आकाशदीप बनाने का प्रयास कर रही है। इसी वातावरण को चित्रित करते हुए लेखक कहता है कि–

**व्याख्या**–जहाँ चम्पा निर्जन द्वीप पर एक दीपक जलाकर आकाश दीप बनाने का प्रयास कर रही थी, उसके सामने दूर–दूर तक सागर का पानी फैला हुआ था और वह चाँदी के समान दिखाई दे रहा था। तेज हवा चल रही थी और वह द्वीप की बालिकाओं के लिए सागर की लहरों से हीरे और नीलम से खेलने के लिए मालाओं की रचना कर रही थी। जादू उत्पन्न करने वाले समुद्री झींगुरों की आवाजें दूर–दूर से आ रही थीं। वे झींगुर कभी तो प्रकट हो जाते थे। और कभी छिप जाते थे यही स्थिति उनकी ध्वनि की थी। दूर–दूर से नाविकों

की बांसुरी की संगीत लहरी भी उत्पन्न हो रही थी। भाव यह है कि एक ओर तो सागर के झींगुर अपनी ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे और दूसरी मल्लाहों की बांसुरी बज रही थी। चम्पा ने देखा कि सागर की लहरों में उसने जो दीपक जलाया था, उसकी छाया लहरों के कारण अस्त–व्यस्त हो गई है। वह दीपक अपनी पूर्णता को प्राप्त करने के लिए पानी में बार–बार चक्कर काट रहा था। यही सब देखकर चम्पा का मन बेचैन हो गया और वह व्याकुल होकर उठ खड़ी हुई। भाव यह है कि अब उसकी दीपक जलाने और उसे सागर के पानी में प्रवाहित करने में रुचि नहीं रही।

**विशेष**–1. यहाँ कहानीकार ने निर्जन द्वीप तथा सागर की प्रकृति के साथ–साथ चम्पा की मनःस्थिति का बड़ा ही और प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. प्रस्तुत गद्य भाग में काव्यमयी खड़ी बोली का सफल प्रयोग है ऐसा लगता है कि मानो हम गद्य काव्य पढ़ रहे हैं।

3. शब्द–प्रयोग सर्वथा उचित है।

4. वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

6. वर्णनात्मक शैली का सफल प्रयोग हुआ है।

(5)

**सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में, विस्तृत जल, देश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी, उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा, जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए, वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का।**

**शब्दार्थ–शैलमाला** = पर्वत की चोटियाँ। **पिंगल** = पापी। **सृजन** = निर्माण करना। **कुहक** = ध्वनि, आवाज। **अन्तरिक्ष** = आकाश। **सौरभ** = सुगन्ध। **सिन्धु** = सागर।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। प्रस्तुत गय भाग में कहानीकार ने प्रकृति की पृष्ठभूमि में चम्पा और बुद्धगुप्त के प्रेम का वर्णन किया है। दोनों नौका पर बैठकर निर्जन द्वीप में विचरण कर रहे थे। ऐसी स्थिति में द्वीप की प्रकृति का सुन्दर दृश्य चम्पा के मन को रोमांचित कर देता है।

**व्याख्या**–चम्पा और बुद्धगुप्त दोनों ही एक नौका में बैठकर समुद्र के विशाल पानी में विचरण कर रहे थे। उनके सामने ही पर्वतमालाओं की ऊँची–ऊँची चोटियाँ थी। ये चोटियाँ हरियाली से ढकी हुई थीं। सागर में विशाल जल समूह था। उस सूने प्रदेश में नीले और पीले रंग की संध्या की प्रकृति उनके हृदय में कल्पना और संवेदनशीलता उत्पन्न कर रही थी। भाव यह है कि सायंकाल होने के कारण आकाश में नीलिमा और पीत वर्ण की प्राकृतिक छटा फैली हुई थी। फलस्वरूप एक सपनों का संसार निर्मित होने लगा था अर्थात् चम्पा के मन में विचित्र प्रकार के सपने फूटने लगे थे। उस आकर्षक प्रकृति के रहस्यात्मक नीलिमा में चम्पा का मन कोयल के समान मधुर स्वर लहरी उत्पन्न करने लगा था। चम्पा को ऐसे लगा कि मानों सम्पूर्ण आकाश शराब के नशे के कारण मस्त हो गया है। भाव यह है कि चारों ओर मस्ती का वातावरण छाया हुआ था। प्राकृतिक सुगन्ध के कारण चम्पा मानो पागल हो उठी। उसने प्रेम के वशीभूत होकर दोनों हाथ कसकर पकड़ लिए, दोनों में प्रगाढ़ प्रेम का आलिंगन हुआ। ऐसा लगा कि मानों आकाश और सागर का आलिंगन हो रहा है।

**विशेष**—1. यहाँ प्रसाद जी ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का बड़ा ही मनोहारी एवं आकर्षक वर्णन किया है।

2. काव्यमयी खड़ी बोली के कारण प्रसाद का कवि ह्रदय प्रस्फुटित हो उठा है।

3. संस्कृतनिष्ठ तत्सम प्रधान शब्दावली सफल प्रयोग है।

4 शब्द—प्रयोग सर्वथा उचित एवं सटीक है।

5. माधुर्य गुण और श्रृंगार रस का परिपाक है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**6. चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंघु—जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदिवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी—सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वन—कुसुम—विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।**

**शब्दार्थ—मनोरम** = सुन्दर। **शैलमाला** = पर्वतीय श्रृंखला। **सिन्धु** = सागर। **निमग्न** = डूबी हुई। **ताम्रलिप्ति** = एक स्थान विशेष का नाम। **श्रेणी** = पंक्ति। **कुसुम—विभूषिता** = फूलों से सजी हुई। **शिविकारूढ़** = पालकी पर सवार होकर।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद विरचित कहानी **'आकाशदीप'** से लिया गया है। भले ही जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के महान् छायावादी कवि हैं, लेकिन एक कहानीकार के रूप में उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई है। चम्पा द्वीप में एक महान् उत्सव मनाया जा रहा था। उसकी सभी तैयारियों चल रही थी। यहाँ कथाकार चम्पा द्वीप की प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है—

**व्याख्या**—चम्पाद्वीप के एक—दूसरे भाग में एक सुन्दर और आकर्षक पर्वतीय श्रृंखला थी। वह पर्वतों की पक्तियाँ दूर तक समुद्र के पानी में डूबी हुई दिखाई दे रही थीं। समुद्र का चंचल पानी जोरों से उछलकर उस पर्वतीय माला को छिपाने का प्रयास कर रहा था। भाव यह है कि सागर की लहरें बार—बार पर्वतीय श्रृंखला से टकरा रही थीं। इसी पर्वत श्रृंखला पर चम्पा के मूल निवासी एक उत्सव मना रहे थे। उन सबने मिलकर चम्पा को एक वन की देवी के समान सजाया हआ था। ताम्रलिप्ति के बहुत—से सैनिक और नाविक पंक्ति में चल रहे थे। उनके बीच फूलों से सुशोभित होकर चम्पा भी पालकी पर सवार होकर आगे बढ़ रही थी।

**विशेष—1** यहाँ कहानीकार ने चम्पा द्वीप में होने वाले एक समारोह का वर्णन किया है जिसमें ताम्रलिप्ति के सैनिक और स्थानीय नाविक सज—धज कर भाग ले रहे थे। चम्पा भी फूलों से सुशोभित होकर इसी समारोह में भाग लेने के लिए चली जा रही थी।

2. यहाँ लेखक ने सहज, सरल एवं बोधगम्य खड़ी बोली का प्रयोग किया है।

3. शब्द—प्रयोग तथा वाक्य—विन्यास सर्वथा उचित एवं सटीक है।

4. प्रकृति के आलम्बन रूप का सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- **परदा : व्याख्या भाग**

**(1)**

**''वो भी क्या बक्त थे। लोग मिडिल पास कर डिप्टी—कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एष्ट्रेंस तक अंग्रेजी पढ़कर लड़के तीस—चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते। बेटों को ऊँचे ओहदे पर देखने का अरमान लिये ही उन्होंने आंखें मूंद ली थीं।''**

**शब्दार्थ–मिडिल** = आठवीं कक्षा, **अरमान** = अभिलाषा, **आँखें मूंद ली** = मृत्यु को प्राप्त हुए, **तालीम** = शिक्षा, **ओहदा** = पद।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पंक्तियां **यशपाल** की प्रसिद्ध कहानी **'परदा'** से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व लेखक यह बता चुका है कि पीरबक्श के दादा चुंगी के महकमे में दारोगा थे और उन्होंने अपनी अच्छी आमदनी से न केवल बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलवायी बल्कि एक छोटा–सा पक्का मकान भी उन्होंने बना लिया था। परन्तु उनके दोनों लड़के अच्छी शिक्षा पाने के पश्चात् भी ओहदे व तनख्वाह में कोई तरक्की न पा सके। यह देखकर पीरबक्श के दादा अपने जमाने की तुलना अपने पुत्रों के वर्तमान समय से करते हुए कहते हैं–

**व्याख्या**–अपने एंट्रेस कक्षा तक शिक्षा प्राप्त पुत्रों को किसी ऊँचे ओहदे पर पहुँचते न देख तथा उनके वेतन में विशेष बढ़ोतरी होते न देख, दारोगा चौधरी अपने समय को याद करते हुए कहते हैं कि अब समय के साथ–साथ शिक्षा का मूल्य भी बदल गया है उनके जमाने में जो व्यक्ति मिडिल कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर लेता था यह उच्च शिक्षित माना जाता था और वह सरकारी नौकरी में पदोन्नत होकर डिप्टी कलक्टर के पद तक पहुँच जाता था परन्तु आजकल की शिक्षा का कोई मूल्य नहीं है। अब अपने बच्चों को यदि एट्रेन्स तक अंग्रेजी में भी शिक्षा दिलवाई जाये तो भी के सरकारी नौकरी में तीस–चालीस रुपये महीना ही कमा पाते हैं। शिक्षा के आधार पर इससे अधिक वेतन तथा उच्च पद अब उन्हें नहीं मिल सकते। कहानीकार बताता है कि दारोगा चौघरी जीवन भर अपने दोनों लड़कों को उच्च पद पर आसीन होते देखने की लाससा अपने मन में पाले रहे परन्तु उनके लड़के उच्च पद पर आसीन न हो सके। अन्ततः इस कामना को मन में ही लिए इस संसार से चले गए।

**विशेष–1** लेखक ने दारोगा के माध्यम से शिक्षा के गिरते मूल्य पर प्रकाश डाला है।

2. भाषा सरल, सहज, प्रवाहमयी व प्रसंगानुकूल खड़ी बोली है।
3. सम्पूर्ण गद्यांश में फारसी शब्दों के प्रयोग से मुस्लिम संस्कृति के परिवेश का आभास होता है।
4 आँखें मूंदना मुहावरे के प्रयोग से भाषा में लाक्षणिकता का समावेश हुआ है।
5. अभिधा व लक्षणा शक्ति का प्रयोग हुआ है।
6. वर्णनात्मक शैली में यथार्थ को उद्‌घाटित किया गया है।
7. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

**(2)**

**मुहल्ले में चौधरी पीरबक्श की इज्जत थी। उस इज्जत का आधारित, घर के दरवाजे पर लटका परदा। भीतर जो हो, पर्दा सलामत रहता था। कभी बच्चों को खींच–खाँच या बेदरद हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते तो परदे की आड़ में जनाने हाथ सूई–धागा लेकर उसकी मरम्मत कर देते थे।**

**शब्दार्थ–सलामत** = ठीक–ठाक, **बेदरद** = कठोर, **आइ** = ओर या पीछे।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यांश **यशपाल** विरचित कहानी **'परदा'** से लिया गया है। इन पंक्तियों में लेखक ने चौधरी पीरबक्श के परिवार की गिरी आर्थिक स्थिति की ओर संकेत किया है।

**व्याख्या**–इन पंक्तियों में लेखक ने उस कच्ची बस्ती में जहाँ सारे निम्न वर्ग के लोग ही रहते थे, चौधरी पीरबक्श की इज्जत बनी हुई थी। उनकी इज्जत का आधार उनके दरवाजे पर लटका हुआ परदा था अर्थात् उनके घर के भीतर कुछ भी होता रहे परंतु बाहर वालों को पता नहीं चल पाता था। घर की इज्जत उस परदे से ढकी रहती थी। कभी बच्चों की खींच–खाँच से और कभी तेज हवाओं के झोंकों से यदि परदा फट जाता था तो घर की औरतों, परदे की ओट में खड़े होकर सूई धागे से उसे सिल देती थीं। इस प्रकार चौधरी परिवार की इज्जत पर कोई आँच नहीं आती थी।

**विशेष**–1. पीरबक्श के परिवार में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा था। इसका संकेत दिया गया है। परिवार की इज्जत बनाए रखने में परदे की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तद्भव शब्दावली के साथ उर्दू शब्दों का प्रयोग कहानी की मुसलिम पृष्ठभूमि के उपयुक्त जान पड़ता है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**(3)**

**''मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्जत होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता, पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो तो भी चोर डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा। चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की।''**

**शब्दार्थ–सफेदपोशी** = भलमनसाहत, **साबुत** = पूरा। **फिक्र** = चिंता। **आबरू** = इज्जत।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियाँ **यशपाल** कृत **'परदा'** कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार बता चुका है कि पीरबक्श का वेतन पन्द्रह वर्ष में बारह रुपये से बढ़कर अठारह रुपये हो चुका है जबकि उसके परिवार में सदस्यों का सख्या दी से बढ़कर आठ हो चुकी है। फलतः परिवार की आर्थिक दशा बिल्कुल बिगड़ चुकी थी। इस वेतन से घर के प्राणियों का किसी तरह पेट ही भर पाता था। दरवाजे पर लटका परदा जीर्ण–शीर्ण हो चुका था और ड्योढ़ी के किवाड़ भी गल–सड़ गिर चुके थे। चूँकि मकान मालिक सुरजू पाण्डे को छह–छह महीनों से किराया नहीं मिलता था, इसलिए उसने नए किवाड़ चढ़वाने से मना कर दिया था। पीरबक्श रात होते ही उन्हीं टूटे हुए किवाड़ों को चौखट से सटाकर खड़ा कर देते परन्तु रातभर उन्हें चोरों का भय सताता रहता। यहाँ पर कहानीकार पीरबक्श की आर्थिक दुर्दशा व उसके मनोभावों पर प्रकाश डाल रहा है।

**व्याख्या**–कहानीकार कहता है कि चूँकि पीरबक्श के द्वार पर हमेशा परदा लटका रहता था, उनके घर की लड़कियाँ स्त्रियाँ कभी बाहर न निकलती थीं और पीरबक्श चूंकि उस मुहल्ले में सबसे अधिक पढ़े–लिखे व्यक्ति थे, अतः पूरा मुहल्ला उन्हें भला व इज्जतदार आदमी समझता था परन्तु समाज में यह सम्मान पाकर भी पीरबक्श की वास्तविक आर्थिक स्थिति बिल्कुल खराब थी और उसके घर में कोई भी वस्तु ऐसी न थी जिसे चोर ले जाता। पूरे घर में न तो किसी स्त्री, पुरुष या बच्चे का कोई पूरा वस्त्र था और न ही कोई ऐसा बरतन था जिसे चुराया जा सके। कहने का अभिप्राय यह है कि घर के सभी सदस्य अधनंगे थे और घर में टूटे–फूटे पुराने बरतन थे।

कहानीकार कहता है कि चोर तो चोर ही होता है। यदि घर में चुराने के लिए कोई वस्तु न हो, तो भी उसके आने का भय तो बना ही रहता है, क्योंकि चोर को क्या पता कि जहाँ वह चोरी करने जा रहा है, वहाँ चुराने लायक कुछ भी नहीं है। पीरबक्श को भी अपने घर में कुछ न होने के कारण चोरों द्वारा की जाने वाली चोरी की इतनी चिंता नहीं थी जितनी कि अपने घर में अर्द्धनग्न रहने वाली स्त्रियों की इज्जत की चिंता थी।

**विशेष**–1 कहानीकार ने मध्यवर्गीय परिवार पर पड़े झूठी शान के परदे को हटाकर उसकी पोल खोल दी है।

2. सरल, सहज, व प्रवाहमयी खड़ी बोली का प्रयोग है।

3. अरबी व फारसी के शब्दों जैसे–सफेद पोशी, इज्जत, शायद आदि का अधिक प्रयोग हुआ है।

4. अभिधा के साथ व्यंजना शब्द–शक्ति का प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

6 वर्णनात्मक व व्यंग्यात्मक शैली में यथार्थ को उद्घाटित किया गया है।

**(4)**

**''चौधरी में उस दृश्य को देख सकने की ताब न थी परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा घर की औरतें और लड़कियों परदे की दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचोबीच भय से इकट्ठी खड़ी हो कॉप रही थीं, सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक–तिहाई अंग ढकने में भी असमर्थ थे''।**

**शब्दार्थ–ताब** = सामर्थ्य, शक्ति, **चीथड़े** = जीर्ण–शीर्ण वस्त्र।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पक्तियाँ यशपाल कृत 'परदा' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों से पूर्व बबर अली खां अपना सवा रुपये का ऋण वसूल करने के लिए पीरबक्श के घर पहुँच जाता है। यद्यपि पीरबक्श ने मित्रों से उधार लेकर खां का ऋण उतारना चाहा परन्तु उसे किसी ने एक पैसा भी न दिया। घटना वाले दिन पीरबक्श दोपहर के समय खाना खाने के लिए पहुंचा ही था कि खां वहाँ पहुँच जाता है तथा पीरबक्श को गाली–गलौच देता हुआ धन माँगता है। अन्ततः वह पीरबक्श की अनुनय–विनय से द्रवित हुए बिना उसके द्वार पर टंगे परदे को यह कहकर खींच लेता है कि 'तुम्हारी खाल से तो यह टाट अच्छा'। परदे के हटते ही पीरबक्श के परिवार की प्रकट हुई आर्थिक दुर्दशा का उपर्युक्त गद्यांश में वर्णन हुआ है।

**व्याख्या**–कहानीकार बताता है कि मध्यमवर्गीय पीरबक्श ने परदे से जो अपनी झूठी शान बना रखी थी, बबर अली खों द्वारा वह परदा खींचते ही उसके परिवार में वर्षों से राज करती चली आ रही दरिद्रता का खौफनाक अथवा भयावह दृश्य उपस्थित हो गया। चौधरी पीरबक्श में अपने परिवार की स्त्रियों के अर्द्धनग्न शरीर देखने का सामर्थ्य न था परन्तु वहाँ पर खड़े मुहल्ले के लोगों व आने–जाने वाले लोगों की भीड़ ने देखा कि पीरबक्श के परिवार की औरतें और लड़कियाँ घर के भीतर अर्थात् परदे के अन्दर की ओर थीं और बाहर की ओर खड़े बबर अली खां के रौद्र व्यवहार से आतंकित होकर वे अपने आँगन के बीचों–बीच खड़ी हुई थीं और भयभीत थीं। बबर अली खां द्वारा अचानक परदा खींचे जाने से वे औरतें सम्भल न सकीं और वे वहीं खड़ी–खड़ी अपने आप में सिकुड़ गईं अर्थात् लज्जा के कारण वे अपने हाथों से ही अपने अंगों को छिपाने का प्रयास करने लगीं। चूँकि उनके शरीर पर जो कपड़े थे वे अत्यन्त जीर्ण–शीर्ण थे और वे फटे हुए कपड़ों से अपने एक तिहाई शरीर को ही ढाँप सकती थीं। अतः लेखक कहता है कि ड्योढी पर जो परदा लटक रहा था वस्तुतः वह उन सभी स्त्रियों व लड़कियों के तन का कपड़ा था जो किसी भी बाहरी व्यक्ति से उन्हें छुपाता था।

**विशेष**–1. लेखक ने मध्यवर्गीय पीरबक्श की झूठी शान व घोर दरिद्रता का यथार्थ परक चित्रण किया है।

2. सरल, सहज व प्रवाहमयी खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है।
3. प्रचलित देशज (चीथड़े), विदेशज (ताब) आदि शब्दों का सार्थक प्रयोग हुआ है।
4. अभिधा व व्यंजनाशब्द–शक्ति का प्रयोग है।
5. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।
6. वर्णनात्मक व भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**(5)**

**जाहिल भीड़ से घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिपल गई। ग्लानि से थूक, परदे को आँगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने कहा– ''लाहौर बिला...'' और असफल लौट गया।**

**शब्दार्थ–जाहिल** = गंवार, **घृणा** = नफरत, **शरम** = लज्जा।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पंक्तियां यशपाल कृत 'परदा' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों से पूर्व बबर अली खां अपना सवा रूपये का ऋण वसूल करने के लिए पीरबक्श के घर पहुँच जाता है। यद्यपि पीरबक्श ने मित्रों से उधार लेकर खां का ऋण उतारना चाहा परन्तु उसे किसी ने एक पैसा भी न दिया। घटना वाले दिन पीरबक्श दोपहर के समय खाना खाने के लिए पहुंचा ही था कि खा वहाँ पहुँच जाता है तथा पीरबक्श को गाली–गलौच देता हुआ धन माँगता है। अन्ततः वह पीरबक्श की अनुनय–विनय से द्रवित हुए बिना उसके द्वार पर टंगे परदे को यह कहकर खींच लेता है कि 'तुम्हारी खाप्त से तो यह टाट अच्छा'।

**व्याख्या**–जैसे ही ड्योढ़ी पर परदा हटता है अंदर पीरबक्श के परिवार की स्त्रियाँ बाहर खड़ी भी व खान को नग्य प्राय अवस्था में दिखाई पड़ती हैं। स्त्रियों की यह नग्नावस्था देखकर बाहर खड़ी तमाशबीन गँवार भीड़ ने घृणा और लज्जा से अपनी आँखें उस दृश्य से हटा ली। इत्त नग्नता से परिपूर्ण दृश्य को देखकर अपना ऋण वसूल करने आए खान को कठोरता भी पिघल गई। उसने ग्लानि में भरकर पहले थूका फिर अपने हाथ में आया परदा आँगन में फेंका तथा क्रोध एवं निराशा में भरकर 'लाहौल बिला..' कहा और अपना ऋण वसूल बिना ही असफल होकर वापिस लौट गया।

**विशेष**–1. लेखक ने पीरबक्श के परिवार की आर्थिक दुर्दशा का सजीव चित्र अंकित किया है।

2. भाषा सरल, सहज व धारा प्रवाह खड़ी बोली है।
3. तद्भव व उर्दू शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. वाक्य–विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
6. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- **वापसी : व्याख्या भाग**

**(1)**

**इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी। जब वे अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वे अपने अभाव का बोझा ढो रहे थे। सांसारिक दृष्टि से उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में मकान बनवा लिया था। बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादियों कर दी थी। दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे।**

**शब्दार्थ–काटा था** = व्यतीत किया था। **क्षण** = पल। **आशा** = उम्मीद। **अभाव** = कमी। **बोझा** = वजन।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश 'उषा प्रियंवदा' विरचित कहानी 'वापसी' से लिया गया है। इस कहानी में लेखिका ने सेवानिवृत्त गजाधर बाबू की अपने ही घर में उपेक्षा का चित्रण किया है। इन पंक्तियों में लेखिका ने सेवानिवृत्ति के समय गजाधर बाबू की आर्थिक सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है।

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि पैंतीस वर्षों तक रेलवे की नौकरी करते हुए गजाधर बाबू छोटे–छोटे स्टेशनों बर एकाकी जीवन बिताते रहे। उनकी पत्नी बच्चों को लेकर शहर में रहती थी ताकि बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। गजाधर बाबू पत्नी और बच्चों के साथ का अभाव अनुभव करते थे। ये अभाव हर क्षण उन्हें भारी बोझ की तरह लगते थे। लेकिन वे इसी कल्पना के सहारे एक–एक दिन काटते रहे कि जिस दिन वे सेवानिवृत्त होगे, फिर उन्हें पत्नी और बच्चों के साथ रहने का सुख मिलेगा। इसलिए सेवानिवृत्त होकर घर जाते हुए ये बेहद प्रसन्न हैं। एक मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने जीवन की असफलता और सफलता को इस पैमाने पर ही तोलता है, कि उत्तने नौकरी प्राप्त की या नहीं की तो उसके चत्तते उसने अपना मकान बनवाया या नहीं, बच्चों को उच्च शिक्षा

दी या नहीं, बच्चों का विवाह कराया या नहीं। इस दृष्टि से गजाधर बाबू अपने जीवन को सफल मानते हैं कि उन्होंने पैंतीस वर्ष रेलवे में नौकरी की और अपना मकान शहर में बनवाया। बच्च्चों का विवाह कराया और उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ दीं। वे अच्छे पति और पिता की तरह परिवार के सुख को ही अपना मुख मनाकर संतुष्ट हैं।

**विशेष**–1. सेवानिवृत्ति के समय गजाधर बाबू की आर्थिक सामाजिक स्थिति का चित्रण हुआ है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तद्‌भव शब्दावली को प्रधानता है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**(2)**

**''जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हंसते–बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते–उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाती क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि–प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहतीं। दोपहर में गर्मी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए राप्ती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम–गरम रोटियों सेंकती उनके खा चुकने और मना करने पर भी बोड़ा–सा कुछ और बाती में परोस देती और बड़े प्यास से आग्रह करती।**

**शब्दार्थ–मनोविनोद** = मन बहलाना। **सूनापन** = अकेलापन। **स्नेहपूर्ण** = प्रेमभरी।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यांश **उषा प्रियंवदा** की प्रमुख कहानी 'वापसी' से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व रेलवे विभाग में पैंतीस वर्षों तक सेवा करने के पश्चात् गजाधर बाबू सेवानिवृत्त होकर अपने परिवार के साथ रहने की सुखद कल्पना करते हैं। अवतरित पंक्तियों में वे उस समय को याद कर प्रसन्नचित हो उठते हैं जब वे सपरिवार रहते थे।

**व्याख्या**– सेवानिवृत्त होते समय गजाधर बाबू को वह समय स्मरण हो गया जब बच्चे उनके साथ क्वाटर में रहते थे। ड्यूटी से लौटकर गजाधर बाबू अपने बच्चों के साथ हंसी–मजाक करते थे, परन्तु जब से उनके बच्चे रहने के लिए उनके शहर में बनाए मकान में चले गए तब से उनका जीवन सूना–सुना–सा हो गया। यद्यपि गजाधर बाबू कवि–प्रवृत्ति अर्थात् अत्यधिक भावुक व्यक्ति न थे फिर भी उन्हें बार–बार अपनी पत्नी की याद आती रहती थी। जब उनकी
उनके साथ रहती थीं, तब कितनी ही गर्मी क्यों न हो, वह दोपहर में दो बजे तक अँगीठी जलाए रखती थी ताकि भी स्टेशन से गजाधर बाबू घर आएं, वह उन्हें गरम–गरम रोटियाँ खिला सके। गरम–गरम भोजन करते–करते जब घर बाबू का पेट भर जाता तब वह और कुछ लेने से मना कर देते परन्तु उनकी पत्नी उनकी थाली में थोड़ा–बहुत भोजन डालती तथा उनसे बड़े प्रेम से उत्प्से समाप्त करने अर्थात खा लेने का आग्रह करती।

**विशेष**–1. गजाधर बाबू के माध्यम से उनकी पत्नी की प्रति प्रेम की भावना पर प्रकाश डाला गया है।

2. भाषा सरल, सहज व चित्रात्मक खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्‌भव शब्दों का प्राधान्य है।

4. माधुर्य गुण का समावेश है।

5 अभिधा शब्द शक्ति है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

**(3)**

**गजाधर बाबू के गले में जैसे फांस सी पड़ गई। बोले– ''अपने–अपने काम में लग गए हैं आखिर बच्चे ही है।''**

**शब्दार्थ**– फाँस = कांटा। **काम** = कार्य। **आखिर** = अंततः।

**प्रसंग**– प्रस्तुत गद्यांश 'उषा प्रियंवदा' विरचित कहानी 'वापसी' से लिया गया है। इस कहानी में लेखिका ने सेवानिवृत्त गजाघर बाबू की अपने ही घर में उपेक्षा का चित्रण किया है। इन पंक्तियों में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि घर में बच्चों की उपेक्षा से गजाधर बाबू को चोट लगती है। उनकी दुखद मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती है–

**व्याख्या**–सेवानिवृत्त होकर घर लोटे गजाधर बाबू अपने बच्चों के साथ पुल–मिल कर रहना चाहते हैं, लेकिन बच्चे उनसे दूरी बनाए रखते हैं। रविवार के दिन सभी बच्चे एक साथ बैठकर नाश्ता कर रहे थे और मजाक–मस्ती बी कर रहे थे। छोटा बेटा नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे किसी की नकल उतार रहा था। गजाधर बाबू इस महफिल में गामिल होकर हंसना चाहते थे लेकिन जैसे ही वे कमरे में दाखिल हुए सभी सकपकाकर चुप हो गए। बहू ने सिर ढक लिया, नरेन्द्र चाय पीने लगा, फिर सभी उठ–उठ कर चले गए, वे कमरे में अकेले रह गए। उनका मन खिन्नता और उदासी से भर गया। वे बच्चों के साथ मनोविनोद में भाग लेना चाहते हैं लेकिन नई पीढ़ी क्यों पुरानी पीढी से उपेक्षा का व्यवहार करती है, क्यों बुजुर्गों की मनःस्थिति को समझने का प्रयत्न नहीं करती, वे समझ नहीं पाते। पत्नी चाय लेकर आई तो उन्हें अकेले बैठा देखकर पूछ बैठी कि अरे, आप अकेले बैठे हैं बच्चे कहां गए ? गजाधर बू का मन रुआंसा हो गया। उनके गले में फांस सी पड़ गई। भावनाएं आहत हो गई तो वे कुछ नहीं बोल पाए, बस इतना ही कहा कि सब अपने काम में लग गए, बच्चे ही तो हैं। अर्थात् उन्होंने स्वयं को और पत्नी को यह दिलासा देने का प्रयत्न किया कि बच्चे नासमझ होते हैं, अबोध हैं उन्हें कहां इतनी समझ है कि इतने वर्षों बाद लौटे पिता के साथ कुछ समय बिताना चाहिए।

**विशेष**–1. अपने ही घर में अपने बच्चों की उपेक्षा के शिकार गजाधर बाबू की मनःस्थिति का चित्रण हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4 प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

**(4)**

**घर छोटा था और उसमें ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी, जिसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्वान न बवा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थाई प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर, बीच में गजाधर बाबू के लिए एक पतली सी चारपाई डाल दी गई। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े कभी, अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती वे रेलगाड़ियाँ जो आती और कुछ देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।**

**शब्दार्थ–व्यवस्था** = प्रबंध। **चारपाई** = खाट। **अनायास** = बिना किसी प्रयास के। **अस्थायित्व** = स्थायी न होने का भाव।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश 'उषा प्रियंवदा' विरचित कहानी 'वापसी' से उद्घृत है। इस कहानी में लेखिका ने सेवानिवृत्त गजाधर बाबू की अपने ही घर में उपेक्षा का चित्रण किया है। इन पंक्तियों में लेखिका द्वारा शहर के अपने मकान में गजाधर बाबू के रहने की व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

**व्याख्या**– लेखिका कहती है कि गजाधर बाबू ने नौकरी करते हुए शहर में जो मकान बनवाया, वह छोटा था। चार बच्चे, पति, पत्नी और बहु के आने के बाद यह और भी छोटा पड़ने लगा था, लेकिन चूंकि गजाधर बाबू अपनी नौकरी करते हुए बाहर ही रहे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति को शाश्वत मानकर बच्चों ने ऐसी व्यवस्था कर ली कि उनके लौटकर जाने पर उनके लिए कोई कमरा नहीं था। अतः बैठक में कुर्सी टेबल सरकाकर उनके लिए पलंग डाल दिया गया। यह ऐसी अस्थायी लगने वाली व्यवस्था थी, जैसे हम किसी मेहमान के लिए करते हैं कि एक–दो दिनों की बात है बैठक में ही रह लेगा, उसके जाते ही फिर सब ठीक कर लेंगे। गजाधर बाबू उस बैठक में पतली सी चारपाई पर पड़े पड़े स्वयं की मेहमान जैसा समझकर बेचैन और दुखी होने लगते हैं। उन्हें इस अस्थायित्व को अनुभव करके उन रेलों की याद आती है, जो स्टेशन में हमेशा के लिए नहीं ठहरती। आती है, थोड़ा रूककर, यात्रियों को उतार–चढ़ा कर फिर आगे चली जाती है। उन्हें लगता है उनका जीवन भी इस घर में ऐसा ही अस्थिर है, जैसे उन्हें फिर कहीं चले जाना है।

**विशेष**–1. शहर स्थित गजाधर बाबू के मकान में रहने की तंग व्यवस्था का चित्रण हुआ है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

**(5)**

**गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी की ओर देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करती, यह स्वाभाविक था, लेकिन उसमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय की बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो तो उन्हें चिन्ता कम, सन्तोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी। जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।**

**शब्दार्थ–आहत** = दुःखी। विस्मित = हैरान। **हैसियत** = औकात। **सहानुभूति** = सलाह। **प्रबंध** = व्यवस्था।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश उषा प्रियंवदा विरचित कहानी 'वापसी' से उद्घृत है। इस कहानी में लेखिका ने सेवानिवृत्त गजाधर बाबू की अपने ही घर में उपेक्षा का चित्रण किया है। गजाधर बाबू की पत्नी उनसे जिस तरह अभावों की चर्चा कती है उसमें सहानुभूति का अभाव होता है। गजाधर बाबू को लगता है जैसे पत्नी अभावों के लिए उन्हें ही जिम्मेदार रही हो। वे आहत होकर जो सोचते हैं, उसी भावना का चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है।

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि गजाधर बाबू रिटायर होकर घर आए तो उन्होंने देखा कि अतिरिक्त नौकर रखकर, पार्टी करके घूमने–फिरने पर फिजूलखर्ची हो रही है। जब तक वे नौकरी पर थे तब तक तो ठीक था लेकिन अब उन्हें केवल पेंशन मिलेगी, इसलिए घर के हर सदस्य को फिजूलखर्ची बंद कर देना चाहिए। वे जानते थे कि रिटायर होने के बाद अब उनमें फालतू खर्च करने की सामर्थ्य नहीं है। वे सोचते थे कि पत्नी उनकी स्थिति और भावनाओं को समझती है. इसलिए नादान बच्चों से कुछ न कहकर उन्होंने पत्नी से अकेले में सलाह–मशविरा वाले अंदाज में यह बात कही। उन्हें लगा पत्नी उन्हें दिलासा देकर कहेगी कि आप चिंता न करें, मैं बच्चों से कहूंगी हम सब मिलकर संभाल लेंगे। लेकिन उनकी सोच के विपरीत पत्नी ने कहा **''सभी खर्च तो वाजिब हैं किसका पेट काटूं ? जोड़–गांठ करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा ?''** गजाधर बाबू पत्नी की इस आरोप और शिकायत वाली भाषा से आहत हो गए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि जीवन भर

दूर, अकेला रहकर कमाता और भेजता रहा, लेकिन पत्नी ने उनके अकेलेपन, स्वास्थ्य आदि की चिंता कभी नहीं की। जितनी सामर्थ्य थी उतना परियार के लिए किया, अगर वह सामान्य रूप से अभावों की चर्चा करती तो गजाधर बाबू को उतना बुरा नहीं लगता, लेकिन जिस रूखे और बेगानेपन से उसने कहा वह उनके मन को खटक गया। पत्नी अगर पति के साथ बैठकर सलाह करती कि कैसे सब व्यवस्था होगी, तो उन्हें संतोष होता लेकिन वह तो इस भाषा में आरोप लगा रही है जैसे सारे अभावों के लिए गजाधर बाबू ही जिम्मेदार हैं। बच्चों की फिजूलखर्ची उसे नहीं दिखाई देती। उसे वह आवश्यकता लगती है, बस पति की अवस्था के प्रति उसके मन में कोई सहानुभूति नहीं है। गजाधर बाबू का इस परिवार के प्रति मोहभंग हो जाता है वे दुखी और विरक्त हो जाते हैं।

**विशेष**—1. पत्नी के रूखे व्यवहार से गजाधर बाबू के आहत होने का वर्णन है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. अलोपीदीन किस कहानी का पात्र है ?
2. 'नमक का दरोगा' कहानी के लेखक कौन हैं ?
3. आकाशदीप कहानी की शुरूआत किस शब्द से होती है ?
4. चौधरी पीरबक्श के दादा चुंगी के महकमे में कौन से पद पर थे ?
5. सितवा की कच्ची बस्ती में किसे मकान लेना पड़ा था ?
6. बसंती की सहेली का नाम क्या था ?

## 14.4 सारांश

नमक का दरोगा प्रेमचन्द द्वारा रचित एक लघु कहानी है जिसमें ईमानदार नमक निरीक्षक द्वारा कालाबाजारी के विरूद्ध आवाज उठाई गई। आकाशदीप कहानी को प्रसाद जी ने बहुत कलात्मक ढंग से गूंथा है। इसमें समुद्री जीवन के परिवेश को ऐतिहासिक सौंदर्य के रूप में चित्रित किया गया है। परदा कहानी में परिस्थितियों में जकड़े एक निर्धन की परम्परागत मान–सम्मान ग्या झूठी प्रतिष्ठा को जर्जर परदे के पीछे छिपाने की छटपटाहट को दर्शाया गया है। उषा प्रियवंदा की कहानी वापसी में उस समय शहरी जीवन में बढ़ती उदासी, अकेलेपन, ऊब आदि का अंकन कर गहरे यथार्थवाद द्वारा दर्शाया गया है।

## 14.5 कठिन शब्दावली

**विलक्षण** – अनूठा

**प्रतिकार** – विरोध

**सत्कार** – सम्मान

**चेष्टा** – कोशिश

**तिरस्कार** – उपेक्षा

## 14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. नमक का दरोगा कहानी का।
2. प्रेमचंद।
3. बंदी
4. दरोगा के पद पर।
5. चौधरी पीरबक्श
6. शीला।

## 14.7 संदर्भित पुस्तकें


1. जयशंकर प्रसाद, आकाशदीप, पेंगुइन बुक्स इण्डिया।
2. भीष्म साहनी (सं.) हिन्दी कहानी संग्रह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
3. यशपाल, तर्क का तूफान, लोकभारती प्रकाशन दिल्ली)


## 14.8 सात्रिक प्रश्न

1. नमक का दरोगा कहानी का सार लिखिए।
2. वापसी कहानी यचार्थ बोध को प्रदर्शित करती है स्पष्ट कीजिए।
3. परदा कहानी का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

*****

# इकाई—15
# हिंदी निबंध का उद्भव एवं विकास

**संरचना**

15.1 भूमिका
15.2 उद्देश्य
15.3 हिंदी निबंध का उद्भव एवं विकास
15.3.1 उद्भव
15.3.2 विकास
स्वयं आकलन प्रश्न
15.4 सारांश
15.5 कठिन शब्दावली
15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
15.7 संदर्भित पुस्तकें
15.8 सात्रिक प्रश्न

## 5.1 भूमिका

इकाई चौदह के अन्तर्गत हमने 'नमक का दरोगा', 'आकाशदीप' परदा, 'वापसी' कहानी के व्याख्या भाग का गहनता के साथ अध्ययन करेंगे। आगामी इकाई पंद्रह में इन निबंधों के उद्भव एवं विकास का अध्ययन विस्तारपूर्वक करेंगे कि निबंध का उद्भव कैसे हुआ और पहला निबंध संग्रह कौन है, यह ज्ञात करेंगे।

## 15.2 उद्देश्य

इकाई पंद्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. निबंध क्या है ? उसकी क्या विशेषताएँ हैं ?
2. निबंध का उद्भव कैसे हुआ ?
3 निबंध की विकास प्रक्रिया के बारे में जानेगें ?
4. पहला निबंध संग्रह कौन है ?

## 15.3 हिन्दी निबन्ध उद्भव एवं विकास

### 15.3.1 उद्भव

**निबंध का अर्थ** : निबंध शब्द 'नि+बंध' से बना है, जिसका अर्थ है अच्छी तरह से बंधा हुआ। इनकी भाषा विषय के अनुकुल होती है। निबंध की शक्ति है अच्छी भाषा। भाषा के अच्छे प्रयोग द्वारा ही भावों विचारों और अनुभवों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया जा सकता है।

**निबंध की परिभाषा** : बाबू गुलाबराय ने निबंध की परिभाषा में अनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण करते हुए कहा है– ''निबंध उस गद्य–रचना को कहते हैं, जिनमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो''

आचार्य शुक्ल के अनुसार– ''यदि गद्य कवियों को कसौटी है, तो निबंध गद्य की।''

पं. श्यामसुंदर दास ''निबंध वह लेख है जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तारपूर्वक और पाण्डित्यपूर्व रंग में विचार किया गया हो।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबंध के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं ''यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंध में ही मबसे अधिक सम्भव होता है''

इस प्रकार निबंध किसी विषय पर विचार प्रगट करने की कला है।

इसमें विचारों को क्रमबद्ध रूप में पिरोया जाता है। इसमें जान विचार और व्यक्तित्व का अदभुत संगम होता है। यद्यपि निबंध लिखने का कोई निश्चित सूत्र नहीं है।

**निबंध के प्रकार**

निबंध के प्रकार के हैं

1. वर्णनात्मक निबंध
2. विवरणात्मक निबंध
3. भावात्मक निबंध
4. साहित्यिक या आलोनात्मक निबंध

**1. वर्णनात्मक निबंध**: इन निबन्धों में निरूपण अथवा व्याख्या की प्रधानता रहती है। विभिन्न प्रकार के दृश्यों, घटनाओं तथा स्थलों का आकर्षक वर्णन करना ही इन निबन्धों का कलेवर विषयवस्तु होता है। उन निबन्धों की अन्य विशेषता यह है कि यहाँ प्रायः प्रत्येक निबंधकार अपने निबंध में एक सजीव–चित्र उपस्थित करता है। तीर्थ, यात्रा, नगर, दृश्य वर्णन, पर्व–त्यौहार, मेले–तमाशे, दर्शनीय स्थल आदि का मनोरम एवं संश्लिष्ट वर्णन करना ही निबंधकार का प्रमुख उद्देश्य होता है। इनमें लेखक प्रकृति और मानव जगत में से किसी से भी विषय चयन कर सर्वसाधारण के लिए निबंध रचना करता है।

**2. विवरणात्मक निबंध**: विवरणात्मक–निबन्धों में कल्पना एवं अनुभव की प्रधानता होती है। साथ ही इस वर्ग के निबन्धों में वर्णन के साथ–साथ विवरण की प्रवृत्ति भी विद्यमान रहती है। इन्हें कथात्मक अथवा आख्यानात्मक निबंध भी कहा जाता है। विवरणात्मक निबन्धों की विषयवस्तु मुख्यतः जीवनी, कथाएँ घटनाएँ, पुरातत्व, इतिहास, अन्वेषण, आखेट, युद्ध आदि विषयों पर आधृत होती है। ये निबंध 'व्यास–शैली' में लिखे जाते हैं।

**3. भावात्मक निबंध** : भावात्मक निबन्धों में बुद्धि की अपेक्षा रागवृत्ति की प्रधानता रहती है। इनका सीधा सम्वन्ध 'हृदय' में होता है। अनुभूति, मनोवेग अथवा भावों की अतिशय अभिव्यंजना इन निबन्धों में द्रष्टव्य है। इन निबन्धों में निबंधकार सहृदयता, ममता, प्रेम, करुणा, दया आदि भावनाओं से युक्त व्यवहार को प्रकट करता है।

**4. साहित्यिक या आलोनात्मक निबंध** : किसी साहित्यकार, साहित्यिक विधा या साहित्यिक प्रवृत्ति पर लिखा गया निबंध साहित्यिक या आलोचनात्मक निबंध कहलाता है, जैसे मुंशी प्रेमचंद, तुलसीदास, आधुनिक हिन्दी कविता, छायावाद हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग आदि। इसमें ललित निबंध भी आते हैं। इनकी भाषा काव्यात्मक और रसात्मक होती है। ऐसे निबंध शोध पत्र के रूप में अधिक लिखे जाते हैं।

**निबंध की विशेषताएं**

अच्छे निबंध की विशेषताएं है–

1. कसावट, प्रभावशाली भाषा, विषयानुकूलता
2. निबंध में विचार और भाषा दोनों में ही कसावट का गुण होना चाहिए। उद्धरणों की भाषा न बदली जाये।

3. निबंध का अर्थ ही है भली भांति बंधा हुआ या कसा हुआ। विराम चिन्हों का समुचित प्रयोग आवश्यक है।
4. विचार बिखरे न हों। चयनित विषय पर चिंतन मनन करें।
5. विचारों में एक श्रृंखला हो जो क्रमबद्ध हो।
6. विचारों में संतुलन हो अर्थात् प्रमुख बातों पर अधिक महत्व एवं गौण बातों को कम महत्व देना चाहिए। निबंध स्पष्ट होना चाहिए।
7. निबंध में बदलती हुई विषय–सामग्री के अनुसार पैराग्राफ बदलने चाहिए।

**निबंध के अंग**

निबंध के चार अंग निश्चित किए गए

1. **शीर्षक**– शीर्षक आकर्षक होना चाहिए ताकि लोगों में निबंध पढ़ने की उत्सुकता पैदा हो जाए।
2. **प्रस्तावना**– निबंध की श्रेष्ठता की यह नींव होती है। इसे भूमिका भी कहा जाता है। यह अत्यंत रोचक और आकर्षक होनी चाहिए परन्तु यह बहुत लम्बी नहीं होनी चाहिए। भूमिका इस प्रकार की हो जो विषयवस्तु की झलक प्रस्तुत कर सकें।
3. **विस्तार**– यही विचारों का विकास होता है। यह निबंध का सर्व प्रमुख अंश है। इनका संतुलित होना अत्यंत आवश्यक है। यहीं निबंधकार अपना दृष्टिकोण प्रगट करता है।
4 **उपसंहार**–निबंध का समापन एक निश्चित क्रम में होता है। लेखक अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उपदेश, दूसरे के विचारों को उद्धृत कर या कविता की पंक्ति के माध्यम से निबंध समाप्त किया जा सकता है।

**निबंध के गुण**

निबन्ध रचना करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना होता है।

1. कला पक्ष
2. भाव पक्ष

**1. कला पक्ष**

1. विषयानुमार कवि का प्रयोग
2. सरल वाक्य रचना
3. भावानुकूल भाषा
4. विचारों की क्रमबद्धता
5. रचना की सरलता तथा सजीवता
6. विषयान्तर त्याग
7. पुनरावृत्ति का बहिष्कार

**2. भाव पक्ष**

1. विचारों की नूतनता
2. व्यक्तित्व की छाप
3. मौलिकता
4. प्रभावोत्पादकता
5. कल्पना प्रवणता।

### 15.3.2 विकास

हिंदी निबंध के विकास का प्रारंभिक प्रसंग हिंदी पत्रकारिता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। हिंदी पत्रकारिता के साथ हिंदी निबंध के विकास का सूत्रपात नदी के उद्‌गम स्थल जैसा ही है। एकदम लघु किंतु शक्तिशाली प्रवाह। हिंदी निबंध का उद्‌गम स्रोत हिंदी की प्रारंभिक पत्र–पत्रिकाओं में इसी तरह व्यापक आंतरिक पत्रकारिता के पृष्ठों से होता है। पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिंदी गद्य की भूमिका का विस्तार हुआ। लवे–लंबे समाचारों संपादकियों, टिप्पणियों, घटनाओं के विवरणों यात्राओं की चर्चाओं तथा युद्धों की प्रधानता को लेकर गद्य में लेखन कार्य पत्रकारिता की अनिवार्यता थी। इनमें कहीं हास्य व्यंगात्मक टिप्पणी हुआ करती थी कहीं गहन गंभीर विचारोत्तेजक चर्चा और इन्हीं के बीच से ही हिंदी निबंध अपना रूपाकार ग्रहण कर रहा था। हिंदी में पहले समाचार पत्र उदंत मार्तण्ड का प्रथम प्रकाशन 30 मई 1820 ई. में हुआ था। इसके बाद सन 1929 में कलकत्ता से ही 'बंगदूत' का प्रकाशन हुआ था। इसी श्रृंखला में राजा शिवप्रसाद ने बनारस से सन 1845 में बनारस अखबार का प्रकाशन किया।

अखबार सुधाकर समाचार 'सुधावर्षण' और 'तत्वबोधिनी' पत्र–पत्रिकायें 1866 ई. में प्रकाशित होने लगी थी। 1867 ई में ''कविवचन सुधा'' का प्रकाशन हुआ। यह हिन्दी का महत्वपूर्ण पत्र था। 'ज्ञान दीपक' 'वृत्तांत विलास' 'हिन्दू बाधव', 'ज्ञान प्रदायिनी मैगजिन' ने हिन्दी निबंध को आधार भूमि प्रदान की। भारतेन्दु युग 1870 ई. के आसपास प्रारंभ होता है और इस समय की पत्र और पत्रिकाओं से अंग्रेज सरकार के विरुद्ध सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए जिनमें हास्य व्यंग्य और बेलौस निर्भीकता प्राप्त होने लगती है। चूँकि हिन्दी निबंध का प्रारंभ पत्रकारिता के साथ होता है अतः इसकी प्रारंभिक चेतना में सामाजिक राजनैतिक बोध गहराई से समाया हुआ है। एक तरह से हिन्दी के प्रारंभिक निबंधों की नींव सामाजिक सरोकारों के गारा पत्थरों से भरी गई है। 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' 'ब्राह्मण' 'सार' 'सुधा' 'निधि' 'प्रदीप' आदि। पत्र–पत्रिकाओं में हिन्दी के प्रारंभिक निबंध छोटे–छोटे लेखों के रूप में प्रकाशित होते थे। प्राय इन पत्रो में सपादक ही इन लेखों के लेखक होते थे। अंग्रेजी पत्र–पत्रिकाओं से ही अंग्रेजी निबंधों का सूत्रपात हुआ था। मातेन और बेकन के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य में वस्तुनिष्ठ और निवेदक निबंधों की परंपराएँ लगभग पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से ही प्रारंभ हुए। व्यक्तिनिष्ठ परंपरा में आगे चल कर शपथ ले ली। जानसन, एडिशन, मैकाले आदि निबंधकार क्रियाशील हुए। हिंदी के प्रारंभिक निबंधकारो पर लेखकों का थोड़ा–बहुत प्रभाव भी रहा है।

**निबंध का प्रारंभ**

हिंदी निबंध का जन्म एक तरह से सामाजिक अनिवार्यताओं के कारण हुआ था। पत्रकारिता का श्रेष्ठतम सामाजिक सरोकारों में ही अभिव्यक्त होता है। देश–काल की चिंतायें इस तरह से लेखन में प्रत्यक्ष होती हैं। यह यह समय था जब भारतीय जीवन ने अपने विषय में और अपने चतुर्दिक परिवेश के विषय में सोचना प्रारंभ कर दिया था। इसलिए हिंदी निबंध की शुरुआत में विषय वैविध्य है। सामाजिक व राजनैतिक जागरण शैली की रोचकता और गंभीरता, सहजतापूर्वक अपने को व्यक्त करने की चेष्टा आदि गुणों से सपन्न लेख और टिप्पणियों का समावेश तत्कालीन निबंधों में किया गया है।

स्वतंत्रता संघर्ष की राजनैतिक हलचलें प्रारंभ हो चुकी थीं। विभिन्न भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय संघर्ष को रेखांकित करती संपादकीय टिप्पणियां प्रकाशित होने लगी थी। हिंदी पत्र–पत्रिकाओं ने भी इस तरह की राजनीतिक हलचलों को अपना आधार बनाया। नेताओं की तहरीरें प्रकाशित की जाने लगी जो संक्षिप्त रूप से लेखनुमा होती थी। इसी बीच भारतीय लोगों ने समुद्र पार की यात्राएँ की थी। इन यात्राओं के विवरण टूटी–फूटी हिंदी में प्रकाशित हुए और एक नवीन सांस्कृतिक जागरण का वातावरण निर्मित हुआ। इस वातावरण को प्रस्तुत करने में हिंदी निबंध का बहुत बड़ा हाथ था।

सामाजिक पुनसंस्कार के प्रयत्न भी विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से किए जा रहे थे। धार्मिक क्षेत्र में रूढ़ियों और अंध परंपराओं के उत्छेदन के लिए आंदोलन चल रहे थे। चाहे आर्य समाज का आंदोलन हो चाहे ब्रह्म समाज का या चाहे राजा राम मोहन राय द्वारा चलाया जा रहा सती प्रथा का विरोध हो। ये सभी आंदोलन न केवल समाज को उन्मथित कर रहे थे अपितु इनके संबोधन साहित्यिक दृष्टि से तत्कालीन निबंधों की विषय वस्तु भी बन रहे थे। हिंदी निबंध इसलिये अपने उत्सकाल में सामाजिक चेतना से अभिमंडित है। उसमें सामाजिक और राजनीतिक जागरण की अद्भुत शक्ति समायी हुई है। हिंदी निबंध की विकास यात्रा को हम चार चरणों में विभाजित कर सकते है :

1. भारतेन्दु युग 1870 से 1903 तक
2. द्विवेदी युग 1903 से 1920 तक
3. शुक्ल युग 1920 से 1940 तक
4. शुक्लोत्तर युग 1940 से अब तक

**भारतेन्दु युग**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा अपनी सृजनशीलता में बहुमुखी थी। उन्होंने अपनी लेखनी से अपने समय की सभी साहित्य विधाओं को समृद्ध किया है। उन्हें दिशा–निर्देश भी दिया। इस युग की केंद्रीय साहित्यिक शक्ति के रूप में भारतेन्दु जी को स्वीकार किया जाता है इसलिए इस युग का नामकरण भारतेन्दु युग से किया गया। प्रथम भारतीय सातंत्रता संग्राम के समय भारतेन्दु जी 7 वर्ष के थे उन्होंने भारतीय आकाश में उमड़ रहे झंझावातों को अपनी बाल आँखों से झाँक लिया था। वे मध्ययुगीन प्रवचनाओं का परित्याग करके एक नये भारत के स्वप्न में डूब गये थे। सन 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में एक चिंगारी तो अवश्य छोड़ी किन्तु अंग्रेजों का दमन और तीव्र हुआ और भारतीयों की स्वतंत्रय भावनाओं को बुरी तरह कुचल दिया गया। विक्टोरिया का शासन प्रारंभ हुआ तो भारतीय जन के गन में कुछ ऐसी प्रतीति ने घर कर लिया कि ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन से उसे मुक्ति तो प्राप्त हो गई है और वह एक अच्छी शासन व्यवस्था को पाने की स्थिति में आ गया है इसलिए उन वर्षों में महारानी विक्टोरिया की महिमा का गायन भी प्रारंभ हुआ कितु शीघ्र ही प्रबुद्धजनों का मोह–भंग हो गया। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार भारतेन्दु और उनके सहयोगी बहुत थोड़े दिन ही राजभक्ति के छल में पड़े थे। शीघ्र ही उनपर यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज न्याय और दया के अवतार नहीं, वरन अत्याचारी और शोषक है। देशभक्ति का प्रबल आवेग उमड़ना प्रारंभ हो गया। बौद्धिक वर्ग के भीतर एक खदबदाहट ने जन्म लिया। इस वर्ग ने साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में अपनी अभिव्यक्ति से एक राष्ट्रीय चेतना से सपृक्त वातावरण निर्मित करना प्रारंभ कर दिया। अनेक सामाजिक आंदोलन भी क्रियाशील हुए परिणामस्वरूप सामाजिक पुनर्सस्कार का सिलसिला चला। राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये लोगों के भीतर आवेगमयी आकांक्षायें जागृत हुई। यह समूचा परिदृश्य भारतेन्दु युग के निबंधकारों के मन–मस्तिष्क पर आच्छादित था और इस परिवेश से भारतेन्दु कालीन निबंध की यात्रा प्रारंभ होती है।

भारतेन्दु काल निबंध रचना का प्रारंभिक किन्तु महत्वपूर्ण काल है। हिंदी निबंध का प्रारंभिक स्वरूप राष्ट्रीय और सामाजिक चिंताओं से ही निर्मित हुआ है। इस युग के निबंधों में जो हास्य व्यंग्य का पुट आया है वह भी थोथा हास्य व्यंग्य नहीं है। उसमें अंग्रेजों ने सामाजिक और के उच्चताबोध और अपनी हीन वृत्ति पर ही आघात छिपा हुआ है। अंग्रेजों ने साम्राज्यवादी हितों के लिए भारत में आधुनिकीकरण का सूत्रपात किया था। संचार सुविधा प्रेस की स्थापना अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार नई अर्थव्यवस्था और औद्योगिक चेतना का प्रारंभ अंग्रेजों द्वारा अपनी सुविधा के लिये किया गया। इस सबक मूल में उनके निहित स्वार्थ थे। निबंधकारों ने इस छदम को पहचान लिया था। इसलिये उनके निबंधों में देश प्रेम स्वदेशी की भावना, राष्ट्रीय चेतना का संचार आदि महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में समाविष्ट थे।

भारतेन्दु युग के निबंधों का प्रकाशन अधिकतर पत्र–पत्रिकाओं में हुआ है अतः इस युग के निबंधों में विषय वैविध्य प्राप्त होता है। समाज सुधार, धार्मिक पुनर्संस्कार, राजनीतिक चेतना का उदय, राष्ट्रीय गरिमा की स्थापना, आर्थिक दुर्दशा का बखान अतीत गौरव का आख्यान सामाजिक राजनैतिक और ऐतिहासिक क्षेत्रों के महापुरुषों के जीवन चरित्र प्रस्तुतीकरण आदि अनेक विषयों को इस युग के निबंधों में समाहित किया गया है। इन विषयों के प्रस्तुतीकरण में रोचकता विद्यमान थी। हास्य, व्यंग्य, चिकोटी लेने की कला, लोकोक्तियां और मुहावरों से संपन्न भाषा आदि के प्रयोग से निबंधों की अभिव्यक्ति को रजनकारी और प्रभावकारी बनाया जा रहा था। भारतेन्दु युग निश्चित ही अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा निबंध की महत्ता का युग है।

भारतेन्दु युग के निबंधों में निबंध के आगामी अनेक रूपों की रेखाएँ प्रकट होने लगी थी। इस युग के बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र निबंध के दिग्गज पुरुष है। आचार्य शुक्ल ने इन्हें कमशः हिंदी का स्टील और एडिशन कहा है। इन दोनों लेखकों ने हिंदी निबंध को लेखक की आत्मीयता से परिपूरित किया है और उनकी आत्माभिव्यंजना परक शैली को विकसित किया। जीवनी, यात्रा–वृत्तांत पुरातत्व, इतिहास आदि को समावेशित करने वाले निबंधों में वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, समीक्षात्मकता उपदेशात्मकता और व्याख्यात्मकता के गुण प्राप्त होने लगते हैं। इन गुणों के कारण तत्कालीन निबंधों में शिक्षा देने की कला का समायोजन है।

इस युग के अन्य निबंध लेखकों में बद्रीनारायण प्रेमधन, बालमुकुंद गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, श्रीनिवास दास, काशीनाथ खत्री आदि प्रमुख हैं। इन निबंधकारों में सहज उल्लास मस्ती और बेलोसपन का समावेश है ये अपने पाठक से आत्मीयतापूर्वक बतियाते हैं उसे हँसाते हैं उसे गुदगुदाते हैं उसे उत्तेजित करते हैं। गंभीर बातों को विनोदपूर्ण ढंग से कहते ये अपने ह्रदय का क्षोम और दुख अत्यंत संयत और प्रभावपूर्ण ढंग से कर देते हैं। इनकी भाषा अकृत्रिम, सजीव और अव्यवस्थित है व्याकरणगत अशुद्धियों भी प्राप्त होती हैं। इस समय तक चूँकि खड़ी बोली का परिनिष्ठित स्वरूप निर्मित नहीं हुआ था – इसलिये भाषागत प्रयोगों में शिथिलता दिखाई देती है। बावजूद इसके भाषा में कहावतों मुहावरों अलंकारों का समुचित प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग ने भाषा को चमत्कारिक और जीवंत बना दिया है। अधिकांश निबंध व्यक्तिनिष्ठ शैली में रचे गये हैं। कोई भी विषय निबंधकार उठा लेता है और उस के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को जोड़कर अपने मन की बातें कह दी।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग की विशेषताओं की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है जितनी सफलता भारतेन्दु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में भी नहीं मिली। इसका एक कारण यह था कि पत्रिकाओं में नित्य प्रति लिखते रहने से उनकी शैली खूब निखर गई थी। दूसरी बात यह है कि निबंध ही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा उस युग के धाकड़ लेखक बेतकल्लुफी से अपने पाठकों से बात कर सकते थे। उस युग के लेखक तटस्थ रहते हुए अपनी बात पाठक से कह कर संतोष नहीं कर सकते थे। वे उससे आत्मीयता का सबंध स्थापित करना चाहते थे और एक मित्र की भाति घुल मिलकर उसे अपनी बात समझाना चाहते थे। साहित्य की सच्ची सप्प्राणता उस शैली में है जहां लेखक और पाठक के बीच कोई दुराव नहीं रह जाता। सहज आत्मीयता के भाव ने भाषा को खूब स्वाभाविक बना दिया।

कृत्रिम शैली में लेखक पाठक का आत्मीय संबंध नहीं बन सकता। इसीलिये भारतेन्दु युग के गद्य शैली के सबसे चमत्कारपूर्ण निर्देशन निबंधों में ही मिलते हैं। इस युग के निबंध प्रौढ़ता के प्रतीक नहीं है। उनमें बाल्यावस्था के सभी गुण विद्यमान हैं इस विशेषता का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है यह युग बच्चे के समान हँसता–खेलता आया था जिसमें बच्चों की सी ही निश्छलता, अखंडपन, अकड़नपन, सरलता और तन्मयता थी। ''गुलाबराय भी इस युग की विशेषताओं की चर्चा करते हुए स्पष्ट करते हैं निबंध की पृष्ठभूमि में रहने वाला निजीपन, ह्रदयोल्लास और चलतेपन के लिए मारतेन्दु युग चिरस्मरणीय रहेगा। यदि इस युग की किसी प्रमुख विशेषता का उल्लेख करना जरूरी हो तो यह कहा जा सकता है भारतेन्दु युग के निबंधों में जो सामाजिक चिंताये व्यक्त हुई हैं। उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस युग निबंधकारों के समक्ष सामाजिक सरोकार एक महत्वपूर्ण लक्ष्य की तरह थे। वे निबंध को सामाजिक परिवर्तन की भूमिका से जोड़ना चाहते थे।

## द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी केंद्रीय व्यक्तित्व की तरह प्रतिष्ठित थे – अतः उन्हीं के नाम पर व्दिवेदी युग का नामकरण हुआ है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित सरस्वती पत्रिका ने इस युग के निर्माण में सम्यक् भूमिका निभायी है। द्विवेदी युग बीसवीं शताब्दी के आरंभिक कालखंड को माना जाता है। आचार्य द्विवेदी जी के व्यक्तिव की बहुआयामी शक्तियों का परिचय हिंदी जगत को इस युग प्राप्त हुआ। भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर अब तक राष्ट्रीय कांग्रेस की सुदृढ़ पताका फहराने लगी थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में उसकी बागडोर तिलक के हाथों में आ गई थी। तिलक ने 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का उद्घोष किया और पूर्ण स्वराज की मांग को महत्व दिया। संपूर्ण देश स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये उद्वेलित हो रहा था। इसी युग में महात्मा गांधी का प्रवेश भारतीय राजनीति में होता है और गांधी के प्रभाव से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में एक नयी चेतना का सूत्रपात होता है। ग्राम स्वराज्य की धारणा के साथ जातिपाति उन्मूलन सर्वधर्म समन्वय की भावना का उदय हुआ। विभिन्न धार्मिक जागरणों ने पुनरुत्थान की भूमिका को प्रशस्त किया है। एक नयी सामाजिक संरचना की भावना सपूर्ण देश में उदित हुई। संयम, त्याग, दृढ़ता को आधार मानकर नैतिक मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया गया। आदर्शवादी चेतना ने समाज को अनुप्राणित किया। तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में इस आशय के लेख, निबंध टिप्पणियाँ और वृत्तांत प्रकाशित हुए। इसी समूची पृष्ठभूमि ने द्विवेदी युगीन निबंध को विचार पूर्ण गंभीर विचारों से आप्लावित किया। पढ़े–लिखे लोगों की संख्या में वृद्धि हुई। फलस्वरूप जानकारियों का भी दायरा बढ़ा। देश–विदेश की नवीन से नवीन जानकारियों उपलब्धियाँ हिन्दी पाठकों के समक्ष लेखकगण प्रस्तुत करने लगे–यात्रा वृत्तांतों जीवनियों और संस्मरणों के माध्यम से निबंध ने व्यापक मनोभूमिकाओं को उद्घाटित करना प्रारभ किया।

व्यापक पृष्ठभूमि प्राप्त होने से हिन्दी निबंध के विषयों का विस्तार स्वाभाविक था। द्विवेदी युग में अनुवाद कार्य को महत्व प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप अँग्रेजी और मराठी के निबंध साहित्य का अनुवाद हिन्दी में होने लगा। इससे हिन्दी निबंध की शैली और स्वरूप में परिवर्तन प्रस्तुत हुए। शिल्प, पुरातत्व इतिहास, दर्शन, शिक्षा आध्यात्म यात्रा अन्वेषण आदि अनेक तरह की ज्ञानात्मक शाखाओं के अध्ययन अध्यापन और पाठन–पठन के कारण इन विषयों को आधार मानकर निबंध रचनायें लिखी गई इन रचनाओं का उद्देश्य यद्यपि सूचना देना और शिक्षित करना था किन्तु ये निबंध पाठक पर प्रभाव डालने वाले बन गये।

इस युग के निबंधों में गंभीरता और बौद्धिकता का आधिक्य और हास्य विनोद का सामंजस्य देखने को मिलता है। अधिकतर निबंध द्विवेदी युग में समाचार पत्रों, साप्ताहिकों और मासिकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए रचे गये अतः इन निबंधों में समसामयिकता, समस्यामूलक सांकेतिकता और सूचनात्मकता का समावेश हो गया है। द्विवेदी जी के कारण खड़ी बोली के भाषागत प्रयोगों को परिनिष्ठत स्वरूप प्रदान किया गया। उसे व्याकरणसम्मत बताकर उसके व्यवस्थित स्वरूप को ही साहित्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। सामाजिक सरोकारों के साथ साहित्यिक सरोकारों को भी इस युग में महत्व मिल रहा था और सैद्धांतिक समीक्षा के साथ व्यवहारिक समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा था।

इस युग के निबंधकारों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी प. माधवप्रसाद मिश्र, प. गोविंद नारायण मिश्र पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गोपाल राय, बाबू बृजनंदन सहाय एवं पं. पदमसिंह शर्मा, सरदार पूर्ण सिंह, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, डॉ श्यामसुंदर दास, बाबू गुलाब राय का नाम प्रमुख है। इन निबंधकारों में प. माधव प्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और अध्यापक पूर्णसिह ने अपनी विशिष्टता से हिंदी निबंध को न केवल पुष्ट किया अपितु उसे नवीन संभावनाओं से भी लैस किया। मिश्र जी के निबंधों में देशप्रेम सामाजिक धार्मिक जीवन के प्रति अटूट श्रद्धा और आस्था मिलती है। गुलेरी जी ने अपने निबंधों के माध्यम से विचार और शैली के क्षेत्र में अभिनव प्रदर्शन किया। गुलेरी के पास प्रगतिशील तत्वों के साथ–साथ सांस्कृतिक चेतना का गहरा बोध है और मार्मिक

व्यंग्य की शैली दृष्टि मी है। सरदार पूर्ण सिंह ने निबंध के लालित्य को विकसित किया। मानवतावादी विचारधारा को लेकर भावुक प्रतिक्रियाएँ उनके निबंधों में प्राप्त हो जाती हैं। भाषा में प्रवाह गति, लय जैसे तत्वों के समावेश से भाषा की सजीवता और भाषा का सौंदर्य इनके निबंधों में प्रकट हो जाता है। भाषा लक्षणा व्यंजना शक्तियों से भरकर अपनी नवीन अर्थच्छटाएँ पूर्णसिह जी के निबंधों में व्यक्त करने लगती है।

समग्रतः इस युग के निबंधों में राष्ट्रीय जागृति विश्वप्रेम सामाजिक एकता भारत और अन्य देशों का संपर्क, जातीय स्मृतियों का पुराविष्कार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा भाषा परिष्कार का निर्देशन होता है। निबंध की शैलियों में विकास होता है। भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस युग में हास्य व्यंग्य शैली का प्रयोग कम हुआ है। गंभीर बौद्धिकता प्रखर हुई। निबंधों का प्रचार प्रसार बौद्धिक क्षेत्र तक ही रह गया। साधारण पाठक वर्ग से निबंध दूर होने लगा। एक तरह से व्दिवेदी युग में निबंध का जो अभिजात्य स्वरूप निर्मित किया उसने निबंध के पाठक समुदाय को सीमित करना प्रारंभ कर दिया। भाषा और शैली की दृष्टि से निबंध साहित्य इस युग में स्तरीय हुआ।

**शुक्ल युग**

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध के क्षेत्र में पदार्पण एक महत्वपूर्ण घटना थी। उनके कृति व्यक्तित्व ने न केवल हिंदी निबंध को समृद्ध किया आपितु हिंदी निबंध को नयी दिशाएँ प्रदान की। आचार्य गुलाब राय के अनुसार आचार्य रामचद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया। व्दिवेदी युग में विषय विस्तार और परिमार्जन तो पर्याप्त प्राप्त हुआ किंतु उस काल में उतना विश्लेषण करने और गहराई में जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकी, जबकि शुक्ल जी ने निबंध को ये विशेषतायें प्रदान कीं। ऐसे ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व आचार्य शुक्ल की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए इस युग का नामकरण शुक्ल युग किया गया है।

शुक्ल युग राष्ट्रीय जागरण के सामूहिक संकल्प का काल था। इस समय तक भारतीय राजनैतिक क्षितिज में महात्मा गांधी का आगमन हो चुका था। इस समय नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन, दांडी यात्रा आदि की साहसिक त्याग प्रधान नैष्ठिक तैयारियों ने भारतीयों के बीच एक नये नैतिक आचरण को जन्म दिया। गाँधीजी के व्यक्तित्व ने सामाजिक संस्कार के लिये अपनी महत्वपूर्ण सक्रियता प्रदर्शित की। स्वदेशी की भावना प्रबल हुई। इन सबके साथ ही सास्कृतिक चेतना का अभ्युदय शिक्षित वर्ग के बीच उदित हुआ। काव्य में यह युग छायावाद का युग है। भाषा और भाव के सूक्ष्म संस्कार का युग! हिंदी निबंध ने इन सभी परिगत प्रवृत्तियों को अपने भीतर समेटा। द्विवेदी युगीन शास्त्रीयता के स्थान पर एक नयी निबंध शैली का विकास हुआ।

यद्यपि इस युग के निबंधों में क्रमशः सामाजिक चेतना का अभाव मिलने लगता है किन्तु निबंधों में सांस्कृतिक भाव धारा और राष्ट्रीय चेतना का तलस्पर्शी अनुभव परिलक्षित होता है। साहित्यिक चेतना से संपन्न निबंधों की रचना का गंभीर प्रारंभ जैसे इसी युग से ही होता है। छायावादी काव्य–भाषा का प्रभाव छायावादी सांस्कृतिक चेतना का समावेश और छायावादी कल्पना का आकर्षण इस युग की निबंध चेतना के एक हिस्से में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है। आज जिसे हम ललित निबंध के रूप में जानते हैं यद्यपि उसके बीज भारतेन्दु युग में पड़ गए थे किंतु शुक्ल युग में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय जैसे निबंधकारों ने इसे अलग पहचान दी। इस समय के निबंध में छायावादी तत्वों का स्थान स्पष्ट हो रहा था भले ही यह रुझान शैली संदर्भ में ही अधिक रहा हो।

दूसरी ओर हिंदी साहित्य के विकसित स्वरूप के साथ उसकी आलोचना पद्धति का भी विकास हुआ। भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों पर आधारित समीक्षात्मक निबंधों का लेखन प्रारंभ हुआ। स्वयं शुक्ल जी ने इस तरह के निबंध लिखें। समीक्षा के क्षेत्र में व्यावहारिक और सैद्धांतिक समीक्षा का विकास हुआ। प्राचीन ग्रंथों का संपादन करने वाले विद्वानों ने लंबी–लंबी समीक्षाएँ इन ग्रंथों के संबंध में लिखी जो व्यावहारिक समीक्षा का

श्रेष्ठ उदाहरण बनकर सामने आई। शुक्ल जी ने अपने मनाविकार संबंधी निबंधों के लेखन के माध्यम से मनोवैज्ञानिक निबंधों की भूमिका को प्रशस्त किया। यद्यपि शुक्ल जी को ये मनोविकार संबंधी ये निबंध उनकी समीक्षात्मक दृष्टि का विकास और उस दृष्टि वो गहराई को ही प्रदर्शित करते हैं। व्यक्ति व्यंजकता से परिपूर्ण ये निबंध निश्चित ही निबंध के क्षेत्र से एक नई हलचल प्रारंभ कर रहे थे। डॉ गणपतिचंद्र गुप्त ने शुक्ल जी की इन विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है– 'इन निबंधों में एक ओर चिंतन की मौलिकता, विवेचना की गंभीरता विश्लेषण की सूक्ष्मता और प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है तो दूसरी ओर उनम लेखक की एक वैयक्तिकता, मात्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता का दर्शन भी स्थान–स्थान पर है। उनके निबंधों में विषय और व्यक्ति का ऐसा समन्वय हुआ है कि इस बात का निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उन्हें विषय वस्तु प्रधान कहें या व्यक्तिप्रधान। इसी समय विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य का स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन प्रारंभ हुआ इसलिये समीक्षात्मक निबंधों की आवश्यकता की प्रतिपूर्ति भी होने लगी और शांधात्मक निबंध साहित्य का लेखन भी प्रारंभ हुआ।

इस युग के प्रमुख निबंधकारों में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल, पुन्नालाल बख्शी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरिरायकृष्ण दास, जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, निराला आदि का प्रमुखता से नाम लिया जा सकता है। बाबू गुलाबराय ने निबंधों में विचारात्मकता, साहित्यिकता, आत्मसंस्मरणात्मकता और हास्यविनोदात्मकता का समावेश प्राप्त होता है। इनके निबंधों में व्यक्तित्व की सरलता, अनुभूति की तरलता विचारों की स्पष्टता एवं शैली की सुबोधता प्राप्त होती है। दरअसल बाबू गुलाबराय एक समीक्षक, एक व्यंग्य निबंधकार और एक ललित निबंधकार की मिली–जुली रेखाओं वाला व्यक्तित्व लेकर ही हिंदी निबंध के क्षेत्र में उपस्थित हुए थे। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने निबंध को कुछ प्रयोगात्मक रूप प्रदान की। बख्शी जी के निबंधों में निबंध की स्वच्छंदता वृत्ति स्पष्ट रूप से प्राप्त होने लगती है। विचार और भाव का सुमधुर संयोग बख्शी जी के निबंधों में दृष्टव्य है। रायकृष्ण दास और वियोगी हरि के निबंधों में काव्यात्मकता का पुट अधिक है। इनके निबंधों को पढ़ते हुए गद्य काव्य का आनंद आता है। प्रसाद जी के निबंधों में गंभीर अध्ययन मौलिक चिंतन और काव्यात्मकता का सम्मिलित प्रभाव है। निराला जी के निबंध उनकी प्रखरता और उग्र विद्रोही चेतना से ही उद्भूत हैं। माखनलाल चतुर्वेदी के निबंधों में भावुकता का पुट सर्वाधिक है।

पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों के माध्यम से इस युग में निबंध का प्रचार प्रसार हुआ। अनेक निबंधकारों के अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए और निबंध की एक समग्र छवि निर्मित हुई। जीवनी संस्मरण, आत्मकथा यात्रा वृतांत जैसे निबंध प्रकारों का भी प्रचुर मात्रा में सृजन होने लगा। शुक्ल के निबंधों में वस्तुपरक और आत्मपरक दोनों तरह के निबंधों की रचना हुई। आत्मपरकता की प्रवृत्ति अधिक बढ़ी। निबंध विचारात्मक अधिक हुए कितु भावात्मकता को उन्हें पीछे नहीं छोड़ा। अधिकांश कवियों ने ऐसी निबंध रचनायें की जिनमें उनका कवि व्यक्तित्व भी सक्रिय रहा। अपने पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा इस युग का निबंध अधिक गंभीर, अधिक विवेचनापूर्ण, अधिक प्रभावशाली है।

शुक्ल युग निबंध की भाषा का समृद्धि काल है। इस युग की भाषा परिनिष्ठित, प्रांजल और प्रसंगानुकूल है। छायावादी संस्कारों से भाषा को लाक्षणिक और व्यंजनात्मक शक्तियां प्राप्त हो रही थी। उनका उपयोग निबंधकारों ने भी अपने निबंधों में किया। तत्सम शब्दावली लेकर आमफहम शब्दावली का प्रयोग भी इस समय की भाषा में प्राप्त होता है। इस युग के निबंधकार भाषा की रचनात्मक शक्तियों का प्रयोग बखूबी कर रहे थे। निबंधों की शैली में भी अनेक परिवर्तन प्राप्त होते हैं। गूढ़, गहन विषयों से लेकर विश्लेषणात्मक शैली, ललित निबंधों में कल्पना की उड़ान को आधार बनाकर ललित शैली आदि अनेक तरह की शैलियों अपने सहज स्वभाव में इस युग में प्रस्तुत हो रही थी।

**शुक्ल द्वितीय युग**

हिंदी निबंध का आधुनिक काल यद्यपि ईस्वी सन् 1940 से माना जाता है, किंतु उसमे स्वतंत्रता प्राप्ति और स्वतंत्रयोत्तर भारत के आकाश में धारित होने वाले झंझावातों का भी उल्लेख है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ देश निर्माण की संकल्पना को लेकर उस देश के जन की गहन आस्था और विश्वास का प्रतिबिम्बन तत्कालीन कलात्मक रचनाओं में होने लगा था। स्वतंत्रता के बाद इस देश की बागडोर प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के हाथ में आयी। उनके व्यक्तित्व की स्वप्नशीलता से देश अभिभूत हुआ। निर्माण के नये–नये क्षितिज आकार ग्रहण करने लगे लेकिन देश विभाजन और चीन के आक्रमण में की त्रासदियों ने देश के मानस को झकझोर दिया और एक बार फिर से यथार्थवादी चिंतन की ओर हमारा प्रबुद्ध वर्ग लौटा लेकिन स्वातात्र्योत्तर भारत में राजनैतिक प्रबलता में अपनी क्रूरता के माध्यम से सपूर्ण सामाजिक मूल्यों को छिन्न–भिन्न कर दिया। नैतिकता का ह्रास हुआ। राजनेता चालाकियों से अपनी स्वार्थ पूर्ति करने लगे। वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास ने देश को विश्व विरादरी में खड़ा किया। ग्लोबालाइजेशन की संस्कृति प्रारंभ हुई। इस समूचे परिवेश ने हिंदी निबंध को प्रभावित किया।

साहित्य का स्थान राजनीति ने लेना प्रारंभ कर दिया। पत्रकारिता की लोकप्रियता में इजाफा हुआ। सन् 1970 तक जिन साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी निबंध के विकसित चेतना को प्रस्तुत किया जा रहा था. उन पत्रिकाओं में कल्पना धर्मयुग, साप्ताहिक हिदुस्तान, राष्ट्रवाणी आदि पत्रिकाएँ प्रमुख थी, किन्तु नौवे दशक के आते–आते ये साहित्यिक पत्रिकाएँ या तो बंद हो गई या फिर इन्होंने भी राजनीतिक रिपोर्टी को छापना प्रारंभ कर दिया। दैनिक पत्रों में रविवारीय ने भी राजनैतिक वैज्ञानिक निबंध अधिक प्रकाशित होने लगे। विदेशों में लोगों का आवागमन बढ़ा, इसलिए यात्रा संस्मरण में वृद्धि हुई। छायावादी साहित्यकार इस समय तक लगभग अपनी जीवन संध्या में पहुंच चुके थे। इसलिए उनमें आत्मकथा लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी और आत्मकथा लेखन लोकप्रिय विधा के रूप में सामने आयी। जीवनी संस्मरण आदि के लिए भी उपयुक्त अवसर प्राप्त होने लगे।

आधुनिक युग के निबंधों की विषय भूमि व्यापक है। साहित्य, राजनीति, आर्थिक, वैज्ञानिक चेतना, विश्व की तात्कालिक समस्याएँ, मनोरंजन, सिनेमा खेलकूद दूरदर्शन आदि विषयों को लेकर आज पर्याप्त मात्रा में निबंध लिखे जा रहे हैं। इस बीच व्यंग्य निबंध को अत्यधिक लोकप्रियता हासिल हुई। आधुनिक युग में अनेक व्यंग्यकार व्यंग्य लेखन में सक्रिय है। हमारे युग की विडबना और उसके अन्तर्विरोधों को व्यंग्य में अधिक सशक्त ढंग से व्यक्त किया जा सकता है। साहित्यिक दृष्टि संपन्न निबंधों की लोकप्रियता में भी आत्म लेखन भी कम होने लगा। निबंधों की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना में ज्ञानमूलक प्रवृत्तियों परिलक्षित हो रही हैं। फिर भी आधुनिक युग का निबंध अपने लिये एक नया संसार तलाश रहा है जिसमें वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य को भी प्रस्तुत करने की क्षमता लिये हुए हैं।

इस युग के निबंधों का आकार भी छोटा होता गया है तथा कोई भी विषय निबंध के लिए निर्धारित हो सकता है। इस युग में जीवन को अधिक यथार्थ ढंग से और गंभीरतापूर्वक देखने की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। इस युग में मूलतः विचार प्रधान गद्य गीतात्मक, प्रतीकात्मक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिकात्मक, संस्मरणात्मक, वर्णन प्रधान, व्यंग्यात्मक और हास्य प्रधान निबंध लिखे गये। बोलचाल की भाषा के रुप में तदभव और देशी शब्दों का प्रचुर प्रयोग इस युग के निबंधों की प्रमुख विशेषता है। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, जैनेन्द्र कुमार, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, इलाचंद्र जोशी, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामधारीसिंह दिनकर, शिवदानसिंह चौहान, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, कुवेरनाथ राय, विवेकीराय, विद्यानिवास मिश्र आदि प्रमुख हैं। ई. सन् 1965 के बाद प्रकाश में आये प्रायः सभी साहित्यकारों ने निबंध लिखे हैं। यात्रा संबंधी निबंध लेखकों में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक राहुल सांकृत्यायन और देवेंद्र सत्यार्थी के नाम प्रमुख हैं।

इस युग में निबंध की एक अलग कोटि अधिक विकसित रूप में सामने आयी, जिसे ललित निबंध के नाम से अभिहित किया गया। कुछ आलोचक इसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में मान्यता देते हैं और इसी युग कि देन मानते हैं। अज्ञेय, वियोगीहरि, कुबेरनाथराय, विवेकीराय, विद्यानिवास मिश्र, श्यामसुंदर दुबे, श्री राम परिहार आदि इस क्षेत्र के अग्रणी रचनाकार हैं।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. निबंध शब्द किस भाषा का शब्द है ?
2. फ्रेंच भाषा में Essai शब्द का क्या अर्थ होता है ?
3. 'निबंध आत्म–प्रकाशन का प्रयास है। किसका कथन है ?
4. 'निबंध' गद्य की कसौटी है। किसका कथन है ?
5. निबंध विकास क्रम में शुक्ल युग की समयसीमा क्या है ?
6. हिन्दी साहित्य में निबंध किसकी रचना है ?

**16.4 सारांश**

हिन्दी साहित्य में अनेक विधाएं है प्रत्येक विधा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। किन्तु निबंध को इन विधाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। निबंध शब्द संकृत भाषा का शब्द है जिसका साधारण अर्थ ऐसी विधा से है जिसमें विचारों को गूंथा या बाँधा जाता है। निबंध लेखन की अपनी अलग पद्वति है। इसलिए इसे गद्य की कसौटी भी कहा जाता है।

**15.5 कठिन शब्दावली**

**डेरा** – तम्बू

**उत्साह** – जोश

**समर्थन** – सहमति

**अधीर** – उतावला

**कक्ष** – कमरा

**15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर**

1. संस्कृत भाषा
2. प्रयत्न।
3. मोंटेन।
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5. 1920 से 1940 तक।
6. गणपति जानकीराम दुबे।

## 15.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. अष्टभुजा प्रसाद पाण्डे, हिन्दी गद्य–काव्य का उद्व और विकास, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
2. मोहनलाल 'जिज्ञासु', हिंदी गद्य का विकास, लाला खजान वीराम जैन मैनेजिंग प्रोप्राइटर, फैज बाजार, दिल्ली।

## 15.8 सात्रिक प्रश्न

1. निबंध के उद्व्व विकास का वर्णन कीजिए।
2. रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों की समीक्षा कीजिए।
3. ललित निबंध क्या होते हैं ? ललित निबंधकारों का परिचय दीजिए।

*****

# इकाई—16
# रामचंद्र शुक्ल : जीवन परिचय

**संरचना**

16.1 भूमिका
16.2 उद्देश्य
16.3 रामचंद्र शुक्ल : जीवन परिचय
16.3.1 व्यक्तित्व
16.3.2 कृतित्व
स्वयं आकलन प्रश्न
16.4 सारांश
16.5 कठिन शब्दावली
16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
16.7 संदर्भित पुस्तकें
16.8 सात्रिक प्रश्न

## 16.1 भूमिका

इकाई पंद्रह में हमने निबंध के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे कि निबंध का उद्भव कैसे हुआ निबंध संग्रह कौन सा है, इसका गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई सोलह में हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल के जीवन परिचय के बारे में अध्ययन करेंगे।

## 16.2 उद्देश्य

इकाई सोलह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. रामचंद्र शुक्ल का जन्म कब हुआ ?
2. रामचंद्र शुक्ल का प्रसिद्ध ग्रंथ कौन सा है?
3. रामचंद्र शुक्ल कैसे निबंधकार है ?
4. रामचंद्र की प्रसिद्वि की आधार रचनाएं कौन सी हैं ?

## 16.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल : जीवन परिचय –

### 16.3.1 व्यक्तित्व –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. (वि.स. 1941) में आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को बस्ती जिले के 'अगौना' नामक ग्राम में हुआ था। सन् 1898 में 14 वर्ष की अवस्था में उन्होने मिर्जापुर। के एंग्लो संस्कृत जुबली रसूल में उर्दू के साथ अंग्रेजी लेकर मिडिल पास किया। सन् 1901 में आपने मिर्जापुर के ही लन्दन मिशन स्कूल से स्कूल फाइनल परीक्षा पास की। इसके बाद इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला में नाम लिखाया, लेकिन पारिवारिक कारणों से बीच में ही पढाई छोड़ देनी पड़ी। सन् 1902 में प्लीडरशिप की परीक्षा दी, किन्तु अच्छी तैयारी न होने के कारण उत्तीर्ण नहीं हुए।

अध्ययन की प्रवृत्ति आरम्भ से ही थी। लन्दन मिशन स्कूल के प्रिंसिपल एफ. एफ लॉंगमैन आपको अंग्रेजी पढ़ने के लिए बराबर प्रोत्साहित करते रहते थेः 1895 से 1903 ई. तक शुक्लजी अंग्रेजी के व्यापक एवं गम्भीर अध्येता श्री रामगरीब चौबे के सम्पर्क में रहे। चौबेजी की अध्ययनशीलता उन्माद की सीमा तक पहुँची हुई थी।

वे शुक्लजी के लिए चुनी हुई पुस्तकें जुटा दिया करते थे। ''चौबेजी के सम्पर्क से शुक्लजी को मिडिल पास करते–करते अंग्रेजी का उतना ज्ञान हो गया था जितना उस समय एफ.ए. के विद्यार्थियों को भी बहुत कम होता था।'' 1898–99 ई. में आपने एडिसन के एसे ऑन इमेजिनेशन का अनुवाद 'कल्पना का आनन्द' शीर्षक से कर डाला था। 1903 ई. तक आपने अपने हिन्दी साहित्य के ज्ञान से बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' को इतना प्रभावित कर लिया था कि उन्होने आनन्द कादम्बिनी के सम्पादन का भार इन्हें सौंप दिया था। स्वयं शुक्लजी 16 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते अपने को लेखक मानने लगे थे। 'प्रेमघन की छाया स्मृति' में वे कहते है – ''16 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते तो समवयस्क हिन्दी–प्रेमियों की एक खासी मण्डली मुझे मिल गयी, जिनमें श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल, वा. भगवानदासजी हालना, पं. बदरीनाथ गौड, पं. उमाशंकर द्विवेदी मुख्य थे। हिन्दी के नये–पुराने लेखकों की चर्चा बराबर इस मण्डली में रहा करती थी। मैं भी अब अपने को एक लेखक मानने लगा था। 16 वर्ष की अवस्था में एक लेखक के रुप में अपनी पहचान बनाकर शुक्लजी ने असाधारण क्षमता का परिचय दिया है। किसी भी व्यक्ति के जीवन में बौद्विक विकास की यह गति सराहनीय मानी जायगी। इस विकास में उनकी संघर्ष–क्षमता मुख्य कारण है। घर में विमाता के होने के कारण वे बराबर उपेक्षित रहे। उनका शैक्षिक विकास अभाव और उपेक्षा – में ही हुआ था। यह अभाव उनकी संघर्ष–चेतना के लिए आजीवन चिन्ता बना रहा। इसके चलते उन्हे सभा के फरमायशी कार्य करने पड़े। कम वेतन पर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य स्वीकार करना पड़ा और 1940 ई. तक हाईस्कूल परीक्षा की उत्तर–पुस्तिका के मूल्यांकन का कार्य स्वीकार करना पड़ा। इस सम्बन्ध में श्री चन्द्रशेखर शुक्ल का कथन ध्यान देने योग्य है– ''गरमी की छुट्टियों में जब वे हाईस्कूल परीक्षा की कॉपियाँ देखते– देखते थक जाते थे तब अकसर कहते थे कि 'इस तरह बैल के समान पिसने पर मैं अधिक नहीं चल सकता। लेकिन क्या करूँ? ''

1904 ई. में शुक्लजी लन्दन मिशन स्कूल में ड्रॉइंग मास्टर हुए। यह कार्य उन्होंने नायब तहसीलदारी का प्रलोभन छोड़कर स्वीकार किया था। सरकारी नौकरी को वे स्वतन्त्र चेतना के विकास में बाधक मानते थे। ड्रॉइंग मास्टर हो जाने के बाद भी वे मेयो मेमोरियल लाइब्रेरी में बैठकर घंटों साहित्य–चर्चा करते रहते थे। श्री केदारनाथ पाठक इस लाइब्रेरी के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने घर पर भी हिन्दी–पुस्तकों का अच्छा संग्रह किया था। शुक्लजी इस लाइब्रेरी के नियमित अध्येता थे और 1900 ई. तक उन्होने उपर्युक्त पुस्तकालय की प्रायः सभी पुस्तकें पढ डाली थी। शुक्लजी के व्यापक अध्ययन और हिन्दी के विशेष ज्ञान से प्रभावित होकर ही श्री केदारनाथ पाठक ने उन्हें 1906 ई. में बाबू श्यामसुन्दरदास से मिलाया था और उनसे कुछ काम लेने की सिफारिश की थी। 1893 ई. में नागरी प्रचाारिणी समिता की स्थापना हो चुकी थी। 23 अगस्त, 1907 ई. को सभा के परम हितैषी सदस्य रेवरेंड ई. ग्रीव्स ने सभा की 'प्रबंधकारिणी समिति' में यह प्रस्ताव उपस्थित था कि सभा हिन्दी का एक बृहत और सर्वागपूर्ण कोश बनाने का भार अपने ऊपर ले लिया। 9 नवम्बर 1907 को सभा ने कोश–निर्माण में परामर्श देने के लिए संघटित उपसमिति के सुझाव को स्वीकार करक कोश–निर्माण का निश्चय किया। एक वर्ष बाद बाबू श्यामसुन्दरदास को कोश का संपादक नियुक्त किया गया। अक्टूबर 1908 में शुक्लजी कोश में सहायक संपादक के रुप में कार्य करने के लिए सपरिवार काशी चले आए। 1893 ई. में 9 वर्ष की अवस्था में शुक्लजी अपने पिता के साथ राठ से मिर्जापुर आये थे। मिर्जापुर में ही उनके साहित्यिक संस्कार परिपुष्ट हुए और लगभग 24 वर्ष की अवस्था में वे प्रतिष्ठित विद्वान की हैसियत से काशी आए।

एक विद्वान के रुप में प्रतिष्ठित शुक्लजी को काशी में आकर अध्ययन का व्यापक क्षेत्र प्राप्त हुआ। 1919 ई. में वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए। इस समय तक कोश का तीन–चौथाई कार्य समाप्त हो गया था। 1907 ई. से 1919 ई. तक बारह वर्षों की अवधि में शुक्लजी ने अपना ज्ञान कितना व्यापक और गम्भीर कर लिया था इसके साक्षी स्वयं बाबू श्यामसुन्दरदास हैं– ''इस कोश के कार्य में आरम्भ से लेकर अन्त तक पंडित रामचन्द्र शुक्ल का सम्बन्ध रहा है और उन्होंने इसके लिए जो कुछ किया है, वह विशेष रुप से उल्लिखित होने

योग्य है। यदि यह कहा जाए कि शब्द–सागर की उपयोगिता और सर्वागपूर्णता का अधिकांश श्रेय पंडित रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषा–विज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयों का समीचीन विवेचन प्रायः उन्ही का किया हुआ है। यदि शुक्लजी सरीखे विद्वान की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक संपादकों की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असम्भव ही होता।''

विश्वविद्यालय में नियुक्त होने के बाद आचार्य शुक्ल ने विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा को ध्यान में कर स्थायी महत्व के कार्य किये। इसके पूर्व साहित्य (1904 ई), कल्पना का आनन्द (190 पू.ई.), अपनी भाषा पर विचार (1907) है) कविता क्या है (1909 ई.), उपन्यास (1910 ई.) जैसे निबन्ध लिखकर उन्होंने अपनी क्षमता का परिचय दे दिया था। भाव या मनोविकार–सम्बन्धी सभी निबन्ध 1912 से 1919 ई. तक लिखे जा चुके थे और विचार– वीची (1930 ई.) में प्रकाशित होने के पूर्व 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हो चुके थे। इससे स्पष्ट है कि कोश–निर्माण के साथ–साथ शुक्लजी दर्शन और मनांविज्ञान के अध्ययन में बराबर लगे रहे। यही नहीं, साहित्य के इतिहास, समाजशास्त्र और विज्ञान के अध्ययन में भी वे पूरे मनोयोग से प्रवृत्त रहे। ऐसा न होता तो 1920 ई. में विश्व प्रपंच, रिडलू आव् द युनिवर्स का अनुवाद और उसकी भूमिका का प्रस्तुत होना सम्भव न होता, न उसके बाद की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकें एक के बाद एक लिखी जाती।

1922 ई. से लेकर मृत्युपर्यन्त आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य की समृद्धि में लगे रहे। गोस्वामी तुलसीदास (1922 ई.) भ्रमरगीतसार, (1922 ई.) जायसी ग्रंथावली (1924 ई.) महाकवि सूरदास (1924 ई.), हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929 ई.), चिन्तामणि भाग दो (1923 ई.), रस–मीमांसा (1939 ई. 1949 ई. में प्रकाशित), हिन्दी–साहित्य का इतिहास (1941 ई. परिवर्धित संस्करण) आदि कृतियाँ उनकी साहित्य–साधना की साक्षी हैं। ये कृतियाँ उनकी कीर्ति के आधार स्तम्भ हैं। वस्तुतः 1921–22 ई. तक आकर उनमें एक सच्चे आचार्य का आत्मविश्वास विकसित हुआ। अब हम उन्हें कहीं प्राचीन आचार्यों के मतों की सीमाओं का निर्देश करते हुए, कही विज्ञान और अध्यात्म के क्षेत्रों की नवीनतम उपलब्धियों के आधार पर दोनों की लक्ष्यगत एकता के सम्बन्ध में विचार करते हुए, कहीं पाश्चात्य समीक्षकों के मतों का खण्डन करते हुए, कही अपने मत के समर्थन में उनका मत उद्धृत करते हुए, कही नवीन मत की उद्भावना करते हुए और कही अपने पूर्व के हिन्दी– समीक्षकों पर व्यंग्य और उनके अज्ञान की ओर संकेत करते हुए पाते है। 1920 ई. में ही हम उन्हें विज्ञान, धर्म, दर्शन और काव्य दृष्टियों को एक स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए पाते हैं। ज्ञान, धर्म और विज्ञान के विषय में वे कहते हैं–

''भेदो में अभेद ही सच्ची तत्व–दृष्टि है। इसी के द्वारा सत्ता का आभास मिल सकता है। यही अभेद ज्ञान और धर्म दोनों का लक्ष्य है। विज्ञान इसी अभेद की खोज में है, धर्म इसी की ओर दिखा रहा है।'' ठीक इसी अभेद–दृष्टि को वे काव्य के क्षेत्र में, प्रकारान्तर से, घोषित करते हैं– ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार ह्दय की मुक्तावस्था (स्वार्थ– सम्बन्धों से ऊपर शुद्ध अनुभूति की अवस्था रस दशा कहलाती है। हदय की इसी मुक्ती की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द–विधान करती आयी है. उसे कविता कहते हैं'' या ''काव्य का जो चरम लक्ष्य सर्वभूत को आत्मभूत करके अनुभव कराना है, उसके साधन में भी अहंकार का त्याग आवश्यक है।'' कहना न होगा कि भेद में अभेद दर्शन और सर्वभूत को आत्मभूत करके अनुभव करना ही आचार्य शुक्ल की रचना–दृष्टि का केन्द्र–बिन्दु है।

तात्पर्य यह कि 1920 ई. तक आकर आचार्य शुक्ल का बौद्धिक चिन्तन अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया था और उनका साहित्यिक व्यक्तित्व पूर्णतः विकसित हो चुका था। 1920 से लेकर 1930 ई. तक वे अपना सर्वोत्तम प्रदेय लिख चुके थे, अपने विचार स्थिर कर चुके थे और 1930 ई. बाद की रचनाओं में उन्होंने उन्ही विचारों को परिमार्जित और पल्लवित करके प्रस्तुत किया।

आचार्य शुक्ल के साहित्यिक व्यक्तित्व पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उसके संघटन में हिन्दी भाषी क्षेत्र के सांस्कृतिक परिवेश का योगदान उतना नहीं है जितना उस समय तक के विश्वस्तरीय वैज्ञानिक चिन्तन एव साहित्यिक–सांस्कृतिक के विकास का। आचार्य शुक्ल की समीक्षा–दृष्टि मात्र समीक्षा–शास्त्र की पारंपरिक पोथियों और साहित्य–रसिकों के बीच प्रचलित काव्य कृतियों के अध्ययन से विकसित नहीं है वरना वह उनके समय तक अर्जित और लब्ध संपूर्ण ज्ञान की साहित्यिक परिणति है। इसीलिए वे अपने समय के अन्य समीक्षकों से अलग दिखाई देते हैं। यह बात तब और साफ होकर सामने आती है जब हम उनके समीक्षक व्यक्तित्व को उनके कुछ पूर्व तथा उनके सम–सामायिक समीक्षकों के साथ रखकर देखते हैं। शुक्ल–पूर्व युग के समीक्षक मिश्रबंधु जिस समय हिन्दी के नौ श्रेष्ठ कवियों के चयन में उलझे हुये '' थे, उस समय आचार्य शुक्ल कवि–कर्म को 'हदय की मुक्ति की साधना के लिये किये जाने वाले शब्दविधान' के रूप में विश्लेषित कर रहे थे। साहित्य के इतिहास के नाम पर जिस समय वृत्त–संग्रह को पूर्णता दी जा रही थी, उस समय आचार्य शुक्ल उन्नीसवीं शती के यूरोपीय इतिहास–दर्शन को पचाकर हिन्दी–साहित्य के इतिहास को एक ठोस दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रदान कर रहे थे। जिस समय काव्य भाषा के संदर्भ में कुछ शास्त्र–विहित गुणों की चर्चा करके संतोष कर लिया जा रहा था उस समय आचार्य शुक्ल उसमें विम्बविधान, संश्लिष्ट चित्रण, प्रतीक–विधान, लक्षणाशक्ति के विकास, समासशक्ति के वैशिष्य, व्यंजना शक्ति के मूलआधार, आदि का गंभीर विवेचन कर रहे थे। जिस समय काव्य तत्व–विवेचन के क्रम में 'कल्पना' की चर्चा शुरु भी नही हुई थी उस समय आचार्य शुक्ल वर्कले द्वारा प्रतिपादित परम कल्पना के अध्यात्म दर्शन और उसके आधार पर कवि ब्लेक द्वारा रचित कल्पना के नित्य रहस्य लोक की अवैज्ञानिकता, प्रकृति और कल्पना के प्रत्यक्ष सम्बन्ध तथा विभाव–विधान एवं अप्रस्तुत योजना में कल्पना की अनिवार्य भूमिका का विश्लेषण कर रहे थे। जिस समय काव्य–शास्त्र के नाम पर रीति ग्रंथों की परंपरा में अलंकार मंजूषा लिखी जा रही थी, उस समय आचार्य शुक्ल भारतीय काव्य–सम्प्रदायों का अनुशीलन करके रस के मनोवैज्ञानिक आधार के विवेचन ''मैं प्रवृत्त थे और लोक–मंगल के संदर्भ में उसकी नई व्याख्या दे रहे थे। जिस समय 'उपन्यास' के नाम पर एयारी–तिलस्मी दुनिया की सैर करायी जा रही थी, उस समय आचार्य शुक्ल उसे मानव के अन्तःकरण के सौन्दर्य का साक्षात्कार कराने वाली, मानव–प्रकृति के विश्लेषण में समर्थ तथा इतिहास एवं जीवन चरित्र की सीमा में न आ सकने वाली यथार्थ पर आधारित व्यक्ति और समाज जीवन में घटित बहुविध छोटी–छोटी घटनाओं को उपजीव्य बनाकर जीवन को समग्रत। और संश्लिष्टता में मूर्त करने वाली महत्वपूर्ण साहित्य–विधा के रुप में व्याख्यायित कर रहे थे। तात्पर्य यह कि साहित्य के सभी क्षेत्रों में आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व अपने परिवेश का अतिक्रमण करके एक ज्योति स्तंभ के रुप में आलोक विकीर्ण करता हुआ दिखाई देता है।

आचार्य शुक्ल की व्यक्तित्व बहुआयामी था। विज्ञान, धर्म, दर्शन और साहित्य के क्षेत्रों में ही नही, राजनीति और समाज–दर्शन के क्षेत्रो में भी उनकी अच्छी गति थी। राजनीति के क्षेत्र में वे तिलक के विचारों के अधिक निकट थे। 1904 ई. में ही उन्होंने दासता के विरुद्ध अपने उग्र विचार व्यक्त करके तत्कालीन अंग्रेज क्लेक्टर विंढम को नाराज कर दिया था। आचार्य शुक्ल के राजनीतिक चिन्तन का आभास उनके हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी मिलता है। उन्होंने अपने समय की राजनीति पर गहरी नजर रखी है। अपने इतिहास में 'उपन्यास–कहानी' शीर्षक के अन्तर्गत वे कहते है– ''उन्हें यह भी देखना चाहिए कि अंग्रेजी राज्य जमने पर भूमि की उपज या आमदी पर जीवन–निर्वाह करनेवालों की और नगर के रोजगारियों या महाजनों की परस्पर क्या स्थिति हुई।'' आचार्य शुक्ल का मत था कि गांधी के असहयोग आन्दोलन में व्यापारी वर्ग के हितों को सुरक्षित रखा गया है। उनकी दृष्टि में असहयोग आन्दोलन का चरित्र असंतुलित था। लोग बिना ठीक से सोचे गांधी के प्रति रहस्यवादी भक्ति से प्रेरित होकर इसमें कूद पड़े थे। वे अपने प्रसिद्ध निबंध 'नान को–आपरेशन एण्ड नान–मकेंन्टाइल क्लासेज' में लिखते है ''पंजाब में ढाये गये क्रूर नृशंस अत्याचार और इस जुर्म के कर्मधारों को बिना दण्ड पाये मुक्त घूमना प्रत्येक राष्ट्रभक्त भारतीय के हदय को गहरे क्रोध से भर देता है। इन अन्यायों के

विरुद्ध सशक्त प्रदर्शन में संपूर्ण देश सम्मिलित हुआ और वह अपनी मांगों को सुनिश्चित रुप देने जा ही रहा था कि तभी महात्मा गांधी ने असहयोग की अनिश्चित योजना आरंभ कर दी। इसने जो शोर और कोलाहल पैदा किया उससे मुग्ध होकर इसके असंतुलित चरित्र को बिना सोचे–विचारे लोग इसकी ओर दौड पड़े।'' वे अनुभव करते थे कि असहयोग आन्दोलन में यदि अव्यापारिक राजनीतिक श्रेणियों को राजकीय सेवा से अपने को हटा लेने का निर्देश दिया जाता है तो व्यापारिक श्रेणियों को भी विदेशी या ब्रिटिश लोगों के साथ अपना समस्त व्यापार छोड़ देने का निर्देश दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि महात्मा गांधी ने 1919 ई. मे सरकारी स्कूलों, अदालतों, नौकरियों और कैसिलों के बहिष्कार का आह्वान किया था। असहयोग आन्दोलन में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और विदेशी के बहिष्कार की बात तो थी, लेकिन विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध विच्छेद की बात नही थी। श्री चन्द्रशेखर शुक्ल का कहना है कि 1931 ई. के बाद आचार्य ' शुक्ल के विचारों में परिवर्तन होने लगा था और 'वे कहने लग गये थे कि गांधीजी अंग्रेजों की नस खूब पहचानते हैं।' यह होने पर भी वे गांधीजी के हदय–परिवर्तन के सिद्धान्त को अव्यावहारिक और उनके जीवन–दर्शन को एकांगी मानते थे।

आचार्य शुक्ल के सामाजिक विचार क्रांतिकारी न कहे जायँ पर वे दकियानूसी भी नहीं थे। वे वर्ण, आश्रम और सम्मिलित कुटुम्ब की व्यवस्था को स्वीकार करते थे और इनकी स्थिति को अनिवार्य मानते थे। वे इस श्रेणी–विभाग की बौद्धिक व्याख्या करते थे। वे ब्राह्मण को लोक–मर्यादा का निरुपक और क्षत्रिय को लोक मर्यादा का रक्षक मानते थे। वे आधुनिक युग को वणिग्धर्म–प्रधान मानते थे, क्योंकि आज धन की पैठ मनुष्य के सभी कार्य क्षेत्रों में हो गयी है। उनका विश्वास था कि ''संसार में मनुष्यमात्र की समान वृत्ति कभी नही हो सकती। वृत्तियों की भिन्नता के बीच जो धर्म–मार्ग निकल सकेगा वही अधिक चलता होगा। जिसमें शिष्टों के आदर, दीनों पर दया, दृष्टों के दमन आदि जीवन के अनेक रुपों का सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा वही सर्वागपूर्ण लोक–धर्म का मार्ग होगा। वे वर्णाश्रम–व्यवस्था को लोक संचालन के लिए ज्ञान–बल, बाहु– बल, धन–बल और सेवा बल का सामंजस्य घटित करने वाली व्यवस्था मानते थे। उनके अनुसार ''परिवार में जिस प्रकार ऊँची–नीची श्रेणियाँ होती हैं उसी प्रकार शील, विद्या, बुद्धि, शक्ति आदि की विचित्रता से समाज में भी ऊँची–नीची श्रेणियाँ रहेंगी।'' इसमें तो सन्देह नहीं कि किसी भी समाज में ज्ञान–बल, बाहु– बल, धन बल और सेवाबल की आवश्यकता बराबर, रहेंगी। इस समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन जब इस भेद को जन्मना स्वीकार करके शील, विद्या, बुद्धि, शक्ति, सेवा आदि गुणों को श्रेणी–विशेष के साथ हमेशा के लिए जोड़कर उसकी सम्पत्ति बना दिया जाता है तो अवश्य कठिनाई उत्पन्न होती है। हमारा विश्वास है कि वर्ण–भेद को वृत्ति–भेद और गुण–भेद के आधार पर प्रतिष्ठित मानने वाले शुक्लजी वर्णों की जन्मजात उच्चता–नीचता का समर्थन नहीं कर सकते थे। यदि ऐसा होता तो रावण को राक्षस मानकर उसके प्रति राम के आचरण को वे अपना पूरा समर्थन न देते शुक्लजी सामाजिक कुरीतियों– बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा आदि को दूर करना चाहते थे, किन्तु सामाजिक सुधारों को वे समाज के मानसिक परिवर्तन की सहज परिणति के रुप में देखना चाहते थे, इन्हें ऊपर से लादने के पक्ष में नहीं थे। निष्कर्ष यह कि आचार्य शुक्ल के सामाजिक विचार उदार थे। उन्होंने अंधविश्वास को कभी प्रश्रय नहीं दिया। ब्राह्माचार एवं आडम्बर से वे बराबर अलग रहे। सहज, उदार, मर्यादित जीवन ही उन्हें सदैव मान्य रहा। समाज के पीड़ित–दलित वर्ग के प्रति उनके मन में अपार मन में अपार करुणा थी। 'अछूत की आह' शीर्षक कविता में अछूतों के दर्द की सही पहचान करते हुए व लिखते हैं––

'जिस गली से उच्च कुल वाले चले, उस तरफ चलना हमारा दण्ड है।
धर्म ग्रंथों की व्यवस्था है यही, या किसी कुलवान का पाखण्ड है।।'

यदि दलित पीड़ित अछूत वर्ग की मर्म–पीड़ा के साथ उन्हें सच्ची सहानुभूति न होती तो वे उपर्युक्त उद्गार व्यक्त नहीं करते। उनके ये उद्गार इस बात के साक्षी हैं कि पाषण्डपूर्ण सामाजिक भेद–भाव उन्हें मान्य नहीं था। वृत्तियों की भित्रता स्वीकार करते हुए भी व उस प्रेम–सूत्र को मजबूत करना चाहते थे जो मनुष्य से मनुष्य को जोड़ता है।

व्यक्ति के रुप में आचार्य शुक्ल वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल थे। उनकी कठोरता विचारों, विश्वासों और मर्यादाओं के पालन में और कोमलता दीनों, दुखियों, असहायों के प्रति आचरण में देखी जा सकती है। वे अपने अनुभव एवं अध्ययन–प्रसूत विचारों एवं निर्णयों पर सदैव अडिग रहे। इस दृढ़ता के मूल में उनकी संस्कारगत आस्था और मनस्विता थी जो उन्हें अपनी पारिवारिक परम्परा– विशेषतः मातामही से प्राप्त हुई थी। अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों में वे जिन सहदय, उदारमना और संस्कारशील व्यक्तियों के सम्पर्क में आये थे उनका अमिट प्रभाव भी उनके मन पर पड़ा था। इन व्यक्तियों में बद्रीनारायण चौधरी प्रमघन, विन्ध्येश्वरीप्रसाद तिवारी (अपने समय के मिर्जापुर के सबसे बड़े पंडित), बाबू बलभद्र सिंह (भागवत, पुराण, रामायण, महाभारत आदि के ज्ञाता, अत्यन्त साहसी तथा शिव–दधीचि की–सी दृढतावाले), महन्त जयराम गिरि (शान शौकत से रहने वाले व्यापारी रईस), सेठ बिहारीलाल (कृष्ण–भक्त, अत्यन्त उदार रईस) तथा अत्यन्त जीवंत व्यक्तित्व वाले मनोरंजन प्रिय चिरैया महराज (अनेक पशु–पक्षियों को जुटाकर – दोपहर में उनके साथ खाना खाने वाले) और बिलैया महराज (नितय 12 बजे रात्रि में पाठ पर पूड़ियों का गठ्ठर लादकर कुत्तों को अपने पीछे दोड़ानेवाले) प्रमुख थे। जीवन के आरम्भिक दौर में आदर्श ब्राह्मण (विन्ध्येश्वरीप्रसाद तिवारी), आदर्श क्षत्रिय (बाबू बलभद्र सिंह) और आदर्श वैश्य (सेठ बिहारीलाल) की जीवन चर्या को निकट से देखकर यदि शुक्लजी वर्णव्यवस्था के आदर्श रूप के समर्थक हो गये हों तो आश्चर्य नहीं। इसी प्रकार उनके पशु–पक्षी प्रेम और मनोरंजन की प्रवृत्ति के प्रेरक रुप में चिरैया महराज और बिलैया महाराज की कल्पना की जा सकती है। साहित्यिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रत्यक्ष प्रेरणा तो उन्हें निश्चय ही चौधरी 'प्रेमधन' से मिली थी।

आचार्य शुक्ल का प्रकृति–प्रेम सर्वविदित है। इसका मूल कारण उनके किशोर मन पर पड़ा हुआ विन्ध्याचल के प्राकृतिक वैभव का सहज संस्कार है। वे प्रायः अपने समवयस्क साथियों के साथ बस्ती से दूर हरे–भरे खेतों और निर्जन पर्वत–उपत्यकाओं की ओर निकल जाते थे। प्रकृति के अद्भुत आकर्षण पर मुग्ध होकर वे तन्मय हो जाया करते थे। प्रकृति के इस मोहक रुप ने ही शुक्लजी को उसे स्वतन्त्र रुप से रस का आलम्बन मानने की प्रेरणा दी थी। उनकी आरम्भिक कविताओं में रमई पट्टी के विशिष्ट जनों और आसपास के प्राकृतिक दृश्यों का मोहक चित्र देखा जा सकता है। 'हदय का मधुर भार' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं –

''नगर से दूर कुछ गाँव की–सी बस्ती एक, हरे–भरे
खेतों के समीप अति अभिराम। जहाँ पत्रजाल अन्तराल
से झलकते हैं, लाल खपरैल, श्वेत छज्जों के सँवारे
धाम। बीचों–बीच वट वृक्ष खड़ा है विशाल एक,
झूलते हैं बाल कभी जिसकी जटाएँ थाम चढ़ी
मंजु मालती लता है जहाँ छाई हुई,
पत्थर की पट्टियों की चौकियों पड़ी हैं श्याम।।1।।
बैठते हैं नित्य यहाँ धर्म के धुरीण एक क्षत्रिय कुलीन
वृद्ध 'भद्र' भीष्म के समान। नाना इतिहास औ पुराण
के प्रसंग यहाँ छिड़े हुए रहते हैं करते पवित्र कान।
नीम तले पास ही पुरोहित का द्वार वह रहती है जहाँ
शिष्य मण्डली विराजमान। पढ़े–लिखे लोगों का
निवास ही विशेष यहाँ
घर है दो–चार गोप नापित भी गुणवान।।

कहना न होगा कि भीष्म के समान क्षत्रिय कुलीन वृद्ध 'भद्र' कोई नहीं, बाबू बलभद्र सिह है और पास ही नीम तले पुरोहित का द्वार पंडित विन्ध्येश्वरीजी का ही द्वार है। इस कविता से प्रत्यक्ष है कि शुक्लजी अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति थे। जीवन के मार्मिक दृश्य और तथ्य उन्हें बेहद प्रभावित करते थे। कविता उनके जीवन की अन्तर्धारा थी।

### 16.3.2 कृतित्व

1896 – ई. में लिखी गयी भारत और वसंत से लेकर मनोहर छटा (1901 ई.) वसंत (1904 ई.) बसंत पथिक (1904 ई.) शिशिर पथिक (1905 ई.), प्रकृति प्रबोध (1923 ई.) हदय का मधुर भार, झलक एक (1924 ई) आमंत्रक (1925 ई.) हर्षोद्‌घार (1925 हृदयका मधुर भाग झलकदो (1926 ई.) गोस्वामीजी और हिन्दू जाति (1927 ई.) हृदय का मधुर भार, झलक तीन (1928 ई.) पाखंड प्रतिषेध (1928 ई.), मधुस्त्रोत (1930 ई.) रुपमय हदय (रचनाकाल अज्ञात) तक यह प्रवाह निरंतर गतिशील रहा। इसी क्रम में बुद्धचरित (1924 ई.) को भी रखा जा सकता है, क्योंकि यह पद्यानुवाद शुक्लजी की रचनात्मक प्रतिभा का भी परिचय देता है। इन कविताओं में उनके 'काव्यादर्श' की झलक मिलती है। 1905 ई. से 1923 ई. तक का काल अवश्य ऐसा है जिसमें कविताएँ नहीं लिखी गयीं। ऐसा लगता हैं कि इस अवधि में शुक्लजी हिन्दी शब्द–सागर के संपादन, मनोवैज्ञानिक निबन्धों के लेखन और रिडल आव दी युनिवर्स के अनुवाद में अत्यधिक व्यस्त थे। निरन्तर अध्ययन, लेखन, बौद्धिक विवेचन एवं विचार–मंथन में लीन रहने के कारण उनके जीवन की रसधारा उनके गुरु–गंभीर व्यक्तित्व के नीचे दब अवश्य गयी, किन्तु उसकी आर्द्रता कभी समाप्त नहीं हुई।

आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व का एक अत्यन्त आकर्षक रुप उनका स्वाभिमान है। इसकी रक्षा के लिए वे सर्वस्व त्याग सकते थे। स्वाभिमान की रक्षा के लिए ही उन्होंने उन सभी पदों और लाभ की जगहों का तिरस्कार किया जहाँ उन्हें दासता की गंध मिली। 1903 ई. में कलक्टरी की अप्रैटिसी, 1904 ई. में नायब तहसीलदारी, 1920 ई. में विद्यापीठ के लिए शिवप्रसाद गुप्त का आमन्त्रण, 1924 ई. में महाराज अलवर के हिन्दी–सचिव का पद, उन्होंने इसीलिए छोड़ा या स्वीकार नहीं किया कि इन पदों पर वे अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र आचरण नहीं कर सकते थे। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए ही वे कंतित के राजा वेणीमाधव सिंह (जो शुक्लजी के साथ रमई पट्‌टी में रह चुके थे और उनके अच्छे मित्र थे) के बार–बार आग्रह करने पर भी उनके यहाँ गये और 1933 ई. में विंध्य प्रदेश के एक राजकुमार को उसके निवास पर जाकर पढ़ाने का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। आचार्य शुक्ल का यह स्वाभिमान उनकी रचनाओं में सर्वत्र लक्षित होता है। स्वाभिमानी व्यक्ति ही अपनी जाति, धर्म, भाषा, साहित्य और राष्ट्र की स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए अपने को उत्सर्ग कर सकता है। कौन कह सकता है कि आचार्य शुक्ल ने अपने को अपनी भाषा, संस्कृति और साहित्य के लिए पूर्णतः समर्पित नहीं कर दिया था। अपने को मिटाकर उन्होंने उस प्रखर बौद्धिक चेतना को अक्षुण्ण रखा जो भारतेंदु युग से ब्रिटिश साम्राज्य के सांस्कृतिक आक्रमण का सफल प्रतिरोध करके राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा करती आई थी।

शुक्लजी की करुणार्द्रता का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि वे पशु–पक्षियों तक को परतंत्र नहीं देख सकते थे। फूलों और लताओं के निकट बैठकर उनसे घंटों बातें किया करते थे। किसी को दुःखी देखकर उसकी सहायता में तत्पर हो जाते थे। स्वभाव की इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उन्होंने महाकाव्यों में अंगीभाव से अलग 'करुणा' और 'प्रेम' की कल्पना बीज–भाव के रुप में की हो और 'करुणा' को लोकमंगल की साधना का मूल आधार माना हो, तो आश्चर्य नहीं।

आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व में गम्भीरता का तत्व कहने की वस्तु नहीं है। वह सर्वत्र लक्षित है। प्रवृतया गंभीर हाने के नाते ही वे विचार–विवेचन के क्षेत्र में आगे बढ़ते गये। अध्ययन भी विज्ञान, दर्शन और काव्यशास्त्र जैसे विषयों का किया और जो कुछ लिखा वह स्थायी महत्व का लिखा।

तात्पर्य यह कि आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उनके व्यक्तित्व में स्वाभिमान दृढ़ता, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, करुणार्द्रता, गंभीरता, मर्यादा–प्रियता आदि गुणों के साथ प्रतयुत्पन्नमतित्त्व और रंजन की प्रवृत्तियाँ भी लक्षित होती हैं। उनके व्यक्तित्व के अनेक आयामों का विकास उनके जीवन–संघर्ष से जुड़ा है। उन्हें एक खास तरह से सोचने–समझने, निर्णय लेने और अपने व्यक्तित्व को विकसित करने की दिशा में उनके परिवेश ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उनकी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप है। कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल का जीवन–संघर्ष, व्यक्तित्व और रचना दृष्टि एक–दूसरे से बहुत गहरे स्तर पर जुड़े हैं। इसलिए इन्हें अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता।

**कृतित्व –**

आचार्य शुक्ल कला, विज्ञान और दर्शन के गहन अध्येता थे। वे काव्य को मनोमय कोश तक ही सीमित रखते थे, क्योंकि उसका सम्बन्ध मनोविकारों से ही है। शुक्ल काव्यानुभूति और लोकानुभूति को भिन्न कोटि का नहीं मानते जबकि परम्परा में काव्यानुभूति को लोकोत्र अनुभूति सिद्ध करने का अटूट आग्रह हैः इनकी दृष्टि में काव्यानुभूति एक सात्विक मनोदशा है, जो लोक–व्यवहार में भी अनुभव सिद्ध है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध किया है।

**1. निबन्ध संग्रह**– 'चिन्तामणि' के तीन खण्डों में आपके निबन्ध संकलित है। प्रथम भाग में भावों, मनोविकारों से सम्बंधित व्यावहारिक समीक्षात्मक तथा कुछ शास्त्रीय समीक्षात्मक निबंध संकलित है।

द्वितीय भाग में उनके लम्बे–लम्बे शुद्ध आलोचनात्मक निबंध संग्रहीत है। ये निबंध अधिकांशतः शास्त्रीय आलेचना से सम्बंधित है। तुलसीदास की भावुकता, सूरदास का श्रृंगार, भारतेन्दु हरिशचन्द्रः परिचय आदि निबंध व्यावहारिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं।

शुक्ल जी के निबंध यद्यपि समय–समय पर 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित होते रहे परन्तु चिन्तामणि भाग 1 और भाग 2 में उनके पर्याप्त निबंध प्रकाशित है। उनके निबंध चाहे मनोविकार से सम्बंधित हो या सैद्धांतिक, सभी में भाषा और भावों की उत्कृष्टता का चरम बिन्दु प्राप्त होता है।

**2. आलोचना**– आचार्य शुक्ल जी ने सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में योगदान दिया। सूरदास, तुलसीदास और जायसी के साहित्य पर आपने व्यावहारिक आलोचनात्मक टिप्पणियां लिखी। कविता क्या है? साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद, काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था तथा रसात्मक बोध के विविध स्वरूप आपके प्रसिद्ध निबंध है।

**3. साहित्य का इतिहास** – 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' शीर्षक ग्रंथ के माध्यम से आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

**4. कविताएं** – शुक्ल जी काव्य अप्राप्य है 'बुद्धचरित तथा कुछ फुटकर रचनाएं ही मिलती है। कुछ चरित्र की भूमिका में उन्होने उत्तर भारत की कई आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के भेदक लक्षणों की विशद् विवेचना की है।

**5. अनुवाद ग्रंथ** – आचार्य शुक्ल जी ने 14 वर्ष की अवस्था में ही 'एडिसन' के 'एस्से ऑन इमेजिनेशन' का अनुवाद 'कल्पना का आनन्द' नाम से किया था। सर टी. माधवराज की पुस्तक 'माइनर हिंट्स' का अनुवाद 'राज्य प्रबंध शिक्षा' नाम से किया।

1. रिडर ऑफ यूनिवर्स – विश्व–प्रपंच
2. एस्से आफ दी इमेजिनेशन – कल्पना का आनन्द
3. लाइट ऑफ एशिया – बुद्ध चिरत्र
4. प्लेन लिविंग एंड हाई थींकइंग – आदर्श जीवन।

**6. सम्पादन –**

(क) हिन्दी–शब्द सागर।

(ख) नागरी–प्रचारिणी–पत्रिका।

(ग) तुलसी और जायसी ग्रंथावली।

(घ) भ्रमर–गीत–सार (सूरदास)।

अतः कहा जा सकता है कि साहित्यकार, सम्पादक, आलोचक रूप के साथ–साथ शुक्ल जी सफल अध्यापक भी थे, जिनकी शिष्य–परम्परा आज हिन्दी–साहित्य के विविध अंगों की पूर्ति में लीन है। जिस लेखक का प्रभाव इतना व्यापक हो उसकी असाधारण प्रतिभा के लिए प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य शुक्ल उन महिमाशाली लेखकों में से हैं, जिनकी प्रत्येक पंक्ति आदर के साथ पढी जाती है और भविष्य को प्रभावित करती है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्मवर्ष क्या है ?
2. शुक्ल जी को घर में साहित्यिक वातावरण किसके कारण मिला ?
3. शुक्ल जी की मण्डली का नाम उर्दू भाषी लोगों ने क्या रखा था ?
4. 'चिंतामणी' किसका निबंध संग्रह है ?
5. 'हिन्दी का बेकन' किसे कहा जाता है ?
6. त्रिवेणी किस विधा की रचना है ?

**16.4 सारांश**

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के प्रकांड विद्वान आचार्य माने जाते हैं। जिन्होंने एक समाद्वत, आलोचक, निबंधकार, कहानीकार, कोशकार, साहित्य इतिहासकार और अनुवादक के रूप में हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। वहीं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ख्याति का अक्षय स्त्रोत उनके द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य का इतिहास है जो हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर मानी जाती है।

**16.5 कठिन शब्दावली**

**कोष** – खजाना

**काठ** – लकड़ी

**इंदिरा** – लक्ष्मी

**कृपाण** – कटार

**शूर** – वीर

**16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर**

1. 1884 ई. ।
2. अपने पिताजी के कारण ।
3. निस्संदेह मंडली।
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
6. आलोचना ।

## 16.7 संदर्भित पुस्तकें

1. प्रो. सत्यदेव मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ।
2. आनंद कुमार शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अनुवाद कर्म, अनुज्ञा बुक्स।

## 16.8 सात्रिक प्रश्न

1. रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. रामचन्द्र शुक्ल एक कुशल आलोचक है समीक्षा कीजिए।
3. रामचन्द्र शुक्ल के काव्य की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

*****

# इकाई–17

# लोभ और प्रीति : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**


17.1 भूमिका

17.2 उद्देश्य

17.3 लोभ और प्रीति : पाठपरक अध्ययन

17.3.1 लोभ और प्रीति का सार

17.3.2 लोभ और प्रीति का प्रतिपाद्य

17.3.3 लोभ और प्रीति निबंध के आधार पर शुक्ल जी की निबंध शैली

स्वयं आकलन प्रश्न

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्दावली

17.6 स्वयं आकलन

17.7 संदर्भित पुस्तकें

17.8 सात्रिक प्रश्न


## 17.1 भूमिका

इकाई सोलह में हमने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के जीवन परिचय के बारे में गहनता के साथ अध्ययन किया और आगामी इकाई सत्रह में हम लोभ और प्रीति निबंध का पाठपरक अध्ययन करेंगे कि निबंध का सार, प्रतिपाद्य, संरचना शिल्प और निबंध शैली क्या है, उसके बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 17.2 उद्देश्य

इकाई सत्रह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. 'लोभ और प्रीति' कैसा निबंध है ?
2. 'लोभ और प्रीति' का सार का क्या है ?
3 'लोभ और प्रीति' निबंध का पतिपाद्य क्या है ?
4. 'लोभ और प्रीति' निबंध का शिल्प क्या है ?
5. 'लोभ और प्रीति' निबंध की निबंध शैली क्या है ?

## 17.3 लोभ और प्रीति : पाठपरक अध्ययन

रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित निबंध लोभ और प्रीति में भावों का विश्लेषण युग्म रूप में किया गया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि लोभ में भौतिक सिद्धि का महत्व होता है और प्रीति में सात्विकता का। लोभ का प्रथम संवेदनात्मक अवयव आनन्द का अनुभव है। जब लोभ व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित हो जाता है तो प्रेम कहलाता है। जब तक व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूरा परिचय न मिले तब तक प्रीति लोभ, की श्रेणी से ऊँचा नही उठता। किसी वस्तु के अभाव अथवा अभाव की कल्पना के बिना लोभ की सम्भावना नहीं होती। इसी से प्राप्त दशा में सुखात्मक और अप्राप्त दशा में दुःखात्मक ये दोनों पक्ष लोभ में रहते हैं।

"विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ ही वह सात्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं। लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषान्मुख। कहीं कोई अच्छी चीज़ सुनकर उसे प्राप्त करने के

लिए दौड़ निकलना लोभ है, किन्तु किसी वस्तु से विशेष लगाव हो जाना चाहे उससे भी सुन्दर वस्तुएं सामने क्यों न आएं, उसी पर जमें रहना प्रेम है। लोभ से किसी रूचिकर वस्तु के सुख का अनुभव होता है, अतः लोभ आनन्दमूलक भाव है।"

रूचिकर वस्तु की इच्छा दो प्रकार की होती है –

1. प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा।

2. दूर न करने या नष्ट न होने देने की इच्छा।

'वास्तव में वह लोभ धन्य है जिससे किसी के लोभ का विरोध नहीं और लोभ की जो वस्तु अपने सब लोभियों को एक–दूसरे का लोभी बनाए रहती है वह भी परम पूज्य है।' गृह–प्रेम, देश–प्रेम, जाति–प्रेम, विश्व–प्रेम इसी पवित्र लोभ के रूप हैं। घर के प्रेमी का भी विरोध दूसरे घरवालों से हो सकता है, इसी प्रकार देश प्रेमी का दूसरे देश वालों से, किन्तु "जिनकी आत्मा समस्त भेदभाव भेदकर अत्यंत उत्कर्ष पर पहुंची हुई होती है और वे सारे संसार की रक्षा चाहते हैं। ऐसे लोग विरोध के परे होते हैं। सच्चे लोभ में वस्तु की रक्षा का ध्यान रहता है। परंतु यदि संकुचित रूप में देखा जाए तो धन–लोभ से ही सम्बंधित है। क्योंकि जीवन–निर्वाह के कष्ट–निवारण के लिए जो धन का लोभ करते हैं, उसे लोभी नहीं कहा जा सकता।

"जिन्हें पेटभर अन्न नहीं मिलता, जो शीत और ताप से अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकते, उन्हें जो लोभी कहें, वे बड़े लोभी और बडे क्रूर हैं।"

रामचन्द्र शुक्ल जी ने लोभ के दो उग्र लक्षण बताए हैं–

**1. असन्तोष**

**2. अन्य वृतियों का दमन।**

धन का लोभ जब मानसिक रोग बन जाता है तब प्राप्ति होने पर भी मनुष्य और प्राप्ति के लोभ में फँसा रहता है। वह असंतोषी बन जाता है प्राप्त धन के सुख–आनन्द से विमुख रहता है।

"असन्तोष अभाव कल्पना से उत्पन्न दुःख है। अतः जिस किसी में यह अभाव कल्पना स्वाभाविक हो जाती है, सुख से उसका नाता सब दिन के लिए टूट जाता है।" पक्के लोभी लक्ष्य–भ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं। क्योंकि क्रोध, करूणा आदि वृतियां पक्के लोभियों को नहीं डिगा सकती।

रामचन्द्र शुक्ल जी मूल रूप में लोभ और प्रेम दोनों को एक मानते हैं। अंग्रेजी शब्द 'लव' सैक्सन लुफु और लैटिन के लुबेत आदि शब्दों का सम्बंध संस्कृत की 'लुभ' धातु से जोड़ते हुए वे इस बात की पुष्टि करते हैं। पर साधारण बोलचाल में वस्तु के प्रतिमन की ललक को लोभ और व्यक्ति के प्रति ललक को प्रेम कहा जाता है।

मनुष्य का मनुष्य के साथ जितना आन्तरिक गूढ़ और व्यापक प्रेम हो सकता है, उतना किसी वस्तु के साथ नही। वस्तु प्रेम एकांगी होता है। व्यक्ति के प्रेम का पूर्ण विकास तभी होता है जब दो ह्रदय एक दूसरे की ओर खिंचते हुए मिल जाते हैं। वस्तु प्रेम में ह्रदय–मिलन की बात कहां हो सकती है। दो ह्रदयों के योग से जीवन में एक नया रस, एक अद्भुत सजीवता आ जाती है। प्रेम दो रूपों में होता है –

**1. ऐकान्तिक 2. लोकबद्ध।**

**1. ऐकान्तिक** प्रेम में कर्मक्षेत्र से दूर दो व्यक्तियों का ही संसर्ग रहता है। इसमें प्रिय–पक्ष का प्रबल राग जीवन के अन्य पक्षों से विराग की भावना लाता है। 'भक्ति' में ऐसा ही ऐकान्तिक प्रेम रहता है। 'फारसी साहित्य' तथा गोपियों का ऐसा ही ऐकान्तिक प्रेम है।

**2. लोकबद्ध** प्रेम में जीवन यात्रा का पथ विस्तृत करता है। भारतीय प्रबंध काव्यों मे इसी जीवन बद्ध प्रेम का चित्रण किया गया है। राम और सीता का प्रेम महलों तक सीमित न होकर जीवन के विस्तृत कर्मक्षेत्र में दिखाई देने वाला है।

प्रेम कभी तो दोनों ओर होता है, कभी एक में ही उत्पन्न होता है, फिर उसके प्रभाव से दूसरे में होता है, कभी–कभी एक ही में रह जाता है।

लोभ और प्रीति दोनों मनोभावों का विस्तृत व्याख्या के पश्चात यही कहा जा सकता है कि यह ऐसा भाव है जिसकी व्यंजना हँसकर भी की जाती है और रो कर भी; जिसके व्यंजक दीर्घ निःश्वास और अश्रु भी होते हैं तथा हर्षपुलक और उछलकूद भी। इनके विस्तृत शासन के भीतर आनंदात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार के मनोविकार आ जाते हैं। मनुष्य की अंतवृतियों पर लोभ या प्रेम के शासन का यही दीर्घ विस्तार देखकर लोगों ने श्रृंगार को 'रसराज' कहा है।

**लोभ और प्रीति निबंध**

जिस प्रकार सुख या आनंद देनेवाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति, सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जब पड़े, लोभ कहते हैं। दूसरे की वस्तु का लोभ करके उसे लोग लेना चाहते हैं, अपनी वस्तु का लोभ करके उसे लोग देना या नष्ट होने देना नहीं चाहते। प्राप्य या प्राप्त सुख के अभाव या अभाव कल्पना के बिना लोभ की अभिव्यक्ति नहीं होती। अतः इसके सुखात्मक और दुःखात्मक दोनों पक्ष हैं। जब लोभ अप्राप्य के लिए होता है तब तो दुःख स्पष्ट ही रहता है। प्राप्य के संबंध ा में दुःख का अंग निहित रहता है और अभाव के निश्चय या आशंका मात्र पर व्यक्त हो जाता है। कोई सुखद वस्तु पास में रहने पर भी मन में इस इच्छा का बीज रहता है कि उसका अभाव न हो। पर अभाव का जब तक ध्यान नहीं होता तब तक इस वासना का कहीं पता नहीं रहता। हम बैठे बैठे किसी वस्तु का आनंद ले रहे हैं। इसी बीच में कोई आकर उस वस्तु को ले जाना चाहता है; तब हम उससे कुछ व्यग्र होकर कहते हैं 'अभी रहने दो।' इसके पहले कोरे आनंद के अभाव में इच्छा का कहीं पता न था कि वह वस्तु हटाई न जाए।

विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है, जिसे प्रीति या प्रेम कहते है। जहाँ लोभ सामान्य या जाति के प्रति होता है वहाँ वह लोभ ही रहता है, जहाँ लोभ सामान्य या जाति के प्रति होता है वहाँ वह लोभ ही रहता है, जहाँ पर किसी जाति के एक ही विशेष व्यक्ति के प्रति होता है वहाँ 'रूचि' या 'प्रीति' का पद प्राप्त करता है। लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख। कहीं कोई अच्छी चीज सुनकर दौड़ पड़ना लोभ है। किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृति न हटे, रूचि या प्रेम है। किसी स्त्री या पुरूष के रूप की प्रशंसा सुनते ही पहला भाव लोभ का होगा। किसी को हमने बहुत सुंदर देखा और लुभा गए, उसके पीछे दूसरे को उससे भी सुंदर देखा तो उस पर लुभा गए। जब तक प्रवृति का यह व्यभिचार रहेगा, तब तक हम रूप लोभी ही माने जाएंगे। जब हमारा लोभ किसी एक ही व्यक्ति पर स्थिर हो जाएगा, हमारी वृति, एकनिष्ठ हो जाएगी, तब हम प्रेमी कहे जाने के अधिकारी होंगे, पर साधारणतः मन की ललक यदि वस्तु के प्रति है तो जो लोभ और किसी प्राणी या मनुष्य के प्रति होती है वह प्रीति कहलाती है।

लोभ का प्रथम संवेदनात्मक अवयय है किसी वस्तु का बहुत अच्छा लगना, उससे बहुत सुख या आनंद का अनुभव होना। अतः वह आनंदस्वरूप है। इसी से किसी अच्छी वस्तु को देखकर लुभा जाना कहा जाता है। पर केवल इस अवस्था में लोभ की पूरी अभिव्यक्ति नहीं होती। कोई वस्तु हमें बहुत अच्छी लगी, किसी वस्तु से हमें बहुत सुख या आनंद मिला, इतने ही पर दुनिया में यह नहीं कहा जाता कि हमने लोभ किया। जब संवेदनात्मक अवयव के साथ इच्छात्मक अवयव का संयोग होगा अर्थात् जब उस वस्तु को प्राप्त करने की, दूर न करने की, नष्ट न होने देने की इच्छा प्रकट होगी तभी हमारा लोभ लोगों पर खुलेगा। इच्छा लोभ या प्रीति का ऐसा आवश्यक अंग है कि यदि किसी को कोई बहुत अच्छा और प्रिय लगता है तो लोग कहते हैं कि 'वह उसे चाहता है।'

भूखे रहने पर सबको पेड़ा अच्छा लगता है पर चौबेजी पेट भर भोजन के ऊपर भी पेड़े पर हाथ फेरते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि चौबेजी को मिष्ठान से अधिक रूचि है। यदि अभिरूचि भी लोभ की चेष्टाएं उत्पन्न करती हैं। इंद्रियों के विषय भेद से अभिरूचि के विषय भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं। कमल का फूल और रमणी का सुंदर मुख अच्छा लगता है। वीणा की तान और अपनी तारीफ अच्छी लगती है, जूही और केसर की गंध अच्छी लगती है, रबड़ी और मालपुआ अच्छा लगता है, मुलायम गद्दा अच्छा लगता है। ये सब वस्तुएं तो आपको आनंद देती हैं, इससे इनकी प्राप्ति की इच्छा बहुत सीधीसादी और स्वाभाविक कही जा सकती है। पर जिससे इन सब वस्तुओं की प्राप्ति सुलभ होती है उसमें चाहे आनंद देनेवाली स्वतः कोई बात न हो पर उसकी प्राप्ति की इच्छा होती है, उसका लोभ होता है। रूपये के रूप, रस, गंध आदि में कोई आकर्षण नहीं होता, पर जिस वेग से मनुष्य उसपर टूटते हैं उस वेग से भौरे कमल पर और कौए मांस पर भी न टूटते होंगे। यहाँ तक कि लोभी शब्द से साधारणतः रूपये पैसे का लोभी, धन का लोभी समझा जाता है। पर यह समझ इतनी पुरानी पड़ गई है कि इसकी ओर हमारा ध्यान अब प्रायः नहीं रहता। धन संचय करने में बहुतों का लक्ष्य धन ही रहता है, उससे प्राप्य सुख नहीं। वे बड़े से बड़े सुख के बदले में या कठिन से कठिन कष्ट निवारण के लिए थोड़ा सा धन अलग करना नहीं चाहते। उनके लिए साधन ही साध्य हो जाता है।

स्थिति भेद से प्रिय या अच्छी लगनेवाली वस्तु के संबंध में इच्छा दो प्रकार की होती है –

1. प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा।
2. दूर न करने या नष्ट न होने देने की इच्छा।

प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा भी दो प्रकार की हो सकती है –

1. इतने संपर्क की इच्छा जितना और किसी का न हो।
2. इतने संपर्क की इच्छा जितना सब कोई या बहुत से लोग एक साथ रख सकते हो।

इसमें से प्रथम प्रतिषेद्यात्मक होने के कारण प्रायः विरोधग्रस्त होती है, इससे उसपर समाज का ध्यान अधिक रहता है। कोई वस्तु हमें बहुत अच्छी लगती है, लगा करे, दूसरों को इससे क्या? पर जब हम उस वस्तु की ओर हाथ बढ़ाएँगें या औरों को उसकी ओर हाथ बढ़ाने न देंगे तब बहुत से लोगों का ध्यान हमारे इस कृत्य पर जाएगा जिनमें से कुछ हाथ थामनेवाले और मुँह लटकाने वाले भी निकल सकते हैं। हमारे लोभ की जैसी अच्छी निंदा लोभी कर सकते हैं वैसी और लोग नहीं। माँगने पर पानेवाले और न देनेवाले दोनों इसमें प्रवृत होते हैं। एक कहता है 'वह बड़ा लोभी है, देता नहीं' दूसरा कहता हैं 'वह बड़ा लोभी है, बराबर माँगा करता है'। रहीम दोनों को लोभी, दोनों को बुरा कहते हैं।

**रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं।**
**उनते पहले वे मुए जिन मुख निकसत 'नाहिं'।।**

ऐसा उस समय होता है जब एक ही वस्तु के संबंध में एक ओर तो प्राप्त करने और दूसरी ओर दूर न करने की इच्छा बिंब प्रतिबिंब रूप से दो व्यक्तियों में होती है। इसके अतिरिक्त एक ही वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा यदि संयोग से कई प्राणियों के चित में हुई तो भी विरोध का पूरा विधान होता है। सारांश यह कि दोनों अवस्थाओं में लोभ का लक्ष्य एक होने पर लोभी एक दूसरे को बहुत व्याकुल करते हैं।

प्राप्ति की प्रतिषेधात्मक इच्छा की सदोषता और निर्दोषता लोभ के विषय पर निर्भर रहती है। लोभ के विषय दो प्रकार के होते हैं– सामान्य और विशेष। अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा, अच्छा घर तथा धन, जिससे ये सब वस्तुएँ सुलभ होती है, सबको भाता है, सबको उसकी प्राप्ति की आकांक्षा है। ये लोभ के सामान्य विषय हुए जिन पर प्रायः मनुष्य मात्र का लक्ष्य रहता है, अतः इनके प्रति जो लोभ होता है उसपर बहुत लोगों का ध्यान जाता है। पर यदि किसी को गुलाबजामुन या विशेष बूटी की छींट बहुत अच्छी लगे और वह उसे प्राप्त करना या न

देना चाहे तो उसके इस लोभ पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाएगा और जिसका ध्यान जाएगा भी उन्हें वह खटकेगा नही। ऐसे लोभ को वे रूचि कहेंगे। सबको जिसकी हाय हाय होती है, सब जिसको पाना या रखना चाहते हैं, वह बहुत सू लोगों को एक मैदान में लाकर खड़ा किया करता है जहाँ एक दूसरे की गतिविधि का निरीक्षण और अवरोध बड़ी कड़ी नजर और पूरी मुस्तैदी से होता है।

यदि मनुष्य समाज में सबके लोभ के लक्ष्य भिन्न भिन्न होते तो लोभ को बुरा कहनेवाले कहीं न मिलते। यदि एक साथ रहनेवाले इस आदमियों में से कोई गाय बहुत चाहता, कोई घोड़ा, कोई कपड़ा, कोई ईंट, कोई पत्थर, कोई सोना, कोई चाँदी , कोई ताबाँ; और इन वस्तुओं में से किसी को शेष सब वस्तुओं को प्राप्त कराने की कृत्रिम शक्ति न दी जाती, तो एक के लोभ से दूसरे को कोई कष्ट न पहुँचता और दूसरी बात यह होती कि लोभ का एक बुरा लक्षण जो असंतोष है, उसकी भी एक सीमा हो जाती – कोई कितनी गायें रखता, कितने घोड़े बाँधता, कहाँ तक सोना चाँदी इकट्ठा करता। पर विनिमय की कठिनता दूर करने के लिए मनुष्यों ने कुछ धातुओं में सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराने का कृत्रिम गुण आरोपित किया जिससे मनुष्य मात्र की सांसारिक इच्छा और प्रयत्न का लक्ष्य एक हो गया, सबकी टकटकी टके की ओर लग गई।

लक्ष्य की इस एकता से समाज में एक दूसरे की आँखों में खटकनेवाले की वृद्धि हुई। जब एक ही को चाहनेवाले बहुत से हो गए तब एक ही चाह को दूसरे कहाँ तक पसंद करते हैं? लक्ष्मी की मूर्ति, धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गए, धीरे धीरे यह दशा आई कि जो बातें पारस्परिक प्रेम की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से की जाती थीं वे भी रूपये पैसे की दृष्टि से होने लगीं। आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गई है। पैसे से राज सम्मान की प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति और न्याय की प्राप्ति होती है। जिनके पास कुछ रूपया है बड़े बड़े विद्यालयों में अपने लड़कां को भेज सकते हैं, न्यायालयों में फीस देकर अपने मुकदमें दाखिल कर सकते हैं, अत्यंत भीरू और कायर होकर बहादुर कहला सकते हैं, राजधर्म, आचार्यधर्म, वीरधर्म सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टकाधर्म हो गए। धन की पैठ मनुष्य के सब कार्यक्षेत्रों में करा देने से, उसके प्रभाव को इतना विस्तृत कर देने से, ब्राह्मण धर्म और क्षत्रधर्म का लोप हो गया; केवल वणिग्धर्म रह गया।

व्यापारनीति राजनीति का प्रधान अंग हो गई। बड़े–बड़े राज्य माल की बिक्री के लिए लड़नेवाले सौदागर हो गए। जिस समय क्षात्रधर्म की प्रतिष्ठा थी, एक राज्य दूसरे राज्य पर कभी कभी विजय कीर्ति की कामना से डंके की चोट पर चढ़ाई करता था। अब सदा एक देश दूसरे देशों को चुपचाप दबे पाँव धन हरण करने की ताक में लगा रहता है। इसी से भिन्न–भिन्न राज्यों की परस्पर संबंध समस्या इतनी जटिल हो गई है। कोई कोई देश लोभवश इतना अधिक माल तैयार करते हैं कि उसे किसी देश के गले मढ़ने की फिक्र में दिन रात मरते रहते हैं। जब तक वह व्यापारोन्माद दूर न होगा तब तक इस पृथ्वी पर सुख शांति न होगी। दूर वह अवश्य होगा। क्षात्रधर्म की संसार में एक बार फिर प्रतिष्ठा होगी, चोरी का बदला डकैती से लिया जाएगा।

सामान्य विषयगत प्रतिषेधात्मक लोभ में भी लोभदृष्टि जितनी ही संकुचित होती है, उसके भीतर जितनी ही कम वस्तुएँ आती हैं, उतना ही उसका दोष कम होता है। अच्छे भोजन की सबको चाह होती है। अतः उसे बहुत चाहनेवाला लोभी कहला सकता है, पर अच्छे भेजनों में से यदि किसी को मिठाई की चाह अधिक रहे, तो उसका दोष कम और मिठाइयों में से यदि केवल गुलाबजामुन की अधिक चाह रहे तो और कम क्या कुछ भी न समझा जाएगा। इसी प्रकार जहाँ एक ही वस्तु बहुत प्रकार की रखी हुई है वहाँ भी यदि कोई एक किसी को बहुत पसंद आ जाए और वह उसे लेना चाहे तो उसकी गिनती लोभियों में न होगी। विश्वामित्र को वशिष्ठ की गाय बहुत पसंद आई और वे उसके बदले में बहुत सी गायें देने के लिए तैयार हो गए पर वशिष्ठ ने अपनी गाय नहीं दी। इसके लिए लड़ भिड़कर भी न वशिष्ठ लोभी कहलाए, न विश्वामित्र। इसी प्रकार एक नवाब साहब को बाबू हरिशचंद्र का एक अलबम बहुत पसंद आया था। ये लोभ के विशेष विषय के उदाहरण है। इनके प्रति जो लोभ होता है उसके अवसर इतने कम होते हैं कि उनके स्वभाव या अधिक अभ्यास का अनुमान नहीं किया जा सकता। पर किसी की अच्छी चीज देखते ही जिनके मुँह में पानी आ जाता है, बराबर खरी खोटी सुना करते हैं।

एक लोभ से दूसरे लोभ का निवारण भी होता है जिससे लोभी में अन्य वस्तुओं के त्याग का साहस आता है। विशेष विषयगत लोभ यदि बहुत प्रबल और सच्चा हुआ तो लोभी के त्याग का विस्तार बहुत बड़ा होता है। लोभ तो उसे एक विशेष और निर्दिष्ट वस्तु से है अतः उसके अतिरिक्त अन्य अनेक वस्तुओं का त्याग वह उसके लिए कर सकता है। विश्वामित्र एक गाय के लिए अपना सारा राजपाट देने को तैयार हो गए थे। अन्य का त्याग अनन्य और सच्चे लोभ की पहचान है।

यहाँ तक तो प्राप्ति की प्रतिषेधात्मक इच्छावाले लोभ की बात हुई जिसका प्रायः विरोध होता है। अब प्राप्ति की उस इच्छा का विचार करता हूँ जिसे एक ही वस्तु के संबंध में बहुत से लोग बिना किसी विरोध के रख सकते है। जिस लोभ से दूसरे को कोई बाधा या कष्ट पहुँचता है उसी को पहले एक प्रायः जिसे बाधा या कष्ट होता है – बुरा कहता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा, इसी प्रकार बहुत से बुरा कहनेवाले हो जाते हैं। सारांश यह कि जो लोग दूसरे की सुख शांति या स्वच्छंदता के बाधक होते हैं, अधिकतर वही निंद्य समझे जाते हैं। उपवन की शोभा सबको लुभाती है। यदि कोई नित्य किसी के बगीचे में जाकर टहला करे तो उकसा क्या जाता है? यदि हम किसी वस्तु पर लुभाकर उससे उतना ही संपर्क रखना चाहते हैं जितना सब लोग एक साथ रख सकते हैं, तो हमारा लोभ किसी की आँखों में नहीं खटक सकता। बगीचे को आँख से एक साथ बहुत लोग देख सकते हैं, पर उसमें के फल नहीं खा सकते। जहाँ देखने का भी दाम लगता है या कुछ आदमियों का देखना बिना बंद किए देखा नहीं जा सकता, वहाँ दृष्टि संपर्क की इच्छा भी मुश्किल में डाल देती हैं । पर जहाँ एक इच्छा दूसरे की इच्छा का बाधक न होकर साधक होती है, वहाँ एक ही वस्तु का लोभ रखनेवाले बहुत से लोग बड़े सद्भाव के साथ रहते हैं। लुटेरे या डाकू इसी प्रकार दलबद्ध होकर काम करते हैं।

किसी को कोई स्थान बहुत प्रिय हो जाता है और वह हानि और कष्ट उठाकर भी वहाँ से नहीं जाना चाहता। हम कह सकते हैं कि उसे उस स्थान का पूरा लोभ है। जन्मभूमि का प्रेम, स्वदेशप्रेम आदि वास्तव में अंतःकरण का कोई भाव है तो स्थानक  लोभ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस लोभ के लक्षणों से शून्य देशप्रेम कोरी बकवाद या फैशन के लिए गढ़ा हुआ शब्द है। यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाहभरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आँसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं श्सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो आँख भर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं झाँकतें कि किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि इस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देशप्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि , 'भाइयों! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा? जिनके सुख दुःख के तुम कभी साथी न हुए उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह समझते नहीं बनता। उनसे कोसों दूर बैठे बैठे, पड़े पड़े या खड़े–खड़े, तुम विलायती बोली में अर्थशास्त्र की दुहाई दिया करो, पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो। प्रेम हिसाब किताब की बात नहीं। हिसाब किताब से देश की दशा का ज्ञान मात्र हो सकता है। हित चिंतन और हित साधन की प्रवृति इस ज्ञान से भिन्न है। वह मन के वेग पर निर्भर है, उसका संबंध लोभ या प्रेम से है जिसके बिना आवश्यक त्याग का उत्साह हो ही नहीं सकता। जिसे ब्रज की भूमि से प्रेम होगा वह इस प्रकार कहेगा –

**नैनन सों रसखान जबै ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।**
**केतिक ही कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर बरौं।।**

रसखान तो किसी की 'लकुटी अरू कामरिया' पर तीनों पुरों का राजसिंहासन तक त्यागने को तैयार थे, पर देशप्रेम की दुहाई देनेवालों में से कितने अपने किसी थके माँदे भाई के फटे पुराने कपड़ों और धूल भरे पैरों पर रीझकर या कम से कम खीझकर, बिना मन मैला किए कमरे की फर्श भी मैली होने देंगे? मोटे आदमियों! तुम जरा सा दुबले हो जाते–अपने अंदेशे से सही–तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।

अब पूछिए कि जिनमें यह देशप्रेम नहीं है उनमें वह किसी प्रकार हो भी सकता है? हाँ, हो सकता है– परिचय से, सान्निध्य से। जिस प्रकार लोभ से सान्निध्य की इच्छा उत्पन्न होती है उसी प्रकार सान्निध्य से भी लोभ या प्रेम की प्रतिष्ठा होती है। जिनके बीच हम रहते हैं, जिन्हें हम बराबर आँखों से देखते हैं, जिनकी बातें हम बराबर सुनते रहते हैं, जिनका हमारा हर घड़ी का साथ हो जाता है; सारांश यह है कि जिनके सान्निध्य का हमें अभ्यास पड़ जाता है, उनके प्रति लोभ या राग हो जाता है। जिस स्थान पर कोई बहुत दिनों तक रह जाता है उसे छोड़ते हुए दुःख होता है। पशु और बालक भी जिनके साथ्ज्ञ अधिक रहते हैं उन्हें परच जाते हैं। यह 'परचना' परिचय से निकला है। परिचय प्रेम का प्रवर्तक है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। यदि देशप्रेम के लिए हृदय में जगह करनी है तो देश के स्वरूप से परिचित और अभ्यस्त हो जाओ। बाहर निकलो तो आँखें खोलकर देखो कि खेत कैसे लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच से कैसे बह रहे हैं, टेसू के फूलों से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, चौपायों के झुंड चरते हैं, चरवाहे तान लड़ा रहे हैं अमराइयों के बीच में गाँव झांक रहें हैं। उनमें घुसो, देखो क्या हो रहा है। जो मिले उनसे दो दो बाते करो; उनके साथ किसी पेड़ की छाया के नीचे घड़ी आध घड़ी बैठ जाओ और समझो कि ये सब हमारे है। इस प्रकार जब देश का रूप तुम्हारी आँखों में समा जाएगा; तुम उसके अंगप्रत्यंग से परिचित हो जाओगे, तब तुम्हारे अंतःकरण में इस इच्छा का उदय होगा कि वह हमसे कभी न छूटे; वह सदा हरा भरा और फूला फला रहे; उसके धन धान्य की वृद्धि हो, उसके सब प्राणी सुखी रहे। यह तो वर्तमान प्रेमसूत्र हुआ। अतीत की ओर दृष्टि फैलाओं। राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, विक्रम, कालिदास, भवभूति इत्यादि का स्मरण करो जिससे यह सब नाम तुम्हारे हो जाएँ। इनके नाते भी वह भूमि और इस भूमि के निवासी तुम्हें प्रिय होंगे।

पर आजकल इस प्रकार का परिचय बाबुओं की लज्जा का एक विषय हो रहा है। वे देश के स्वरूप से अनजान रहने या बनने में अपनी बड़ी शान समझते हैं। मैं अपने एक लखनवी दोस्त के साथ साँची का स्तूप देखने गया। यह स्तूप एक बहुत सुंदर छोटी सी पहाड़ी के ऊपर है, नीचे एक छोटा सा जंगल है जिसमें महुए के पेड़ भी बहुत से हैं। संयोग से उन दिनो पुरातत्व विभाग का कैंप पड़ा हुआ था। रात हो जाने से हम लोग उस दिन स्तूप नहीं देख सके। सबेरे देखने का विचार करके नीचे उतर रहे थे। वसंत का समय था। महुए चारों ओर टपक रहे थे। मेरे मुँह से निकला – "महुओं की कैसी मीठी महक आ रही है।" इस पर लखनवी महाशय ने मुझे रोककर कहा, "यहाँ महुए सहुए का नाम न लीजिए, लोग देहाती समझेंगे।" मैं चुप हो गया, समझ गया कि महुए का नाम जानने से बाबूपन में बड़ा भारी बट्टा लगता है।

आरंभ में ही कहा जा चुका है कि प्रवृति भेद से प्रिय वस्तु के संबंध में इच्छा दो प्रकार की होती है– प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा तथा दूर न करने या नष्ट न होने देने की इच्छा। प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा का विचार तो हो चुका, अब रक्षा की इच्छा का अन्वेषण करना है। रक्षा की इच्छा भी दो प्रकार की होती है–

1. स्वायत रक्षा की इच्छा अर्थात् अपने अधिकार में रखने की इच्छा।
2. स्व निरपेक्ष रक्षा की इच्छा अर्थात् केवल बने रहने देने की इच्छा।

स्वायत रखने की इच्छा अर्थात् केवल बने रहने की वासना से संबद्ध रहती है। इससे वह कभी लोगों को खटकती है और लोग उसका विरोध करते हैं। कोई बहुत मीठे आम का पेड़ है जिसका फल सब लोग खाते हैं और जिसकी रखवाली सब लोग करते हैं। यदि उनमें से कोई एक अकेले उसकी रखवाली करने चले और किसी को पास न आने दे, तो सब लोग मिलकर विरोध करेंगे। पर कभी कभी स्वायत रखने की इच्छा अन्य द्वारा यथेष्ट रक्षा के उस अविश्वास के कारण होती है जो लोभ या प्रीति की अधिकता से उत्पन्न होता है। ऐसी दशा में यदि संरक्ष्य वस्तु के उपयोग या उपभोग आदि से औरों को कोई बाधा नहीं पहुँचती है तो किसी एक का उसे अपनी रक्षा में रखना दूसरे को बुरा नहीं लगता।

यदि लोभ की वस्तु ऐसी है जिससे सबको सुख और आनंद है तो श्उसपर जितना ही अधिक ध्यान रहेगा, रक्षा के भाव की एकता के कारण परस्पर मेल की उतनी ही प्रवृति होगी। यदि इस आदमियों में से सबकी यह इच्छा है कि कोई मंदिर बना रहे; गिरने पड़ने न पाए अथवा और अधिक उन्नत और सुसज्जित हो, तो यह सम्मिलित इच्छा ऐक्य सूत्र होगी। मिलकर कोई कार्य करने से उसका साधन अधिक या सुगम होता है, यह बतलाना 'पर उपदेश कुशल' नीतिज्ञो का काम है, मेरे विचार का विषय नहीं। मेरा उद्देश्य तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृतियों की छानबीन है जो निश्चयात्मिका वृति से भिन्न है। मुझे तो यह कहना है कि इन इन अवस्थाओं में मेल की प्रवृति होती है। अब मेल से क्या क्या लाभ होते हैं, यह तो न जाने कितने झगड़ालू बताते हैं और न जाने कितने लोग सुनकर झगड़ा करते हैं

लोभ का सबसे प्रशस्त रूप वह है जो रक्षा मात्र की इच्छा का प्रवर्तक होता है, जो मन में यही वासना उत्पन्न करता है कि काई चीज़ बनी रहे, चाहे वह हमारे किसी उपयोग में आए या न आएं इस लोभ में दोष का लेश उसी अवस्था में आ सकता है जबकि वह वस्तु ऐसी हो जिससे किसी को कोई बाधा या हानि पहुँचती हो। कोई सुंदर कृष्णसार मृग नित्य आकर खेती की हानि किया करता है। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसकी रक्षा चाहनेवाला यदि बराबर उसकी रक्षा में प्रवृत रहेगा तो बहुतों से उसकी अनबन हो सकती है। वह लोभ धन्य है जिससे किसी के लोभ का विरोध नहीं और लोभ की जो वस्तु अपने सब लोभियों को एक दूसरे का लोभी बनाए रहती है, वह भी परम पूज्य है। घर का प्रेम, पुर या ग्राम का प्रेम, देश का प्रेम इसी पवित्र लोभ के क्रमशः विस्तृत रूप हैं। मनुष्य के प्रयत्नों की पहुँच बहुत परिमित होती है। अतः जो प्रेम क्षेत्र जितना ही निकटस्थ होगा उसमें उतने ही अधिक प्रयत्न की आवश्यकता होगी और जो जितना ही दूर होगा, प्रयत्नों का उतना ही कम अंश उसके लिए आवश्यक होगा। सबसे अधिक घर की रक्षा का, फिर पुर या ग्राम की रक्षा का और फिर देश की रक्षा का ध्यान जनसाधारण के लिए स्वाभाविक है। पर जिनकी दृष्टि बहुत व्यापक होती है, जिनके अंतःकरण में परार्थ को छोड़ स्वार्थ के लिए अलग जगह नहीं होती वे इस क्रम का विपर्यय कर दिखाते हैं। वे देश की रक्षा के लिए अवसर पड़ने पर घर का लोभ क्या, प्राण तक का लोभ छोड़ देते हैं। पर ऐसे लोग विरले होते हैं । सबसे ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

अब घर का प्रेम, पुर का प्रेम, देश का प्रेम, कहाँ तक विरोध शून्य होता है, यह भी देखिए। इनका अवरोध परिमित होता है– "घर के भीतर, पुर या ग्राम के भीतर" ही उसके होने का निश्चय रहता है। घर के बाहर, पुर या ग्राम के बाहर, देश के बाहर विरोध करनेवाले मिल सकते हैं। एक घर की रक्षा दूसरे घरवालों से, एक पुर की रक्षा दूसरे पुरवालों से और एक देश की रक्षा दूसरे देशवालों से करनी पड़ती हैं।

जिनकी आत्मा समस्त भेदभाव को भेदकर अत्यंत उत्कर्ष पर पहुँची हुई होती है, वे सारे संसार की रक्षा चाहते हैं–जिस स्थिति में भूमंडल के समस्त प्राणी, कीट पतंग से लेकर मनुष्य तक सुखपूर्वक रह सकते हैं, उसके अभिलाषी होते हैं, ऐसे लोग विरोध के परे होते हैं। उनसे जो विरोध रखें वे सारे संसार के विरोधी हैं, वे लोक के कंटक है।

कोई वस्तु हमें बराबर सुख या आनंद देती रहे और कोई वस्तु बनी रहे, इन्हीं दो भावों को लेकर स्वायत की रक्षा की इच्छा और स्वनिरपेक्ष रक्षा की इच्छा ये दो विभाग पहले किए गए है। अतः पहली को यदि हम अपने सुख की रक्षा की इच्छा कहें तो बहुत अनुचित न होगा। वस्तु के दूसरे के पास जाने से या नष्ट हो जाने से हमें सुख का आनंद न मिल सकेगा, इसी से हम उसकी रक्षा के लिए व्यग्र होते हैं। यदि ऐसी वस्तु को कोई उठाए लिये जाता हो और वह बीच में नष्ट हो जाए, तो हमें दुःख न होगा; क्योंकि जब चीज हमारे हाथ से निकल गई, हमें वह सुख या आनंद दे नहीं सकती, तब वह चाहे रहे, चाहे नष्ट हो। यहाँ तक कि यदि ले जानेवाले के प्रति हमें क्रोध होगा या ईर्ष्या होगी तब हम प्रसन्न होंगे।

जहाँ वस्तुरक्षा की इच्छा होगी वहाँ यह बात न होगी। हम किसी दशा में उस वस्तु का नाश न चाहेंगे। किसी पुराने काजी के पास दो स्त्रियाँ एक बच्चे को लेकर लड़ती हुई आईं। एक कहती थी कि बच्चा मेरा है, दूसरी कहती थी मेरा। काजी साहब ने परीक्षा के विचार से कहा – "अच्छा, तुम दोनों को बच्चा काटकर आधा आधा बाँट दिया जाएगा।" इतना सुनते ही दोनों में से एक स्त्री घबराकर बोल उठी – "जाने दीजिए, बच्चा मुझे न चाहिए, उसी को दे दीजिए।"

काजी साहब समझ गए कि बच्चा इसी का है। वह स्त्री बच्चे की माँ थी, अतः उसे उसका सच्चा लोभ था।

अब तब लोभ के संबंध में जो कुछ कहा गया है वह उसका व्यापक अर्थ लेकर। पर जैसा पहले कहा जा चुका है, 'लोभ' शब्द कहने से आजकर प्रायः धनर के लोभ की भावना होती है, प्राप्ति या रक्षा की उस इच्छा की ओर ध्यान जाता है जो जीवन निर्वाह की सामग्रियों के प्रति होती है। धन से अनेक सुखों की प्राप्ति और अनेक कष्टों का निवारण होता है अथवा यों कहिए कि धन के बिना संसार में रहना संभव नही। संसार में जो इतने लोग धन इकट्ठा करते दिखाई देते हैं उनमें से कुछ तो घोर कष्ट के निवारण के लिए, कुछ अधिक सुख की प्राप्ति के लिए, कुछ भविष्य में सुख के अभाव या कष्ट की शंका से और कुछ बिना किसी उद्देश्य भावना के। इनमें प्रथम श्रेणी के लोग तो धन की जितनी प्रबल इच्छा करें, उसके लिए चाहे जितना आतुर हों, लोभी नहीं कहता सकते। धन के बिना जिन्हें पेट भर अन्न नहीं मिलता, जो शीत और ताप से अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकते, उन्हें जो लोभी कहें वे बड़े भारी लोभी और बड़े भारी क्रूर हैं। दूसरी श्रेणी के लोगों पर से लोभ के आरोप की संभावना क्रमशः बढ़ते बढ़ते चौथी श्रेणी के लोगों पर जाकर निश्चय कोटि को पहुँच जाती है। कष्ट निवारण की इच्छा, अधिक सुख प्राप्ति की इच्छा, सुखाभाव या कष्ट की आशंका – ये तीनों धन और उसकी प्राप्ति की इच्छा के बीच ओट या व्यवधान के रूप में रहती हैं। जहाँ इन तीनों में से कोई परदा नहीं रहता वहाँ शुद्ध धन लोभी की जघन्य मूर्ति साक्षात् दिखाई पड़ती है।

धन की कितनी इच्छा लोभ के लक्षणों तक पहुँचती है, इसका निर्णय कठिन है। पर किसी मनोविकार की उचित सीमा का अतिक्रमण प्रायः वहाँ समझा जाता है जहाँ और मनोवृतियाँ दब जाती हैं या उनके लिए बहुत कम स्थान रह जाता है और मनोवेगो के आधिक्य से लोभ के आधिक्य में विशेषता यह होती है कि लोभ स्वविषयान्वेषी होने के कारण अपनी स्थिति और वृद्धि का आधार आप खड़ा करता रहता है, जिससे असंतोष की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ और वृतियों के लिए स्थायी अनवकाश हो जाता है, और मनोविकारों में यह बात नहीं होती। क्रोध को ही लीजिए। क्रोध कुछ बातों पर आता है, पर उन बातों को ढूँढ़ने में प्रवृत नहीं होता। क्रोधी स्वभाव का मनुष्य ऐसी बातों पर चिढ़ जाता है जिनसे और लोग नहीं चिढ़ते पर होने वाले तुरंत करूणा से आर्द्र और लज्जा से पानी पानी हुए भी देखे जाते हैं। क्रोध आदि में अन्य वृतियों का जो बोध हो जाता है वह प्रायः क्षणिक होता है, पर लोभ के कारण लोभी को विषय की ओर बराबर प्रवृत रखता है। धन का लोभी धन पाकर लोभ से निवृत नही हो जाता, या तो भले बुरे का सब विचार छोड़ रक्षा में तत्पर दिखाई देता है या और अधिक प्राप्ति में। इस प्रकार लोभ से अन्यमुख वृतियों का जो स्तंभन होता है, यह स्वभावांतर्गत हो जाता है। अस्तु, स्थूल रूप से उद्धत लोभ के दो उग्र लक्षण कहे जा सकते हैं –

(1) असंतोष

(2) अन्य वृतियों का दमन।

लोभ चाहे जिस वस्तु का हो, जब बहुत बढ़ जाता है तब उस वस्तु की प्राप्ति, सान्निध्य या उपभोग से जी नहीं भरता। मनुष्य चाहता है कि वह बार बार मिले या बराबर मिलता रहे। धन का लोभ जब रोग होकर चित में घर कर लेता है तब प्राप्ति होने पर भी और प्राप्ति की इच्छा बराबर जगी रहती है। जिससे मनुष्य सदा आतुर और प्राप्त के आनंद से विमुख रहता है। जितना नहीं है उतने के पीछे जिनता है उतने से प्रसन्न होने का उसे कभी अवसर ही नहीं मिलता। उसका सारा अंतःकरण सदा अभावमय रहता है। उसके लिए जो है वह भी नहीं।

असंतोष अभाव कल्पना से उत्पन्न दुःख है, अतः जिस किसी में यह अभाव कल्पना स्वाभाविक हो जाती है, सुख से उसका नाता सब दिनों के लिए टूट जाता है। न किसी को देखकर वह प्रसन्न होता है और न उसे देखकर कोई प्रसन्न होता है। इसी से संतोष सात्विक जीवन का एक अंग बतलाया गया है। भक्तवर तुलसीदासजी संतोष वृति की वांछा इस प्रकार करते हैं –

**कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।**
**यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछू न चहौंगो।।**

पर जिस स्थिति से कोई कष्ट या कठिनता हो उससे असंतुष्ट रहना गृहस्थ का धर्म है क्योंकि ऐसे असंतोष से जिस प्रयत्न की प्रेरणा होती है वह एक अच्छे फल के निमित होता है। ऐसे असंतोष का अभाव आलस्यसूचक होता है। पर प्राप्ति की जो इच्छा व्यसन के रूप में होती है उसका निरसन ही ठीक है।

धन का जो लाभ मानसिक व्याधि या व्यसन के रूप में होता है उसका प्रभाव अंतःकरण की शेष वृतियों पर यह होता है कि वे अनभ्यास से कुंठित हो जाती हैं। जो लाभ मान अपमान के भाव को, करूणा और दया के भाव को, न्याय अन्याय के भाव को, यहाँ तक कि अपने कष्ट निवारण या सुखभोग की इच्छा तक को दबा दे, वह मनुष्यता कहाँ तक रहने देगा? जो अनाथ विधवा या सर्वस्वहरण करने के लिए कुर्क अमीन लेकर चढ़ाई करते हैं, जो अभिमानी धनिकों की दुतकार सुनकर त्योरी पर बल नहीं आने देते, जो मिट्‌टी में रूपया गाड़कर न आप खाते और न दूसरो को खाने देते हैं, परिजनों का कष्टक्रंदन सुनकर भी रूपये गिनने में लगे रहते हैं, वे अधमरे होकर जीते हैं। उनका आधा अंतःकरण मारा गया समझिए। जो किसी के लिए नहीं जीते उनका जीना न जीना बराबर है।

लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे, काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान अपनमान में समान भाव रखते हैं। अब और चाहिए क्या? जिससे वे कुछ पाने की आशा रखते हैं वह यदि उन्हें दस गालियाँ भी देता है तो उनकी आकृति पर न रोष का कोई चिन्ह प्रकट होता है और न मन में ग्लानि होती है। न उन्हें मक्खी चूसने में घृणा होती है और न रक्त चूसने में दया। सुंदर से सुंदर रूप देखकर वे अपनी एक कौड़ी भी नहीं भूलते। करूण से करूण स्वर सुनकर वे अपना एक पैस भी किसी के यहाँ नहीं छोड़ते । तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति के सामने हाथ फैलाने में वे लज्जित नहीं होते। क्रोध, दया, घृणा, लज्जा आदि करने से क्या मिलता है कि वे करने जाएँ? जिस बात से उन्हें कुछ मिलता नहीं जबकि उसके लिए उनके मन के किसी कोने में जगह नहीं होती, तब जिस बात से पास का कुछ जाता है, वह बात उन्हें कैसी लगती होगी; यह यों ही समझा जा सकता है। जिस बात में कुछ लगे वह उनके किसी काम की नहीं, चाहे वह कष्ट निवारण हो या सुख प्राप्ति, धर्म हो या न्याय। वे शरीर सुखाते हैं; अच्छे भोजन, अच्छे वस्त्र आदि की आकांक्षा नहीं करते। लोभ के अंकुश से अपनी संपूर्ण इंद्रियों को वश में रखते हैं। लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इंद्रिय निग्रह, तुम्हारा मानापमान समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है।

पक्के लोभी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं। किसी वस्तु को लेने के लिए कई आदमी खींचतान कर रहे हैं।

उनमें से एक क्रोध में आकर उस वस्तु को नष्ट कर देता है। उसे पक्का लोभी नहीं कह सकते, क्योंकि क्रोध ने उसके लोभ को दबा दिया, वह लक्ष्य भ्रष्ट हो गया।

अब एक प्राणी के प्रति दूसरे प्राणी के लोभ का प्रसंग सामने आता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं। यद्यपि किसी व्यक्ति की ओर प्रवृति भी जब तक एकनिष्ठ न हो, लोभी ही कही जा सकती है, पर साधारण बोलचाल में वस्तु के प्रति मन की जो ललक होती है उसे 'लोभ' और किसी व्यक्ति के प्रति जो ललक होती है उसे 'प्रेम' कहते हैं। वस्तु और व्यक्ति के विषय भेद से लोभ के स्वरूप और प्रवृति में बहुत कुछ भेद पड़ जाता है, इससे

व्यक्ति के लोभ को अलग नाम दिया गया है। पर मूल में लोभ और प्रेम दोनों एक ही हैं, इसका पता हमारी भाषा ही देती है। किसी रूपवान या रूपवती को देखकर उसपर 'लुभा जाना' बराबर कहा जाता है। अंगरेजी के प्रेम वाचक शब्द 'लव' सैक्सन के 'लुॅफु' और लैटिन के 'लुबेट' का संबंध संस्कृत के 'लोभ' शब्द या लुभ् धातु से स्पष्ट लक्षित होता है। किसी व्यक्ति का लोभ वस्तु के लोभ से कितना विलक्षण होता है, अब यह देखना चाहिए। विलक्षणता का सबसे बड़ा कारण है दोनो पक्षों में मनस्तत्व का विधान। जो लुब्ध होता है उसके भी हृदय होता है, जिस पर वह लुब्ध होता है उसके भी। अतः किसी व्यक्ति का लोभी उस व्यक्ति से केवल वाह्म संपर्क रखकर ही तुष्ट नहीं हो सकता; उसके हृदय का संपर्क भी चाहता है। अतः मनुष्य का मनुष्य के साथ जितना गूढ़, जटिल और व्यापक संबंध हो सकता है उतना वस्तु के साथ नहीं। वस्तु लोभ के आश्रय और आलंबन इन दो पक्षों में भिनन भिन्न कोटि की सत्ताएँ रहती हैं। पर प्रेम एक ही कोटि की दो सत्ताओं का योग है, इससे कहीं अधिक गूढ़ और पूर्ण होता है।

वस्तु के भीतर लोभी चेतना का कोई विधान नहीं देखता जिस पर प्रभाव डालने का वह प्रयत्न करे। पर प्रेमी प्रिय की अंतवृति पर प्रभाव डालने में तत्पर रहा करता है। प्रभाव डालने की यह वासना प्रेम उत्पन्न होने के साथ ही जगती है और बढ़ती चली जाती है। वस्तु पर लुब्ध होकर कोई उस चिंता में नहीं पड़ता कि उस वस्तु को मालूम हो जाए कि वह उस पर लुब्ध है। पर किसी पर लुब्ध या प्रेमासक्त होते ही प्रेमी इस बात के लिए आतुर होने लगता है कि प्रिय को उसके प्रेम की सूचना मिल जाए। उसे इस बात की चिंता रहती है कि प्रिय को भी उससे प्रेम हो गया है, कम से कम उसके प्रेम का पता लग गया है, या नहीं –

**वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेतु न ठानति हवैहै।**
**बारहिं बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति हवैहै।**
**ठाकुर या मन को परतीति है, जो पै सनेह न मानति हवैहै।**
**आवत हैं नित मेरे लिए इतनो तो विशेष कै जानति हवैहै।।**

इस प्रवृति के मूल में कई बातें दिखाई पड़ती है। पहली बात तो तुष्टि का विधान है। लोभी या प्रेमी सान्निध्य या संपर्क द्वारा तुष्ट होना चाहता है। वस्तु के सान्निध्य या संपर्क के लिए तो वस्तु की ओर से किसी प्रकार की स्वीकृति या प्रयत्न की अपेक्षा नहीं। पर किसी चेतन प्राणी से प्रेम करके कोई उसके सान्निध्य या संपर्क की आशा तब तक नहीं कर सकता जब तक वह उसमें भी सान्निध्य या संपर्क की इच्छा न उत्पन्न कर ले। दूसरी बात यह है कि प्रेम का पूर्ण विकास तभी होता है जब दो हृदय एक दूसरे की ओर क्रमशः खिंचते हुए मिल जाते हैं। इस अंतर्योग के बिना प्रेम की सफलता नहीं मानी जा सकती। अतः प्रिय को अपने प्रेम की सूचना देना उसके मन को अपने मन से मिलाने के लिए न्योता देना है।

अपने प्रेम की सूचना देने के उपरांत प्रेमी प्रिय के हृदय में अपनी ओर कुछ भावों की प्रतिष्ठा चाहता है। पहले कहा जा चुका है कि सहसा उत्पन्न लोभ या प्रीति का प्रथम संवेदनात्मक अवयव है 'अच्छा लगना'। वस्तु के संबंध में तो उसी वस्तु का अच्छा लगना काफी होता है। लोभियों को इस फेर में नहीं पड़ना पड़ता कि कोई वस्तु उन्हें अच्छी लग रही है उसे वे भी अच्छे लगें पर प्रेमी यह चाहने लगता है कि जिस प्रकार प्रिय मुझे अच्छा लगता है उसी प्रकार मैं भी प्रिय को अच्छा लगूँ। वह अपना सारा अच्छापन किसी न किसी बहाने उसके सामने रखना चाहता है। यह बराबर देखने में आता है कि जब कभी किसी नवयुवक का चित्त किसी युवती की ओर आकर्षित5 होता है तब ऐसे स्थानों पर जाते समय जहाँ उसके दिखाई पड़ने की संभावना होती है, उसका ध्यान कपड़े लत्ते की सफाई और सजावट की ओर कुछ अधिक हो जाता है। सामने होने पर बातचीत और चेष्टा में भी एक खास ढब देखा जाता है। अवसर पड़ने पर चित्त की कोमलता, सुशीलता, वीरता, निपुणता इत्यादि का भी प्रदर्शन होता है। प्रेमी को जिस घड़ी यह पता चलता है कि प्रिय का चित्त भी उसकी ओर थोड़ा बहुत खिंचा है उसी घड़ी यह से वह लोभ की ऊपरी सतह से और गहरे में जाकर प्रेम के आनंद लोक में मग्न हो जाता है।

एक दूसरे की ओर आकर्षित दो हृदयों के योग से जीवन मे एक नया रस उत्पन्न हो जाता है या दूनी सजीवता आ जाती है। आनंद की संभावना भी बहुत अधिक बढ़ जाती है और दुःख की भी। प्रिय के हृदय का आनंद प्रेमी के हृदय का अनंद हो जाता है। अतः एक ओर तो प्रिय के आनंद का मेल हो जाने से प्रेमी संसार की नाना वस्तुओं में कई अधिक आनंद का अनुभव करने लगता है; दूरी ओर प्रिय के अभाव में उन्हीं वस्तुओं में उसके लिए आनंद बहुत कम या कुछ भी नहीं रह जाता है। वियोग की दशा में तो वे वस्तुएँ उलटा दुःख देने लगती हैं। होते होते यहाँ तक होता है कि प्रेमी के लिए प्रिय के आनंद से अलग आनंद रह ही नहीं जाता। प्रिय के आनंद में ही वह अपना आनंद ढूँढा करता है। दो हृदयों की यह अभिन्नता अखिल जीवन की एकता के अनुभव पथ का द्वार है, प्रेम का यह एक रहस्पूर्ण महत्त्व है।

प्रेम का अभाव एकांत भी होता है और लोक जीवन के नाना क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ता है। एकांत प्रभाव उस अंतर्मुख प्रेम में देखा जाता है जो प्रेमी को लोक के कर्म क्षेत्र से खींचकर केवल दो प्राणियों के एक छोटे से संसार में बंद कर देता है। उसका उठना बैठना, चलना फिरना, मरना जीना, सब उसी घेरे के भीतर होताहै। वह उस घेरे के बाहर कोई प्रभाव उत्पन्न करने के उद्‌देश्य से कुछ भी नहीं करता। उसमें जो साहस, धीरता, दृढ़ता, कष्ट सहिष्णुता आदि दिखाई देती है। वह प्रेम मार्ग के बीच प्रेमोन्माद के रूप में, लोक के बीच कर्तव्य के रूप में नहीं। सारांश यह कि इस प्रकार के प्रेम का क्षेत्र सामाजिक और पारिवारिक जीवन से विच्छिन्न होता है। उसमें प्रियपक्ष का प्रबल राग जीवन के अन्य सब पक्षों से पूर्ण विराग की प्रतिष्ठा कर देता है। फारसी के साहित्य में ऐसे ही ऐकांतिक और लोक वाह्य प्रेम की प्रधानता है। भारतीय साहित्य में गोपियों के प्रेम को प्रायः यही स्वरूप दिया गया है। भक्तिमार्ग में प्रायः यही ऐकांतिक और अनन्य प्रेम लिया गया है। क्योंकि यह एक ऐसा राग है जिसके प्रभाव से विराग की साधना आप से आप, बिना किसी मानसिक प्रयत्न के हो जाती है।

प्रेम का दूसरा स्वरूप वह है जो अपना मधुर और अनुरंजनकारी प्रकाश जीवन यात्रा के नाना पथों पर फेंकता है। प्रेमी जगत के बीच अपने अस्तित्व की रमणीयता का अनुभव आप भी करता है। और अपने प्रिय को भी कराना चाहता है। प्रेम के दिव्य प्रभाव से उसे अपने आसपास चारों ओर सौंदर्य की आभा फैली दिखाई देती है, जिसके बीच वह बड़े उत्साह और प्रफुल्लता के साथ अपना कर्म सौंदर्य प्रदर्शित करता है। वह प्रिय को अपने समग्र जीवन का सौंदर्य जगत के बीच दिखाना चाहता है। यह प्रवृति इस बात का पूरा संकेत करती है कि मनुष्य की अंतःप्रवृति में जाकर प्रेम का जो विकास हुआ है वह सृष्टि के बीच सौंदर्य विधान की प्रेरणा करनेवाले एक दिव्य शक्ति के रूप में हुआ है। मनुष्य का प्रेम सौंदर्य, वस्तु सौंदर्य, कर्म सौंदर्य, वाक् सौंदर्य, भाव सौदर्य सब देखना और दिखाना चाहता है। वीरता के पुराने जमाने में युवक योद्धा यह समझकर कि गढ़ी की ऊँची अट्‌टालिका के गवाक्षों से हमारी प्रयसी झाँकती होगी, किस सौंदर्य भावनापूर्ण उमंग के साथ रणक्षेत्र में उतरता था। कर्म का सबसे अधिक विकट क्षेत्र युद्ध है। इससे आर्य जाति के वीरकाल के काव्यों में श्रृंगार और वीर का अत्यंत मनोहर समन्वय पाया जाता है। जिस प्रकार योरपीय साहित्य में वीर धर्म का एक युग रहा है उसी प्रकार हमारे हिन्दी साहित्य में भी। उस काल की कविता का प्रसंग अधिकतर 'युद्ध और प्रेम' ही पाया जाता है।

भारतीय प्रबंध काव्यों की मूल प्रवृति लोक जीवन के संश्लिष्ट प्रेम के वर्णन की ओर ही रही। आदि कवि वाल्मीकि ने राम और सीता के प्रेम का विकास मिथिला या अयोध्या के महलों और बगीचों में न दिखाकर दंडकारण्य के विस्तृत कर्मक्षेत्र के बीच दिखाया है। उनका प्रेम जीवनयात्रा के मार्ग में माधुर्य फैलानेवाला है, उससे अलग किसी कोने में चौकड़ी या आहें भरानेवाला नहीं; उसके प्रभाव से वनचर्या में एक अद्‌भुत रमणीयता आ गई है। सारे कँटीले पथ प्रसूनमय हो गए हैं, संपूर्ण कर्मक्षेत्र एक मधुर ज्योति से जगमगा उठा है। कोमलांगी सीता अपने प्रिय पति की विशाल भुजाओं और कंधे के ऊपर निकली हुई धनुष की वक्रकोटि पर मुग्ध निविड़ और निर्जन काननों में निश्शंक विचर रही है। खर दूषण की राक्षसी सेना कोलाहल करती आ रही है। राम कुछ मुस्कराकर एक बार प्रेमभरी दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं, फिर वीरदर्प से राक्षसों की ओर दृष्टि फरेकर अपना

धनुष चढ़ाते है। उस वीरदर्प में कितनी उमंग, कितना उत्साह, कितना माधुर्य रहा होगा। सीताहरण होने पर राम का वियोग जो सामने आता है वह भी चारपाई पर करवटें बदलने वाला नहीं है, समुद्र पार कराकर पृथ्वी का भारत उतारने वाला है।

उस ऐकांतिक प्रेम की अपेक्षा जो प्रेमी को एक घेरे में उसी प्रकार बंद कर देता है जिस प्रकार कोई मर्ज मरीज को एक कोठरी में डाल देता है, हम उस प्रेम का अधिक मान करते हैं जो संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन पथ को रमणीय और सुंदर कर देता है, उसके सारे कर्मक्षेत्र को अपनी ज्योति से जगमगा देता है। जो प्रेम जीवन की नीरसता हटाकर उसमें सरलता ला दे, वह प्रेम धन्य है। जिस प्रेम का रंजनकारी प्रभाव विद्वान् की बुद्धि, कवि की प्रतिभा, चित्रकार की कला, उद्योगी की तत्परता, वीर के उत्साह तक बराबर फैली दिखाई दे उसे हम भगवान का अनुग्रह समझते हैं। भगवद्भक्ति के लिए हम तो प्रेम की यही पद्धति समीचीन मानते हैं। जबकि प्रिय के संबंध से न जाने कितनी वस्तुएँ प्रिय हो जाती है। तब उस परम प्रिय के संबंध से सारा जगत् प्रिय हो सकता है। शुद्ध भक्तिमार्ग में जगत से विरक्ति का स्थान हम ढूँढ़ते हैं और नहीं पाते हैं। भक्ति राग की वह दिव्य भूमि है जिसके भीतर सारा चराचर जगत आ जाता है। जो भक्त इस जगत को ब्रह्म की ही व्यक्त सत्ता या विभूति समझेगा, भगवान के लोकपालक और लोकरंजक स्वरूप पर मुग्ध रहेगा, वह अपने स्नेह, अपनी दया, अपनी सहानुभूति को लोक में और फैलाएगा कि चारों ओर से खींच लेगा? हम तो जगत के बीच हृदय के सम्यक प्रसार में ही भक्ति का प्रकृत लक्षण देखते हैं क्योंकि राम की ओर ले जाने वाला रास्ता इसी संसार से होता हुआ गया है।

जब कोई रामभक्त पुत्र कलत्र, भाई बंधु का राग छोड़ने, कर्मपथ से मुँह मोड़ने और जगत् से नाता तोड़ने का उपदेश देता है तब मेरी समझ जवाब देने लगती है। मेरे देखने में तो वही रामभक्त सा लगता है जो अपने पुत्र कलत्र, भाई बहिन, माता पिता से स्नेह का व्यवहार करता है, रास्तें में चीटियाँ बचाता है, किसी प्राणी का दुःख देख आँसू बहाता हुआ रूक जाता है, किसी दीन पर निष्ठुर अत्याचार होते देख क्रोध से तिलमिलाता हुआ अत्याचारी का हाथ थामने के लिए कूद पड़ता है, बालकों की क्रीड़ा देख विनोद से पूर्ण हो जाता है, लहलहाती हुई हरियाली देख लहलहा उठता है और खिले हुए फुलों को देख खिल जाता है। जो यह सब देख 'मुझसे क्या प्रयोजन?' कहकर विरक्त या उदासीन रहेगा – क्रोध, करूणा, स्नेह, आनंद आदि को पास तक न फटकने देगा – उसे मैं ज्ञानी, ध्यानी, संयमी चाहे तो कहूँ भक्त कदापि न कह सकूँगा। 'राम का नाता' सारे संसार से निभाता हुआ राम से जोड़ने का प्रयत्न करता है। इस संबंध निर्वाह में जो बाधक हो भक्त के लिए वे अवश्य त्याज्य हैं, चाहे वे अपने सुहृदय और स्नेही परिजन ही क्यों न हों, क्योंकि –

**नाते सबै राम के मनियत सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौं।**

ऐकांतिक और लोकबद्ध प्रेम के इन दो स्वरूपों का परिचय हो चुका। अब हम प्रेमी और प्रिय, इन दो पक्षों की पारस्परिक स्थिति पर कुछ विचार करना चाहते है। प्रेम कहीं तो दोनों पक्षों में युगपद होता है अर्थात् आरंभ ही से सम है, कहीं पहले एक में उत्पन्न होकर फिर दूसरे में होता है और कहीं एक ही में उत्पन्न होकर रह जाता है, दूसरे में होता ही नहीं अर्थात् विषम ही रह जाता है। पहले कहा जा चुका है कि किसी के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होते ही प्रेमी उसे अपने प्रेम का परिचय देने के लिए आतुर होता है। यह आतुरता तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा के लिए होती है। जिसके बिना प्रेम सफल नहीं जान पड़ता। तुल्यानुराग के प्रयत्न की भी एक बंधी हुई पद्धति दिखाई पड़ती है।

दूसरों की ओर द्रवित करनेवाली हृदय की दो कोमल वृतियाँ हैं – करूणा और प्रेम। इसमें से प्रेम का पात्र होने के लिए भिन्न भिनन प्रकार की विशिष्टता अपेक्षित होती है। इससे दूसरे के हृदय में प्रेम उत्पन्न कर सकने का निश्चय किसी को जल्दी नहीं हो सकता पर दया का पात्र होने के लिए केवल दुःख या पीड़ा का प्रदर्शन ही पर्याप्त होता है। दया का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। दया मनुष्य मात्र का धर्म है और प्राणी मात्र उसके

अधिकारी हैं। दया यह नहीं देखने जाती कि दुःखी या पीड़ित कौन और कैसा है? इसी से प्रेमी कभी तो एक चेष्टा करता दिखाई पड़ता है कि वह भी प्रिय को अच्छा लगे और कभी ऐसे उपायों का अवलंबन करता है जिससे प्रिय के हृदय में उसके ऊपर दया उत्पन्न हो। दया उत्पन्न करके वह प्रिय के अंतस में प्रेम की भूमिका बाँधना चाहता है। वह समझता है कि दया उत्पन्न होगी तो धीरे धीरे प्रेम भी उत्पन्न हो जाएगा। वह वियोग की अपनी दारूण वेदना प्रिय के कानों तब बराबर पहुँचाता रहता है।

यह न समझना कि प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करने की यह चाह तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा के पूर्व तक ही रहती है। यह प्रेममार्ग की एक सामान्य प्रवृत्ति है जो प्रेमी के हृदय में सदा बनी रहती है। बात यह है कि जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने की ज़रूरत होती है उसी प्रकार बराबर बनाए रखने की भी। प्रेम की रखवाली करने के लिए प्रेमी प्रिय के हृदय में दया को बराबर जगाता रहता है। दया या करूणा का भाव जागृत रखने की इस प्रवृत्ति का प्रकर्ष फारसी या उर्दू की शायरी में विशेष रूप से पाया जाता है। वहाँ प्रेमी जीते जी यार के कूचे में अपनी कब्र बनवाते हैं, उस कूचे के कुत्तों के नाम अपनी हड्डियाँ वक्फ करते हैं और बार–बार मरकर अपना हाल सुनाया करते है। मरण से बढ़कर करूणा का विषय और क्या हो सकता है? शत्रु तक का मरना सुनकर सहानुभूति के एक आध शब्द मुँह से निकल आते हैं। प्रिय के मुख से निकले हुए सहानुभूतिक शब्द सा प्रिय संसार में कोई शब्द नहीं हो सकता। 'बेचारा बहुत अच्छा था' प्रिय के मुँह से इस प्रकार के कुछ शब्दों की संभावना पर ही आशिक लोग अपने मर जाने की कल्पना बड़े बानंद से किया करते हैं। जब कि सहानूभुति के एक शब्द का इतना मोल है तब अश्रु का तो कोई मोल ही नहीं हो सकता, प्राण के बदले में भी वह सस्ता ही जँचेगा। यदि प्रेमी को यह निश्चय हो जाय कि मर जाने पर प्रिय की आँखों में आई हुई आँसू की बूँद वह देख सकेगा तो वह अपना शरीर छोड़ने के लिए तैयार हो सकता है।

यह कहा जा चुका है कि तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा हो जाने पर ही प्रेम को पूर्ण तुष्टि और सफलता प्राप्त होती है। हमारे साहित्य के पुराने आचार्यों ने एक पक्ष की प्रीति को रसाभास के अंतर्गत लिया है। जब तक तुल्यानुराग की संभावना रहती है या प्रिय पक्ष की विरक्ति और उदासीनता का प्रमाण सामने नहीं रहता तब तक रस में त्रुटि नहीं मानी जाती। प्रेमी का तिरस्कार करता हुआ प्रिय जब अन्य में अनुरक्त पाया जात है तब उसकी विरक्ति का पक्का प्रमाण सामने आ जाता है। ऐसी दशा में भी बने रहने वाले प्रेम की चर्चा काव्यों में मिलती है। फारसी और उर्दू की शायरी में आशिकों की अक्सर यह शिकायत रहती है कि "माशूक गैरों से मिला करता है और हमारी ओर ताकता तक नहीं।" कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों की शिकायत भी कुछ इस ढंग की हो गई थी।

रस और रसाभाव की बात छोड़ हमें प्रेम के उस स्वरूप पर विचार करना है जिसमें प्रेमी तो प्रेम में विहवल रहता है और प्रिय उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता या बराबर उसका तिरस्कार करता जाता है। क्या ऐसा प्रेम ही नहीं है? यह नहीं कहा जा सकता। प्रेमी तो प्रेम कर चुका, उसका कोई प्रभाव प्रिय पर पड़े या न पड़े। उसके प्रेम में कोई कसर नहीं। प्रिय यदि उससे प्रेम करके उसकी आत्मा को तुष्ट नहीं करता तो इसमें उसका क्या दोष? तुष्टि का विधान न होने से प्रेम के स्वरूप की पूर्णता में कोई त्रुटि नहीं आ सकती। जहाँ तक ऐसे प्रेम के साथ तुष्टि की कामना या अतृप्ति का लोभ लगा दिखाई पड़ता है वहाँ तक तो उसका उत्कर्ष प्रकट नहीं होता; पर जहाँ आत्मतुष्टि की वासना विरत हो जाती है या पहले ही से नहीं रहती, वहाँ प्रेम का अत्यंत निखरा हुआ निर्मल और विशुद्ध रूप दिखाई पड़ता है। ऐसे प्रेम की अविचल प्रतिष्ठा उच्च भूमि पर होती है जहाँ सामान्य हृदयों की पहुँच नहीं हो सकती। इस उच्च भूमि पर पहुँचा हुआ प्रेमी प्रिय से कुछ भी नहीं चाहता है, केवल यही चाहता है कि प्रिय से नहीं, ईश्वर से – कि हमारा प्रिय बना रहे और हमें ऐसा ही प्रिय रहे इसी उच्च दशा का अनुभव करती हुई सूर की गोपियाँ कहती हैं–

**जहँ जहँ रहौ राज करौ तहँ तहँ लेहु कोटि सिर भार।**
**यह असीस हम देति सूर सुनु 'न्हात खसै जनि बार'।।**

ऐसे प्रेमी के लिए प्रिय की तुष्टि या सुख से अलग अपनी कोई तुष्टि या सुख रह ही नहीं जाता। प्रिय का सुख संतोष ही उसका सुख संतोष हो जाता है। बंकित बाबू की 'दुर्गेशनंदिनी' में आयशा का जगत सिंह पर अनुराग इसी उच्च भूमि पर लाकर छोड़ा गया है। जिस दिन से उसे जगत सिंह और तिलोत्तमा के प्रेम का पता चलता है उसी दिन से वह अपने प्रेम को भौतिक कामनाओं से मुक्त करने लगती है और अंत में तिलोत्तमा के साथ जगत सिंह का विवाह कराकर पूर्ण शांति के साथ प्रेम के विरूद्ध मानस लोक में प्रवेश करती है।

प्रेमी यदि अपने प्रेम का कोई प्रभाव प्रिय पर न देखे तो उसके सामने प्रेम की यही उच्च भूमि दिखाई पड़ती है। सान्निध्य या संपर्क की कामना के त्याग द्वारा वह प्रेम रक्षा और शांति लाभ कर सकता हे। यदि उसमें यह क्षमता न होगी तो प्रतिवर्तन द्वारा घोर मानसिक विप्लव और पतन की आशंका रहेगी, ईर्ष्या आदि बुरे भावों के संचार के लिए रास्ता खुल जाएगा। यहाँ तक कि समय समय पर क्रोध का दौरा और प्रेम का स्थान वैर ले लेगा।

प्रेम काव्यों में प्रायः रूप लोभ ही प्रेम का प्रवर्तक दिखाया जाता है। किसी के उत्कृष्ट रूप गुण पर कोई मुग्ध होता है और उसका प्रेमी बन जाता है। पर प्रेम का एक और कारण, जो रूप गुण से सर्वधा स्वतंत्र और उनकी अपेक्षा अधिक निश्चित प्रभाववाला होता है, साहचर्य है। देशप्रेम के अंतर्गत इसका उल्लेख हो चुका है। किसी अरब को उसकी रेगिस्तानी जन्मभूमि से ले जाकर कश्मीर के हरे भेर मैदान में रख दें तो भी वह अपने देश के वियोग में रोया करेगा। इसी प्रकार जिन मनुष्यों के बीच कोई बचपन से या बहुत दिनों से रहता चला जाता है, उनके प्रति ह्रदय में एक स्थायी प्रेम होता है। इस साहचर्यगत प्रेम में विशेषता यह होती है कि इसका वेग साहचर्य काल के कुछ अवसरों पर ही रहकर व्यक्त होता है पर विच्छेद काल में बराबर उमड़ा रहता है। भाई बहिन, पिता पुत्र, इष्ट मित्र से लेकर चिर परिचित पशु पक्षी और वृक्ष तक का प्रेम इसी ढंग का होता है। रूप गुण की भावना से उत्पन्न प्रेम भी आगे चलकर कुछ दिनों मं यह साहचर्यजन्य स्वरूप प्राप्त करता है। अतः प्रेम के स्वरूप का महत्व बराबर ध्यान मे रहना चाहिए।

लोभ या प्रेम की सबसे बड़े विलक्षणता का उल्लेख करके अब हम यह निबंध समाप्त करते हैं। यही एक ऐसा भाव है जिसकी व्यंजना हँसकर भी की जाती है और रोकर भी; जिसके व्यंजक दीर्घ निःश्वास और अश्रु भी होते हैं तथा हर्षपुलक और उछलकूद भी। इसके विस्तृत शासन के भीतर आनंदात्मक और दुःखात्मक दोनों प्रकार के मनोविकार आ जाते हैं। साहित्य के आचार्यों ने इससे श्रृंगार के दो पक्ष कर दिए हैं – संयोग पक्ष और वियोग पक्ष। कोई और भाव ऐसा नहीं है जो आलंबन के रहने पर तो एक प्रकार की मनोवृतियाँ और चेष्टाएँ उत्पन्न करे और न रहने पर बिलकुल दूसरे प्रकार की।

कुछ और भाव भी लोभ या प्रेम का सा स्थायित्व प्राप्त करते हैं, जैसे – क्रोध बहुत दिनों तक टिका रह जाने पर द्वेष या वैर का रूप धारण करता है और जुगुप्सा, घृणा या विरक्ति का– पर यह विशेषता और किसी में नहीं पाई जाती। मनुष्य की अंतवृत्तियों पर लोभ या प्रेम के शासन का यही दीर्घ विस्तार देखकर लोगों के श्रृंगार को 'रसराज' कहा है।

### लोभ और प्रीति निबंध की तात्विक समीक्षा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक निबंधकार हैं जिन्होंने मनोविकारों को लेकर शोधपरक निबंध लिखें हैं। साहित्यिकता और मनोवैज्ञानिक तथ्यों का सुंदर मेल, शुक्ल जी के निबंधों की विशेषता है। लोभ और प्रीति निबंध में लोभ क्या है, किन तत्वों से बनता है, किन रूपों में प्रकट होता है, प्रीति से उसका सम्बंध क्या है, दोनों में समानता, अंतर, देशप्रेम, सांसारिक प्रेम इन सभी विषयों पर विस्तार से लिखा है। विषय

प्रधान मनोवैज्ञानिक निबंध में शुक्ल जी का ध्यान मुख्यतः विषय के मार्मिक प्रतिपादन की ओर रहा है। तात्विक समीक्षा के अन्तर्गत विषय या उद्देश्य, विचार तत्व, भाषा–शैली की विशिष्टता, भाव–विषयानुरूप सरल, सरस साहित्यिक शैली प्रयोग को आधार बनाया गया है।

**1. उद्देश्य या विषय** – निबंध हमेशा किसी एक विषय या विषय–खण्ड़ पर लिखा जाता है क्योंकि जिस विषय पर लेखक लिखना चाहता है, उससे संबंधित रूपरेखा सम्भवतः उसके मन में बन चुकी होती है, किस उद्देश्य के लिए वह उसे नि+बन्ध करेगा, ऐसा उसके निबंध को पढ़कर पाठक को आत्मसात हो जाता है। जैसे लोभ और प्रीति भावपरक निबंध में शुक्ल जी ने मनोवेगों के रूप को स्पष्टता देने के लिए उनसे मिलती–जुलती वृतियों का, उनके साथ अंतर को बारीकी के साथ दिखलाया है। लोभ वस्तु के प्रति होता है और प्रीति व्यक्ति के प्रति, जब तक व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूरा परिचय न मिले तब तक प्रीति लोभ की श्रेणी से ऊँची नहीं उठती।

दूसरा, शुक्ल जी  प्रेम के जीवन व्यापी कर्म–सौंदर्य के प्रधान रूप को प्रकाश में लाने के लिए उत्सुक थे जैसे उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में लिखा हैं–

"प्रेम का दूसरा स्वरूप वह है जो अपना मधुर और अनुरंजनकारी प्रकाश जीवन–यात्रा के ना ना पथों पर फेंकता है। प्रेमी जगत के बीच अपने अस्तित्व की रमणीयता का अनुभव करता है और अपने प्रिय को भी कराना चाहता है।

अतः स्पष्ट है कि शुक्ल जी ने भावों और मनोविकारों को निबंध के लिए एक विशिष्ट उद्देश्य से ग्रहण किया था। समस्त मानव–जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं अतः सामान्य क्रिया व्यापार से लेकर गंभीर काव्यादि रचना तक इन्हीं का प्रभाव व्याप्त रहता है। जब तक इनके स्वरूप का बोध न होगा तब तक मन की प्रवृतियों की प्रतीति भी सम्भव नहीं होगी। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'लोभ और प्रीति' निबंध की रचना की गई।

**2. शैली–प्रयोग** – विश्लेषण और व्याख्या का चरमोत्कर्ष शुक्ल जी के निबंधों का शैलीगत सौंदर्य है। विश्लेषण के लिए समता–विषमता का प्रदर्शन, व्यास और समास शैली का ग्रहण, आगमन तथा निगमन पद्धति का सम्यक् समन्वय स्थान–स्थान पर देखा जा सकता हे।

'लोभ और प्रीति' निबंध में वह 'व्यास शैली' के माध्यम से लोभ को परिभाषित करते हैं –

"किसी प्रकार का सुख या आनंद देनेवाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति, सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जाग पड़े, उसे लोभ कहते हैं।" दो भावों या मनोविकारों का पार्थक्य प्रदर्शित करते हुए 'व्यास शैली' का सुंदर प्रयोग किया गया है। 'लोभ और प्रीति' में पहले विश्वामित्र के उदाहरण तथा व्याख्या से स्पष्ट करके फिर प्रघट्टक के अंत में स्थापना करते हैं – "अन्य का त्याग अनन्य और सच्चे लोभ की पहचान है। आगमन शैली द्वारा अपनी बात को स्पष्ट करते हैं।

**निर्णयात्मक शैली** – "भगवदभक्ति के लिए हम तो प्रेम की यही पद्धति (लोक जीवन सापेक्ष) समीचीन मानते हैं। हम तो जगत के बीच हृदय के सम्यक् प्रसार में ही भक्ति का प्रकृत लक्षण देखते हैं क्योंकि राम की ओर ले जाने वाला रास्ता इसी संसार से होता हुआ गया है।"

**हास्य व्यंग्य शैली** – भावावेश में शुक्ल जी की हास्य व्यंग्य शैली का एक और रूप हमारे सामने आता है 'लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय निग्रह, तुम्हारी मान समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है। तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो। तुम्हें धिक्कार है।'

रामचंद्र शुक्ल जी के निबंधों में अनेक वाक्य सूक्तियों का काम करते हैं। 'सबकी टकटकी, टके पर लगी है' 'सब पर सोने का पानी फिर गया' 'लक्ष्मी सोने की हो गई और आदमी पत्थर के' पक्के लोभी पथभ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं जैसी अनेक सूक्तियाँ इस निबंध में हैं।

**5. भाषा** – रामचंद्र शुक्ल जी के निबंधों की भाषा अत्याधिक प्रौढ़ तत्सम प्रधान और प्राजंल है। गुम्फित वाक्य रचना के लिए भावव्यंजक पदावली का जैसा सुंदर चयन शुक्ल जी ने किया है वैसा हिन्दी निबंध लेखकों में अन्यत्र नहीं मिलता। तर्कपूर्ण वैज्ञानिक शैली के साहित्यिक निबंधों की भाषा का मानदण्ड़ शुक्ल जी के इन्हीं भाव और मनोविकार सम्बंधी निबंधों में स्थिर किया जा सकता है। भाषा का तत्सम और क्लिष्ट–पद योजनापूर्ण है।

"लोभ का प्रथम संवेदनात्मक अवयव है किसी वस्तु का बहुत अच्छा लगना, उससे बहुत सुख या आनंद का अनुभव होना। अतः वह आनंद स्वरूप है।" शुक्ल जी साहित्य में 'चमत्कार' का सदा विरोध करते हैं, उनका मत था कि कोरा शब्द चमत्कार न तो सुंदर काव्य का स्रष्टा है और न वह स्थायी मनोरंजन कर सकता है। 'मुहावरों और लोकोक्तियों' का प्रयोग शुक्ल ली के निबंधों में विरल है। दो–तीन स्थलों को छोड़कर कहीं भी मुहावरे नहीं है। जैसा–

"पर जब हम उस वस्तु की ओर हाथ बढ़ायेंगे या औरों को उसकी ओर हाथ बढ़ाने न देंगे तब बहुत से लोगों का ध्यान हमारे इस कृत्य पर जाएगा जिनमें से कुछ **हाथ थामने** वाले और **मुँह लटकाने** वाले भी निकल सकते हैं। अन्य उदाहरण कोई–कोई देश लोभवश इतना अधिक माल तैयार करते हैं कि उसे किसी देश के **'गले मढ़ने** की फिकर में दिन–रात मरते रहते हैं।' "

लोभ और प्रीति निबंध मे यथा स्थान **मौलिक सूक्तियों** का भी सुंदर प्रयोग किया है, जो निबंधों को और अधिक प्रभावोत्पादक बना देता है।

1. पक्के लोभी लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं।
2. लोभ का सबसे प्रशस्त रूप वह है जो रक्षा मात्र की इच्छा का प्रवर्तक है।
3. वह लोभ धन्य है, जिससे किसी के लोभ का विरोध नही।
4. परिचय प्रेम का प्रवर्तक है, बिना परिचयक के प्रेम कैसा।
5. प्रेम एक ही कोटि की दो सत्ताओं का योग है।
6. लोभ सामान्योन्मुख होता है, प्रेम विशेषोन्मुख।

सूक्ति प्रयोग के विषय में यह कहा जा सकता है कि ये वे सौंदर्य स्थल है, जो उनको और उनके साहित्य को तो अपूर्व गरिमा मण्ड़ित करते ही हैं, साथ ही 'गद्य कवीना निकष' वदन्ति' की उक्ति को भी सार्थकता प्रदान करते हैं। शुक्ल जी की भाषा से स्पष्ट है कि उनकी भाषा तत्समता की ओर झुकी है इंद्रिय निग्रह, अविवेक, विर्गहणीय, निर्लज्जता सान्निध्य, सहिष्णुता, प्रेमोन्माद, अनुंसकारी, प्रफुल्लता, गवाक्ष, प्रसूनमय, स्नेह, सम्यक् इत्यादि। शब्दों के साथ–साथ उन्होंने तद्भव और विदेशी शब्दों को भी अपनाया है। लोकमंगल की साधनावस्था, सिद्धावस्था आदि परिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।

उपरोक्त तत्वों के आधार पर विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि लोभ और प्रीति विषय प्रधान मनोविकार निबंध है जो कि समीक्षात्मक मानदण्डों पर खरा उतरता है।

### 17.3.1 लोभ और प्रीति का सार

'लोभ और प्रीति' आचार्य रामचंद्र शुक्ल विरचित एक महत्वपूर्ण मनोविकार संबंधी निबंध है। यह निबंध उनके निबंध संग्रह 'चिंतामणि' में संगृहीत है। निबंध का सार इस प्रकार हैं–

**1. लोभ का स्वरूप**–लोभ के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि **'किसी प्रकार का सुख या आनंद देने वाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को, जिसमें उस वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति सानिध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जग पड़े, लोभ कहते हैं।'** उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि लोभ का जन्म इच्छित वस्तु के अभाव की कल्पना के बिना नहीं हो सकता।

कदाचित इसी कारण निबंधकार ने लाभ को सुखात्मक और दुखात्मक दोनों प्रकार की स्थितियां मानी हैं। अप्राप्त के लिए तो लोभ की दुखमयी स्थिति स्पष्टता दिखती है, किंतु प्राप्त वस्तु के संबध में भी ऐसी स्थिति की आशंका सदैव बनी रहती है। यह आशंका तब उभरती है, जबकि प्राप्त वस्तु के अभाव की स्थिति या कल्पना उत्पन्न हो जाती है।

**2. प्रीति का स्वरूप**— लोभ सामान्य अथवा जाति के प्रति होता है, किंतु प्रीति किसी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष के ही हो सकती है. लोम और प्रीति के मध्य विभाजक रेखा खींचते हुए निबंधकार ने कहा है कि **''लोभ सामान्योन्मुखी होता है और प्रेम विशेषोन्मुख''** वृत्ति की एकनिष्ठता प्रीति को पहली शर्त है।

**3. इच्छात्मकता : एक अनिवार्य अवयय**— लोभ हो अथवा प्रीति—दोनों ही स्थितियों में प्राप्ति की इच्छा अनिवार्य है जो वस्तु अथवा व्यक्ति हमें सुख पहुँचाता है, हम उसे केवल देखकर ही संतुष्ट नहीं हो जाते, हम उसे प्राप्त करने, उसके सानिध्य में रहने के लिए भी लालायित रहते हैं।

जो भी वस्तु अथवा व्यक्ति हमें भाता है, अच्छा लगता है उसके प्रति हमारी इच्छात्मकता के दो पक्ष होते हैं—एक तो हम उसे प्राप्त करना अथवा उसके सानिध्य में रहना चाहते हैं, दूसरे हम यह भी चाहते हैं कि वह सानिध्य नष्ट न होने पाए। प्राप्ति या सानिध्य की इच्छा भी पुनः दो प्रकार ही होती है पहली तो इतने संपर्क इच्छा जितना किसी भी अन्य व्यक्ति का न हो, दूसरी, इतने संपर्क की इच्छा जितना अन्य लोग रखते हों। पहले....की इच्छा प्रतिषेधात्मक श्रेणी में आती है और इस कारण लोगों का ध्यान उस ओर जा सकता है। इस प्रकार के . .... के विषय दो प्रकार के हो सकते हैं—सामान्य और विशेष। अच्छा मकान, आरामदेह, सवारी, सुस्वाद भोजन सभी प्रिय होता है। सभी इनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं और इसी कारण लोगों के भीतर मार—धाड़, छल—कपट, धोखाधड़ी की प्रवृत्ति बनी रहती है। जब इच्छा का विषय विशिष्ट होता है अर्थात् यदि किसी व्यक्ति को सफेद रंग पोशाक प्रिय है तो उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाएगा क्योंकि उसी यह इच्छा केवल अपने तक सीमित है, दृश्य के लिए व्यवधान नहीं होती अर्थात् सफेद पोशाक की इच्छा रखने वाला व्यक्ति इस बात से न तो चिन्तित होता है न दुखी कि दूसरा भी ऐसी ही सफेद पोशाक पहने हुए है।

**4. लक्ष्य की भिन्नताः लोभ का मूलाधार**—लोभ के विषय अनेक होते है फिर भी संसार के कतिपय आका ऐसे होते हैं, जिनके प्रति मनुष्यमात्र में लोभ की प्रवृत्ति बनी रहती है। धन, वैभव, ऐश्वर्य आदि विषयों की गणना विषयों के अंतर्गत ही की जाएगी। संसार में ऐसा कोई हो विरला व्यक्ति जो ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति के लिए लालायित न हो। धन, वैभव आदि की इसी लालसा ने समाज में इन वस्तुओं की प्रतिष्ठा में अतिशय वृद्धि कर दी। परिणाम चरित्र और प्रेम जैसे भाव भी धन की तुला पर तोले जाने लगे। निबंधकार के शब्दों में, **''लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी गई, उपासक सब पत्थर के हो गए, धीरे—धीरे यह दशा आई कि जो बातें पारस्परिक प्रेम की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि की जाती थीं, वे भी रूपए—पैरो की दृष्टि से होने लगीं।''** लोभ का यह रूप निश्चय ही सामाजिकता का शत्रु होता।

**5. लोभ की संकुचित दृष्टि**—जब लोभ की दृष्टि संकुचित होती है तो उसका दोष उतना ही कम हो जाता उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को एक ही श्रेणी की पचास वस्तुओं में से कोई एक वस्तु बहुत अधिक पसंद जाती है तो उसे लोभी नहीं कहा जा सकता, अधिक—से—अधिक उसे परिष्कृत रूचि का व्यक्ति कहा जा सकता है। इस प्रकार विश्वामित्र को वशिष्ठ की गाय इतनी अधिक अच्छी लगी कि वे उसके बदले में कितनी ही गाय देने को तैयार हो गए थे। निश्चय ही विश्वामित्र को लोभी नहीं कहा जा सकता।

**6. स्वदेश—प्रेम का रहस्य**—स्वदेश—प्रेम का रहस्य वस्तुतः अपने देश अपने स्वान के प्रति लोभ की भावना का साहित्य रूप ही तो है। स्वदेश—प्रेम में खो जाने वाला व्यक्ति देश से नहीं, वहाँ के लोगों, पक्षियों, पशुओं, पर्वतमालाओं, नदी, और समुद्रों सभी के प्रति प्रेम रखता है। यह मानव मन की स्वाभाविक वृत्ति है कि वह जहाँ कहीं रहता है, जिस समय के बीच रहकर पलता और बड़ा होता है, उसके प्रति उसे गहरा प्रेम स्वतः हो

जाता है। प्रेम की स्थिति परिचय से आ होती है। देशी के प्रति प्रेम देश और देशवासियों से परिचित हो जाने के बाद की अवस्था है। जब तक हम अपने की संस्कृति और समाज से परिचित नहीं होते, तब तक हमारे भीतर देश के प्रति प्रेम की लौ कैसे उत्पन्न हो सकती।

**7. रक्षा की इच्छा के दो प्रकार**— अपनी प्रिय वस्तु के प्रति मनुष्य की इच्छा दो प्रकार की होती है— सानिध्य इच्छा तथा दूर न करने की इच्छा ऐसी इच्छा दो प्रकार की होती है—एक तो केवल अपने अधिकार में रखने की इच दूसरे स्वनिरपेक्ष रक्षा की इच्छा अर्थात् केवल बने रहने की इच्छा। केवल अपने अधिकार में रखने की इच्छा लोगों आंखों में खटकती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी दफ्तर के कर्मचारियों की सुविधा के लिए शीतल जल लगा है और यदि कोई थी 'क' अकेले ही उसकी रक्षा करने की बात सोचे तो निश्चय ही इस पर अन्य कर्मचारियों के पीछे उसके अनन्य प्रयोग की बात अनिवार्यतः रहती है।

यदि लोभ का विषय ऐसा है जिसमें सबको सुख की अनुभूति होती है, तो उसकी रक्षा के प्रति लोगों में एक का भाव रहेगा। गाँव की चौपाल प्रत्येक ग्रामवासी के लिए सुख का स्थान होती है, अतः सारे गाँव वाले मिलकर उरु रख—रखाव और उसकी सुरक्षा के प्रति जागरूक रहते हैं।

**8. लोभ का सबसे अधिक प्रशस्त रूप**—लोभ का सबसे अधिक प्रशस्त रूप वह होता है, जबकि लोभ के विषय की रक्षा के प्रति मनुष्य का भाव केवल यही रहे कि वह वस्तु बनी रहे, भले ही वह उसके प्रयोग में आए अथवा नहीं यहाँ भी रक्षा का यह भाव उस स्थिति में दोषपूर्ण बन जाता है, जबकि वस्तु किसी अन्य के लिए हानि का कारक सिद्ध होती है। आपका पालतू कुत्ता आपको बहुत प्रिय हो सकता है, और आप उसकी रक्षा भी करते हैं, किंतु वह कुत्ता आपके पड़ोसी के यहाँ लगी हुई फुलवारी को तोड़—फोड़ दे तो वह अपके लिए सिरदर्द बन जाएगा। लोभ प्रशस्त रूप का विश्लेषण करते हुए निबंधकार कहता है कि, ''वह लोभ धन्य है जिससे किसी के लोभ का विरोध न और लोभ की जो वस्तु अपने सब लोभियों को एक—दूसरे का लोभी बनाए रखती है वह भी परम पूज्य है।'' हमारे घर, हमारे गाँव, हमारे शहर और हमारे देश के प्रति जो हमारा प्रेमभाव होता है वह लोभ के इसी प्रशस्त रूप के उदाहरण हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति यह होती है कि उसे सबसे पहले अपने घर के रक्षा की चिंता होती है, बाद में अपने गाँव व उसके भी बाद अपने शहर की और अंत में अपने देश की। तथापि संसार में ऐसे भी कुछ लोग होते हैं, जिनके समक्ष देश का महत्त्व तो सर्वोपरि होता है और घर का महत्व नगण्य होता है। ऐसे ही लोग अपने घर का मोह छोड़कर देश के विकास की बातें सोच सकते हैं।

**9. धन का लोभ**—धन का लोभ प्रकार का संकुचित लोभ कहलाता है। शुक्ल जी इस प्रकार के लोभ को उद्वत लोभ की संज्ञा देते हैं, जिसके प्रकटतः दो लक्षण माने गए हैं। अंसतोष और अन्य मनोवृतियों का दमन। धन के लोभ असंतोष की वृद्धि बराबर बनी रहती है। शुक्ल जी के शब्दों में, **''धन का लोग जब रोग होकर चित्त में घर कर लेता है तब प्राप्ति होने पर भी और प्राप्ति की इच्छा बराबर जगी रहती है। जिससे मनुष्य सदा आतुर और प्राप्त के आनन्द से विमुख रहता है। जितना नहीं है उतने के पीछे जितना है उतने से प्रसन्न होने का उसे कभी अवसर ही कहीं मिलता। धन का यह लोभ जब रोग का रूप धारण कर लेता है तो मनुष्य को इसके अतिरिक्त कुछ भी और नहीं दिखता। शनैः शनैः उसके भीतर के लिए नहीं, अपने लिए भी नहीं, केवल धन के लिए जीते हैं। स्वभावतः समाज के इसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।''**

**10. पक्के लोभी की पहचान**— लोभी की सबसे बड़ी पहचान यह होती है कि ये कभी भी अपने लक्ष्य से विचलित होते हैं। किसी की करुण से करुण पुकार, सुंदर—से—सुंदर रूप, दया की बड़ी—से—बड़ी याचना उनका ध्यान धन से विचलित नहीं कर सकती। यहाँ तक की अत्यधिक क्रोध की स्थिति में भी वे ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे उनका एक रुपया भी नष्ट हो जाए। एक रुपए के लिए वे बड़े—से—बड़ा झूठ, बड़े—से—बड़ा अन्याय, बड़े से बड़ा अपराध करने में तनिक भी संकोच नहीं करते।

**11. लोभ और प्रेम की भिन्नता**– लोभ वस्तु के प्रति होता है, जबकि प्रेम में मनस्तत्व अवश्य बना रहता है। प्रेम करने वाला और जिसे प्रेम किया जाता है–दोनों के भीतर एक धड़कता हुआ हृदय होता है। प्रेमतत्व की दूसरी विलक्षणता यह होती है कि प्रेम करने वाले व्यक्ति का बराबर यह प्रयत्न रहता है कि जिसके प्रति यह प्रेमभाव रखता है. वह भी उसके प्रेमभाव से अवश्य परिचित हो सके। इसके विपरीत, वस्तु का लोभी वस्तु के भीतर ऐसी किसी चेतना के दर्शन नहीं कर पाता। यही नहीं, प्रेमी अपने प्रिय को प्रभावित भी करना चाहता है, उसके हृदय को जीतना चाहता है। इस सबमें उसका लक्ष्य प्रिय का सानिध्य और सामीप्य प्राप्त करना होता है।

**12. प्रेम–तत्व की विशेषताएँ**–प्रेम करने वाले व्यक्ति की सबसे पहली विशेषता यह होती है कि वह अपने प्रिय का सामीप्य पाने के लिए बहुविध प्रयत्न करता है, जिससे उसे एक विचित्र प्रकार की तुष्टि का अनुभव होता है। इस संबंध में दूसरी बात यह है कि प्रेमभाव का विकास तभी संभव होता है, जब प्रेमी और प्रिय दोनों के भीतर एक दूसरे से मिलने, बैठने–उठने की उत्कृष्ट चाह हो। तीसरी बात यह है कि प्रेमी इस बात का पूरा प्रयत्न करता है कि वह अपने प्रिय के समक्ष अच्छे–से–अच्छे रूप में प्रस्तुत हो। प्रिय के हृदय को जीतने के लिए प्रेमी आवश्यकतानुसार त्याग, दया, व्यवहारकुशलता, शिष्टता आदि का भी भरपूर परिचय देने से नहीं चूकता। चौथी बात यह है कि प्रेमी का सारा संसार प्रिय के सुख–दुख में केन्द्रित हो जाता है। वह उसके मिलन में अपरिमित आनंद का अनुभव करता है, तो उसके वियोग में रो–रो उठता है। कभी–कभी प्रेम उन्माद की स्थिति को भी पहुँच जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रेमी जीवन के अन्य क्षेत्रों से बुरी तरह कट जाता है। उसका जीवन सामाजिक और पारिवारिक जीवन से अलग हो जाता है, ऐसे प्रेम को एकान्तिक या लोकबाह्य प्रेम कहते हैं।

**13. प्रेम की विलक्षणता**–प्रेम का यही भाव लौकिक स्तर से क्रमशः ऊपर उठता हुआ अंततः अलौकिक स्तर तक भी पहुंचता है। प्रभु–भक्ति के मूल में वस्तुतः मनुष्य का यही प्रेमभाव विद्यमान रहता है। इसे प्रेम का रंजनकारी प्रभाव कहा जा सकता है। जब किसी सुंदर युवती के प्रेम में डूबे हुए युवक हदय को सारा संसार प्रेम की आभा से सिक्त दिखता है तब परमप्रिय परमात्मा से प्रेम की डोर बांधने वाले भक्त के अंतर्गत के आहलाद को कैसे मापा जा सकता है। शुक्ल जी के शब्दों में, **''हम तो जगत के बीच हृदय में सम्यक् प्रसाद में ही भक्ति का प्रकृत लक्षण देखते हैं, क्योंकि गम की ओर से जाने वाला रास्ता इसी संसार से होता हुआ गया है। जगत् से विरक्त होकर भक्ति का सुर अलापना एक ऐसी साधना है, जिसकी चरम परिणति मानव–प्रेम में नहीं होती। संसार में रहकर ही प्रभु की प्राप्ति हो सकती है। जिसे यह संसार राम के रंग में रंगा हुआ दिखता है, जिसे दीन–हीनों की दुर्दशा के प्रति सहज सहानुभूति हो उठती है, जो नन्हें बालकों की निश्छल मुस्कान पर लुटना जानता है, वही भक्त हो सकता है।''**

**14. प्रेम का लौकिक रूप**–जब प्रेम एकान्तिकता से ऊपर उठकर संजीवन रस की तरह प्रेमी के भीतर कवि की प्रतिभा, चित्रकार की कला और संगीत के सुरों में व्यक्त होता है तो उसे प्रेम का दिव्य रूप कहा जाएगा। वे सारी स्थितियाँ लौकिक प्रेम का उदात्तीकरण कहलाती हैं। प्रेमी के हृदय की दो कोमल वृत्तियाँ होती हैं–करुणा और प्रेम। प्रिय के वियोग में अपनी दारुण अवस्था का वर्णन करके प्रेमी प्रिय हृदय में दया का भाव उत्पन्न करता है। प्रेमी को इस मनःस्थिति का वर्णन करते हुए निबंधकार कहता है कि **''यह प्रेम–मार्ग की एक सामान्य प्रवृत्ति है, जो प्रेमी के हृदय में सदैव बनी रहती है। प्रेमी की रखवाली करने के लिए प्रेमी प्रिय के हृदय में दया को बराबर जगाता रहता है।''**

**15. प्रेम का आदर्श रूप**–प्रेम के क्षेत्र में ऐसी अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं, जबकि प्रेमी तो प्रिय के प्रति माव–विद्वदत है किंतु प्रिय उससे निरपेक्ष रहता है। सूर की गोपियाँ इसी आदर्श प्रेम को अपनी थाती मानकर चलती हैं–

**जहां जहां रहौ गज करौं तहं तहं लेहु कोटि सिर भार**
**यह असीस हम देति सूर सुनु न्हात खसै जनि बार।।**

ऐसा प्रेमी केवल प्रिय के सुख की ही कामना करता है, उसे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। लौकिक प्रेम का आदर्श रूप यही दिखता है। लौकिक प्रेम की यह उच्च भूमि सर्वत्र नहीं मिल पाती।

प्रेम के इस आदर्श रूप में न तो वासना की गंध रहती है, न ईर्ष्यादि भावों का संचार रहता है। निश्चय ही, इन प्रकार के आदर्श–प्रेम के दर्शन विरल ही होते हैं।

**16. प्रेम के दो रूप**–प्रेम के सुखात्मक और दुःखात्मक दो रूप होते हैं। संयोग के क्षणों में प्रेम की व्यंजना हंसी की खिलखिलाहट में होती है तो वियोग के क्षणों की व्यंजना अश्रुओं और दीर्घ निःश्वासों में होती है। कदाचित् इसी आधार पर काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार के दो पक्ष माने हैं– संयोगपक्ष और वियोगपक्ष।

### 17.3.2 'लोभ और प्रीति' निबंध का प्रतिपाद्य

जब भी कोई लेखक रचना का प्रणयन करता है, तब उस रचना के पीछे उसका कोई–न–कोई उद्‌देश्य अवश्य होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल विरचित **'लोभ और प्रीति'** निबंध भी एक उद्‌देश्यपूर्ण निबंध है। लोभ और प्रीति भावों की मनोवैज्ञानिक और व्यवहारपरक व्याख्या करना इसका उद्‌देश्य है, इसे समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन इतना ही इसका उद्‌देश्य नहीं है। लोभ और प्रीति भावों पर विचार करते हुए वे अन्य बातों पर भी अपना मत व्यक्त करते हैं। कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि निबंध अवान्तर बातों को स्पष्ट करने के लिए ही लिखा गया है। शुक्लजी के निबंधों में उनकी जीवन दृष्टि और विश्व दृष्टि भी व्यक्त होती है। मसलन, लोभ और प्रीति की बात करते हुए वे देश प्रेम पर भी विस्तार से विचार करते हैं। देश प्रेम पर यह विचार हमें इस बात को स्पष्ट करने से नहीं रोकता कि निबंध में यह विषय अनायास ही नहीं आ गया है वरन् लेखक सोद्देश्य इसकी चर्चा कर रहा है।

इसी प्रकार प्रीति की व्याख्या करते हुए वे प्रेम के विभिन्न रूपों और स्तरों की व्याख्या करते हैं। भक्ति काव्य का उदाहरण देकर वे उस प्रेम की श्रेष्ठता बताते हैं जो लोकोन्मुख हो। स्वयं शुक्लजी के शब्दों में, उस एकान्तिक प्रेम की अपेक्षा जो प्रेमी को एक घेरे में उसी प्रकार बंद कर देता है जिस प्रकार कोई मर्ज मरीज को एक कोठरी में डाल देता। हम उसे प्रेम का अधिक मान करते हैं जो एक संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन पथ को रमणीय और सुदर कर देता है, उसके सारे कर्मक्षेत्र को अपनी ज्योति से जगमगा देता है। जो प्रेम जीवन की नीरसता को हटाकर उसमें सरसता ला दे, वह प्रेम धन्य है।' जीवन के प्रति अनुराग, कर्म पर बल और स्वदेश के प्रति प्रेम इन बातों को यदि। साथ मिलाकर देखें तो हमें निबंध के उद्‌देश्य को समझाने में कठिनाई नहीं होगी।

लोभ और प्रीति के मनोभावों द्वारा वे जीवन और जगत के प्रति एक सकारात्मक और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण करना चाहते हैं। ऐसा दृष्टिकोण जो इन मनोभावों को असंयमित न होने दे और जो लोगों को कर्म की ओर प्रेरित मनोभावों को जीवन में अहम् भूमिका होती है, लेकिन उनमें संतुलन भी होना जरूरी है। इस निबंध में शुक्लजी इस को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''पर किसी मनोविकार की उचित सीगा का अतिक्रमण प्रायः वहाँ समझा जाता है, और मनोवृत्तियाँ दब जाती हैं या उनके लिए बहुत कम स्थान रह जाता है।'' इस दृष्टि से विचार करने पर हम शुक्लजी की दृष्टि में सभी मनोविकारों की जीवन में थोड़ी–बहुत सकारात्मक भूमिका जरूर होती है। प्रीति क आमतौर पर सकारात्मक माना ही जाता है, लेकिन लोभ भी जीवन में अच्छी भूमिका निभा सकता है। यही नहीं, सकारात्मक पक्ष ही उसे प्रेम के रूप में परिणत करता है।

शुक्लजी का यह मानना है कि जीवन और जगत के प्रति हमारे मन में किसी तरह का आकर्षण नहीं होता हममें स्वदेश के प्रति भी प्रेग जागृत नहीं होगा। प्रकृति के प्रति प्रेम, स्थान के प्रति प्रेम, वस्तुओं के प्रति प्रेम और के प्रति प्रेम के होने पर ही इंसान में अपने देश के प्रति प्रेम जागृत होता है। इसी प्रक्रिया में प्रेम मनुष्य को

सक्रिय व है। उसे कर्मशील बनाता है। यहाँ कर्म पर शुक्लजी का इतना बल देना इसीलिए है, क्योंकि उस युग में भारत पर था। देश को पराधीनता से मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती थी, जब लोगों में न सिर्फ स्वदेश के प्रति प्रेम हो, बल्कि या उन्हें सक्रिय भी करे। यह सक्रियता पराधीनता के विरूद्ध जन संघर्ष में भागीदारी के रूप में ही सामने आ सकती है।

इसी संदर्भ में शुक्लजी उस लोभ की चर्चा करते हैं जिसके अपनपने को वे उपर्युक्त नहीं मानते। हमारा तर्क धन के प्रति लोभ से है और जिसे वे अन्य स्थान पर व्यापारी प्रवृत्ति के बढ़ने के रूप में रेखांकित करते हैं। धन के लोभ को वे न तो व्यक्ति के लिए और न समाज के लिए हितकर मानते हैं। इसी बात को वे इस रूप में भी कहकर कि क्षात्र धर्म का देश और समाज के लिए अनिष्टकारी है। इस प्रकार शुक्लजी लोभ और प्रीति निबंध के से निबंध विधा में अपनी रचनात्मक कौशलता का ही परिचय नहीं देते, बल्कि औपनिवेशिक पराधीनता के तत्काल दौर में लोगों के मन में स्वदेश प्रेम की भावना भरते हैं और इस दिशा में प्रयत्न करने के लिए भी प्रेरित करते हैं।

पं. रामचंद्र शुक्ल की विवेचन और विश्लेषण की स्वतंत्र प्रविधि है। वे परिभाषा, वर्गीकरण, व्याख्या, वैयक्तिक सस्पर्श रामचंद्र शुक्ल की विवेचन और विश्लेवार के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी अपनी दृष्टि लोक–मंगलवादी है। शुक्लजी सूत्र देते है फिर उसकी विस्तृत व्याख्या करते हैं, जिसमें उद्धरण और उदाहरणों का प्रचूर समावेश होता है। उनकी निजता उनके निबंधों का मूल है। शुक्लजी की भाषा टकसाली हिंदी है, जिसमें संस्कृत, उर्दू और लोकभाषा का सहज समावेश देता है। उनके भाव और मनोविकार संबंधी निबंधों का आधार मनोविज्ञान है। किंतु शुक्लजी निबंध में मनोविज्ञान में यथोचित सामग्री को स्थान देकर, उसका विश्लेषण लोकदृष्टि से करते हैं। वे लोकमंगल की भावना के पक्षघर हैं। शास्त्रीय विषय लेकर भी वे उसको व्यापक रूप में साहित्य की अवधारणाओं के माध्यम से संप्रेषित करते हैं। उनके निबंधों में शास्त्रीयता, अनुभव और व्यंग्य–विनोद का अनुपम समन्वय है। उनका शिल्प व्यास और समास शैली का समन्यव है। उनका चिंतन भारतीय अवधारणा के अनुकूल समन्वयधर्मी चिंतन है। शुक्लजी विषय की गहराई तक पहुंचते हैं और फिर लेखन को शास्त्र, अनुभव और व्यंग्य–विनोद के माध्यम से भाषा के कलेवर में प्रस्तुत करते है। शास्त्र उन्हें परिभाषा, वर्गीकरण और व्याख्या प्रदान करता है, अनुभव उन्हें लोकमंगल की अवधारणा प्रदान करता है और चिंतन मनन उनके निबंधों को मूल्य प्रदान करता है तथा उनकी वैयक्तिकता और व्यंग्य–विनोद उनके निबंध को ग्राह्य और सरस बनाते हैं।

शुक्लजी का वैयक्तिक संस्पर्श अर्थ से इति तक निबंधों में परिव्याप्त है। लोभ और प्रीति निबंध के संदर्भ में जब हम इस बिंदु पर विचार करते हैं कि उनका यह स्पर्श यदा–कदा उनके भावुक विवरणों में अथवा लोकमंगल की भावनाओं में दिखाई पड़ता है। लोकमंगल की भावनाओं के साथ वे प्रायः व्यंग्य–विनोद का आश्रय लेते हैं। उदाहरण के लिए देश–प्रेम को व्याख्यायित करते हुए, प्रकृति के प्रति अनुराग को अभिव्यक्त करते हैं। यह बात हम पहले भी लिख चुके हैं शुक्लजी के निबंधों में वैयक्तिक स्पर्श जहाँ एक ओर गुरु गंभीर विषय को रोचकता प्रदान करता है, वहीं तदयुगीन स्थितियों से आमना–सामना भी कराता है। शुक्ल जी के निबंध गंभीर निबंध हैं और पूरी गंभीरता से उनकी संरचना के गई है किंतु ये शुष्क नहीं है, शुक्लजी का वैयक्तिक संस्पर्श इन निबंधों को शुष्क होने से बचाता है और रमणीयता प्रदान करता है। यह संस्पर्श भाषा को प्रवाह देता है और भावक को झकझोरता है। संभवतः ज्ञान प्राप्ति के साथ–साथ विचारों की उत्तेजना प्रदान करना इन निबंधों का लक्ष्य है और शुक्लजी के निबंध इस लक्ष्य की सिद्धि करने में समर्थ हैं।

शुक्लजी के यहाँ व्यंग्य विनोद का प्रयोग सप्रयोजन है। व्यंग्य विनोद से पाठक को गंभीरता के बीच एक सुख अनुभव की प्रतीति होती है। यह सुखद प्रतीति केवल सुखद ही नहीं रहती है, यह तद्युगीन दशा–दिशा को भी प्रस्तु करती है। यह दशा–दिशा पाठक को जीवन दिशा का ज्ञान कराती है, कर्म के लिए प्रेरित करती है, एक उत्तेजना प्रदान करती है और खिलखिलाहट से भर देती है।

रामचंद्र शुक्ल जैसे निबंधकार संसार की किसी भी भाषा के लिए गौरव है। उनके निबंधों में विवेचना और सर्ज का समन्वय है। आत्माभिव्यक्ति तथा व्यंग्य–विनोद इनके निबंधों को हल्का–फुल्का नहीं बनाते, वरन् पाठक का भाव की आँख में उंगली गड़ा कर सत्य का निदर्शन कराते हैं। वे रूचि भी जागृत करते हैं और चिंतन को भी गति प्रदान करते हैं। हिंदी जगत को जो अनुदान शुक्लजी ने दिया वह अतुलनीय है।

### 17.3.3 'लोभ और प्रीति' के आधार पर शुक्ल जी की निबंध शैली

**'लोभ और प्रीति'** आचार्य रामचंद्र शुक्ल का एक मनोवैज्ञानिक निबंध है। इसमें उनकी निबंध शैली तमाम विशेषताएं देखी जा सकती हैं। उनकी निबंध शैली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

**1. सूत्र शैली**–आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंध के प्रथम गद्यांश में ही निबंध का मूल सूत्र दे देते हैं। गणित के सवाल की तरह विभिन्न सोपानों में उसका विस्तार करते हुए निष्कर्ष देते हैं। प्रस्तुत निबंध का सूत्र है **''जिस प्रकार का सुख या आनंद देने वाली वस्तु के संबंध में मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव भावना होते ही प्राप्ति, सान्निध्य या रक्षा की प्रबल इच्छा जग पड़े, लोभ कहते हैं।''** इस सूत्र में लोभ को मन की दशा कहा गया है, जिसमें सुख देने वाली वस्तु/व्यक्ति को पुनः पाने की लालसा बनी रहती है, उसकी रक्षा का भाव जागता है। निबंध में आगे चलकर लोभ के दो अवयव आकर्षण और अधिकार तथा रक्षा की इच्छा का वर्णन है। लोभ क्या है, क्यों है, कैसा है? किसके लिए है, किसके लिए है, कितने प्रकार का है, उसका प्रीति से क्या संबंध है, वह प्रीति से ही सीमित है, प्यार या प्रीति कैसे व्यापक भाव है, उसमें देश प्रेम और ईश्वर प्रेम कैसे समाता है। इन सबका वर्णन है। यह सब इसी सूत्र का विस्तार है।

**2. सूक्ति शैली**–आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में अनेक वाक्य सूक्तियों का काम करते हैं। 'सबकी टकटकी, टके पर लगी है 'सब पर सोने का पानी फिर गया', 'लक्ष्मी सोने की हो गई' और 'आदमी पत्वर के', 'पक्के लोभी प्रथभ्रष्ट नहीं होते, कच्चे हो जाते हैं, जैसी अनेक सूक्तियाँ इस निबंध में हैं। 'हिसाब करने वाले भाड़े पर मिल जाते हैं, प्रेम करने वाले नहीं।'

**3. तुलनात्मक शैली**–आचार्य शुक्ल मनोविकारों संबंधी निबंधों में विभिन्न मनोविकारों का तुलनात्मक परिचय देते हैं। सजातीय और विजातीय मनोभावों से तुलना करते हुए उनकी समानता और असमानता उद्घाटित करते हैं। प्रस्तुत निबंध में लोभ और उसके सजातीय प्रेम का वर्णन करते हुए इसका लोभ से संबंध स्पष्ट करते हैं। दया करुणा, क्रोध आदि का लोभ और प्रेम से क्या सबंध है, वह भी स्पष्ट करते है। अन्य भाव जहाँ देतर तक बने रहते हैं और सजातीय भावों को पुष्ट करते है वहीं लोभ अन्य मनोवृत्तियों का दमन या विनाश करता है।

**4. नैतिकतारपक, आदर्शवादी शैली**–आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचना के क्षेत्र में लोकमंगलकारी, नैतिकतावादी, रसात्मक जीवन–दृष्टि लेकर आए। प्रस्तुत निबंध में उनकी नैतिकतावादी दृष्टि स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वे लोभ को विशेषकर धन के अत्यधिक लोभ को मानव भावनाओं का शत्रु समझते हैं। लोभियों की भर्त्सना करते हैं। प्रेम को लोभ का ही एक रूप मानते हैं, परंतु सात्विक प्रेम को श्रेष्ठ मानते हैं। देश प्रेम, ईश्वर–प्रेम, निःस्वार्थ सेवा को पूज्य जनते हैं। जीवन के उच्चतर मूल्यों की स्थापना ये अपने साहित्य का लक्ष्य मानते हैं। दया, करुणा, प्रेम जैसे भावों का विकास साहित्य द्वारा चाहते हैं। श्रृंगार को रसराज इसीलिए कहते हैं, क्योंकि यह व्यापक, सुखात्मक भावों को पुष्ट करता है।

**5. व्यंग्य शैली**– आचार्य शुक्ल सामान्य रूप से शांत, तर्कपूर्ण शैली में लिखते हैं, परंतु समय आने पर भावुकतापूर्ण व्यंग्यात्मक शैली का भी अनुकरण करते हैं। लोभियों के लोभ की भर्त्सना करते हुए व्यंग्यात्मक शैली में वह कहते है कि 'लोभियो ! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इंद्रिय–निग्रह, तुम्हारी मानापमान समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, अन्याय विग्रहणीय है। तुम धन्य हो। तुम्हें धिक्कार है।'' इस कथन में व्यंग्य, भर्त्सना, कटाक्ष और प्रवाह है। इसी प्रकार धनाढ्य लोगों पर व्यंग्य करते हए कहते हैं, ''मोटे आदिमियों! तुम जरा सा दुबले हो जाते–अपने अंदेशे से नहीं तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।''

**6. मुहावरे, लोकोक्तियाँ और पारिभाषिक शब्द प्रयोग**—आचार्य शुक्ल अपने निबंधों को अधिक ग्राह्य, भावपूर्ण और साहित्यिक बनाने के लिए लोकोक्तियों, मुहावरों और पारिभाषिक शब्दों का निरंतर प्रयोग करते हैं। हाथ फेरना, रुपए पर टकटकी लगना, बहुत सी बातें, ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं, 'राजधर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म पर सोने का पानी फिर गया', 'सब टकाधर्म हो गए', 'मन मैला करना', 'रक्त चूसना' आदि मुहावरों का प्रयोग हुआ है। शुक्ल जी ने हिंदी में अनेक पारिभाषिक शब्द प्रचलित किए, जैसे—लोकमंगल की साधनावस्था, सिद्धावस्था आदि। प्रस्तुत निबंध में 'अनुरागतुल्यता' अर्थात् दोनों पक्षों में समान अनुराग का भाव शब्द प्रचलित किया गया है।

### स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न

1. 'लोभ और प्रीति' निबंध के लेखक कौन हैं ?
2. लोभ का सात्विक रूप क्या कहलाता है ?
3. लोभ और प्रीति निबंध में प्रथम संवेदनात्मक अवयव किसे कहा है ?
4. लोभी शब्द से साधारणतः क्या अर्थ लिया जाता है ?
5. निबंध के अनुसार लोभ के कितने विषय होते हैं ?
6. लोभ धौर प्रीति के अनुसार रक्षा की इच्छा के कितने प्रकार हैं ?

## 17.4 सारांश

सामान्य व्यवहार में हम लोभ और प्रीति को परस्पर विरोधी भाव मानते हैं। किन्तु शुक्ल का मानना है कि लोभ और प्रीति में एकता होती है। लोभ को यदि सात्विक रूप में ग्रहण किया जाए तो वह प्रीति में बदल जाता है। दोनों अच्छी लगने वाली वस्तु या व्यक्ति के प्रति व्यक्त किए हुए भाव होते हैं। लोभ सामान्योन्मुखी होता है, जबकि प्रेम विशेषोन्मुखी होती है।

## 17.5 कठिन शब्दावली

**सौर्य** – सूर्य संबंधी

**सर** – तालाब

**मति** – बुद्धि

**नग** – पहाड़

**वरण** – चुनना

## 17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2. प्रीति या प्रेम
3. लोभ।
4. पैसे या धन का लोभी।
5. दो विषय।
6. दो प्रकार।

### 17.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं) चिंतामणि, लोक भारती प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ विभा सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों का वैचारिक चिंतन, उत्सव प्रकाशन, नई दिल्ली।

### 17.8 सात्रिक प्रश्न

1. शुक्ल जी के निबंध लोभ और प्रीति का सार लिखिए।
2. शुक्ल जी की निबंध शैली पर प्रकाश डालिए।
3. लोभ और प्रीति निबंध के संरचना शिल्प पर प्रकाश डालिए।

*****

# इकाई—18
# हजारी प्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय

**संरचना**


18.1 भूमिका
18.2 उद्देश्य
18.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय
    18.3.1 व्यक्तित्व
    18.3.2 कृतित्व
    स्वयं आकलन प्रश्न
18.4 सारांश
18.5 कठिन शब्दावली
18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
18.7 संदर्भित पुस्तकें
18.8 सात्रिक प्रश्न


## 18.1 भूमिका

इकाई सत्रह में हमने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'लोभ और प्रीति' का पाठपरक अध्ययन किया, जिसमें इस निबंध के सार, पतिपाद्य, शिल्प और निबंध शैली का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई में हम हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन परिचय के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 18.2 उद्देश्य

इकाई अठारह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि —

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जीवन परिचय क्या है ?
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म स्थान कहाँ हैं ?
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म कब हुआ है ?
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कृतित्व कैसा है ?
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी किस प्रकार के लेखक है ?

## 18.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ कृत्ति है। एक गंभीर अध्येता है, साथ ही साथ एक गंभीर आलोचक, कुशल निबंधकार सफल संपादक, प्रगतिशील उपन्यासकार है। इनकी शोधपरक प्रवृत्ति ने इन्हें शास्त्र लोक से नित नवीन अनुसंधान के प्रति प्रेरित किया है। हिन्दी साहित्य में इन्होंने शोध के नये आयामों की ओर संकेत किया है। अपने रचनात्मक साहित्य द्वारा जो अनवरत कार्य द्विवेदी जी ने किया है उससे न केवल हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि हुई बल्कि उन्होंने अपने सम्मोहन साहित्यिक व्यक्तित्व द्वारा एक ऐसा वातावरण भी तैयार किया जिससे समूचे भारत में हिन्दी के विकास एवं विस्तार को बड़ा बल मिला।

उनके व्यक्तित्व का निर्माण जन्मजात गुणों, पारिवारिक परिस्थितियों, शैक्षणिक उपलब्धियों, सामाजिक सम्पर्कों तथा राष्ट्र और युग के तत्कालीन वातावरण को समन्वित प्रभाव के आधार पर हुआ है। उनका जीवन दर्शन परंपरागत रुढ़ियों एवं मिथ्या विश्वासों पर आधारित नहीं है, अपितु विज्ञान की नवीनतम स्थापनाओं के आधार पर उन्होंने अपने वित्तन को प्रतिष्ठित किया है।

### 18.3.1 व्यक्तित्व

उत्तर प्रदेश के बलिया में ओझवलिया गाँव के एक छोटे से भाग 'आरत दूबे का छपरा' से जीवन पर्यन्त हिन्दी साहित्य की सेवा करने वाले सुविख्यात उपन्यासकार, निबंधकार आलोचक, इतिहास लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त सन् 1907 को हुआ था। इनकी माता का नाम ज्योतिष्कली द्विवेदी तथा पिता का नाम पं. अनमोल द्विवेदी था। इनके परिवार के लोग धर्म–परायण थे जिसका प्रभाव इनके ऊपर पड़ा। उनका प्रारम्भिक जीवन गाँव के अकृत्रिम वातावरण एवं घर की विपिन्न परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। उनके व्यक्तित्व की सरलता, निश्छलता और परदुःखकातरता की प्रवृत्तियों के पोषण में उनके प्रारम्भिक जीवन की परिस्थितियों का प्रभाव रहा।

ग्रामीण परिवेश से प्रारम्भ करके और जीवन संघर्ष को साथ लेकर उन्होंने अपनी सृजन क्षमता को इतना व्यापक रूप दिया कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य उसकी परिधि में आवृत्त हो गया। आचार्य द्विवेदी जी की जन्म स्थली 'आरत दूबे का छपरा' यह नाम उनके प्रपितामह श्री आरत दूबे के नाम पर रखा गया था। अपनी जन्मभूमि का परिचय देते हुए मेरी जन्मभूमि में द्विवेदी जी लिखते हैं "जिस गाँव में साहित्य–चर्चा करने के लिए बैठा हूँ, उसका नाम ओझवलिया है। यह मेरी जन्मभूमि है। इस गाँव के एक हिस्से को 'आरत दूबे को छपरा' कहते हैं। यहीं वस्तुतः मेरी जन्मभूमि है। परन्तु वह हमेशा से इस गाँव का हिस्सा ही रहा है। आरत दूबे मेरे ही पूर्व–पुरुष थे। उन्होंने इस छोटे हिस्से को बसाया था।

**शिक्षा–दीक्षा**

द्विवेदी जी की शिक्षा का प्रारम्भ बसरिकापुर के मिडिल स्कूल से हुआ। मिडिल स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् द्विवेदी जी वाराणसी आ गये किन्तु विपन्नता ने यहाँ भी उनका साथ नहीं छोड़ा। ट्यूशन करके और कथा व्यथकर वे किसी प्रकार अपना खर्च चलाते थे। यही के महामना मदनमोहन मालवीय जी ने सम्पर्क में आये और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने सन 1929 में ज्योतिष विषय में शास्त्राचार्य की उपाधि प्राप्त की।

द्विवेदी जी ने संस्कृत प्राकृत आपश, हिन्दी, बंगला आदि के अध्ययन द्वारा साहित्य के चिरन्तन सौन्दर्य एवं उसके शाश्वत तत्वों का बोध प्राप्त किया। उनका अध्ययन क्षेत्र विषय–वैविध्य की दृष्टि से भी व्यापक रहा। प्राचीन साहित्य एवं तत्सबधी विषयों के साथ आधुनिक ज्ञान विज्ञान से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का भी उन्होंने अध्ययन किया।

**आजीविका**

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण करने के बाद द्विवेदी जी ने साहित्य को ही अपनी आजीविका का साधन बनाया। बनारस में वे मालवीय जी के सम्पर्क में आये। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और मालवीय जी का अच्छा परिचय था। रवीन्द्र जी के अनुरोध पर मालवीय जी ने द्विवेदी जी को शान्तिनिकेतन भेजा जहाँ उन्होने अहिन्दी भाषी लोगों को हिन्दी साहित्य का ज्ञान कराया।

द्विवेदी जी विश्वभारती शान्ति निकेतन में 1930 से 1950 ई. तक हिन्दी अध्यापन का कार्य किया। इसके साथ ही उन्हें विश्वकवि के सम्पर्क में साहित्य को परखने की नयी दृष्टि मिली। उसके बाद बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में 1950 से 1960 ई. तक उन्होंने कार्य किया, इसके बाद जुलाई 1960 से पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी के विनागाध्यक्ष के पद को उन्होंने अलंकृत किया।

### साहित्यिक गतिविधियाँ पुरस्कार एवं सम्मान

द्विवेदी जी सन 1950 तक शान्तिनिकेतन में रहे वहाँ रहते हुए उन्होंने 'विश्व भारतीय' पत्रिका के सम्पादन के अतिरिक्त 'अभिनव भारतीय ग्रंथमाला' कलकत्ता का संपादन किया। सन् 1946 ई में अखिल भारतीय हिन्दी

साहित्य सम्मेलन के कराची अधिवेशन में आयोजित साहित्य परिषद की अध्यक्षता की वहीं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना के तत्कालीन संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय के अनुरोध पर सन् 1962 में हिन्दी साहित्य का आदिकाल विषय पर पाँच भाषण भी दिये हैं। ये राज भाषा आयोग के सदस्य रहे साथ ही हिन्दुस्तानी एकेडेमी और साहित्य अकादमी नयी दिल्ली से अत्यन्त घनिष्ठ रूप में जुड़े रहे। सन् 1970 से 1972 तक केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय की हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण योजना के निदेशक रहे वहीं काशी विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के उपरांत उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के संचालक मडल के अध्यक्ष तथा हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष भी रहे। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष के रूप में तथा आगरा यूनिवर्सिटी के हिन्दी टीचर कान्फ्रेंस के सभापति के रूप में भी ससम्मान कार्य किया।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी का राष्ट्रीय गतिविधियों में भी विशिष्ट योगदान रहा। सन 1955 में इन्हें राष्ट्रीय भाषा कमीशन का सदस्य चुना गया। भारत सरकार द्वारा रूस को भेजे गये त्रिसदस्यीय साहित्यकार प्रतिनिधिमंडल के सदस्य चयनित होकर द्विवेदी जी ने महत्वपूर्ण कार्य किये। विश्वविद्यालय अनुदान समिति उत्तर प्रदेश 1960 के सदस्य के रूप में चयनित हुए। उन्होंने अनेक पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का सम्पादन किया।

सूर साहित्य पर साहित्य समिति इन्दौर ने इन्हें स्वर्ण पदक दिया और कबीर पर उन्ह प्रसिद्ध 'मंगलाप्रसाद परितोषिक' मिला। द्विवेदी जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सफल सम्पादन कार्य भी किया। द्विवेदी जी का सम्बन्ध हिन्दी की अनेक संस्थाओं से रहा है। सन 1940 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने द्विवेदी जी को विशिष्ट प्रतिमा के कारण डी. लिट की उपाधि से अलंकृत किया। भारत के राष्ट्रपति द्वारा इन्हें सन् 1957 में पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया गया। साहित्य अकादमी ने भी सन् 1962 में टैगोर पुरस्कार से सम्मानित कर उन्हें गौरवान्वित किया। सन 1965 मार्च में हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की है। यह इस संस्था की सर्वोच्च उपाधि है। इस तरह द्विवेदी जी को अपने परिश्रम का फल अपने जीवन काल में ही देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

**साहित्य लेखन के प्रति प्रेरणा एवं अभिरूचि**

आचार्य द्विवेदी जी बाल्यकाल से ही मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न थे। उनके प्राइमरी स्कूल के हेड मास्टर पण्डित श्री बाँके बिहारी दूबे थे, जिन्होंने आसपास के गाँवों के लड़कों में पठन–पाठन के प्रति अभिरूचि जगायी। द्विवेदी जी पर उनकी विशेष कृपा थी. उन्होंने ही हिन्दी साहित्य और विभिन्न विषयों के प्रति द्विवेदी जी को प्रेरित किया। अतः द्विवेदी जी ने अपने बाल्यकाल के प्रेरणा स्रोत को सदा स्मरण में रखा और अपनी एक विशेष कृ ति 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' का 'पितृव्य पंडित जी' को ससम्मान समर्पित किया।। वाराणसी में मालवीय जी के सम्पर्क से उन्हें शान्ति निकेतन में अध्यापन कार्य करने का गौरव प्राप्त हुआ था। शाति निकेतन के सौम्य वातावरण का प्रभाव पड़ा और उनकी प्रतिभा निखरने लगी। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सानिध्य को अपने जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना तथा अपने पूर्व जन्म के पुण्य का फल मानते है। साहित्यकार द्विवेदी स्वयं को भले ही भूल जाये किन्तु गुरूदेव के गौरव से उनकी आत्मा प्रत्येक क्षण आप्लावित रहती है. वे लेख लिख रहे हो भाषण दे रहे हो या किसी सभा में हो वे राजनीतिज्ञों के बीच में हो या धर्माचार्यों के साथ गुरूदेव की अमर वाणी प्रत्येक समय उनके कानों में गूँजती रहती है।

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व पर रवीन्द्रनाथ जी का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। द्विवेदी जी के प्रत्येक पंक्ति में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का स्वर प्रतिबिम्बित एवं व्यंजित होता है। गुरुदेव के सानिध्य में ही उन्हें जीवन का वह व्यापक दृष्टिकोण सौन्दर्य का वह शाश्वत मानदण्ड एवं संस्कृति का वह उदात्त रूप मिला है जो उनके साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगत होता है एक स्थान पर उन्होंने रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में लिखा है कि ''ग्यारह वर्षों तक लगातार रवीन्द्रनाथ जीरो महापुरूष के संसर्ग में रहना सौभाग्य की बात ही कही जायगी मुझे यह सौभाग्य मिला था जानकर और अनजान में मैंने उनसे कितना लिया है।'' इसका कुछ हिसाब नहीं है।'' इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी

शान्तिनिकेतन के ही आचार्य क्षितिमोहन सेन से भी प्रभावित थे– ''मध्यकालीन बोध के निर्माण में आचार्य क्षितिमोहन सेन की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। आचार्य द्विवेदी की फक्कड़ता बेपरवाही और अलमस्ती के विकास में वैरागी साधक क्षितिमोहन सेन के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।''

वह गांधी जी के जीवन–दर्शन से भी प्रभावित थे। 'कल्पलता' निबंध संग्रह में लिखते हैं–'वह जिध मुड़ा, जीवन लहरा उठा, वह जिधर झुका, प्रेम बरस पड़ा, वहां जिधर चला जमाना ढरक पड़ा। वह शक्ति का भण्डार था, क्योंकि वह सच्चे अर्थ में भक्त था। उसने अपने राम को अपना सर्वस्व भेंट कर दिया था। इसीलिए यह सब कुछ को अपना सका था।

धन्य है वह देश जिसने गांधी को पैदा किया धन्य है वह भूमि जिसने गांधी को धारण किया धन्य है वह जन समाज जिसके लिए उसने अपने को निःशेष भाव से दे दिया। गांधी का आना मंगल का सूचक था जाना किसी महान् भविष्य का सूचक बने।

### 18.3.2 कृतित्व

द्विवेदी जी गांधी जी से अत्यधिक प्रभावित थे सहजता में अपना नैसर्गिक आकर्षण होता है। व्यक्तित्व के धनी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई देती है। द्विवेदी जी चिन्तन के क्षणों में व्यक्ति व सामाजिक हित को ध्यान में रखकर मूल्यों के सर्वोत्तम स्वरूप को अपनी रचना में प्रमुख स्थान देते है तभी साहित्य का वास्तविक स्वरूप लोकमंगल या चेतना के रूप में हमारे सामने आता है उनकी महत्वपूर्ण प्रकाशित कृतियों है–

**आलोचना–साहित्य**

सूर–साहित्य (1936 ई.) कबीर (1942 ई.), आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विचार : साहित्य का मर्म (1949 ई.), नाथ सम्प्रदाय (1950 ई.), लालित्य मीमांसा (1962 ई.), साहित्य–सहचर (1965 ई.) कालिदास की लालित्य योजना

**इतिहास ग्रंथ**

हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940 ई.) हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1952 ई.) और हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास (1953 ई.)

**निबन्ध–साहित्य**

अशोक के फूल (1948 ई.), कल्पलता (1951 ई.), विचार और वितर्क (1954 ई.), विचार–प्रवाह (1959 ई) कुटज (1964 ई.) आलोक–पर्व (1972 ई.)

**उपन्यास**

बाणभट्ट की आत्मकथा (1947 ई.) चारू चन्द्रलेख (1963 ई.), पुनर्नवा (1973 ई.) और अनामदास का पोथा (1976 ई.)

**सम्पादन**

नाथ सिद्धो की बानियाँ (1957 ई.), संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो (1957 ई.). सदेश रासक (1960 ई.) दशरूपक (1963 ई.)

**मेघदूत एक पुरानी कहानी**

**एकाकी और वार्तालाप**

बसन्त विभ्राट– एकांकी सुदिन्या एकांकी शतरंज के खिलाड़ी–एकांकी, साहित्य का नया कदम (वार्तालाप), रीतिकाव्य (वार्तालाप) इतिहास का सत्य (वार्तालाप)

**अनुवाद**— लालकनेर मेरा बचपन (1956 ई.), दो बहनें (1965), विश्व—परिचय, प्रबन्ध चिन्तामणि, एकोत्तर शतीं की 24 कविताओं का अनुवाद, रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताओं का अनुवाद।

**कविता**

प्रकाशित निबंध संग्रहों के अन्तर्गत कहीं—कहीं लिखित, उल्लेखमात्र कुछ कविताओं के लेखन का उल्लेख भर मिलता है।

**भूमिकायें**

विभिन्न ग्रन्थों की 'भूमिका' अथवा प्रस्तावना के रूप में विस्तृत अनुशीलन।

**सांस्कृतिक साहित्य**

प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद मध्यकालीन धर्म साधना (1952 ई.) सहज—साधना (1963 ई.)

'महापुरुषों का स्मरण' (1987 ई.) का प्रकाशन इनकी मृत्यु के बाद किया गया है। यह एक संस्मरण ग्रंथ है जिसमें ज्योतिर्विद आर्यभट्ट से लेकर कवि श्री सोहन लाल द्विवेदी तक कुल 29 महापुरुषों को याद किया गया है। पत्र हजारी प्रसाद द्विवेदी (1983 ई.) शीर्षक से बिखरे हुए महत्वपूर्ण पत्रों एवं ऐतिहासिक व्याकरण (हिन्दी भाषा का वृहत् ऐतिहासिक व्याकरण) का संपादन इनके सुपुत्र मुकुन्द द्विवेदी द्वारा किया गया है। यह समूचा कृतित्व 'हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली' शीर्षक से राजकमल प्रकाशन द्वारा कुल बारह खण्डों में प्रकाशित कर दिया गया है।

| | |
|---|---|
| 1. पहला खण्ड | उपन्यास 1 |
| 2. दूसरा खण्ड | उपन्यास 2 |
| 3. तीसरा खण्ड | हिन्दी साहित्य का इतिहास |
| 4. चौथा खण्ड | प्रमुख सन्त कवि |
| 5. पांचवाँ खण्ड | मध्यकालीन साधना |
| 6 छठवाँ खण्ड | मध्यकालीन साहित्य |
| 7. सातवाँ खण्ड | लालित्य तत्व एव साहित्य सर्ग |
| 8 आठवाँ खण्ड | कालिदास और रवीन्द्र |
| 9. नौवाँ खण्ड | निबंध—1 |
| 10 दसवाँ खण्ड | निबंध— 2 |
| 11 ग्यारहवाँ खण्ड | विविध साहित्य |
| 12. बारहवाँ खण्ड | हिन्दी का भाषा बृहत् ऐतिहासिक व्याकरण |

डॉ. द्विवेदी का रचना संसार निश्चित रूप में हिन्दी के लिए अमूल्य और है। उच्चकोटि के उपन्यासकार, आलोचक, निबंधकार एवं शोधकर्ता थे। साहित्य के इन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और विशिष्ट कृतित्व के कारण विशेष यश के भागी हुए। उनका व्यक्तित्व गरिमामय चित्तवृत्ति उदार और दृष्टिकोण व्यापक है। उनकी प्रत्येक रचना पर उनके इस व्यक्तित्व की छाप देशी जा सकती है।

**साहित्येतिहासकार –**

द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इतिहासकार के रूप में प्रवेश किया। द्विवेदी जी लिखते है 'आज से लगभग हजार वर्ष पहले हिन्दी साहित्य बनना शुरू हुआ था। इन हजार वर्षों में भारतवर्ष का हिन्दी भाषी जन—समुदाय क्या सोच समझ रहा था इस बात की जानकारी का एक मात्र सहान हिन्दी साहित्य ही है।' उनकी कृति 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' तथा 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' है। उन्होने सिलसिलेवार हिन्दी साहित्य का इतिहास नहीं लिखा लेकिन हिन्दी इतनी महत्वपूर्ण स्थान है।

'हिन्दी साहित्य की भूमिका' आचार्य जी का अपना पहला इतिहास ग्रन्थ है. जिसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों की विशद् लेखन परंपरा को आगे बढ़ाया। हिन्दी साहित्य का इतिहास मूलतः मानव इतिहास है। राजनीति पानिक आर्थिक सभी प्रकार के इतिहास अपने क्षेत्रों में मानव की विकास का ही अध्ययन करते है। साहित्य का केन्द्र भी मनुष्य ही है चाहे वह शिक्षित ही या अशिक्षित हो द्विवेदी जी कहते हैं– ''मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता है तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता है जैसा आज है।'' सन 1952 में हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास प्रकाशित हुआ जिसका उद्देश्य अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने में आसानी हो। प्राचीनता की अवधारणा की व्याख्या करते हुए उन्होंने हिन्दी साहित्य का आदिकाल ग्रन्थ लिखा। द्विवेदी जी ने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना के तत्कालीन संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय के अनुरोध पर सन् 1952 में हिन्दी साहित्य का आदिकाल विषय पर पाँच भाषण दिये। वस्तुतः यह पुस्तक द्विवेदी जी के पाँच शोधपरक व्याख्यानों का संग्रह है। प्रथम व्याख्यान में अदिकालीन भाषा की समस्या को उठाया है। द्वितीय व्याख्यान में अप्रभंश भाषा के दो रूपों का वर्णन है। एक वह अपभ्रंश भाषा जिसका व्याकरण स्वयं हेमचंद्र ने लिखा था, दूसरी ग्राम्य अप्रभंश भाषा जो संभवतः चलती जुबान थी। आगे अप्रभंश तथा हिन्दी के पारस्परिक संबंध का जिक्र किया गया है। पंचम व्याख्यान में अपभ्रंश के छंदों की चर्चा की गयी है। डॉ. गणपतिचन्द्र के अनुसार ''इतिहासकार के रूप में उन्होंने उसकी बाहा चार दीवारियों एवं उसके स्थूल ढांचे में भले ही कोई परिवर्तन न किया हो किन्तु उसकी आधारभूत परंपराओं उसके अन्तर्निहित तत्वों एवं उसके विकास की सूक्ष्म रेखाओं का उन्होंने अत्यधिक परिवर्तन–परिवर्द्धन एवं संशोधन करते हुए उसे एक नया रूप एवं नया वैभव प्रदान किया है। अतः द्विवेदी जी ने साहित्येतिहास लेखन को नया और सम्यक संदर्भ प्रदान किया निश्चय ही वे हिन्ना के सदस अधिक सशक्त इतिहासकार है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. 'कल्पलता' किसका निबंध संग्रह है ?
2. हजारी प्रसाद सिवेदी का जन्म कब हुआ था ?
3. सूर साहित्य किस विधा की रचना है ?
4. स्वति प्रसाद द्विवेदी को किस रचना पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था ?
5. अनामदास का पोथा किसका उपन्यास है ?
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी का निधन कब हुआ था ?

**18.4 सारांश**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली एवं उनका स्वभाव बड़ा सरल एवं उदार था। द्विवेदी जी हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला भाषाओं के विद्वान थे। उनका हिन्दी निबंध और आलोचनात्मक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। उच्चकोटि के निबंधकार और सफल आलोचक थे।

**18.5 कठिन शब्दावली**

**संकर** – मिश्रित

**विधु** – चन्द्रमा

**वर्ण** – रंग

**शौर्य** – वीरता

**पाणि** – हाथ

## 18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी।
2. 1907 ई. में।
3. आलोचनात्मक।
4. आलोक पर्व।
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. 19 मई 1979 ई. में।

## 18.7 संदर्भित पुस्तकें


1. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, साहित्यकार और चिंतक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।
2. नामवर सिंह, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की जय यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।


## 18.8 सात्रिक प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एक कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध साहित्य में योगदान का वर्णन कीजिए।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक विशेषताएँ बताइए।

*****

# इकाई–19

# कुटज : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**

19.1 भूमिका
19.2 उद्देश्य
19.3 कुटज : पाठपरक अध्ययन
19.3.1 कुटुज निबंध की तात्विक समीक्षा
19.3.2 कुटुज निबंध का सार
19.3.3 कुटुज की भाषा शैली
स्वयं आकलन प्रश्न
19.4 सारांश
19.5 कठिन शब्दावली
19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
19.7 संदर्भित पुस्तकें
19.8 सात्रिक प्रश्न

## 19.1 भूमिका

इकाई अठारह में हमने हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन परिचय के बारे में गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई उन्नीस में हम हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'कुटज' के बारे में अध्ययन करेंगे कि 'कुटुज' निबंध का पाठपरक अध्ययन कैसे करेंगे, इस निबंध का सार, भाषा शैली क्या है और तात्विक समीक्षा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 19.2 उद्देश्य

इकाई उन्नीस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. 'कुटज' निबंध की तात्त्विक समीक्षा क्या है?
2.' कुटज' का सार क्या है।
3. 'कुटज' निबंध की तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे ?
4. 'कुटज' निबंध की भाषा शैली क्या है ?

## 19.3 कुटज निबंध का पाठपरक अध्ययन

'कुटज' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का ललित निबंध है। ललित निबंधों को स्वतंत्र, एवं सुस्थिर रूप प्रदान करने में आचार्य जी का अभूतपूर्व योगदान है। सृजनात्मकता, सांस्कृतिक रागत्मकता, गुरूता, औदात्य, विनोदप्रियता एवं प्रौढ़ शैली, कलात्मकता, ऋजुता आदि गुणों से मण्ड़ित उनके ललित निबंधों में हिन्दी ललित का पूर्ण उत्कर्ष विद्यमान है। ललित निबंध के एकसूत्रता, स्वच्छंदता, संक्षिप्तता, रागात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, कलात्मकता सभी तत्व 'कुटज' निबंध में विद्यमान है। छः पृष्टों का यह निबंध बहुत ही रोचक है, 'कुटज' को जानने की उत्सुकता आरंभ से ही पाठक को अपनी ओर खींच लेती है। "अरे, यह तो कुटज है! संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित किंतु कवियों द्वारा अवमानित यह छोटा–सा शानदार वृक्ष 'कुटज' है।" 'कुटज' के व्युत्पतिपरक अर्थ का वर्णन करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं–

"कुटज अर्थात् तो कुट से पैदा हुआ है। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। कुटिया या कुटीर शब्द भी कदाचित इसी शब्द से संबंधित है। क्या इस शब्द का अर्थ घर ही है?

व्यवहारिक अर्थ के मूल में जाते–जाते द्विवेदी जी 'कुटज' किस भाषा से संबंधित है, आर्य भाषाओं का शब्द है भी या नहीं। इस संबंध में कहते हैं – संस्कृत में 'कुटज' रूप भी मिलता है और कुटच भी। मिलने को तो 'कुटज' भी मिल सकता है। तो यह शब्द किस जाति का है? आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता। सिलवा लेवी कह गये हैं कि संस्कृत भाषा में फूलों, वृक्षों और खेती–बागवानी के अधिकांश शब्द आग्नेय भाषा–परिवार के हैं यह भी वहीं का तो नहीं...।"

आशावादिता द्विवेदी जी के निबंधों की प्राणशक्ति है। अपने निबंधों में निराशा को आशा में बदलना उनके लेखन क्षमता की सफलता है। 'कुटज' के आस–पास विपरीत परिस्थितियां है पर भी वह अपराजमेय जीवनी –शक्ति बन लहलहा रहा है –

"यह जो मेरे सामने कुटज का लहराया पौधाखंड है, वह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवनी–शक्ति की घोषणा कर रहा है। इसलिए वह इतना आकर्षक है। नाम है कि हजारों वर्ष से जीता चला आ रहा है। कितने नाम आये और गये। दुनिया उनको भूल गई, वे दुनिया को भूल गये। मगर कुटज है कि संस्कृत की निरंतर स्फीयमान शब्दराशि में जो जम के बैठा सो बैठा ही है और रूप की तो बात ही क्या।"

कुटज आशावादिता के साथ–साथ उपदेशात्मक शैली द्वारा भी संदेश देते हैं –

"दूर पर्वत राज हिमालय की हिमाच्छादित चोटियां हैं, वहीं भगवान महादेव समाधि लगाकर बैठे होंगे, नीचे सपाट पथरीली जमीन का मैदान है, कहीं–कहीं पर्वतनंदिनी सरिताएं आगे बढ़ने का रास्ता खोज रही होंगी। बीच में यह चट्टानों की ऊबड़ खाबड़ जयभूमि है। सूखी, नीरस कठोर। यही आसन मारकर बैठे हैं मेरे चिर परिचित दोस्त कुटज।............ जीना चाहते हो? कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग संग्रह करो, झंझा–तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर, अवकाश की लहरी में झूमकर, उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है।"

'कुटज' के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि इस संसार में जो भी क्रियाकलाप हो रहे हैं, वह सब उस ईश्वर की इच्छा से हो रहा है। उस ईश्वर की योजना अनुसार। इसलिए व्यर्थ में अभिमान नहीं करना चाहिए –

"मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास–विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाए, बहुत अच्छी बात है; नहीं मिल सका, कोई बात नही; परंतु उसे अभिमान नहीं, होना चाहिए।

राजा जनक की भाँति संसार में रहकर संपूर्ण भोगों को भोगकर भी हमें उनसे मुक्त रहना चाहिए। इसलिए 'कुटज' कहता है।

"मैं स्वार्थ के लिए अपने मन को सदा दूसरे के मन में घुसाता नहीं फिरता, इसलिए मैं मन को जीत सका हूं, उसे वश में कर सका हूं।"

अतः स्पष्ट है 'कुटज' निबंध शिवालिक की सूखी और नीरस पहाड़ियों पर उगने वाले वृक्ष की विशेषताओं का वर्णन करता है। वह किसी से सुविधा की अपेक्षा नहीं रखता बल्कि उसे जो चाहिए अपने श्रम से अर्जित करता है। 'कुटज' स्वावलम्बी होने के साथ–साथ प्रेरणा स्त्रोत भी है। उसकी जड़ों में इतनी शक्ति होती है कि वे पत्थरों को भेदकर गहरे उतर जाती है और अपने लिए जल स्त्रोत को ढूंढ निकालती है। वह चाहता है कि यदि वह छाया नहीं दे सकता तो इस कमी के कारण उसके बड़े पत्तों और पुष्पों को विस्मृत नहीं करना चाहिए। वास्तव में यह भी द्विवेदी जी का परोक्ष संकेत है उन कवियों, लेखकों की ओर, जो नाम को ही सब कुछ मानते हैं रूप को नहीं। इसलिए कुटज यह प्रश्न भी खड़ा करता है – 'नाम बड़ा या रूप'?

### 19.3.1 कुटज निबंध की तात्विक समीक्षा

'कुटज' ललित निबंध की तात्विक समीक्षा करने से पहले हम ललित निबंध को जानेंगे। ललित निबंध क्या होता है। वास्वत में ललित निबंध, वह निबंध है जिसमें लेखक किसी भी विषय का सूत्र पकड़ कर ज्ञान–विज्ञान, लोक जीवन, प्रकृति, धर्म, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों में स्वच्छंद विचरण करता है और इस प्राकर विभिन्न प्रसंगों से विषयान्तर कर रसात्मकता का समावेश करके आकर्षक एवं परिष्कृत भाषा शैली के माध्यम से अपने रागात्मक व्यक्तित्व की व्यजंना करता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का आगमन हिन्दी ललित निबंधों के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी घटना है उन्होंने ललित निबंधों को एक स्वतंत्र एवं सुस्थिर रूप प्रदान किया है, सृजनात्मकता, सांस्कृतिकता रागात्मकता, गुरूता, औदात्य, विनोद प्रियता एवं प्रौढ़ शैली कलात्मकता ऋजुता आदि गुणों से मण्ड़ित उनके ललित निबंधों में हिंदी ललित का पूर्ण उत्कर्ष विद्यमान है। ललित निबंध की तात्विक समीक्षा के निम्नलिखित आधार होते हैं –

1. रागात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यंजना।
2. एकसूत्रता।
3. संक्षिप्तता।
4. स्वच्छन्दता।
5. कलात्मकता।

**1. रागात्मक व्यक्तित्व की अभिव्यंजना** – ललित निबंधों में लेखक एकदम अनावृत होकर पाठक के सन्मुख आता है, पात्रों इत्यादि के बंधन से रहित वह प्रत्यक्षतः अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। किसी आत्मीय के पत्र की भांति एकदम सीधे स्वंय को उसमें उड़ेलता है। लोक संस्कृति, जीवन, प्रेम द्विवेदी जी के साहित्य की विशेषता है। उनकी कल्पना फूलों या वृक्षों के बहाने, प्राचीन लोक जीवन में विचरण करती है। जैसे 'कुटज' निबंध में लेखक कुटज के मूल, उत्पत्ति पर चर्चा करते हुए कहते हैं –

"कुटज अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ हो। कुट घड़े को भी कहते है, घर को भी कहते हैं, कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे कोई और बात होगी।"

मानवतावाद के प्रबल पक्षधर द्विवेदी जी मनुष्य उनके लिए चरम सत्य था और मनुष्यता उनका चरम लक्ष्य। उनका दृढ़ विश्वास था इस संसार में जो भी क्रियाकलाप हो रहे हैं, वह सब उस ईश्वर की इच्छा से हो रहा है। अपने व्यक्तित्व की अभिव्यंजना वह कुटज के माध्यम से करते हैं। "मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास–विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाए, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परंतु उसे अभिमान नहीं करना चाहिए।"

'कुटज' द्विवेदी जी के रागात्मक व्यक्तित्व की मोहक अभिव्यक्ति है।

**2. एकसूत्रता** – एकसूत्रता ललित निबंधों का महत्वपूर्ण तत्व है। एकसूत्रता के अभाव में ललित निबंधों का सृजन ही हो सकता है। 'कुटज' निबंध में स्वच्छंदता के साथ–साथ एकसूत्रता का गुण भी विद्यमान है। पाठक को पढ़ते समय कहीं भी क्रमभंग अथवा अनर्गलता का अहसास नहीं होता है। 'कुटज' के प्रारंभ में हिमालय में फैली शिवालिक श्रृंखलाओं की चर्चा, गिरिकूट पर उत्पन्न कुटज कहने में आनंद, अगस्त्य मुनि का प्रसंग, याज्ञवल्क्य की चर्चा इत्यादि, कहने का अभिप्राय कुटज निबंध में एक क्रम है जिसमें एक प्रसंग के बाद दूसरा प्रसंग सामने आ जाता है।

**3. संक्षिप्तता** – हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सभी ललित निबंध 'संक्षिप्तता' की कसौटी पर खरे उतरते है। संक्षिप्तता से अभिप्राय परिमाणात्मक नहीं है बल्कि निबंध को पढ़ते हुए ऊब, बोझ, अरोचकता का अनुभव न

हो वरन् समाप्त होने पर यह लगे कि अभी कुछ और भी होता, तृप्ति और प्यास का सम्मिलित प्रभाव देर तक मन पर छाए रहे। छः पृष्ठों के इस ललित निबंध को जानने की उत्सुकता आरंभ से ही पाठक को अपनी ओर खींच लेती है।

"कुटज अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ है। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं।" कुटज को अपराजेय मानते हुए, उसकी जिंदादिली का सुंदर चित्रण है–

"यह जो मेरे सामने कुटज का लहराया पौधा खड़ा है, वह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवनी–शक्ति की घोषणा कर रहा है।" पाठक की कल्पना द्विवेदी जी की कल्पना के साथ–साथ चलती है जिससे पाठक को न ऊब महसूस होती है, न थकान। वरन् तादात्म्य की स्थिति के कारण रसानुभूति होती है।

**4. स्वच्छंता** – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के सभी ललित निबंध मुक्त आसंग पद्धति पर लिखे गये है। साधारण सी बात को भी अपनी इन्द्रधनुषी कल्पना के आश्रय से अत्यंत विस्तृत आयाम प्रदान कर देते हैं। पाठक भी उनके साथ–साथ विभिन्न लोकों में विचरण करता है जैसे कुटज में उन्होंने लिखा हैं –

"मन व्याकुल हो गया, स्मृतियों के पर फैलाकर सुदूर अतीत के कोनों में झांकता रहा।"

**5. कलात्मकता** – ललित निबंधों में शैलीगत विलास अत्याधिक महत्वपूर्ण होता है। भाषागत चयन व शैली विन्यास का सुंदर चित्रण 'कुटज' में मिलता है। भाषागत आधार पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग है जैसे श्रृंखला, स्त्रोत, स्वीकृति, अर्घय, सन्तप्त, वितृष्णा, पाषाण, हिमाच्छादित, जिजीविषा मिथ्या, आडम्बर आदि।

बोलचाल के शब्दों से युक्तरूप – द्विवेदी जी ने अपनी भाषा को सहजता, सरलता एवं स्वाभाविकता के गुण से सम्पन्न बनाने के लिए बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है।

"गोया कुटज अदना सा विरछे हो। छाहं ही क्या बड़ी बात है, फूल क्या कुछ भी नहीं? छाया के लिए न सही फूल के लिए तो कुछ सम्मान होना चाहिए। मगर कभी–कभी कवियों का भी 'मूड' खराब हो जाया करता है। वे भी गलतबयानी का शिकार हो जाया करते है।

**शैली चित्रण** में द्विवेदी जी का विद्वान हंसमुख, दृढ़ ओजस्वी, सौंदर्य प्रेमी, भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ हैं। जैसे **गवेषण्णव्यक** शैली का उदाहरण देते हुए कहते हैं – 'शब्दों के रूप, मूल, व्युत्पति पर विचार करने पर शैली गवेषणात्मक हो जाती है। 'कुटज' निबंध में कुटज की व्युत्पति पर जहाँ विचार करते हैं वहाँ उनकी शैली गवेषणात्मक हो जाती है।

"कुटज अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ हो। कुट घड़े को भी कहते है, घर को भी कहते हैं, कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे कोई और बात होगी।"

**संलाप शैली** से 'कुटज' में नाटकीयता, रोचकता एवं सरसता का संचार हुआ हे। प्रकृति के विभिन्न उपादानों से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करते हुए इस शैली का प्रयोग किया है। कुटज को अपना दोस्त बनाते हुए कहते हैं –

"पहचानता तो हूं, अवश्य पहचानता हूं। लगता है, बहुत बार देख चुका हूं, पहचानता हूं, उजाड़ के साथी, तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूं।"

**उपदेशात्मक शैली** – मानवतावादी, आस्तिक एवं गहन आस्था से युक्त साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की शैली निम्नलिखित पंक्तियां इस शैली का सुंदर उदारहण है–

"जो समझता है कि दूसरों का उपकार कर रहा है वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका उपकार कर रहे हैं वह भी बुद्धिहीन है। कौन किसका उपकार करता है, कौन किसका उपकार कर रहा है? मनुष्य केवल जी रहा है? अपनी इच्छा से नहीं। इतिहास विधाता की योजना के अनुसार।"

### 19.3.2 'कुटुज' का सार

'कुटुज' का सार/अंतर्वस्तु–'कुटुज' ललित निबंध है। अंतर्वस्तु कुरतः नजिकका का है, जी पुष्पों में भ हरीको नियति के रूप में अधिक जाना जाता है। नाते द्विती बहुत से पूर्ण विदुतों को करते चलते हैं। दिवटीनी के जाना नद्याःहै। विशेषत संस्कृत, प्राकृत अपधा और बगला पाया साहित्य पर के अधिकारपूर्वक लिखते रहे हैं। वे संस्कृत केसी विद्वान थे ही कित उनका वैशिष्टयता को पाण्डित्य नहीं है जो शुष्क होता है। वे साहित्य की सरमता के पारग्री के और सर्जना के क्षेत्र में थे उसका भरपूर उपयोग करते हैं। फुटन या अशोक के फूल अथवा 'देवदास' जैसे वृक्षो को लेकर लिखे गए निश्धों में नौरस चारिकाय होकर द्विवेदी जी के ललित और उन्मुक्त भावों की प्रवाहपूर्ण भाषा में अभिव्यकित है। दिवोती की निजता का प्रकाशन मोहक और आामधर्थक हैं। फुटत के नाम, रूप, उत्पत्ति आदि की शास्त्रीय सधारणाओं के प्रकाशन के साथ है उसे जीपल रूप में प्रस्तुत करते हैं और फुटज को एक नया व्यक्तित्य प्रदान करते है। तब कुटक वृक्ष न होकर व्यक्ति रूप में रूपांतरित होता हुआ प्रतीत होता है। यह रूपांतरण पाठक को जब दृष्टिगत होने लगता है तब वह भाव–विभोर होकर रसमग्न हो जाता है।

प्रारंभ में द्विवेदी जी उस स्थल विशेष को प्रस्तुत करते हैं। जहां कुटज उगता है, पनपता है और पुष्पित पल्लवित होता है। यह स्थान है शिवालिक–श्रृंखला। हिमालय की निचली पहाड़ियाँ। वे शिवालिक का अर्थ बतलाते हुए लिखते हैं 'शिवालिक' या शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा। 'शिव की लटियायाी जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती है। यह पर्वत श्रृंखला शिव जटाजूट के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व करती है। आगे 'हिमालय' और 'पर्वत' के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं यथा पूर्व और अपर समुद्र महोदधि और आकार दोनों को दोनों भुजाओं से थाहता हुआ हिमालय 'पृथ्वी का मानदंड' कहा जाए तो गलत क्या है। हिमालय की शिवालिक श्रृंखला की भूमि का स्वरूप वर्णन करते हुए वे विषय की पृष्ठभूमि बताते हैं। जहाँ कुटज उगता है उस भूमि पर हरियाली नहीं है, दूब तक सूख गई है, काली–काली चट्टानों के बीच थोड़ी–थोड़ी रेती है। यहीं कुटज उगता है। द्विवेदी जी प्रश्न करते हैं 'रस कहाँ है? अब कुटज पेड़ का वर्णन देखिए ये जो ठिगने से लेकिन शानदार दरखत गर्मी की भयंकर मार खा–खाकर और भूख–प्यास की निरंतर चोट सहकर भी जी रहे हैं, इन्हें क्या कहूँ। सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं हंस भी रहे हैं। फिर द्विवेदी जी दो प्रश्न करते हैं– 'बेहया है क्या? या मस्तमौला ? प्रश्न का उत्तर पाठकों पर छोड़कर द्विवेदी जी व्यंग्य भी करते हैं और वस्तु का वैशिष्ट्य भी स्पष्ट काते है। यथा कभी–कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़े काफी गहरी पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस अतल गहवर में अपना भोग्य खींच लाते हैं। अर्थात् कुटज ऊपर से ही बेहया प्रतीत होता है पर उसकी जड़ें गहरी हैं और इस प्रश्न का कि रस कहीं है– उत्तर है 'पाषाण की छाती के बहुत नीचे। इस रस को ये वृक्ष जाने कहाँ से खींच लाते हैं, वही इनका भाग्य है। का स्वरूप अद्भुत है। ये वृक्ष इतनी कठिनाई के बीच भी मुस्कराते रहते हैं, ये द्वंद्वासीत हैं, अलमस्त हैं। इन इन वृक्षों को हम नहीं जानते। न नाम, कुल, न शील, पर लगता है ये हमें अनादि काल से जानते हैं।' द्विवेदी जी इस पहचान के बाद कुटज के नाम रूप पर विस्तृत चर्चा करते हुए, नाम और रूप की व्याख्या और तुलना करते हैं। बड़ा कौन है? रूप या नाम? द्विवेदीजी सूत्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं 'नाम इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है।' रूप व्यक्ति सत्य है, नाम समाज सत्य। वे बाद में अपने विषय का विशद विस्तार करते हैं। निबंध का विषय है कुटज, किंतु वस्तु विवेचन में उनकी ज्ञान–दृष्टि है। अंततः ये घोषणा करते हैं– संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित, किंतु कवियों द्वारा अवमानित, यह छोटा सा शानदार वृक्ष कुटज है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुत बड़े भाषाशास्त्री भी थे, फलतः कुटज शब्द की व्युत्पत्ति का भी ये नाना प्रकार से आकलने करते हैं। गिरिकूट पर उत्पन्न होने के कारण यह कुटज है। अर्थात गिरकूट पर जन्म लेने वाला। एक दूसरी व्युत्पत्ति है। कुटज अर्थात जो 'कटु' से पैदा हुआ है। कुट के दो अर्थ हैं। (1) घड़ा, (2) घर। तब क्या कुट पड़े से उत्पन्न है ? घड़ा क्या गमला है ? हो तो भी कटु का अर्थ इन दोनों से मेल नहीं खाता। संस्कृत

में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' 'कुटनी', 'कुटटन्नी' शब्द हैं, जो दासी के लिए प्रयुक्त होते हैं, इसी तरह कुटिया या कुटीर शब्द भी है। संस्कृत में 'कुटेज' और 'कुटज' शब्द भी मिल जाते हैं। किंतु इन सबसे कुटज वृक्ष का अर्थ असम्बद्ध ही रह जाता है। द्विवेदीजी इसे आग्नेय भाषा परिवार का मानते हैं, जो आस्ट्रो–एशियाटिक परिवार का नाम होगा। अथ इसे 'कोल परिवार' की भाषा कहा जाता है। हो सकता है यह शब्द इस परिवार का हो। इस शब्द का अर्थ पूरी तरह से द्विवेदी जी भी नहीं का पाए हैं। वे इतना अवश्य मानते हैं कि यह शब्द 'आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता।' संस्कृत में दूसरी भाषा के प्रवेश के इस कथन के द्वारा वे संस्कृतियों के समन्वय की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

चर्चा के बाद लेखक का सर्जनात्मक रूप फिर सामने आने लगता है। वे कुटज की विशेषताओं का वर्णन करते हुए पुनः ललित भाव और ललित भाषा के साथ प्रवहमान हो उठते हैं। कुटज की पहली विशेषत्ता है, 'अपराजेय जीवनी शक्ति।' यह नाम रूप दोनों में है। कितने ही नाम आए और चल गए पर संस्कृत साहित्य में यह नाम जम कर बैठा है। कालिदास को मेघ की अर्चना के लिए कुटज पुष्प ही तो मिले थे। नाम के साथ रूप भी अपराजेय शक्ति के साथ द्विवेदी जी के शब्दों में 'चारों ओर कुपित यमराज के दारुण निःश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रूद्ध अज्ञात जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूखे गिरी कांतर में ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्यां होती है। कितनी कठिन जीवनी शक्ति है। प्राण को प्राण पुलकित करता है, जीवनी शक्ति ही, जीवनी शक्ति को प्रेरणा होती है। यह उद्धरण अपराजेय जीवनी शक्ति की पूरी–पूरी व्याख्या समर्थ भाषा में करता है। यह जीवनी शक्ति है जो गर्म हवाओं में भी रूप को मलिन नहीं होने देती। यह जीवनी शक्ति ही है, जो पत्थर को फोड़कर बहुत गहराई से रस निकाल लाती है और तमाम विपदाओं और कठिनाइयों के बीच में जीवंत बनाए रखती है। यह सत्य कुटज के माध्यम में मनुष्य को अपराजेय जीवनी शक्ति की व्याख्या भी है। इसके कारण ही आनंद भी है और जीवन की प्रेरणा भी है। यही कुटज की अभिव्यक्ति है। इस कुटज के रूपांतरण को पहचान कर ही हम निबंध लेखक को पहचान पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो हजारी प्रसाद द्विवेदी अब सीधे–सीधे मनुष्य को सम्बोधित कर रहे हैं–जीना चाहते हो? कठोर पाषण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर झंझा–तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है'।

द्विवेदीजी की भाषा की निजी विशेषता है। कुटज तो माध्यम है। वास्तविक तो द्विवेदी जी का सत्य है जो उपर्युक्त शब्दों में झरने की भाँति फूट रहा है। इसीलिए वे जीवन को कला और तपस्या दोनों मानते हैं। जीवन की कला क्या है और तपस्या क्या है? इसे वे और भी स्पष्ट करते हैं।

जीवन जीना केवल जीवित रहना ही नहीं है। सारा संसार केवल स्वार्थ के लिए जीवित है। हजारी प्रसाद द्विवेदी चिंतन अर्थात् बुद्धि पक्ष और भाव अर्थात् हृदय पक्ष को साथ–साथ लेकर चलते हैं। द्विवेदीजी जहाँ आवश्यक है विचार पक्ष को शुद्ध रूप में रखते हैं अन्यथा वे ललित भाव से विषय को प्रस्तुत करते हैं। पुत्र हो या प्रिया सभी अपने मतलब से प्यार करते हैं। अपने समर्थन में द्विवेदी जी पश्चिम के हाब्स और हेल्वेशियस का उल्लेख करते हैं। वे संस्कृत का एक वाक्य भी प्रस्तुत करते है– 'आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवतु' द्विवेदीजी स्वार्थ की शास्त्रगत चर्चा करते हुए भावुक हो उठते हैं और ओजपूर्ण भाषा में लिखने लगते हैं– **'दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, परमार्थ नहीं है–है केवल प्रचण्ड स्वार्थ'।** इस स्वार्थ के साथ ही वे जिजीविषा अर्थात् 'जीने की इच्छा' की भी विशद चर्चा करते हैं। भीतर को जिजीविषा–जीते रहने की प्रचण्ड इच्छा–ही अगर बड़ी बात है जो फिर यह सारी बड़ी–बोलियाँ, जिनके बल पर दल बनाए जाते हैं, शत्रुमर्दन का अभिनय किया जाता है, देशोद्धार का नारा लगाया जाता है, साहित्य और कला की महिमा पायी जाती है, झूठ है। इसके द्वारा कोई–कोई अपना बड़ा स्वार्थ सिद्ध करता है। इस सबका निष्कर्ष निकालते हुए मानते हैं कि यह सोचना गलत

है। स्वार्थ और जिजीविषा से भी प्रचण्ड कोई न कोई शक्ति अवश्य है। वह शक्ति क्या है ? इसका उत्तर देते हुए वे 'समष्टि बुद्धि' को मान्यता देते हैं। अर्थात समष्टि का स्वार्थ ही सबसे बड़ी शक्ति है। द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में भी इसी की स्थापना है। उनकी स्पष्ट किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण मान्यता है कि अपने आपको दलित द्राक्षा की भांति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए न्यौछावर नहीं कर दिया जाता तब तक स्वार्थ खण्ड सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दयनीय कृपण बना देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि समष्टि और सर्व के प्रति अपने–आपको पूरा दे देना ही पूर्ण सत्य है।

अपने इसी पूर्ण सत्य के लिए द्विवेदीजी कुटज को सामने रखते हैं। भावात्मकता और प्रवाहमयता के साथ वे कुटज बात करते हैं– कुटज क्या केवल जी रहा है। वह दूसरे के द्वार पर भीख मांगने नहीं जाता, कोई निकट आ गए तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीत्ति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अवमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्निति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता. दाँत नहीं निपोरता, बगले नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है–काहे वास्ते, किस उद्देश्य से ? कोई नहीं जानता मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है। भीष्म पितामह की भाँति अवधूत की भाषा में कह रहा है, 'चाहे सुख हो या दुख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाए उसे शान के साथ, हृदय से बिल्कुल अपराजित होकर सोल्लास ग्रहण करो। हार मत मानो।''

निबंध में, 'दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर दे देना' को ही 'कुटज का मूर्त रूप' व्याख्यायित किया गया है। केवल जीना या स्वार्थ के लिए जीना सत्य नहीं है। स्वार्थ के कारण ही झुकना पड़ता है, भय का शिकार होना पड़ता है, खुशामद करनी पड़ती है, ढोंग करना पड़ता है, ओर भी नाना प्रकार के निंदनीय कर्म करने पड़ते हैं। कुटज इन सबसे विलग होकर जीता है। द्विवेदीजी प्रश्न करते हैं किसलिए? काहे के वास्ते। वे ही उत्तर देते हैं कि कुटज हृदय से अपराजेय होकर जीता है। यह अपने लिए नहीं जीता, सबके लिए जीता है। वह सुख में, दुख में, प्रिय–अप्रिय में, सब स्थितियों में जो भी मिल जाए–सुख मिले या दुख, प्रिय मिले या अप्रिय सवको आनंद के साथ ग्रहण करता है। यही अवधूत भाषा है। कुटज निर्भय है। कुटज की तीन विशेषताओं का उल्लेख हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं– (1) अकुतोभया वृत्ति, (2) अपराजित स्वभाव, (3) अविचल जीवन दृष्टि।

द्विवेदीजी कुटज को मिथ्याचारों से मुक्त मानते हैं। कुटज निबंध के अंत में द्विवेदीजी की मान्यताएँ प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुई हैं। ये मान्यताएँ भारतीय चिंतन के मुक्तकण हैं। प्रथम बात तो यह है कि व्यक्ति न किसी का उपकार कर सकता है न अपकार। दूसरी बात यह है कि मनुष्य केवल जी रहा है, यह जीना इतिहास विधाता की इच्छा और योजना के अनुसार है। तीसरी बात यह है कि मनुष्य के द्वारा किसी को न सुख पहुँचाया जा सकता है न दुख। सुख पहुंच जाए, यह अच्छी बात है, इस पर अभिमान नहीं करना चाहिए। सुखी वह है जिसका मन वश में है और दुखी वह है जिसका मन पर वश नहीं है। 'सुख और दुख मन के विकल्प हैं।' जिसका मन वश में नहीं है वह छल–छंद रचता है। धोखा देता है। कुटज इन सबसे मुक्त है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इसको ही हमारे सामने कुटज के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण वे कुटज को प्रतीक के रूप में उपस्थित करते हैं और लिखते हैं कि कुटज 'वैरागी' हैं। राजा जनक की तरह संसार में रहकर, राम्पूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त हैं। 'कुटज' अपने मन पर सवारी करता है मन को अपने पर सवार नहीं होने देता।

निष्कर्ष रूप में हम यह सकते हैं कि इस निबंध के केंद्र में कुटज है। यह अपने आप में भारतीय चिंतन के सिद्ध रूप हैं। यह सिद्ध रूप अपने मन को वश में कर लेने पर ही प्राप्त होता है। स्वार्थ के लिए जीना व्यर्थ है, मूल्य तो समष्टि दृष्टि में और समष्टि के लिए अपना सब कुछ दे देने में है। यही विषय–वस्तु का सार है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कुटज के जीवन को शानदार ढंग से चित्रित करते हैं। द्विवेदी जी की कुटज की रचना कते हैं और उनकी अपनी दृष्टि कुटज में रम जाती है। इस रम्य दृष्टि का आलेखन एक चमत्कार पैदा

करता है। पूरे निबंध में कुटज से जुड़कर हजारी प्रसाद द्विवेदी की वैयक्तिक दृष्टि कभी भाव, कभी उपदेश और कभी जीवनादर्श के रूप में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। कुटज द्वन्द्वातीत है। 'अलमस्त' है। कुटज मुझे 'अनादिकाल' से जानता है। मैं भी कुटज को पहचानता हूं, अवश्य पहचानता हूं। आदि कथन हजारी प्रसाद द्विवेदी के एकात्मकता और भाव को स्पष्ट करते हैं। यह कुटुज 'चिर परिचित' दोस्त हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस चिरपरिचित दोस्त से जी भर कर बात करते हैं। जीवन जीना चाहते हो तो 'कठोर पाषाण को भेदकर पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर झंझा–तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर आकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कुटज का वही उपदेश है। पाषाण, पाताल, वायु और आकाश से क्या और कैसे लेना, यह कुटज का उपदेश नहीं है यह तो हजारी प्रसाद द्विवेदी की अपनी दृष्टि है. अपनी चेतना है, अपना दर्शन अथवा भारतीय चिंतन की धाती है जे कुटज के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही है। इस प्रकार 'मैं' का 'सबके लिए' सब कुछ दे देना और यह भी 'दलित द्राक्ष की भांति निचोड़कर सर्व के लिए न्यौछावर कर देना भी द्विवेदीजी के चिंतन, दर्शन और दृष्टि का ही रूप है। अंत भी, सुखी कौन है का यह उत्तर कि जिसका मन वश में है वही सुखी है, यह कहना भी हजारी प्रसाद द्विवेदी के सोच का ही प्रमाण है जो इस निबंध में ही नहीं, उनके द्वारा रचित अन्यान्य साहित्य विद्याओं में भी अभिव्यक्त हुआ है। ललित निबंध में यह वैयक्तिक दृष्टि सबके लिए प्रयुक्त होती है। ललित निबंध में सहजता, सरसता और प्रवाह का होना भी आवश्यक है। कुटज निबंध में ये सभी गुण विद्यमान हैं।

इस निबंध का उद्देश्य क्या है। यह निबंध अपने लघु आकार में एक महाकाव्य का गरिमा समेटे हुए है। ललिर इसका शिल्प है, इसकी शैली है, और जीवन को जीवनीशक्ति प्रदान करना तथा निस्वार्थ होकर व्यक्ति का समाज के लिए निःशेष हो जाना इसका उद्देश्य है। यह व्यष्टि का तमष्टि के लिए आदर्श कर्म है। यही शान से जीना है।

ललित निबंध के रूप में कुटज अत्यंत उत्कृष्ट निबंध है। भाव और चिंतन का सामंजस्य तथा भाषा का ललित और प्रवाह इस निबंध को विशिष्टता प्रदान करते हैं। यह निबंध सहजता और सरसता में महत्तम चिंतन का प्रकाशव है। विषयवस्तु सूक्ष्म और गहन है परंतु कुटज का माध्यम जिस सहजता और प्रसन्न भाषा के साथ उसे प्रत्यक्ष करत है यह ललित निबंध का मानदंड है। शास्त्र ज्ञान इसमें है, दर्शन इसमें है और चिंतन भी इसमें है किंतु उसकी प्रस्तुरि ललित है, प्रिय है और सुंदर है। इसमें प्रकृति भी है और पुरुष भी है। दोनों की लीला भाव भी है। हिंदी ललित निबंधों के क्षेत्र में कुटज अद्वितीय है।

### 19.3.3 'कुटज' निबंध की भाषा शैली

'कुटज' की भाषा शैली कुटज की भाषा विचारों और भावों के अनुरूप प्रवाहमयी सहज भाषा है। वाक्य रचना विषय के अनुरूप है, जिसमें कहीं छोटे–छोटे और कहीं बड़े–बड़े वाक्यों की रचना की गई है। जहां जिज्ञासा मूलकूत है वहां कई प्रश्नवाचक वाक्यों की रचना की गई है। उदाहरण के देखिए– रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले या पदार्थ ? हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा कहीं–कहीं व्याख्यानपरक अथवा व्याख्यात्मक भी हो जाती है। इस प्रकार की भाषा में विवरण प्रधानता आ जाती है। यह विवरण विषय के अनुसार कहीं चित्रात्मक भाषा का रूप लेकर उपस्थित होता है, तो कहीं शास्त्रों की बारीक जानकारियों का संग्रह बनाकर सपाट रूप में उपस्थित होता है। यथा इन्हीं में से एक छोटा सा बहुत ही ठिगना पेड़ है, पत्ते चौड़े हैं, बड़े भी हैं। फूलों से तो ऐसा लदा है कुछ पूछिए नहीं। अजीब सी अदा है, मुस्काराता सा जान पड़ता है। (2) कुटज अर्थात जो कटु से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं, कुट अर्थात घड़े से उत्पन्न होने के कारण अगस्त्य मुनि भी कुटज कहे जाते हैं।

इनके उदाहरणों में भाषागत भिन्नता है। प्रथम में विवरण है तो है पर साथ ही चित्रात्मकता है और चित्रात्मकता के साथ लेखक की आत्मीयता भी प्रकट हुई है। मानवीकरण तो है ही। दूसरे में शास्त्र–चर्चा है।

अतएव भाषा सपाट किंतु बुद्धिमूलक है। बुद्धि के द्वारा विषय के अर्थ को सुस्पष्ट करते समय ये संस्कृत, हिंदी और देशी–विदेशी विद्वानों के गद्य और पद्य के मिले जुले उद्वरण भी प्रस्तुत करते हैं, जिसके द्वारा विषय की प्रमाणिकता की पुष्टि तो होती ही साथ ही भाषा भी समर्थ और बहुआयामी बन जानी है।

ठीक इसके विपरीत जब द्विवेदी जी विषय को आत्मीय दृष्टि प्रदान करते हैं तब भाषा में प्रवाह, लालित्य तथा काव्यात्मकता का सन्निवेश हो जाता है। एक उद्धरण कुटज से प्रस्तुत है–'बहरहाल यह कुटज है–कुटज है, मनोहर कुटुज स्वयको से उल्लास लोल चारुस्मिूत कुटज। कालिदास ने 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' रामगिरि पर यक्ष को मेश की अभ्यर्थना के लिए नियोजित किया तो कम्बख्त को ताजे कुटज पुष्पों की अंजलि देकर ही संतोष करना नहीं, नीलोत्पल नहीं, अरविन्द नहीं–फकत कुटज के फूल। इस उद्धरण को सामने रखकर हम ललित निबंध की भाषा के प्रतिमान स्थिर कर सकते हैं। इस भाषा में कालिदास के मेघदूत के उल्लेख से भाषा के माध्यम से कितने ही विम्ब बन जाते हैं। ये विम्ब चाक्षुष या दृश्य विम्ब भी हैं और मानस बिम्ब भी। विम्बों की यह श्रृंखला केवल दृश्यात्मक नहीं है। अपितु एक पुलक भी देती है। यह सर्जनात्मक भाषा का ऐसा रूप है, जिसमें लेखक की बुद्धि भी रमी हुई है, जो अंततः भावात्मकता और आत्मीयता में घुल–मिल जाती है।

इस निबंध की भाषा का एक उदाहरण और देखिए कुटज क्या केवल जी रहा है। वह दूसरे के द्वार पर भीख मांगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अवमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है–काहे वास्ते, किस उद्देश्य से ?''

इस उद्धरण में मुहावरों की झड़ी लगी हुई है। भाषा के पीछे से व्यंग्य भी जगह–जगह झाँकता हुआ प्रतीत होता है। एक वातावरण की सृष्टि भी भाषा ने की है, जिसमें रस बहुमूल तथ्य का निर्देश भी है कि आज का युग स्वार्थ युग है, जिसमें खुशामद, चाटुकारिता, अन्य विश्वास, दीनता आदि ही सब कुछ हो गए हैं। पर शान से वही जी सकता है, जो इन सबको धता बताकर निर्भय भाव से जीवित रहे। इस भाषा में लक्षणा और व्यंजना ने भाषा को गरिमा और शक्ति प्रदान की है। कितने ही विम्ब अनायास ही पाठक के सामने तैरने लगते हैं। कोई भी निबंध विचारशून्य नहीं होता।

द्विवेदी जी को निबंध की भाषा समर्थ भाषा समर्थ भाषा है। उसमें अभिक्षा, लक्षणा और व्यंजना का पूरा–पूरा प्रयोग है। इस भाषा में विचार और संवेदना दोनों को वहन करने की शक्ति है। इस भाषा में प्रवाह है, बिम्बात्मकता है, सहजता है और सरलता है, जटिलता नहीं। इसमें आख्यान भी है और व्याख्यान भी। यह भाषा विवेक को जाग्रत करने वाली भाषा है। भाषा का सौन्दर्य और लालित्य यहाँ गतिमान रूप में अपनी निरंतरता बनाए हुए है। ललित निबंध के लिए यह मानक भाषा है। दिवेजीजी की निबंध भाषा जड़ भाषा नहीं है। अतिशय भावुकता से सनी चिपचिपाती–भिनभिनाती भाषा भी नहीं है, यह तो एक चिंतक के हृदय की भाषा है। इस भाषा के द्वार सभी भाषाओं के लिए खुले हुए है। यहाँ संस्कृत है, उर्दू है, लोकभाषा है, हिंदी है, श्लोक है, और दोहे भी हैं। 'दंद्वातीत' के साथ 'अलमस्त' शब्द रखा हुआ है। बेहया, मस्तमौला, गलत बयानी, बेरुखी, बेकद्रदानी कितने ही उर्दू के शब्द यहाँ प्रयुक्त हुए हैं। बिरछ, काहे, जैसे लोकभाषा के शब्द के प्रयोग तो द्विवेदी की भाषा में है ही, अंग्रेजी का तो पूरा का पूरा वाक्य ही नागरी लिपि में रख दिया गया 'हकादूस देयर इन ए नेम'। संस्कृत के शब्दों की तो लड़ी की लड़ी इस निबंध में प्रयुक्त हुई है। यथा–सुस्मिता, गिरिकांता, शुपकिरीटिनी, मदोद्धता, विजितातपा, अलकावर्तसा आदि–आदि। द्विवेदीजी की भाषा समृद्ध भाषा है। विषय के अनुरूप भाषा है। उसमें बिंबधर्मिता है, अर्थ गौरव है, व्यंजकता है और व्यापकता है। ललित निबंध की बहुआयामी सर्जनात्मक भाषा का एक आदर्श रूप उन्होंने हिंदी जगत में प्रतिष्ठित किया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंधों की पाँच श्रेणियों का उल्लेख किया है। वार्तालाप मूलक, व्याख्यान मूलक, अनियंत्रित गप्प मूलक, स्वगत चिंतन मूलक और कलह मूलक। द्विवेदी जी इन श्रेणियों को सूक्ष्म या साहित्यिक नहीं मानते हैं। मेरे विचार से ये ही निबंध की वे शैलियां हैं जो द्विवेदी जी के निबंधों का रचाव करती हैं।

कुटज से तो द्विवेदी जी आत्मीय भाव के साथ भिन्नता का सबंध स्थापित कर लेते हैं और उससे बातचीत करते हुए प्रतीत होते हैं। देखिए– 'पहचानता हूँ उजाड़ के साथी, तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ।' अथवा इस निबंध के अंत में वे कहते हैं– 'मनस्वी मित्र, तुम धन्य हो।' इस वार्तालाप शैली की वजह से वे कुटज का मानवीकरण करते हैं। वार्तालाप की सहजता और अपनापन कुटज निबंध की एक शैली है। द्विवेदीजी के इस निबंध में कई शैलियों का प्रयोग किया गया है।

इस निबंध की व्याख्यान शैली में सरल भाषा, व्याख्यात्मकता तथा प्रवाह का विशेष स्थान है। एक उदाहरण देखिए–'जो समझता है कि वह दूसरों का उपकार कर रहा है वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका अपकार रहे हैं, वह बुद्धिहीन है। कौन किसका अपकार कर रहा है? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा है नहीं, इतिहास विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाए बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सके, कोई बात नहीं, परंतु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुंचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुख पहुँचाने का अभिमान तो नितांत गलत है। इस उद्धरण में व्याख्यान शैली के सभी गुण विद्यमान हैं। इस उद्धरण में सहजता के साथ आकर्षित करने वाली भाषा है जिसमें निजता भी है। इसमें चिंतन भी है जो विचार करने की प्रेरणा देता है।

कुटज निबंध में गप्प मूलकता भी है। यह कथा कहने की शैली है। गप्प का अर्थ 'झूठ' नहीं है। गप्प में एक कथा जैसी होती है अथवा एक बात भी होती है। गप्प मारना, कृत्रिम शैली में वार्तालाप करना है। सहजता और स्वाभाविकता के साथ सत्यता की झंकृति इस शैली की विशेषता है। इस निबंध में गप्प शैली का प्रयोग न्यूनाधिक मात्रा में किया गया है। ललित निबंध में यह शैली आत्माभिव्यक्ति के साथ सहजता प्रदान करती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत है कुटुज का एक अंशः 'याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिः की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती–सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं– आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। विचित्र नहीं है यह तर्क? संसार में जहाँ कहीं है सब मतलब के लिए है।

स्वगत चिंतन शैली इस निबंध में विशेष रूप से काम में लाई गई है। यह चिंतन कुटज के रूप, नाम और कृतित्व के प्रकाशन के साथ–साथ सामाजिक चेतना को उद्‌बुद्ध करने के लिए प्रयुक्त की गई है।

वैसे शैली अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द का अनुवाद है। प्राचीन साहित्यशास्त्र में शैली से मिलता–जुलता शब्द 'रीति' है। आचार्य वामन इसे विशिष्ट पद–रचना कहते हैं। शैली को गुण मानते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है शैली अनुभूत विषयवस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो विषय वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाती है। यदि इस परिभाषा को ग्रहण करें तो एक बात स्पष्ट है कि प्रमुखता विषय–वस्तु की है। शैली–प्रस्तुतीकरण सहायक होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या किसी भी विषय–वस्तु की निर्धारित शैली हो सकती है। शैली का निर्धारण तो लेखक ही करता है। अतः कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग लेखक विषय की अभिव्यक्ति के लिए अपनी रूचि के अनुसार करता है। इस प्रकार की शैलियों के कई प्रकार हो सकते हैं, जैसे विवरणात्मक, व्याख्यात्मक, समीक्षात्मक गवेषगात्मक और भावात्मक आदि। शैलियों पर व्यास और सामस शैली के रूप में भी विचार किया जाता है। समा अर्थात् सूत्रबद्धता और व्यास अर्थात् व्याख्यात्मकता। कुटज निबंध में विषय के अनुरूप, विवरणात्मक, व्याख्यात्मक भावात्मक और गवेषणात्मक शैलियों व्यवह्मत हुई हैं।

लालित्य या ललित भाव, ललित निबंध के लिए आवश्यक है। इसे हम भावात्मक शैली कह सकते हैं। कोई निबंध विचार से शून्य नहीं होता। विचार से शून्य होने पर तो ऐसा निबंध प्रलाप मात्र होकर रह जाएगा। कुटज विचार की श्रृंखला भी है और भावाभिव्यंजना भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी की शैली में इन दोनों का अभूतपूर्व सामंजस्य है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. कुटज क्या है ?
2. किस मुनि को कुटज कहा जाता है ?
3. कुटज किस प्रकार का निबंध है ?
4. कुट का अर्थ क्या होता है ?
5. निबंध में कुटज की क्या विशेषता बताई गई है ?
6. कुटज निबंध किस भाषा में लिखा गया है ?

## 19.4 सारांश

कुटज एक ललित निबंध है जिसमें द्विवेदी जी द्वारा कुटज के बहाने से मानव प्रकृति और मानव धर्म के ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं जिनका मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास के केन्द्रीय महत्व है। कुटज एक अल्प परिचित प्रकृति का रूप, किसी अर्थ या यश की कामना के बिना, किसी के आगे झुककर नहीं अपितु गर्व से सदा उत्साहित सा होकर अपने जीवन के लिए रस ग्रहण करता है।

## 19.5 कठिन शब्दावली

**परम** – बड़ा

**केत** – घर

**कटि** – कमर

**उर** – ह्दय

**कृति**– रचना

## 19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. पेड़।
2. अगस्य।
3. ललित निबंध।
4. धर एक धड़ा।
5. अपराजेय जीवन शक्ति।
6. खड़ी बोली।

## 19.7 संदर्भित पुस्तकें

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, हजारी प्रसाद द्विवेदी (विनिबंध), साहित्य अकादमी दिल्ली।
2. नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

## 19.8 सात्रिक प्रश्न

1. कुटज निबंध की अंतर्वस्तु अथवा सार पर प्रकाश डालिए।
2. ललित निबंध के रूप में 'कुटज' की तात्विक समीक्षा कीजिए।
3. कुटज निबंध की भाषा शैली का वर्णन कीजिए।

*****

# इकाई–20
# महादेवी वर्मा : जीवन परिचय

**संरचना**

20.1 भूमिका
20.2 उद्देश्य
20.3 महादेवी वर्मा : जीवन परिचय
20.3.1 व्यक्तित्व
20.3.2 कृतित्व
स्वयं आकलन प्रश्न
20.4 सारांश
20.5 कठिन शब्दावली
20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
20.7 संदर्भित पुस्तकें
20.8 सात्रिक प्रश्न

## 20.1 भूमिका

इकाई उन्नीस में हमने 'कुटज' निबंध का पाठपरक अध्ययन किया। 'कुटज' निबंध का सार भाषा शैली और तात्विक समीक्षा का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई बीस में हम महादेवी वर्मा के जीवन परिचय के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 20.2 उद्देश्य

इकाई बीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. महादेवी वर्मा का जीवन कैसा है ?
2. महादेवी वर्मा का साहित्यिक लेखन कैसा रहा है ?
3. उनका जन्म कब और कहाँ हुआ ?
4. महादेवी वर्मा की लेखन शैली कैसी है ?
5. महादेवी वर्मा का प्रमुख लेखन क्षेत्र कौन रहा ?

## 20.3 महादेवी वर्मा : जीवन परिचय

### 20.3.1 व्यक्तित्व

महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फरूखाबाद नामक शहर में हुआ था। जब तक वे शिक्षा लेने के योग्य न हुई तब तक अपने पिता के साथ यत्र–तत्र घूमती रहीं, यही कारण था कि वे फर्रुखाबाद बिहार, भोपाल के बाद इन्दौर में कुछ वर्षों के लिए स्थायी रूप में रहीं। गोविन्द प्रसाद इन्दौर के डेली कॉलेज में प्राध्यापक का कार्य संभालने लगे लगभग सन् 1907 से लेकर सन् 1913 तक वे इस कार्यक्षेत्र में रूके रहे।'' जब महादेवी के विवाद का प्रसंग आया तो वे सन् 1914 में नरसिंहगढ़ की ओर मुड़े। नरसिंहगढ़ दक्षिण इन्दौर का और पश्चिम भोपाल का एक छोटा सा राज्य था।'' यह स्थान नौजवानों के काफी आकर्षण का केन्द्र रहा है।

महादेवी जी ने भी इस क्षेत्र से प्रारंभिक साहित्य रचना की प्रेरणा ग्रहण की हो, यहीं से उन्हें प्रकृति का रोमांच तथा स्वप्नों की सुनहरी दुनिया देखने की कल्पना शक्ति प्राप्त हुई हो, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है।

शिक्षा प्राप्ति के लिए महादेवी जी इलाहाबाद आ गयी और वहीं छात्रावास में रहकर पढ़ाई का कार्य करती रहीं। काव्य रचना की ख्याति के कारण वे इतनी प्रसिद्ध हो गई थीं कि इलाहाबाद और आस–पास के क्षेत्रों में होने वाली काव्य गोष्ठियाँ तथा कवि सम्मेलनों में उनका बोल बाला होने लगा। एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त ही महिला विद्यापीठ उनका निवास स्थान बन गया। विद्यापीठ में विभिन्न सुधार करने के पश्चात् उनका ध्यान साहित्यकारों की ओर गया। किसी भी आपत्ति से घिरे हुए साहित्यकार के लिए एक सहारा बन जाए ऐसी संस्था का निर्माण किया गया 'साहित्यकार संसद भवन' की स्थापना प्रयाग में सन् 1944 में की गई। साहित्यकारों के हितों की रक्षा करने वाली इस संस्था को चलाने के लिए वे रसूलाबाद में ही रहने लगीं।

रसूलाबाद के किसी भी निरक्षर ग्रामीण मल्लाह से कहा जाए कि हमें 'गुरूजी' के यहाँ जाना है तो वह बेधड़क महादेवी जी के निवास–स्थान 'साहित्यकार संसद भवन' पहुँचा देता हैं।

अपने पिता के संस्कारों पर पली महादेवी वर्मा उन्हीं के समान किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रह सकीं। परिणाम स्वरूप अस्वस्थ स्वास्थ्य रहने के बावजूद भी वे कभी इलाहाबाद, कभी रामगढ़ या कभी नैनीताल घूमती रहती थीं। इनके मित्रों का कहना है कि विद्यापीठ के निवास स्थान के पश्चात् इन्हें रामगढ़ का निवास विशेष प्रिय है। वहां की हरियाली तथा फूलों और पत्तों से सुशोभित लता–वृक्ष इन्हें अत्यधिक प्रिय हैं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए वे स्वयं कहती हैं ''रामगढ़ हमें काफी पसंद है, वहाँ की शांति हमारे प्राणों में उत्साह की उमंग भरने लगती है। अवकाश का समय में विशेषकर रामगढ़ में ही बिताती हूँ। सेब और लीची के पेड़ इस निवास स्थान को अत्यधिक सुन्दर बना देते हैं।'' स्पष्टतः महादेवी जी अपने प्रिय स्थान रामगढ़ में ही रहती थी। कभी–कभी विद्यापीठ की मुलाकात के लिए आती थी, परन्तु बाद में वे विद्यापीठ में न रहकर इलाहाबाद शहर के बाहर गंगा के किनारे पर मकान में रहती थीं। जिसकी भव्यता, सुन्दरता मन को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर अपने वंशजों का प्रभाव पाया जाता है। जब किसी महान् आत्मा के संपर्क में जाने की तमन्ना होती है तो गोविन्द प्रसाद तथा हेमरानी देवी की प्रथम संतान लक्ष्मी है, इस समाचार ने सारे परिवार को आनंद–विभोर कर दिया। अशुभ माने जाने वाले तथ्य शुभ रूप में परिवर्तित होते जान पड़े। क्योंकि इस सौभाग्यशाली कन्या ने काफी प्रतीक्षा और मनौतियों के बाद जन्म लिया था। ''बाबा ने इसे कुलदेवी दुर्गा का अनुग्रह माना और आदर प्रदर्शित करने के लिए इनका नाम रखा महादेवी।''

श्री गोविन्द प्रसाद जी प्रगतिवादी व्यक्ति थे। समाज की परवाह किये बिना उन्होंने महादेवी को एक पुत्र के समान शिक्षा दी। लगभग पाँच वर्ष की उम्र से उनका शिक्षण कार्य आरम्भ हुआ। कुछ दिनों तक उन्हें घर में ही शिक्षा दी गई संस्कृत और ब्रज पढ़ाने के लिए ब्राह्मण पंडित जी आते, उर्दू की शिक्षा मौलवी जी देते, संगीत सिखाने नारायण महाराज आते थे तथा चित्रकला सिखाने के लिए सदाशिव राव नामक महाराष्ट्रीयन विद्वान् आते थे। महादेवी जी चित्रों में रंग भरने की विशिष्ट कला श्री रवि वर्मा जी से सीखती थीं, जो अपनी कला के कारण भारत भर में प्रसिद्ध थे। इसी दरम्यान हेमरानी जी ने दोनों पुत्रियों को गृह कार्य की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध कर दिया। ''उन्होंने लड़कियों की शिक्षा का प्रारम्भ आँगन की पुताई से किया, गोबर–मिट्टी आँगन में डाली गई। दो चमारिने शिक्षक बनकर आई, एक बोरा गेहूँ आया, जिसे फटकना सीखा गया फिर खाना बनाने की स्वयं माँ ने शिक्षा दी। महादेवी कुशाग्र बुद्धिशाली होने के कारण नौ वर्ष की उम्र में सब सीख गई। इसके बाद उन्हें पढ़ने–लिखने, खेलने, कूदने की स्वतंत्रता मिली।''

आर्य समाजी संस्कारों के कारण उन्हें सन् 1912 में इन्दौर के मिशन स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा के हेतु भेजा गया। सन् 1916 में इनका विवाह हो गया। इसके परिणाम स्वरूप शिक्षण में व्याधात हुआ, क्योंकि इनके पितामह और श्वसुर दोनों लड़कियों की शिक्षा के विरोधी थे। संयोगानुसार अचानक इनके श्वसुर का देहान्त हो गया और इसी समय महादेवी जी को एक बार फिर पढ़ाई आरम्भ करने का सुअवसर मिला। सन् 1919 में इन्होंने पाँचवी कक्षा की छात्रा के रूप में डायमंड ज्यूबिली क्रास्थवेट महिला कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश किया। सन्

1921 में मिडिल तथा सन् 1925 में इन्ट्रेन्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। मिडिल में तो प्रान्त भर में वे सर्वप्रथम आई। ग्यारहवाँ दर्जा पास करते करते तो कवि सम्मेलनों, वाद–विवादों, प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास भर गया। सन् 1929 में इन्होंने बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अपने मिलनसार तथा निखालस स्वभाव के कारण आप सभी के आकर्षण का केन्द्र रही। अन्य छात्रों की अपेक्षा सभी शिक्षक इन्हें विशेष प्रेम करते थे। इनकी तरफ का एक अन्य आकर्षण यह भी था कि इन्होंने अपनी लेखन कला द्वारा सभी को मोहित कर लिया था। अंग्रेजी उच्चारण में ये गलती अवश्य करती थीं परन्तु लिखाई में कभी मात नही खाती थीं। इनके निबन्ध आदर्श नमूने के रूप में अन्य छात्रों को दिखाएँ जाते थे। गद्य ही नहीं पद्य भी उतनी ही श्रेष्ठ था तभी तो सन् 1922 से इनके काव्य 'महिला' मासिक पत्रिका में छपने लगे। इनका कमरा चर्चा–विचारणा के लिए हमेशा छात्राओं से भरा रहता था।

सन् 1925 में बी.ए. का प्रथम महिला ग्रुप महादेवी जी से आरम्भ हुआ। उस समय उप–कुलपति गंगानाथ झा थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि– "It is impossible for menAnd women to study together underAny circumstances" क्रास्थवेट कॉलेज में एक अलग विभाग बनाने की विचारणा की गई परन्तु महिला प्राध्यापक न मिलने के कारण अंत में महादेवी जी को 'अंग्रेजी' प्रोफेसर दून ने पढ़ायी, जो इलाहाबाद में प्रसिद्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाते थे। अंग्रेजी के विद्वान होने के नाते इन्हें काफी ख्याति प्राप्त थी। 'फिलासोफी' बंगाली विद्वान, पी. के. आचार्य ने पढ़ाई तथा 'संस्कृत' की शिक्षा स्वयं गंगानाथ झा ने दी, जो संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। महादेवी जी एम.ए. में वेद पढ़ना चाहती थीं, इसी कारण वे मदन मोहन मालवीय जी के पास गई इन्होंने 'हिन्दू विश्वविद्यालय' की स्थापना की है। सोचा था, पंडित जी अच्छा पढ़ायेंगे पर वे मूर्छित होने लगे और कहने लगे 'आप वेद नहीं पढ़ सकती।' महादेवी जी ने कहा 'वेदकाल में' इतनी ब्रह्म वादिनियाँ हुई, वे कैसे हुई पर उनकी एक न चली, उन्होंने पंडितजी के सामने विद्रोह किया परन्तु वे वेद की शिक्षा हाँसिल न कर सकीं। पंडितजी ने उन्हें अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार नहीं किया।

इसी अवसर पर गाँधी बापू ने कहा 'तू कॉलेज नहीं छोड़ेगी ? महादेवी जी ने उत्तर दिया 'बापू हमें पहले अधिकार तो मिले, जो हमारे पास है ही नहीं, उसे कैसे छोड़े।' बापू शिक्षित अशिक्षित में भेद नहीं मानते थे, उन्होंने कवयित्री सरोजिनी नायडू तथा अनपढ़ कस्तूबा के उदाहरण दिए और कहा ये व्यक्ति किसी शिक्षित से कम नहीं है। सन् 1932 में महादेवी ने प्रयाग महिला विद्यापीठ में संस्कृत विषय लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी बीच कुछ समय तक अस्वस्थ रहने के कारण इनका अध्ययन कार्य स्थगित रहा। यह समय इन्होंने रामगढ़, तालुका और नैनीताल के भ्रमण में व्यतीत किया। पिता के प्रबुद्ध निरीक्षण – परीक्षण और उत्साह वर्धन के कारण पढ़ाई–लिखाई में तथा माताजी की शिक्षा–दीक्षा से गृहकार्य में वे दक्ष सिद्ध हुई दोनों ही क्षेत्रों में उन्हें पूर्ण रूपेण सफलता प्राप्त हुई। इससे प्रभावित हो स्वयं महादेवी जी कहती हैं ''एक ओर साधनापूत आस्तिक और भावुक माता तथा दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने–अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किन्तु किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी।'' महादेवी जी ने जीवन उपयोगी सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण की तथा विभिन्न भाषाओं का, कलाओं का अध्ययन कर जीवन के आदर्श को चरितार्थ किया है।

**परिवारिक परिचय :**

प्रत्येक शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में वंशजों का प्रभाव प्राप्त होता है। महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व निर्माण में भी उनके वंशजों तथा परिवारजनों और परिवार से सम्बन्ध रखने वालों का विशेष योगदान रहा है। उनके जीवन में परिवार के संस्कार इस रूप में सम्मिलित हो गए हैं, जैसे भीगे वस्त्र में जल की स्थिति होती है। वस्त्र के शीतल स्पर्श से ही उसकी उपस्थिति का ज्ञान होता है। श्री गोविन्द प्रसाद जी की चार संतानें

थीं। महादेवी, श्यामादेवी, जगमोहन तथा मनमोहन। श्यामादेवी महादेवी जी के साथ ही क्रास्थवेट कॉलेज में पढ़ती थीं, उन्होंने इण्टर तक की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उनका विवाह श्री बाबूराम सक्सेनाजी के साथ सम्पन्न हुआ। ये प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। जब महादेवी जी एम.ए. की छात्रा थी तब बाबूराम जी उनके गुरूजी थे। उन्होंने महादेवी को संस्कृत की शिक्षा प्रदान की थी। बाद इलाहाबाद में रहकर निवृत्त जीवन बिताया। इनकी संतानों में सात पुत्रियाँ और एक पुत्र हैं। श्यामाजी का देहान्त इलाहाबाद में 26 दिसम्बर सन् 1976 को हुआ, महादेवी जी के भाई जगमोहन की भी मृत्यु हो गई, जिनका परिवार आजभी भोपाल में स्थित हैं। इनके सबसे छोटे भाई मनमोहन अपने परिवार के साथ कलकत्ते में रहते थे। इन चारों संतानों में महादेवी जी ही सभी क्षेत्रों में अग्रिम रही हैं। वे पूरे परिवार की केन्द्र बनी हुई थी। उनके व्यक्तित्व में सभी पूर्वजों के कुछ न कुछ अंश अवश्य पाए जाते हैं। उनमें भारतीय संस्कृति के सर्व लक्षण विद्यमान हैं तथा उनके पास ज्ञान का अक्षय भंडार है। पूर्वजों के विभिन्न प्रभावों ने ही उन्हें हिन्दी की विदुषी लेखिका बना दिया है। महादेवी जी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कुछ व्यक्तियों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है।

पितामह बाबू बाँकेबिहारी जी बहादुर तथा उत्साही पिता की इकलौती संतान थे। एक बार उनके पिता सिताबराय अंग्रेजों की लड़ाई में घायल हो गए, बचने की कोई उम्मीद न रही, तब इनकी माता उन्हें लेकर अपने मायके आ गई। अंग्रेजी सरकार बेटे की हत्या न कर दे इसी डर से उन्होंने महताबराय का नाम बदलकर बाँकेबिहारी वर्मा रख दिया जो आज तक प्रचलित रहा। बाँकेबिहारी आर्य समाजी थे। उनका व्यक्तित्व जमींदारी ठाठ से भरा हुआ था। यह परिवार परम्परा की प्रणालिकाओं से मुक्त नहीं था। कन्या वध जैसे रिवाजों को इस परिवार ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि पीढ़ियों से इनके यहाँ लक्ष्मी का जन्म हुआ ही नहीं था। यही कारण था कि महादेवी जी को माँ देवी दुर्गा के तप का फल माना गया। बाल–विवाह, स्त्री शिक्षा का विरोध, महादेवों ने अपने अंतरंग और मुख्य मित्रों में सुभद्रा कुमारी चौहान, एरोन, बोनी फेकस, श्यामा नेहरू तथा चन्द्रावली लखनपाल को स्वीकारा है। उनकी मित्रता सीमित दायरे में बँधी हुई है. उनके मित्रों का विशात मंडल नहीं है। उनके सभी मित्र विशेषकर साहित्य क्षेत्र से ही सम्बन्ध रखतें हैं, राजनीतिक नेता या राष्ट्रीय जागरण के अग्रज नहीं है। उनके मित्र मंडल में उच्चता निम्नता का भेदभाव नहीं है क्योंकि सभी मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ हैं। शांत स्वभावशीला, उदात्त विचारों वालो महादेवी हमेशा अपने मित्रों के प्रति अपनेपन की भावना रखती

**विवाह :**

महादेवी जी की सम्पूर्ण जीवन यात्रा का रहस्य सभर स्वाध्याय वैवाहिक जीवन है। पितामह ने सन् 1916 में महामहिम महादेवी का विवाह करने का निश्चय कर लिया था। पिता इस सम्बन्ध में न तो विरोध कर सके न ही विवाह का समर्थन कर सहर्ष स्वीकार सके। परिणाम स्वरूप वर्षीया महादेवी का विवाह बरेली के निकट आये नवाबगंज कस्बे में स्वरूपनारायणजी से कर दिया गया।

ससुराल में पहुँचकर महादेवी ने एक नया उत्पात मचाया रो–रो कर आँखें सुजा ली, उल्टियों का ताँता लग गया, ज्वर आने लगा, खाने–पीने को तिलांजलि दे दी। बालिका वधू का स्वागत समारोह आतंक में परिवर्तित होने लगा। परिस्थिति का अनुमान कर श्वसुर ने उन्हें विदा कर दिया।

गोविन्द प्रसादजी महादेवी का नफासत पसंद, नाजुक मिजाज की लड़की मानते थे। अल्प आयु में शादी करके उन्होंने बड़ी भूल की है, ऐसा महसूस करके सोचते रहते कि वह इस जीवन की सुख पूर्वक नहीं अपना पायेगी, लड़कियों की पढ़ाई को उचित न मानने वाले श्वसुर का देहान्त विवाह के एक वर्ष पश्चात् हुआ। यह एक संयोग ही माना जा सकता है। इस समय गोविन्द प्रसाद जी को पश्चाताप करने का योग्य अवसर मिला। उन्होंने महादेवी को क्रास्थवेट कॉलेज में भर्ती करा दिया तथा स्वरूपनारायण वर्मा–दामाद को अपने पास बुला शिक्षा दिलाने लगे। विवाह के समय वे 10वीं कक्षा के विद्यार्थी थे। पिता की मृत्यु के बाद उन्हें क्रास्थवेट कॉलेज से गोविन्दप्रसाद जी ने इण्टरमीडिएट कराया तथा लखनऊ के मेडिकल के बोर्डिंग में रख दिया, जहाँ पर उन्होंने

डाक्टरी की योग्यता प्राप्त की। गोविन्द प्रसाद जी ने समझदारी और तर्क से जो निर्णय लिया, वह उनकी विराट विद्वता का प्रमाण है, जिसके कारण महादेवी सुखी जीवन जी सकीं। उनका निश्चय था –''वे अपने दामाद और बेटी को अलग–अलग रखेंगे ताकि वह पृथकता की खाई एक दूसरे को भविष्य में मनोनुकूल जीवन जीने दें।

बी.ए. पास होते ही जब गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तव महादेवी जी ने साफ शब्दों में दृढ़ता पूर्वक किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे किसी भी स्थिति में, अपरिपक्व अवस्था में हुए विवाह को नहीं स्वीकारेंगी। इसीलिए गौने की चर्चा करना व्यर्थ हैं। माता ने उन्हें काफी समझाया, इस विवाह अस्वीकार के प्रसंग से उन्हें अत्यंत पीड़ा हुई, पर महादेवी टस से मस न हुई। उनका निश्चय अटल बना रहा। पिता ने भी इस परिस्थिति में दुःख का अनुभव किया। उन्होंने सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा महादेवी इच्छानुसार विवाह करना चाहती हो तो वे धर्म परिवर्तन करने को भी तैयार हैं। महादेवी जी ने स्पष्ट उत्तर दिया दूसरे विवाद की बात ही नहीं, वे विवाह करना ही नहीं चाहतीं। यदि पिछले कृत्य की ग्लानि छोड़कर उनके वर्तमान निश्चय को स्वीकार कर लिया जाय तो दोनों ही पक्ष पाप मुक्त हो जायेंगे। पिता ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और यहीं पर इस प्रसंग का अंत हो गया।

वैवाहिक जीवन अस्वीकार करने के मूल में अनेक अनुमान लगाये गये युगों से चली आई दयनीय दशा, सहज वैराग्य भावना, बौद्ध भिक्षणी बनने को इच्छा, पुरूष निरपेक्ष नारी व्यक्तित्व की स्थापना का जीवनव्यापी उदेश्य इत्यादि। इन सबसे चक्कर में न पड़ हमें उनके स्पष्ट कथन को ही स्वीकारना उचित प्रतीत होता हैं ''मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था। कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है।'' स्वाधिन विकास की संवर्धना के लिए उन्होंने जीवन साहित्य में जो भगीरथ अनुष्ठान किया है, वह भारतीय इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है।

महादेवी स्वयं कहती हैं ''मेरे पति डाक्टरी पढ़ते थे, उन्होंने कई बार चाहा, हम साथ रहें। लेकिन यह बात मेरे मन में थी ही नहीं। मैंने उनसे कहा गृहस्थ जीवन की ओर मेरी थोड़ी सी भी प्रवृत्ति नहीं है. अतएव में आपके साथ कभी भी नहीं रह सकूँगी। मैंने कई बार उन्हें यह भी समझाया कि वे अपना दूसरा विवाह कर लें, लेकिन दूसरा विवाह उन्होंने नहीं किया। ''पति के साथ उनका मित्रवत् सम्बन्ध रहा। जब वे इलाहाबाद आते तो महादेवी जी से अवश्य मिलकर जाते। उनका आपस में पत्र व्यवहार भी होता। एक बार सावित्री जी ने श्री दिनकर जी को बताया कि जब कभी डॉ. साहब छात्रावास में आते तो वे अपनी सहपाठिनों से यह भी कह देती थी, इनसे मुझे मुक्ति दिलवाओ। शादी क्यों नहीं निभी है, इस प्रश्न पर वे बताती है। ष्हम जैसे बाँडम आदमी से शादी का क्या निभती, जिसने कभी कोई बन्धन माना ही नहीं। ससुराल वाले सोचते थक जायेगी, परेशान होगी तो अपने आप आ जायेगी, सो भला हमसे क्यों होता, पति के साथ हमारा कोई कटु सम्बन्ध नहीं रहा। इस रोचक प्रसंग की कथा निराली ही है।

विवाह का अस्वीकार करने के बाद भी उनका परिवार सीमित नहीं। उनका क्षेत्र विशाल है, जिसका संचालन सबके बस की बात नहीं। गाय, हरिण, कुत्ते गिलहरी, खरगोश, मोर, कबूतर उनके परिवार के सदस्य हैं, लता, फूल पेड़–पौधे आदि उनकी जीवन ममता के समानाधिकारी है। वे आगन्तुक अतिथि का स्वागत तन्मयता से करती है। उनका निवास स्थान शंकर की वरात का जनवासा–सा बना रहता है। साहित्यिक असाहित्यिकों की व्यवस्था देखने लायक ढंग से करती है। परिचित अपरिचित सभी के लिए, उनके द्वार मुक्त हैं, गुप्तजी कहते हैं – ''मेरी प्रयाग यात्रा केवल संगम स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती महादेवी के दर्शन के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल अक्षत भी चढ़ाना पड़ता हैं, पर सरस्वती के मंदिर में कुछ प्रसाद मिलता है।'' मलय की मधुर हवा की भाँति वे आजीवन मुक्त रूप में चलती रहीं। हर पलक, हर साँस में उन्होंने अपने सामने एक नये जीवन के दर्शन किये हैं।

### 20.3.2 कृतित्व

साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे धूप छाँही वस्त्र के दो रंगों के तार, जो अपनी अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं। उसके लिए न हमारा अंतर्जगत राष्ट्रकवि गुप्तजी से प्रभावित थी। बचपन के संस्कार योग्य अवसर पाकर प्रस्फुटित होने लगे। महादेवीजी ने भी स्पष्ट कहा हैं– ''मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।''

सन् 1932 में वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य नियुक्त हुई। रात–दिन के परिश्रम ने विद्यापीठ को गाँधीवादी संस्कार भवन बना दिया। एक बार एक केरली सज्जन अपनी पुत्री को विद्यापीठ में भर्ती कराने आये, उन्होंने कहा ''आपके कोई संतान भी है।'' उत्तर में महादेवी जी ने कहा ''हाँ हाँ मेरे सात–आठ सौ बच्चे हैं। ये सब विद्यार्थी मेरे बच्चे ही तो हैं। वास्तव में वे ऐसी बड़ी माँ की अधिकारिणी हैं। सन् 1960 से महादेवी जी महिला विद्यापीठ में उप–कुलपति पद पर विराजमान रहीं।

इस समय के दरम्यान उन्होंने पत्र–पत्रिकाओं का संपादन भी किया। हर क्षेत्रीय कार्य अल्प वेतन तथा निःशुल्क रूप में वे करतीं। सादगी सभर जीवन के पश्चात् बची धन–संपदा वे देश और गरीबों में बाँट देती। अगर हम कहें कि व्यवसाय उन्होंने अपने लिए नही औरों के लिए किये हैं तो इस तथ्य में अतिशयोक्ति जरा भी नहीं है। उन्होंने अपना सर्वस्व लुटा 'महादेवी' नाम की सार्थकता की है।

जिसे संस्था के प्रति प्रेम और कार्य के प्रति मोह कहा जा सकता हैं। इसी संस्था के साथ–साथ 'वनस्थली' का निर्माण भी किया गया था। जो महिला विद्यापीठ की शाखा मानी जाती थी, परंतु आज उसका अस्तित्व स्वतंत्र है। उस संस्था को भी महादेवी द्वारा प्रेरणा प्राप्त हुई। उनके जीवन में हमेशा साहित्यिक प्रवृत्तियों का स्त्रोत प्रवाहित होता रहा, जिससे सभी प्रेरणा पा प्रेरित होते रहे। हिन्दी साहित्य जगत के लिए महादेवीजी स्वयं एक संस्था वन चुकी हैं।

**सम्मान एवं पुरस्कार**

महादेवी ने बचपन से ही पुरस्कार प्राप्त करने आरंभ कर दिये थे। प्राथमिक स्कूल में उन्हें सबसे पहले काव्य–पठन स्पर्धा में चाँदी का कटोरा प्राप्त हुआ था। माध्यमिक शिक्षण में भी इन्हें विभिन्न प्रकार के मेडल तथा सर्टिफिकेट प्राप्त हुए हैं। हिन्दी के साहित्यकारों की तरफ से महादेवी जी को दो ग्रंथ प्रकट हुए हैं। सवंत् 2021 में भारतीय परिषद प्रयाग की ओर से कविवर पंत ने इनके निवास पर इन्हें एक 'अभिनन्दन ग्रंथ' भेंट किया। सवंत् 2023 में षष्ठि प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से पंतजी ने एक 'संस्मरण–ग्रंथ' भेंट किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कला भवन में इनके मूल चित्रों को स्थान प्राप्त हो चुका है। अतः महादेवी जी गद्य और पद्य की श्रेष्ठ लेखिका तो हैं, साथ ही महान चित्रकर्त्री भी हैं जिसका यह प्रमाण है।

संवत् 1919 में 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार गाँधीजी के हाथों मिला। संवत् 2000 में 'स्मृति की रेखाएँ' पर द्विवेदी–पदक प्राप्त हुआ। संवत् 2001 में आधुनिक कवि भाग–1 को पदक प्राप्त हुआ। संवत् 2009 में स्वतंत्रता के पश्चात् गठित उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् की सम्मानित सदस्या मनोनीत हुई संवत् 2011 में दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्या चुनी गई। संवत् 2013 में उज्जैन और बनारस यूनिवर्सिटी ने माननीय 'डाक्टरेट' और भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। संवत् 2017 में सर्व सम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति निर्वाचित हुई। संवत् 2020 में लेखिका संघ, दिल्ली की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् द्वारा अभिनन्दित हुई, रात को इनके सम्मान में जो काव्य गोष्ठी आयोजित हुई थी, उसमें स्वर्गीय प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इसका स्वागत किया और डेढ़ घंटे तक काव्य पाठ सुनते रहे। किसी काव्य–कवि गोष्ठी में प्रथम बार उन्होंने इतना समय बिताया था। सन् 1982 में ज्ञानपीठ संस्था की ओर से 'श्यामा' काव्य संग्रह पर डेढ़ लाख रूपये का 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ, जो इंग्लैंड की प्रधान मंत्री मार्गरेट थेचर के शुभ हाथों से मिला था। सन् 1983 में उत्तर प्रदेश की सरकार की तरफ से एक लाख रूपये का 'भारत–भारती' पुरस्कार मिला।

इस प्रकार महादेवी जी सामान्य से लेकर विशेष महत्वपूर्ण पुरस्कारों की प्राप्त कर चुकी हैं। इनकी संपूर्ण साहित्य साधना पारितोषों तथा पुरस्कारों का मेला बन गई हैं। इनके व्यक्तित्व की एक रहस्यपूर्ण विशिष्टता यह रही कि इन्होंने आज तक प्राप्त प्रत्येक पुरस्कार की राशि को 'साहित्य सहकार संस्था' में लगा दिया। महादेवी जी प्रत्येक स्थान में सम्मानित शिरोमणि स्थान की अधिकारी हैं, इस तथ्य में अतिशयोक्ति या शंका नहीं।

संक्षेप में कहा जाये तो विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत उनका विशाल जीवन आदर्शों का भंडार है। महादेवी वर्मा के जीवन का संपूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए उनके व्यक्तित्व और साहित्य का गहन अध्ययन करना अनिवार्य है। अतः महादेवी जी का जीवन एक ऐसा आदर्श है जिसकी दिप्ती से समग्र हिन्दी साहित्य जगमगा रहा है, तथा भविष्य के निर्माणों को नया संदेश प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हो रहा है।

**व्यक्तित्व विश्लेषण**

व्यक्तित्व को लेखनीबद्ध करना एक संगीन तत्त्व को सीमाबद्ध करने के समान कठिन कार्य है। उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है, जिसकी आलोचना करना साहसिक कार्य करने के समान है। मानव के व्यक्तित्व को विश्लेषित करने के लिए सामान्यतः दो रूपों का आश्रय लेना आवश्य है। बाह्यपक्ष और आंतरिक पक्ष। इनके द्वारा ही समग्र व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त हो सकता है। श्रीमती महादेवी वर्मा की जीवन यात्रा को तथा उनके समस्यापूर्ण व्यक्तित्व को बाह्य पक्ष और आंतरिक पक्ष को आधार पर ही अवलोकित किया जा सकता है, क्योंकि उनका व्यक्तित्व सरल साधारण नहीं वरन् पेचीदा है।

● **आंतरिक पक्ष :**

1. मैत्री भाव की उत्कटता
2. मानवतावादी दृष्टिकोण
3. अन्याय का विरोध
4. नौकरों के प्रति आत्मीय – व्यवहार
5. बौद्धदर्शन दृष्टिकोण
6. धार्मिक – दृष्टिकोण एवं भारतीय संस्कृति
7. सेवाभाव

● **कृतित्त्व :**

**पद्य कृतियाँ**

1. 'नीहार'
2. 'रश्मि'
3. 'नीरजा'
4. 'सांध्यगीत'
5. 'दीपशिखा'
6. 'हिमालय'
7. 'सप्तपर्णा' (अनुदित)
8. 'प्रथम आयाम'
9. 'अग्निरेखा'

● **गद्य कृतियां**

1. 'अतीत के चलचित्र' (रेखाचित्र)
2. 'श्रृंखला की कड़ियाँ' (नारी विषयक सामाजिक निबंध)

3. ‘स्मृति की रेखाएँ’ (रेखाचित्र)

4. ‘पथ के साथी’ (संस्मरण)

5. ‘क्षणदा’ (ललित निबंध)

6. ‘साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध’ (आलोचनात्मक)

7. ‘संकल्पिता’ (आलोचनात्मक)

8. ‘मेरा परिवार’ (पशु पक्षियों के संस्मरण)

9. ‘चिंतन के क्षण’

● **संकलन :**

**पद्य कृतियाँ** :

1. ‘यामा’

2. अन्य पद्य कृतियाँ (‘सन्धिनी’, ‘गीतपर्व’, ‘परिक्रमा’, ‘संभाषण’, ‘आत्मिका’, ‘नीलाम्बरा’, ‘दीपगीत’)

● **गद्य कृतियाँ :**

1. ‘स्मृति चित्र’ (गद्य संग्रह)

2. ‘महादेवी साहित्य– भाग 1,2,3’ (समग्र साहित्य)

3. ‘मेरे प्रिय निबंध’ (निबंध संग्रह)

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. महादेवी वर्मा का जन्म किस शहर में हुआ ?

2. महादेवी वर्मा की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ से हुई ?

3. प्रयाग महिला विश्वविद्यालय में महादेवी वर्मा किस पर नियुक्त हुई थी ?

4. महादेवी वर्मा द्वारा रचित ‘यामा’ किस विधा की रचना है ?

5. महादेवी वर्मा ने किस पत्रिका का संपादन कार्य किया था ?

6. महादेवी वर्मा को ज्ञानपीठ पुरस्कार किस कृति पर मिला था ?

**20.4 सारांश**

महादेवी वर्मा हिन्दी भाषा की कवयित्री थी। वे हिन्दी साहित्य के छायावादी युग के प्रमुख चार स्तंभों में से एक थी। वह हिन्दी भाषा की प्रख्यात कवयित्री, स्वतंत्रता सैनानी, महिला अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाली महान महिला थी। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन महिलाओं की शिक्षा और उनके विषय के लिए समर्पित किया था।

**20.5 कठिन शब्दावली**

**पथिक** – राहगीर

**विरक्त** – उदासीन

**नेतृत्व** – अगुवाई करना

**विस्मित** – हैरान

**परिष्कार** – शुद्विकरण

**20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर**

1. फर्रुखाबाद में।

2. इंदौर से।

3. प्रधानाचार्या।

4. काव्य संग्रह।
5. चाँद पत्रिका।
6. 'यामा'

## 20.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ. उष्ण मिश्रा (सं.), स्त्री विमर्श : महादेवी वर्मा, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
2. निर्मला जैन (सं.) महादेवी साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

## 20.8 सात्रिक प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. महादेवी की साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन करें।
3. महादेवी वर्मा आधुनिक मीरा हैं। कथन को स्पष्ट कीजिए।

*****

# इकाई–21
## संस्कृति और शिक्षा : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**


21.1 भूमिका

21.2 उद्देश्य

21.3 संस्कृति और शिक्षा : पाठपरक अध्ययन

21.3.1 संस्कृति और शिक्षा की तात्विक समीक्षा

21.3.2 संस्कृति और शिक्षा का सार

21.3.3 संस्कृति और शिक्षा निबंध का उद्देश्य

21.3.4 'संस्कृति और शिक्षा' की शिल्पगत विशेषताएँ

स्वयं आकलन प्रश्न

21.4 सारांश

21.5 कठिन शब्दावली

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

21.7 संदर्भित पुस्तकें

21.8 सात्रिक प्रश्न


### 21.1 भूमिका

इकाई बीस में हमने महादेवी वर्मा के जीवन परिचय का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई इक्कीस में हम महादेवी वर्मा के निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' का पाठपरक अध्ययन करेंगे कि हम इस निबंध का सार, उद्देश्य, शिल्पगत विशेषताएं और तात्विक समीक्षा कैसे करेंगे। इसका विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

### 21.2 उद्देश्य

इकाई इक्कीस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होगे कि–

1. 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध का पाठ्परक अध्ययन क्या है ?
2. 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध का सार क्या है ?
3. 'संस्कृति और शिक्षा' की तात्विक समीक्षा क्या है ?
4. 'संस्कृति और शिक्षा' निबन्ध का उद्देश्य क्या है ?
5. 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध की शिल्पगत विशेषताएँ क्या है ?

### 21.3 संस्कृति और शिक्षा : पाठपरक अध्ययन

मेरे लिए यह बड़ा पवित्र अवसर है कि मैं ऐसी मंगल बेला में आपके सामने उपस्थित हो सकी। मेरा भी यही स्वप्न था कि कभी एक विश्वविद्यालय प्रकृति के बीच में बने और पर्वतीय बालक उस विश्वविद्यालय में शिक्षा पा सकें। मेरा वह बहुत पुराना स्वप्न किसी सीमा तक आज सत्य हुआ है। अतः मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अनेक विश्वविद्यालय हैं और वहाँ से सहस्त्रों की संख्या में सफल होकर परीक्षार्थी निकलते हैं। उनमें हजारों की संख्या में बेकार घूमने, भटकने में ही जीवन के अमूल्य वर्ष बिता देते हैं। मैं समझती हूँ आपकी स्थिति उनसे भिन्न होनी चाहिए और उसका कारण है – आप भारत माँ के तुषार किरीट की छाया में उत्पन्न होते हैं, आपको निर्झर लोरियाँ सुनाते हैं, आपको रंगीन बादल छाया देते हैं, आपके लिए प्रकृति की हरी–भरी गोद पालना बन जाती है, देवदारू के आकाशचुम्बी वृक्ष आपके प्रहरी हैं। यह आपको प्रकृति का दान है। आप जानते हैं कि प्रकृति उदार

बहुत है, पर परिणाम में बहुत कठिन भी है। आप आलस्य में नहीं रह सकते, अकर्मण्य नहीं रह सकते। यदि आप रहना चाहें तो क्या होगा? बर्फ की पर्त की पर्त आपको पाषाण बना देगी। बवण्डर आपको उड़ा ले जायेंगे, निर्झर आपको बहा ले जायेंगे। आपको निरंतर सक्रिय रहना पड़ता है, धरती की गोद में दृढ़ता–सूचक सारी शक्ति से अपने आपको संभालना पड़ता है, जैसा कि नगरों के सुचकों को नहीं करना पड़ता। वे यदि एक बार आलस्य में पड़ जायें, प्रभाव में पड़ जायें, फिसल जायें तो उनकी विशेष हानि नहीं होती; किंतु आप प्रकृति की गोद में रह कर प्रमाद में नहीं पड़ सकते, आलस्य में नहीं रह सकते। आप अपने देवदारूओं को देखिये। इनको कौन सींचता है, कोन जन्म देता है। आकाश से इन्हें जो जल मिलता है वह भी संचित नहीं रखा जा सकता। पर ये कठिन पाषाणों को पकड़े हुए, आंधियों से जूझते हुए शिलाओं पर खड़े हैं। मैंने पर्वतीय अंचल को घूमकर देखा है कि यहाँ का व्यक्ति शिलाओं को शैरूया बना सकता है; कांटों से खेल सकता है और इनके बीच से बर्फ की नदियाँ पार कर सकता है। इसी से मेरे इस स्वप्न का जन्म हुआ कि यदि गुरूकुलों की कोई कल्पना सार्थक हो सकती है तो वह पर्वतीय अंचल में हो सकती है, अन्यत्र नहीं । हम आप जिस युग में जी रहे हैं उससे आप भी परिचित है, हम भी परिचित है। हम एक प्रकार से दो युगों में जी रहे हैं – एक युग तो मध्ययुग और एक युग नया विज्ञान का युग। हमारा एक आर्यभट्ट आकाश में उड़ रहा है और असंख्य जन धरती पर चलने में भी असमर्थ है। हमारी अधिकांश जनता सड़क के किनारे बिना छाया के, बिना भोजन के, बिना वस्त्र के जन्म लेती है, मरती है। आप इस विषमता की कल्पना कीजिये। वह देश जो अणु का विस्फोट करता है, वह देश जो आर्यभट्ट को आकाश में भेजता है, वहीं अपने मनुष्य को कितना हीन बनाये हुए है। आपने अपने मन से कभी पूछा कि यह हीनता क्यों है ? दस दोहरी व्यथा पर विचार कीजिये। इस महानता के चरणों के स्वर्ग के साथ जो नरक निरंतर बंधा हो उसको यदि हम दूर नहीं करते तो हम अपने आपको कैसे क्षमा कर सकते हैं। कैसे हम अपने आपको इस वैज्ञानिक युग का प्राणी कहते हैं। यही समस्या है। कौन उसे दूर करेगा ? कैसे ?

मैं जब विद्यार्थी को देखती हूँ, दीक्षाप्राप्त उपाधिकारी विद्यार्थी की आँखों में देखती हूँ और कोई गन्तव्य नहीं पाती, कोई स्वप्न नहीं पाती तो मेरा मन सचमुच रो उठता है। तरूणाई की आँखों में आँसू देखना दयनीय है। आँखों को शून्य देखना मृत्यु है। जब हम अपनी पीढ़ी को देखते हैं तो पाते हैं कि उसके पास जो कुछ है उसका उत्तराधिकार देने की समस्या है। अन्त में यह उत्तराधिकार आप विद्यार्थियों को ही तो देगी, जिनकी आँखें शून्य है, जिनकी आँखों में मृत्यु की छाया है। इसीलिए कभी–कभी मन बहुत व्यथित होता है। मेरे विचार में विद्यार्थी जीवन एक निर्माण का जीवन है। उसमें तीन युग मिलते हैं – इसमें अतीत की उपलब्धियाँ मिलती है, वर्तमान की समस्यायें मिलती है और भविष्य का जो राष्ट्र तथा जीवन बनेगा, उसका चित्र मिलता हूँ। मैं तो भारत राष्ट्र के भविष्य को इनकी आँखों में देखती हूँ। मेरे पास कोई दूसरे अक्षर नहीं जिनमें भारत का भविष्य लिखा हो। जो कुछ ये बनायेंगे, भारत वही बनेगा। भारत महान राष्ट्र है। इसकी संस्कृति महान ही नहीं, मूल्यात्मक भी है। इसने बहुत दिया है विश्व को। लेकिन अपने आपको इसने देखते–देखते इतना जीर्ण कर डाला है, इतना हीन कर डाला है कि आज इसका हरास हो रहा है। आप अपने धर्म को देखें– रूढ़ियों में निष्क्रिय, अंधविश्वासो में गतिहीन। आप अपने समाज को देखें – जातियों, उपजातियों में बंटा, परस्पर संघर्ष में ही लगा हुआ है। आप अपनी राजनीति को देखें – कितनी विक्षिप्त हैं। इसके पास कोई दिशा ही नहीं। हम मानों यादवों का अभिशाप लेकर एक–दूसरे से संघर्ष करके नष्ट हो रहे हैं। कहीं तो इस तूफान को चुनौती देनी होगी। कहीं तो इस तूफान को रोकना होगा। यदि नहीं रोकते हैं तो हमारी यह शस्य श्यामला, यह तुषार किरीटिनी भारत माता कहाँ जायेगी, कहाँ रहेगी। इस प्रलय को रोकने का काम नई पीढ़ी को ही करना है। सूर्य को सप्तरश्मि कहते हैं, क्योंकि उसके रथ में सात घोड़े है। इसी प्रकार हम अपने ज्ञान को सप्तरथी कहेंगे। इसके पास भी सात रंग हैं, ज्ञान है, बोध है, मनोयोग है, पाठ्य विषय है। उनको दूसरे तक पहुँचाने का माध्यम भाषा है, गुरू–शिष्य का परस्पर संबंध है और अंत में स्वावलम्बन है। ये सातों जब तक नहीं मिलते तब तक कोई शिक्षा पूरी नहीं

होती। हम सब जानते हैं कि हमने दासता को दूर करने के लिए, स्वतंत्र होने के लिए सौ वर्ष से अधिक समय तक अनेक प्रकार से संघर्ष किया। जैसा प्रायः होता है, अस्त्रों के साथ हुआ, क्रांति के साथ हुआ। उसमें हमने प्राण दान भी दिया, मृत्यु का वरण भी किया और फिर अंत में हमकों बीसवीं सदी में महात्मा गांधी मिले। गांधीजी ने हमको एक नया अस्त्र दिया। इस अस्त्र की धार कभी मोटी नहीं होती; उस अस्त्र में कभी जंग नहीं लगती; उस अस्त्र को कोई काट नहीं सकता। उस अस्त्र को मनुष्य का हृदय बनाता है, मनुष्य की आत्मा बनाती है। वह अस्त्र सत्य का, अहिंसा का, अपरिग्रह का है। वास्तव में वह ऐसा अस्त्र है कि चलाने वाले को कोई जीत नहीं सकता। उस अस्त्र से हम स्वतंत्र हुए। अब हमारी भूल कहाँ थी ? मैं समझती हूँ, हमारी पीढ़ी की दृष्टि केवल इतनी ही थी कि अंग्रेज चले जाये; हम स्वतंत्र हो जायें तभी हम सब कुछ कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कोई दृष्टि उस समय नहीं थी। द्रोणाचार्य ने परीक्षा के लिए अपने शिष्यों से कहा कि पक्षी की आँख को बाण से वेध दो। फिर पूछा कि पहले बताओं, डाल पर देखते क्या–क्या हो ? किसी ने कहा, डाल देखते है; किसी ने कहा, डाल और पक्षी भी देखते हैं। अर्जुन ने कहा, मैं पक्षी की आँख मात्र देखता हूँ, और कुछ नहीं। उन्होंने वेध दिया। हमने भी इसी प्रकार कहा, अंग्रेज चले जायं। हम केवल इतना ही चाहते थे कि अंग्रेज चले जायें और जब अंग्रेज चले गये तब वास्तव में हमारी उस दृष्टि को कोई दूसरा केंद्र नहीं मिला। उस दृष्टि को कोई केंद्र मिलता तो संभवतया हमारी सारी पीढ़ी उसी ओर चलती। परिणाम यह हुआ कि हमारे भीतर से अंग्रेजियत तो गई नहीं, साथ ही अनेक सदियों की दासता से जितने दुर्गुण उत्पन्न हो गये थे, वे ज्यों–के–त्यों बने रहे। कैदी को जेल खाने से निकालकर उसकी हथकड़ी बेड़ी काट दो। लेकिन हाथ पैरों पर उसके जो दाग पड़ गये हैं, वे कैसे दूर होंगे। हथकड़ी–बेड़ी काट देने से ही तो व्यक्ति मुक्त नहीं होता। मुक्त तो तब होता है जब वह स्वतंत्रता का अनुभव करे; जब वह मुक्ति का वरण करे। मुक्ति की अनुभूति के बिना मुक्त होना संभव नहीं है। संपूर्ण मुक्ति का अनुभव हम शिक्षा के क्षेत्र में ही कर सकते हैं, जहाँ हमारी संस्कृति नया रूप लेती है, कायाकल्प करती हैं; जहाँ जीवन के नये मूल्य ढलते हैं, जहाँ नई समस्याओं को हम देखते हैं और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। आज मुझे यह सोचकर दुःख होता है कि स्वतंत्र हुए उनतीस वर्ष हो गये। पहले मैंने कहा था कि शिक्षा में परिवर्तन कीजिये। शिक्षा के इस चौखटे को भी बदलिये; केवल चित्र को बदल देने से कुछ नहीं होगा। लेकिन चौखटा आज तक वही है आपके सामने। मुझसे जो बड़े थे, उन्होंने सोचा कि यह कवि की कल्पना होगी। हाँ, वह कल्पना तो थी अवश्य उस समय; लेकिन आज उसका परिणाम तो कल्पना नहीं है।

आज आपके समक्ष जो विद्यार्थी बैठा है और आज के एक करोड़ शिक्षित जो बेकार घूम रहे हैं, यह उसका परिणाम ही तो है कि हमने शिक्षा का कोई दर्शन नहीं बनाया। जीवन का कोई मूल्य बदले बिना हमने अपने आपको स्वतंत्र घोषित किया। परतंत्र राष्ट्र की समस्या एक होती है कि स्वतंत्र होना है; परंतु स्वतंत्र राष्ट्र की अनेक समस्यायें होती हैं। कैसे समाज का निर्माण हो ? कैसे शासन का निर्माण हो ? कैसे संस्कृति का निर्माण हो ? कैसे साहित्य का निर्माण हो ? कैसे जीवन में नैतिकता आये और मूल्य जीवन का अंग बन जाये। सबका निर्माण तब होता है, जब देश स्वतंत्र होता है। यह निर्माण हम नहीं कर सके। यह दुःखद है, परंतु सत्य तो है ही। सेवे का भूला हुआ संध्या तक घर लौट आये तो भूला हुआ नहीं कहते। यदि आज भी हम वहाँ लौट आयें जहाँ हमारे पूर्वजों ने जीवन को रखा था, जीवन के मूल्यों को धारण किया था, तो आज भी हम इससे उबर सकते हैं, इस आवर्त से बाहर आ सकते है। जैसे नदी के दो तट होते हैं, इसी तरह शिक्षा के भी दो तट होंगे। एक होगी ऐसी शिक्षा जो वृतिमूलक है। जिसके द्वारा विद्यार्थी आजीविका का उपार्जन कर सकेगा और दूसरी वह होगी जिससे वह अपने चरित्र का निर्माण करेगा, जीवन के मूल्यों में विकास करेगा, आस्था उत्पन्न करेगा, विश्वास उत्पन्न करेगा और जीवन के अभ्युदय की ओर, प्रगति की ओर चलेगा। गति अपने आप में कोई महत्व नहीं रखती, जब तक प्रगति न हो। प्रकृति को देखिये – पृथ्वी का पहिया, गोल–गोल घूमता हुआ हजारों–हजारों मील चलता है; पर घूमना तो उसका अपनी घूरी पर ही सार्थक होता है। समाज को प्रगति चाहिए। लक्ष्य की

ओर चलना होगा तभी उसे आप प्रगति कह सकते हैं। लक्ष्य नहीं होगा तो प्रगति कहाँ होगी। यी स्थिति है हमारी साज–सज्जा की। शव को हम कितने फूलों से सजाते हैं, कितना अबीर–गुलाल छिड़कते हैं, कितना कीमती वस्त्र उढ़ाते हैं; इससे क्या वह जीवित हो सकता है? जीवन में शक्ति चिंतन से आती है, साज–सज्जा से नहीं। आप एक पेड़ को, चाहे वह वट हो या देवरारू, काट लीजिये और संगमरमर के या सोने के चबूतरे पर रख दीजिये। क्या वह फले–फूलेगा ? वास्तव में उसे धरती चाहिए, मिटटी चाहिए। आज हमें भी अपने देश की धरती चाहिए, अपनी माटी से रागात्मक लगाव चाहिए और अपने देश को सुंदर बनाने के लिए मृत्यु का भी वरण करने का संकल्प चाहिए। जो वृद्ध होता है, जो मृत्यु के निकट पहुँचता है, वह तो मृत्यु से डरता है, लेकिन तरूणाई मृत्यु से नहीं डरती। मृत्यु का वरण तो तरूणाई ही करती है। मान लीजिये, कल कोई संघर्ष का समय आ जाए, युद्ध आवश्यक हो जाए तो न हममें से बूढ़े जायेंगे, न बालक जायेंगे। आपको युवकों को ही सीमान्त पर खड़ा होना पड़ेगा। आज भी आपके तुषार मडित शिखर पर जो प्रहरी खड़ा हुआ है बर्फ में, आंधी में, पानी में, सब झेलता हुआ – क्या आप समझते हैं कि वह केवल आजीविका के लिए खड़ा है? प्राणों का यह दान कितना सुंदर है, कितना मूल्यवान। आज की पीढ़ी से मैं यही कहती हूँ – सुंदर स्वप्न देखिये, सुंदर संकल्प रखिये और संकल्प को कर्म में उतारने का साहस कीजिये।

गंगा अचानक आपकी धरती पर नहीं उतर आई। पहले उसे शिव की जटाओं में उतरना पड़ा। शिव की जटाओं से वह धरती पर उतरी। यह रूपक भी है। शिव कहते हैं मंगल को। इस प्रकार, वास्तव में जीवन की शक्ति सर्व–प्रथम समष्टि के मंगल में उतरेगी और तब वह समाज का कल्याण करेगी; अन्यथा नहीं। आप सबको बहुत ज्ञान प्राप्त हो गया है, सही है। ज्ञान बहुत मुल्यवान है, परंतु वह दो धार वाली तलवार भी है जिससे कभी–कभी अपना ही लक्ष्य कट सकता है। विशेष ज्ञानवाले चाहे वे अच्छे डाक्टर हैं, चाहे वे अच्छे वैज्ञानिक हैं, प्रायः वे यही कहते हैं कि हम तो विदेश जाना चाहते हैं। क्योंकि वहां काम करने की सुविधायें भी अधिक हैं और अर्थ की भी। मैं समझती हूं, अर्थ की सुविधा उनके लिए अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। मैं कहती हूँ, सुविधाओं के फेर में पडकर आप यदि विदेशों की दौड़ लगाते रहेंगे तो आपकी धरती पर कौन काम करेगा, आपके देश में कौन काम करेगा। यदि आप अपनी धरती को सुंदर नहीं बना सकते, अपने देश को सुंदर नहीं बना सकते तो इसमें जन्म लेकर आपने क्या किया, क्या दिया?

जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक महान है। आपने जिस देश में जन्म लिया है, उस देश को सुंदर बनाना आपका पहला कर्त्तव्य है। यह तभी हो सकेगा, जब आपके ह्रदय में आस्था हो, संकल्प हो और आपकी आँखों में सुंदर स्वप्न हो। मैं उस स्वप्न की बात नहीं कहती हूँ जो ऊँधते हुए लोग देखा करते हैं। बहुत–से व्यक्ति दिवा–स्वप्न देखते हैं और बहुत से रात्रि में, सोते हुए। जीवन का स्वप्न वह है जो समग्र चेतना के साथ देखा जाता है, जो समष्टि को सुंदर बनाता है। धरती के गहन गर्त में हम एक बीज डाल देते हैं। अंधकार में वह बीज अपने आपको तोड़ता है। अपने आपको मिटाकर भी अंकुर को ऊपर, आलोक में निकालता है। जब वह स्वयं मिटता है तब धरती में वह अंकुरित पौधा हरा–भरा होता है, उसमें फूल निकल आते हैं और उसका सौरभ वातावरण में व्याप्त हो जाता है। कौन–सा ऐसा सौरभ है जिसको कली ने या फूल ने बांध कर रखा हो। फूल खिल जाता है और उसका आत्मसौरभ सबका हो जाता है। जीवन का ध्येय भी यही है। जब हम अपने आपको थका देंगे किसी उद्देश्य के लिए, समो देंगे उसमें अपने आपको और खाद देंगे समग्र जीवन की, तभी वह पनपेगा और तभी कोई स्वप्न साकार होगा।

भारत के पास बड़ी मूल्यवान संस्कृति है और भारत माँ की प्रतिमा तो संसार की सारी प्रतिमाओं से सुन्दरतम है। किसी देश की इतनी सुंदर धरती नहीं। हमारी यह धरती हरितांचल नदियों की मुक्ता–माता पहिने हुए है, तुषार मंडित हिमालय का किरीट धारण किये हुए है। तीन समुद्र उसके चरणों का प्रक्षालन करते हैं। कितनी विविधता है उसमें, किंतु उस विविधता के साथ एकता भी कितनी है। प्राणवता कितनी है। जैसे हमारे अंगों

में इतनी विविधता है, परंतु अगर किसी अंग में पीड़ा हो तो हृदय में उस पीड़ा का बोध होता है। छोटी–सी अंगुली की पीड़ा भी समग्र शरीर को पीड़ा देती है, क्योंकि समग्र शरीर एक है। इसी तरह हमारा समग्र देश एक है। उसमें जो सांस्कृतिक आन्दोलन हुआ है, उद्वेलन हुआ है, वह जैसे समुद्र की तरंगें हैं उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक आपको एक ही भारत मिलेगा; भारत के एक ही प्रकार के मूल्य मिलेंगे। इतने सुंदर देश को यदि हमारी आने वाली पीढ़ी और अधिक सुंदर नहीं बनाती, जीवन को दयनीय रहने देती है तो कितनी व्यथा होती है। लगता है...... लगता है, इतना ज्ञान व्यर्थ हो गया।

यह युग आपके लिए चुनौती का युग है। वैसे मैं समझती हूँ, हर युग चुनौती का युग था। हर नया युग चुनौती का युग होता ही है। जो युग अपनी पिछली पीढ़ी की समस्याओं को अपने कंधों का बोझ बना लेता है उसके कंधे टूट जाते हैं। वास्तव में जो पीढ़ी अपनी पूर्वगामी पीढ़ी के दोष मात्र देखती हैं, वह वास्तव में आगे नहीं बढ़ सकती । वह उसके बोझ के नीचे दब जाती है। यह मैंने मान लिया कि उस पीढ़ी की, जिसमें मैं भी हूँ, बहुत–सी भूलें रही है। इसकों इसी तरह आप देखिये कि जैसे समुद्र के जल में तो लवण–ही–लवण है; लेकिन बादल कभी भी लवण लेकर नहीं बरसता। वह तो मधुर जल ही लाता है। आप भी हमारे दोषों को मत देखिये, हमारी भूलें मत देखिये। हमारा युग दूसरा था और हमने अपने युग की समस्याएं सुलझायीं। आपके लिए राज–मार्ग नहीं बनाया।

जीवन में राज–मार्ग कोई किसी के लिए नहीं बनाता। जो अपने पैरों के रक्त से काँटों में फूल खिला देता है, वही मार्ग बना सकता है। राज–मार्ग आप स्वयं बनायें और भारत की संस्कृति का यह मूल मंत्र आप ध्यान में रखें। महाभारतकार ने कहा है – 'नहि मानुषात श्रेष्ठतरं हिकिंचित्।' मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नहीं। कवि चण्डीदास ने कहा है, सबार ऊपार मानुष सत्य तहार ऊपर नाई। सबके ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं। जब तक एक भी मनुष्य कष्ट में है तब तक आपकी सारी सुविधाऐं आपके लिए चुनौती बन जायेंगी, अभिशाप बन जायेंगी। वास्तव में जीवन की कसौटी यही है कि आप कितनों को सुखी बना सकते हैं। अंधेरा हमेशा बड़ा सघन लगता है, व्यापक लगता है, लेकिन क्या आप कह सकते हैं कि दिये की काँपती हुई लौ किसी अंधेरे से डरती है? दिये की लौ के ऊपर अगर आप सोने का खोल रख दें तो वह बुझ जायेगा। किंतु उसे आंधी से जूझने के लिए रूई और स्नेह चाहिए। ऐसी कथा है युग–संघर्ष की, संकल्प ही अस्त्र बन जाता है। आपमें से हर एक दीपक है। आपके हृदय में चिंगारी होनी चाहिए। आप यदि अभी से अपने भीतर राख लिये घूमते हैं तो स्मरण रखिये कि एक हजार बुझे हुए दीपकों से वह काम नहीं होता जो एक जले हुए दीपक से होता है। एक जलते हुए दीपक से हम हजार दीपक जला सकते हैं। हजार बुझे हुए दीपकों से हम एक लौ नहीं उत्पन्न कर सकते।

आप प्रकृति के अंचल में उत्पन्न हुए और पोषित है। आपने कितना दिया हिन्दी को। देखिये, कहाँ अल्मोडे का छोटा–सा नगर, उसमें पत्थर जड़ी हुई गलियाँ। उसमें से हमें आपने पंत जैसा जीवन–द्रष्टा कवि दिया। इलाचंद्र जोशी जैसा मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार दिया। नाटककार गोविंद वल्लभ पंत दिया। आपने डाद्ध हेमचन्द्र जोशी जैसा भाषा वैज्ञानिक दिया जो अपना सर्वस्व बेचकर जर्मनी गये, और वहाँ से भाषा–विज्ञान का अध्ययन करके फिर लौट और उनका अंत आपके तल्लीताल में ही हुआ। आपने राजनीति में गोंविद बल्लभ पंत जैसा चाणक्य दिया, जिनके बिना संभवतः कांग्रेस के अनेक प्रस्ताव रह जाते। आपने हमें बहुत कुछ दिया है। महिलाओं में यहाँ कहीं हमारी बहन तारा पाण्डे बैठी होंगी जो मधुर गीतों की कवयित्री है। आपने शिवानी का नाम सुना ही होगा। न महिलायें आपके अंचल की पीछे रही हैं, न पुरूष। छोटा–सा अल्मोड़ा और उसमें से हस्तलिखित पत्रिकाओं का अम्बार था। हर स्कूल, हर पाठशाला का विद्यार्थी हस्तलिखित पत्रिकायें निकालता था। कहाँ से कागज लायें, कहाँ से छपायें ? अपने विचारों को कैसे पहुँचायें ? वे मिलकर हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे और सब तक पहुँचाते थे। कितना काम उन्होंने किया। आप उनकी यश–गाथा लिखकर न रखिये, क्योंकि कर्मठ व्यक्ति इतिहास के पृष्ठों में नहीं रहता। अकबर इतिहास के पृष्ठों में रहेंगे। तुलसीदास नहीं रहेंगे। तुलसीदास मन के सदन में है।

तुलसीदास का स्मरण करके मैं आपको फिर उन्हीं की एक बात सुनाती हू। रामचरितमानस में युद्ध–भूमि का जो वर्णन है, उसमें रावण रथ पर बैठा था और राम धरती पर थे – 'रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा।' जब विभीषण अधीर हुए तो राम ने विभीष को समझाया – 'सुनह सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।' वह दूसरा रथ है जिससे जय होती है। और राम ने आगे बताया कि वह रथ कैसा है ? – 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका।' उस रथ के चक्र शौर्य और धर्म है। शौर्य तो जीवन का ओज है जिसके साथ अधैर्य हो तो मनुष्य पिछड़ जाता है। शूर के पास धीरज न हो तो वह अपने शौर्य का न जाने कहाँ उपयोग करेगा। उसकी शक्तियाँ बिखर जाती है। इसीलिए उन्होंने कहा – 'सौरज धीरज तेहि रथ चाका।' फिर 'सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।' वीर के अपने परिचय के लिए जो ध्वजा होती है वह क्या है ? – सत्य! आप सत्य को जानते हैं। सत्य के साथ शील न हो, सत्य के साथ विनय न हो तो सत्य अहंकार बन जाएगा। सत्य आपको समष्टि से तब मिलाता है जब आप में विनय हो। यह सत्य तो जीवन का सत्य है, सब का सत्य है। हमारा अकेला नहीं है। हम उस सत्य को भी कर्म में बाँध देते हैं। राम कहते हैं कि सत्य भी हो और उसके साथ विनय भी। फिर वह कहते हैं – 'बुधि विवेक बल संयम धीरे।' घोड़े कैसे हों ? बुद्धि के। लेकिन बुद्धि के साथ–साथ विवेक न हो तो बुद्धि भी विश्रृखंल हो जायेगी, बिखर जायेगी। आज के युग में बुद्धि का आधिक्य है, अभाव नहीं। दूसरे देशों में कितने वैज्ञानिक हैं जो मृत्यु के अस्त्र ही बना रहे हैं। वस्तुतः राम ने इसीलिए कहा कि बुद्धि के साथ विवेक हो और शक्ति के साथ संयम, इतना सब कुछ हो तब –छमा कृपा समता रजु जोरे। इनके साथ मानवीय गुण होने चाहिए। दया, क्षमा और सबको अपने समान मानने की शक्ति अर्थात् समता। राम कहते हैं 'सखा धर्मसय अस रथ जोके, जीति न कहूँ न कतहूँ रिपु ताके।' जिसके पास ऐसा रथ है अर्थात् नीतिमय जीवन की चेतना है – 'जीति न कहें न कतहूँ रिपु ताके।' कोई शत्रु उसका नहीं जीतने के लिए, कोई अस्त्र शेष नहीं है, वह अजेय है। यदि यह रथ आपको प्राप्त हो सके जो तुलसी ने रामचरितमानस मे राम को दिया है तो ऐसी शक्तियाँ आपको प्राप्त हो जायेंगी जिनसे आप बाधाओं को पार कर लेंगे। सारे जीवन को केवल रोटी की खोज में खो देना कितनी भीषण क्षति है।

यह सही है कि आज हमारा समाज ऐसा है कि आपकों रोटी की खोज में ही अधिकांश जीवन समाप्त कर देना पड़ता है, परंतु आप स्वीकार न करें इसे। इतने बड़े कर्म–क्षेत्र में जो कर्म मिले उसे आप करें। मैं विद्यार्थियों से कहती हूँ, पत्थर तोड़ने का काम मिले तो उसे करो। इसकी चिंता मत करो कि तुम्हारे पास ज्ञान है। जो शिल्पी या मूर्तिकार है, वह पत्थर को जितना तराशता है उतना ही मूर्ति का अंग बनता है। तुम्हारे पास वह शिल्प है कि जिससे जीवन की मूर्ति बनती है। अनगढ़ पत्थर को भी तुम जीवन की मूर्ति में बदल दोगे, किंतु तुम जब स्वयं खंडित हो, तब जीवन में क्या बनाओगे ? आज का विद्यार्थी राष्ट्र की आत्मा का शिल्पी है, राष्ट्र के जीवन का शिल्पी हें हम उसका बहकना समझ नहीं पाते। हम चाहते हैं कि आप संकल्प लेकर आगे बढ़ें। देश को ऐसा बनायें कि कोई कहे कि इसी पीढ़ी ने देश को इतना सुंदर बनाया। ज्ञान आपका साथ देगा। सुविधाएं सबको जीवन में नहीं मिलती, लेकिन जिसके पास सुविधएं हैं वह अपनी सुविधाओं को बाँट दें। वह अकेला उनका उपयोग न करे। वह स्वयं अन्याय का विरोध करे, परंतु कहीं न्याय का विरोध न हो। हर असत्य के जूझे; पर सत्य से न जूझे; यह ध्यान आपको रखना ही होगा। मनुष्य अपने आप सत्य भी है, शिव भी है, सुंदर भी। मनुष्य की जो मेधा है, मनीषा है, बुद्धि है, वह सत्य है; परंतु मनुष्य का हृदय, उसकी भावना, उसका संवेग सुंदर है और मनुष्य का कर्म शिव। इसीलिए आप स्वतः भी सत्यं, शिवं, सुन्दरम् है। आप अपने आपको खंडित मूर्तियों में न बदल दें, क्योंकि खंडित मूर्तियों की हमारे यहाँ पूजा नहीं होती। खंडित मूर्तियों को हमारे यहाँ उठाकर फेंक देते हैं। हम जहाँ श्रद्धा के फूल देते हैं, हम जहाँ आदर देते हैं, जहाँ आस्था देते हैं वहाँ समग्र मूर्ति होती है, जीवन की। वह मूर्ति जीवन का प्रतीक होती है जिसके सामने हमारा मस्तक झुकता है। आप ऐसे ही हों कि जहाँ आप खड़े हो, वहीं जीवन का मंदिर बन जाए।

श्रोताओं से बहुत–सी बालिकायें दिख रही हैं मुझे। उनके कर्त्तव्य इससे भी अधिक कठिन है। क्योंकि स्त्री तो समाज का केंद्र है। पुरूष तो व्यक्ति हो सकता है; स्त्री तो संस्था है। जब वह भूलती है, चूकती है, अपने कर्तव्य में, तब सब कुछ टूट जाता है। आप स्मरण रखें, आप में इतनी शक्ति है कि आप एक कच्चे सूत की डोरी बांध दें किसी कलाई में, तो उस पुरूष को अपने प्राण देने होंगे आपकी मार्यादा के लिए। आपके पास अजेय शक्ति है। आपको ज्ञान भी मिला है। यह एक अंतराष्ट्रीय महिला–वर्ष है। महिलायें बहुत प्रकार की मुक्ति चाहती हैं किसी विदेशिनी ने कहा, हम आर्थिक सुविधा चाहते हैं। किसी ने कहा, हम विवाद में विश्वास नहीं करते हैं। किसी ने कहा, हम तलाक चाहते हैं। किसी ने कुछ, और किसी ने कुछ। उन्होंने पूछा, भारत की स्त्री क्या चाहती है ? मैंने कहा, भारत की स्त्री तो भारत माँ का चित्र है, प्रतीक है। वह अपनी समग्र संतान को सुखी देखना चाहती है, उसे मुक्त करने में उसकी मुक्ति है; क्योंकि हमारी संस्कृति ने उसे तीन रूपों में देखा है। उसने ज्ञान की अधिष्ठात्री के रूप में भी नारी को देखा है। वह संस्कृति चाहती तो ब्रह्मा महोदय को ज्ञान का प्रतीक बना देती। उसने सरस्वती को बनाया और देश की सारी समृद्धि उसने लक्ष्मी को सौंपी। स्त्री सारी समृद्धि की भी अधिष्ठात्री है। जहाँ अन्याय है, अत्याचार है, आसुरी शक्तियाँ हैं, वहाँ वह चण्डी है। मैंने कहा, भारत की स्त्री भारत भर की मुक्ति में अपना योगदान देती हैं। मातृ–मुक्ति क्या हुआ करती है? उसकी संतान का कल्याण ही उसकी मुक्ति है। जिस समय गांधी जी ने हमको पुकारा उस युग में नारी आधुनिक रूप में शिक्षिता नहीं थी। पर जो घर से कभी निकली नहीं थी, जो असूर्यपश्या, थी, वह भी अपने दुधमुँहें बालकों को लेकर निकल पड़ी। हमने अपनी कोई मांगें नहीं रखीं, क्योंकि हम देश को केवल, सुखी देखना चाहते थे। सौदा नहीं करना चाहते थे। यहाँ भी स्त्री ने कोई सौदा नही किया। लेकिन हमें सारे अधिकार प्राप्त हुए बिना सौदेबाजी के। बिना किसी शर्त के हमने देश भर की मुक्ति के लिए आहवाहन किया। हमारे यहाँ 'फादर लैण्ड' नहीं है, पितृदेश नही है। हमारी माता है, मातृभूमि। हम मात्शक्ति में विश्वास करते हैं। दूसरे देशों की स्त्रियाँ अभी तक अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। हम अपने कर्त्तव्यों से अपने अधिकार को प्राप्त करें। अधिकर जब बिना कर्तव्य के मिल जाता है तब आदमी को कितना विक्षिप्त कर देता है, यह आपका शासन बता देगा। कर्त्तव्य के भीतर से हमें जो अधिकार मिलेगा वह अधिकार शाश्वत है और हम पर आरोपित जो अधिकार हैं, वह तो कुछ समय ही रहेगा।

चाहे राम हों, चाहें कृष्ण, चाहे बुद्ध हो, चाहे महात्मा गांधी। कोई आकाश से नहीं उतरा। किसी–न–किसी के कोमल अंक में उतरा है। किसी–न–किसी के आँचल की छाया में पला है, किसी स्त्री की अँगुली पकड़कर चलना सीखा है, किसी स्त्री की लोरी से सोया है, प्रभाती से जागा है। वास्तव में महान–से–महान पुरूष भी स्त्री के लिए बालक ही होता है। जो महिलायें हैं; बालिकायें हैं, उनसे यही कहती हूँ, आप अपनी बात मत सोचिये, समष्टि की बात सोचिये; पूरे देश की बात सोचिये। हमारे यहाँ स्त्री ने विद्रोह किया– देश को एक रखा। आप कल्पना कीजिये मीरा की। चित्तौड़ के महलों में जो पाषाणों से घिरी थी, उसकी वाणी आपको देश भर में मिलेगी। गुजरात का व्यक्ति कहता है मीरा हमारी है, हिन्दी का कहता है, हमारी है; राजस्थान का कहता है, हमारी है और उसके मधुर गीत उत्तर से दक्षिण तक सुन लीजिये। कहाँ वह पाषाणों के भीतर कैद थी, राजरानी थी। उसे कौन–सी सुविधा नहीं थी, परंतु उस एक स्त्री ने किसी प्रकार मनुष्य के संवेदन को गीतों में उतार दिया। इसी प्रकार हमारे संत बेमना ने जो कहा, हमारे कबीर ने वही कहा, तुलसी ने वही कहा। वास्तव में इस पूरे देश ने इस तथ्य को पहचाना है कि संस्कृति का मूल्य एक ही हुआ करता है। मूल्यात्मक संस्कृति, जिसमें मनुष्य की समानता है, विश्व–बंधुता है, दया है, करूणा है, क्षमा है, सत्य है। ऐसी जो संस्कृति है वह एक ही हुआ करती है। पूरे भारत देश में वह संस्कृति एक है और वह संस्कृति आज भी हमें मार्ग दिखा सकती है – हमारे देश को ही नहीं, विश्व को भी। यदि हमारे जितने चिंतक हैं, बुद्धिजीवी हैं, लेखक हैं, शिक्षक हैं, वैज्ञानिक हैं, वे मिलकर एक बार प्रयत्न करें तो हम इस आँधी से जूझ ही नहीं सकते, इसे रोक भी सकते हैं। जो सैनिक युद्ध में जाते हैं उनमें यदि हर सैनिक सोचने लगे कि हम जीत जायेंगे और जय–माला हमी को मिलेगी तो कोई

जीतेगा नहीं। कुछ तो ऐसे होंगे जो गिरेंगे, कुछ ऐसे होंगे जो गिरे हुओं के ऊपर से निकल कर आगे बढ़ जायेंगे। वास्तव में ऐसे ही जीवन का संघर्ष जीता जाता है। आज हमारे बीच ऐसे असंख्यक व्यक्ति नहीं हैं जिन्होंने संघर्ष किया था। कितने ही कोमल व्यक्तित्व नहीं है जिन्होंने अपने कर्म में ऐसी कठोरता रखी थी कि हमें आज भी विस्मय होता है। मुझे आज कस्तुरबा की याद आती है जो पढ़ी–लिखी भी नहीं थी और विश्व के इतने महान व्यक्ति की अर्द्धांगिनी होने का उसे सौभाग्य था और उस अर्द्धांगिनी की चिर विदा के समय बापू की आँखों में आंसू थे। वह बार–बार अपनी आँखें पोंछ रहे थे। उसने बापू की ऊँचाई तक अपने आपको पहुँचाया। कमला भाभी की याद आती है जो बिलकुल राजरानी की तरह रह सकती थी। सुविधा–संपन्न घर में आई और अपने सारे जीवन को धूर में, आँधी में खपा दिया। आज हमारे बीच में वे सब नहीं है, परंतु हम जानते हैं कि हमारे भीतर उनका सत्य है, उनका त्याग है। बिना बड़े संकल्प के कोई बड़ा कार्य नहीं होता।

आप लोगों को मैंने बहुत–सी बातें सुना दी। अंत में, मैं आपसे केवल एक बात कहना चाहती हूँ – पराजय को पराजय न मानें, पराजय से भयानक शत्रु पराजय में विश्वास करना है। जब आप विश्वास खो देंगे, लगेगा कि हार गये; और तब आपको कोई जिता नहीं सकता। आपका मूलमंत्र 'चरैवैति' होना चाहिए। निरंतर चलिये। बुद्ध भगवान ने कहा है 'आत्मदीयोभव' जब–जब आलोक बुझ जाए तो अपने भीतर का आलोक जलाइये। सब के पास वह आलोक है, सब के पास वह चेतना है। उस आलोक में आपको अपना मार्ग दिख जाएगा और आप मार्ग की बाधायें दूर करते हुए जब चलेंगे तो आपके साथ करोड़ों चलेंगे। आप अकेले नहीं, सत्य के मार्ग में कभी कोई अकेला नहीं होता।

आपको मैंने बहुत थका डाला है, लेकिन कुमाऊँ का अंचल मुझे सदा से बड़ा प्रिय रहा है। सन् 27 या 28 में, जब मैं विद्यार्थीनी थी तब से मैं इन पर्वतों पर घूमी हूँ। मुझे अच्छा लगता है हिमालय। आप सब भी कितने अच्छे लगते हैं। स्वतंत्र देश में उत्पन्न हुए हैं। हम तो परतंत्र देश में उत्पन्न हुए थे और आप तो स्वतंत्र देश के नागरिक, नागरिकायें हैं। आप हताश न हों, हताश होना ही क्यों ? भारत की माता, भारत की धरती वन्ध्या नहीं हैं, न कभी हो सकती है। वास्तव में आप जैसी अनंत संतानों को लेकर वह विजयिनी रही है। उसके सौंदय्र का स्मरण कीजिए, उसकी संस्कृति को आत्मसात कीजिये और उसके ज्ञान का अर्जन कीजिए। आपके कुलपति ने जो प्रवचन दिये, हजारों वर्ष पहले हमारे कृषि ने अपने शिष्य को वही दिये थे। मैं यह भी सुझाव दूँगी कि संस्कृत क पाठ का भी उसके साथ वाचन करना चाहिए, क्योंकि उस समय ऋषि ने कहा है – 'ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो।' पर जो उसने कहा है वह आपके लिए कितना उपयुक्त है, आप देखिये। धरती पर तो हम दीवारें खड़ी कर सकते हैं'; आकाश में कोई दीवार खड़ी नहीं हुई है। इसी तरह विचार–जगत में कोई भी दीवार खड़ी नहीं है। आप उसी को ग्रहण करें जिसे आप आत्मसात कर सकते हैं। जैसे यहाँ का मलय समीर दुर तक जाता है, जैसे यहाँ के देवदारू बिना सोचे हुए शिलाओं पर खड़े हैं। उसी शक्ति से आप अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त करें।

जय भारत, जय भारत की संतान।

### 21.3.1 'संस्कृति और शिक्षा' तात्विक समीक्षा

संस्कृति और शिक्षा महादेवी वर्मा द्वारा रचित एक भाषण (लेख) है, जो उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिया था। इस भाषण में उन्होंने छात्र–छात्राओं के सम्मुख भारतीय संस्कृति और शिक्षा से जुड़े अनेक बिंदुओं पर विस्तार से चर्चा की है। इस लेख अथवा अन्य किसी भी निख की तात्त्विक विवेचना के पूर्व तात्त्विक विवेचना का अर्थ स्पष्ट कर लेना भी आवश्यक है। किसी लेख की तात्त्विक नमीक्षा से अभिप्राय है निबंध के तत्त्वों के आधार पर उसकी समीक्षा करना। प्राच्य और पाश्चात्य अधिकांश निबंधकारों निबंध में वैयक्तिकता एवं स्वच्छंदता को निबंध का अनिवार्य अंग माना है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना पहिए कि

निबंधकार को अमर्यादित और अनावश्यक कल्पना की उड़ान करने का अधिकार है। हिंदी साहित्यकोश निबंध के लक्षणों में स्वच्छंदता, सरलता, आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है। समग्र रूप से देखें तो भिन्न विद्वानों ने निबंध के निम्नलिखित तत्त्व अथवा गुण स्वीकार किये हैं–

1. एकसूत्रता, 2. व्यक्तिगत दृष्टिकोण, 3. प्रतिपादन में आत्मीयता, 4. भावात्मक एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति 5. तथ्यात्मक, दार्शनिक चिंतन, 6. स्वतः पूर्णता एवं संक्षिप्तता 7. ध्वनि, हास्य, व्यंग्य, अलंकरण से युक्त रोचक शैली।

निबंध विषय और शैली के अनुसार चार प्रकार के माने गए हैं–वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक। यह विभाजन मुख्यता के आधार पर है हालांकि ये चारों तत्त्व सभी निबंधों में कम या अधिक मात्रा में रहते ही हैं। वर्णन प्रायः वस्तु या व्यक्ति का होता है, विवरण प्रायः किसी घटना अथवा अनुभव विशेष का होता है, विचारात्मक निबंध में किसी विचार विशेष को प्रतिपादित किया जाता है, जैसे–आचार्य शुक्ल के निबंधों में तथा भावात्मक निबंधों में किसी विषय पर भावात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध प्रायः इसी श्रेणी में आते हैं। ललित निबंधों को भावात्मक श्रेणी में ही रखा जाता है।

विषय–वस्तु के अनुरूप निबंध की शैली का चयन होता है। मुख्य रूप से व्यासात्मक अर्थात् व्याख्या प्रधान शैली, समासात्मक अर्थात् गुंफित विचार शैली, धारा शैली अर्थात् भाव–प्रवाह युक्त रचना तथा तरंग शैली, जिसमें लेखक के भाव और विचार मुक्त कल्पना की उड़ान भरते हैं। बालकृष्ण भट्ट और पांडेय बेचन शर्मा उग्र के निबंध इस श्रेणी में आते हैं।

निबंध समीक्षा के तात्त्विक दृष्टिकोण से परिचित हो जाने के उपरांत 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध का तात्विक विवेचन निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर किया जा सकता है–

**1. विचार की एकसूत्रता**– 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध विचार–प्रधान निबंधों की श्रेणी में आता है, क्योंकि इस निबंध में भारतीय संस्कृति को स्वरूप और उसकी रक्षा के लिए अपेक्षित शिक्षा प्रणाली की चर्चा की गई है। भारतीय समाज में विषमता का एक कारण पराधीनता के युग में जीवन–मूल्यों का क्षरण स्वीकार किया गया है। निबंध में व्यास शैली का सहारा लिया गया है और अपनी बात समझाने के लिए पौराणिक, ऐतिहासिक घटनाओं के साथ–साथ वर्तमान सामाजिक अवस्था का भी चित्रण किया गया है।

**2. आत्मपरक शैली**– 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध महादेवी जी के व्यक्तित्व का दर्पण है। छायावादी कवयित्री का प्रकृति से सहज लगाव यहाँ भी प्रदर्शित होता है। निबध में वह बार–बार कुमाऊँ के शांत वातावरण, देवदारूओं की साधना, हिमालय की पवित्रता का वर्णन करती हैं। महादेवी जी भावात्मक शैली में अत्यंत आत्मीयता के साथ छात्र–छात्राओं को भारतीय जीवन–मूल्यों को आत्मसात करने के लिए प्रेरित करती हैं। हमारे अतीत में बहुत कुछ अनुकरणीय है उसे हमें ग्रहण करना चाहिए और जो पुरातन होकर काल–बाह्य हो चुका है, उसे छोड़ देना चाहिए ठीक वैसे ही जैसे खारे समुद्र से उठे बादल, उसके जल का खारापन त्याग कर, मीठा जल बरसाते हैं। महादेवी जी अपने यौवन के संस्मरण भी सुनाती हैं। यह निबंध आत्मपरक शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। निबंध में भारतीय शिक्षा और संस्कृति के प्रति महादेवी जी का आत्मीय दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। महोदेवी जी का मानना है कि भारत में वर्तमान में प्रचलित शिक्षा–पद्धति आजीविका कमाने पर बल देती है, चरित्र निर्माण पर नहीं जिसके कारण समाज में दुराचार बढ़ा है। स्वाधीनता संग्राम में वर्तमान गुलामी को समाप्त करने का चिंतन हुआ, परंतु भविष्य का भारत कैसा हो, इस पर विचार नहीं किया गया। तरंग शैली का सहारा लेते हुए लेखिका ने उत्तराखंड का हिंदी साहित्य में योगदान और स्वाधीनता संग्राम में यहाँ के लोगों की भूमिका को भी रेखांकित किया है। महादेवी ने वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक तथा तरंग शैलियों का सहारा एक साथ लिया है, परंतु मुख्य रूप से भावात्मक शैली का अनुसरण किया है।

**3. स्वतः पूर्ण एवं संक्षिप्त**— 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध चूंकि एक भाषण का रूपांतरण है, इसलिए इसमें गुंफित विचार अनेक स्थानों पर अनावश्यक विस्तार लिए हुए हैं। लेखिका ने भारतीय संस्कृति की मूलभूत चेतना, मूल्यपरकता पर विस्तार से प्रकाश डाला है, परंतु भारतीय शिक्षा प्रणाली पर गंभीर विचार प्रस्तुत नहीं कर पाई हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली उनके अनुसार आजीविका—प्रधान है, परंतु यह भी अधूरा सच है। आज हमारे शिक्षित युवक नौकरी के योग्य नहीं हो पाते, उन्हें अलग से कौशल सिखाना पड़ता है। मूल्यों की दृष्टि से शिक्षा—प्रणाली की कमियाँ सर्वविदित हैं। निबंध अपने आप में यथासंभव पूर्ण है यद्यपि भाषण होने के कारण इसमें अनेक सामयिक, स्थानीय विषयों की अनावश्यक चर्चा भी आ गई है।

**4. काव्यात्मक भाषा—शिल्प**—महादेवी के निबंध भाषा शिल्प की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधों में माने जाते हैं। हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री होने के कारण उनके निबंधों की भाषा में भी पर्याप्त काव्यात्मकता का गुण विद्यमान है। कल्पना की ऊँची उड़ान, कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति, रहस्यात्मक, भावपूर्ण उद्‌गार उनके निबंध शिल्प की विशेषता है। कहीं वे देवदारू के वृक्ष का मानवीकरण करती हैं तो कहीं 'गंगावतरण' का शब्द चित्र प्रस्तुत करती हुई' उसे ज्ञान के अवतरण से उपमित करती हैं। निबंध में आई निम्नलिखित उक्तियाँ, सूक्तियों की तरह मूल्यवान हैं— **'हजार बुझे हुए दीपकों से हम, एक लौ नहीं उत्पन्न कर सकते। 'गति अपने आप में कोई महत्त्व नहीं रखती, जब तक प्रगति न हो, 'बिना बड़े संकल्प के कोई बड़ा कार्य नहीं होता', 'खंडित मूर्तियाँ पूजी नहीं जाती' 'तरुणाई की आँख में आँसू देखना, दर्दनाक है' तथा 'सत्य के मार्ग पर कभी, कोई अकेला नहीं होता।'**

निबंध की भाषा निश्चय ही काव्यात्मक है। भावात्मक तरलता, वैचारिक गहनता और अलंकृत भाषा—शैली इस निबंध की पहचान है। संपूर्ण निबंध प्रेरक, उद्‌बोधक, मनोरंजक और साहित्यिक गुणों से युक्त है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा विरचित 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध तात्त्विक दृष्टि से एक सफल निबंध है।

### 21.3.2 भारतीय संस्कृति और शिक्षा निबंध का सार

भारतीय संस्कृति और शिक्षा, महादेवी जी का विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दिए गए भाषण से संबंधित निबंध है। इसमें प्रेरणात्मक वचनों से उन्होंने विद्यार्थियों का उत्साहवर्धन किया है और उन्हें उनकी पृष्ठभूमि, जन्मभूमि (प्रकृति) संस्कृति, शिक्षा, आधुनिकता और परम्परा इत्यादि अनेक विषयों से जोड़ा है जो उनके भविष्य के लिए कारगर साबित होगे। अपने भाषण के आरंभ से ही उन्होंने विद्यार्थियों को प्रकृति से जोड़े रखा है ताकि आधुनिकता के नाम पर वे प्रकृति से ही किनारा न कर ले। वह मानती है कि जो व्यक्ति प्रकृति की अनदेखी करता है तो बर्फ की पर्त आपकों पाषाण बना देती है, बवण्डर आपको उड़ा ले जाते हैं और निर्झर आपको बहा ले जाते हैं।

वर्तमान में जहाँ आगे निकलने की होड़ में नित दिन नए—नए परीक्षण, आविष्कार हो रहे हैं वहाँ आपका यह दायित्व बनता है कि कहीं हमारा कोई भी साथी सड़क के किनारे बिना छाया के, बिना भोजन के, बिना वस्त्र के तो नहीं जी रहे हैं। हमें आगे बढ़ना है, आसमान की ऊँचाइयों को छूना है लेकिन सामाजिक विषमताओं को दूर करना भी हमारा ध्येय होना चाहिए। देश के भविष्य को मैं आज सम्बोधित कर रही हूँ क्योंकि आप सब से ही हमें आशा है, आप हमारे लिए आशा के स्त्रोत है।

अतीत की उपलब्धियों, वर्तमान समस्याओं, भविष्य निर्माता के रूप में हम सबकी नजर आपकी ओर ही है। सप्तरश्मि की भाँति की आप भी सप्तर ही हो। आपके पास ज्ञान है, बोध है, मनोयोग है, पाठ्‌य विषय है, माध्यम भाषा है, गुरू शिष्य संबंध है, स्वावलम्बन है। "आज की पीढ़ी से मैं यही कहती हूँ — सुन्दर स्वप्न देखिये, सुन्दर संकल्प रखिये और संकल्प को कर्म में उतारने का साहस कीजिये।"

धन की लालसा हेतु विदेश गमन उचित नहीं है। यदि आप अपने ज्ञान को अधिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति के लिए बेच दोगे तो देश के विकास के लिए कौन काम करेगा? जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक महान् है। जिस देश में आपने जन्म लिया है, उस देश को सुन्दर बनाना आपका पहला कर्त्तव्य होना चाहिए। हर युग चुनौती से पूर्ण होता है क्योंकि हमें बहुत सारी समस्याएं उस नये युग से मिलती है, आप देश के भविष्य है। आपकों अपना रास्ता चुनने की क्षमता होनी चाहिए।

इस अंचल विशेष के बहुत सारे कवि, उपन्यासकार, राजनीतिज्ञ, महिला कलाकार दिए हैं जिनकी उपलब्धियों से आप सभी परिचित है। ये सभी इसी अंचल से जुड़े हुए थे, इसलिए आप सभी के मन में कभी भी यह भावना नहीं आनी चाहिए कि आप छोटे क्षेत्र से हैं।

हर पीढ़ी देश के लिए कुछ न कुछ करती हैं, आपसे भी यही आशा है कि देश को ऐसा बनाये कि सब आप पर नाज करें। देश की सुविधाएँ सबकी सुविधाएँ है। यदि देश का एक व्यक्ति या एक वर्ग विशेष ही उनका उपभोक्ता बन जाएगा तो वह गलत होगा। हमारा जीवन ऐसा हो कि हम सबके लिए प्रेरक हो। दूसरा देश हमारी नीतियों का उदाहरण ले, हमारा अनुसरण करें।

प्रेरक भाषण के अंत में समाज के सशक्त, आधार बिन्दु स्त्री वर्ग को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के सन्दर्भ में सम्बोधित करते हुए कहती हैं –

"आप में इतनी शक्ति है कि आप एक कच्चे सूत की डोरी को बांध दे किसी कलाई में, तो उस पुरूष को अपने प्राण देने होंगे, आपकी मर्यादा के लिए। आपके पास अजेय शक्ति है।"

देश की स्त्री को निम्नलिखित रूपों में देखती है –

1. ज्ञान की अधिष्ठात्री के रूप में – सरस्वती

2. समृद्धि की अधिष्ठात्री के रूप में – लक्ष्मी।

उनका दृढ़ विश्वास है कि जब महिलाएं समष्टि के लिए सोचेगी तो देश एक रहेगा। मीरा बाई, कस्तुरबा, कमला भाभी के उदाहरणो से अपने विश्वास को दृढ़ता देते हुए वर्मा जी नारी शक्ति को उद्वेलित करना चाहती है।

"आज हमारे बीच में वे सब नहीं है, परंतु हम जानते हैं कि हमारे भीतर उनका सत्य है, उनका त्याग है, बिना बड़े संकल्प के कोई बड़ा कार्य नहीं होता है।" वैचारिक मतभेद की जो दीवारें हम सबने खड़ी की हुई हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं है अतः उनको तोड़ दीजिए। मतभेद हमेशा अवनति की ओर ले जाते हैं। अतः प्यारे विद्यार्थियों जीवन में सकारात्मकता को अपनाये और जीवन को प्रशस्त करें।

### 21.3.3 संस्कृति और शिक्षा निबंध का उद्देश्य

'संस्कृति और शिक्षा' महादेवी वर्मा द्वारा लिखित एक महत्त्वपूर्ण निबंध है, जो मूल रूप से कुमाऊँ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण देने हेतु लिखा गया था। इस निबंध की विशेषताओं अथवा उद्देश्यों को निम्नलिखित बिंदुओं के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

**1. भारतीय शिक्षा का स्वरूप**–लेखिका का मानना है कि शिक्षा के दो लक्ष्य होते हैं– 1. आजीविका कमाने में सक्षम बनाना 2. अच्छा मनुष्य बनाना। हमारी शिक्षा प्रणाली बेकारों की फौज तैयार कर रही है, क्योंकि यह शिक्षा आजीविका कमाने योग्य भी लोगों को नहीं बनाती। जहाँ एक बेहतर इंसान बनाने के लिए उच्चतर जीवन मूल्यों और संस्कारों को देने का प्रश्न है, हमारी शिक्षा में इसके लिए स्थान ही नहीं है। हमारे शिक्षित चंद पैसों के लिए देश छोड़कर विदेशों में जा बैठते हैं। शिक्षा उनमें देश प्रेम का भाव पैदा नहीं करती। महादेवी का मानना है कि मैकाले का दिया शिक्षा का चौखटा भी बाँटना होगा और शिक्षा की विषय–वस्तु में भी बदलाव करना होगा। शिक्षा को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़कर उसका भारतीयकरण होगा। भारतीय युवकों को श्रम का महत्त्व समझना होगा। हर पत्थर में मूर्ति छुपी रहती है जिसे श्रमपूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। युवाओं को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करना होगा।

**2. भारतीय स्वाधीनता संग्राम में रही कमी**–लेखिका का मानना है कि सौ बरस लंबे स्वाधीनता संग्राम में अंततः गाँधी के सत्याग्रह और सहयोग के अहिंसापूर्ण शस्त्रों से आजादी मिली। आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भी प्रमुख भूमिका रही। आजादी के लिए संघर्ष करने वालों ने अंग्रेजों को देश से निकालने का लक्ष्य सामने रखा और उसे प्राप्त भी कर लिया, परंतु आजादी पाने के पश्चात् कैसा समाज, संस्कृति, शासन निर्मित करना है, इस पर विचार ही नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज तो चले गए परंतु अंग्रेजियत को हम अपने सीने से चिपकाए रहे। उनकी सारी बुराइयां बनी रहीं। हमारे समाज, धर्म, राजनीति में परिवर्तन नहीं हुआ। शासन बदला, समाज नहीं बदल सका। यही सबसे बड़ी कमी रह गई।

**3. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ**– महादेवी वर्मा का मानना है कि भारतीय संस्कृति जीवन मूल्यों पर आधारित है। ये जीवन मूल्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। मानव मात्र की समता और एकता का संदेश यह संस्कृति देती है। राम–रावण युद्ध में धर्मरथ का रूपक नैतिक मनुष्य की परिकल्पना को स्पष्ट करता है। विजय दिलाने वाला रथ भौतिक नहीं, नैतिक होता है। धर्मरथ में शौर्य, धर्म, सत्य, विनय, बुद्धि और विवेक जैसे मानवीय गुणों का वर्णन है। भारतीय संस्कृति में नारी को पूज्य माना गया और उसे ज्ञान, संपदा और शक्ति की देवी के रूप में पूजा गया है। क्षमा, करुणा और समता जैसे गुणों से विभूषित मनुष्य ही श्रेष्ठ माना गया।

**4. कर्मठता का संदेश**– लेखिका ने छात्र–छात्राओं को कर्मठ बनने और ज्ञान को श्रमपूर्वक अर्जित करने का संदेश दिया। ज्ञान, दुधारी तलवार है, इसलिए इसका प्रयोग कोरे स्वार्थ की पूर्ति के लिए न करके, परोपकार के लिए करना चाहिए। हर मनुष्य में विचार के रूप में सत्य भाव के रूप में सौंदर्य और कर्म के रूप में शिव का निवास रहता है। युवकों को राष्ट्र प्रेम का मार्ग अपनाना चाहिए। छात्र जीवन में ज्ञान प्राप्त कर स्वावलंबी बनने का प्रयास करना चाहिए। महादेवी उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहती हैं कि उन्हें अपना दीपक आप बनने का प्रयास करना चाहिए, अपना मार्ग स्वयं खोजना चाहिए। मानव जीवन को भारतीय परंपरा में श्रेष्ठ माना है। जीवन रोटी कमाने के लिए ही गंवा देना उचित नहीं।

**5. नारी–मुक्ति विषयक विचार**– लेखिका नारी मुक्ति की पक्षधर रही हैं और उनका निबंध संग्रह श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी–मुक्ति का घोषणा पत्र है। लेखिका मानती हैं कि नारी, समाज के केन्द्र में है, वह पुरुष की तरह एक व्यक्ति मात्र नहीं होती। वह अपने आप में एक संस्था है। महादेवी का मानना है कि पश्चिम में नारी–मुक्ति आंदोलन पुरुष विरोध से उपजे इसलिए एकांगी हैं। तलाक का अधिकार मिले, विवाह संस्था से मुक्ति मिले, आर्थिक आजादी मिले, यही पश्चिमी नारी की आजादी के मुख्य बिंदु हैं। भारतीय नारी, भारत माता का स्वरूप है। माँ का सुख, संतान के सुख से कटकर नहीं हो सकता। पुरुष को नारी ने ही जन्म दिया है। राम और कृष्णा भी उसकी गोद में पले हैं। पुरुष विरोध में नारी मुक्ति खोजना अनुचित है। भारतीय नारी ने अपनी मुक्ति अपने कर्तव्य बोध को जगाने और कर्तव्य निभाते हुए अधिकार पाने में खोजी है। देश की आजादी की लड़ाई में भारतीयवादी ने भाग लिया परंतु कभी भी उसके बदले में कुछ नहीं माँगा। भारतीय नारी को जो भी अधिकार मिले हैं, वे सब उसकी कर्तव्य भावना से मिले हैं। महादेवी मानती है कि भारतीय संस्कृति नारी प्रधान है। ज्ञान की देवी सरस्वती, संपत्ति की देवी लक्ष्मी और शक्ति की देवी दुर्गा को मानना, नारी के महत्त्व को दर्शाता है। भारत हमारी मातृभूमि है, पितृभूमि नहीं। भारतीय नारी प्रेम और समर्पूण से पुरुष पर विजय पाती आई है। उसके राखी के धागों में इतनी शक्ति है कि शत्रु भी उसकी रक्षा के लिए उद्यत हो जाता है–

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डालना, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में रह गई कमियों को उजागर करना, भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बताना, छात्रों को कर्मठता का संदेश देना तथा नारी मुक्ति विचारों को अभिव्यक्त करना इस निबंध में लेखिका के उद्देश्य रहे हैं।

### 21.3.4 संस्कृति और शिक्षा की शिल्पगत विशेषताएँ

'संस्कृति और शिक्षा' निबंध महादेवी का दीक्षांत भाषण को निबंध के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसका मूल उद्देश्य संस्कृति की विशेषताओं को रेखांकित कर उसकी श्रेष्ठता बताना है तथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा प्रणाली कैसी हो, यह स्पष्ट करना है। प्रश्न उठता है कि क्या हम इसे साहित्यिक निबंधों की श्रेणी में रख सकते हैं ? साहित्यिक निबंध की तीन प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ मानी जा सकती हैं–1 वैयक्तिक प्रतिपादन 2. पाठक के मस्तिष्क को ही नहीं, उसके हृदय को भी गुदगुदाने में सक्षम 3. साहित्यिक गुणों से समन्वित इन तीनों के आधार पर 'संस्कृति और शिक्षा' निबंध का विश्लेषण किया जा सकता है–

**1. वैयक्तिक अनुभूतियों से समन्वित विचारों का प्रतिपादन–** 'संस्कृति और शिक्षा' पूरे निबंध पर छायावादी कवयित्री महादेवी की कोमल भावनाओं की छाप है। महादेवी अपना भाषण कुमाऊँ के प्राकृतिक सौंदर्य से प्रारंभ करती हैं। प्रकृति, छायावादी काव्य का मूलाधार भी है। अपने भाषण में महादेवी पहाड़ी प्रदेश में गुरुकुल स्थापित करने की अपनी इच्छा को व्यक्त करती हैं, साथ ही बताती हैं कि ऐसा करना उचित क्यों है। महादेवी इस निबंध में भारतीय शिक्षा में मूल्यहीनता, नारी मुक्ति की भारतीय अवधारणा, भारतीय संस्कृति के नैतिक और मूल्य आधारित स्वरूप को पूरी भावात्मकता के साथ व्यक्त करती हैं। महादेवी के तर्क भावात्मक अधिक हैं, शुद्ध बौद्धिक कम है। हम कह सकते हैं कि यह निबंध वैयक्तिक अनुभूतियों से संबंधित विचारों का निबंध है।

**2. पाठक के हृदय को ही नहीं मस्तिष्क को भी गुदगुदाने में सक्षम–** यह निबंध निश्चय ही कवयित्री के तरल भावों के साथ गहन और स्पष्ट विचारों को भी व्यक्त करता है। यह पाठक के मन को भी आनंदित करता है और उसके मस्तिष्क को भी संतोष प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, इस निबंध में आए नारी मुक्ति के प्रसंग को ही लें। पश्चिम में नारी मुक्ति का अर्थ नारी की आर्थिक आत्मनिर्भरता, उसकी शारीरिक आजादी और विवाह के बंधन से मुक्ति मात्र है। महादेवी के अनुसार भारतीय नारी तो साक्षात् भारत माता है। माँ के लिए संतानों का सुख ही सर्वाधिक सुख देने वाला होता है। संपूर्ण समाज की मुक्ति में ही वह अपनी मुक्ति मानती है उसके अपने अधिकार, कर्तव्यों को निभाने के फलस्वरूप प्राप्त किए हैं। कर्त्तव्यपरायण भारतीय नारी ने स्वाधीनता संग्राम में बिना शर्त के, बिना किसी अधिकार की माँग किए, भाग लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अभारी राष्ट्र ने उसे मानवोचित सारे अधिकार दिए। भारतीय नारी पुरुष से कटकर नहीं, उसके साथ कधे से कंधा मिलाकर चलने में सुख का अनुभव करती है। पूरे समाज की आजादी में ही वह सबकी मुक्ति मानती है।

**3. साहित्यिक गुणों से समन्वित शैली**–साहित्यिक गुणों से अभिप्राय अलंकृत भाषा शैली, भावात्मक अभिव्यक्ति और साहित्यिक प्रतीकों और बिबों का प्रयोग। महादेवी कुमाऊँ की प्रकृति का चित्रण करते हुए भाव–विभोर हो जाती है। देवदारू का मानवीकरण करती है। कुमाऊँ ने हिन्दी को कितने ही महान् साहित्यकार दिए और कितनी ही हस्तलिखित साहित्यिक पत्रिकाएं वहीं चलती थीं। पूरा निबंध साहित्यिक उद्धरणों से भरा पड़ा है। महादेवी के अनेक कथन सूक्तियों के समान महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए निम्न सूक्तियों देखिए–

1. तरुणाई की आँख में आंसू देखना दयनीय है।
2. गति अपने आप में कोई महत्त्व रखती, जब तक प्रगति न हो।
3. हजार बुझे हुए दीपकों से हम एक लौ नहीं उत्पन्न कर सकते।
4. भारत की स्त्री तो भारत माँ का चित्र है, प्रतीक है।
5. बिना बड़े संकल्प से कोई बड़ा कार्य नहीं होता।
6. सत्य के मार्ग पर कभी कोई अकेला नहीं होता।
7. आकाश में कोई दीवार खड़ी नहीं हुई। इसी तरह विचार जगत में कोई भी दीवार खड़ी नहीं है।

8. कहना न होगा कि यह निबंध विचार प्रधान है, परंतु इसमें कवयित्री महादेवी की कल्पनाशीलता, भावात्मक तरलता और वैचारिक प्रतिबद्धता स्पष्ट है।

निबंध की भाषा काव्यात्मक है और अनेक स्थलों पर लेखिका ने धारा प्रवाह शैली का भी अनुसरण किया है। संपूर्ण उद्बोधन भावात्मक है, साथ ही इसमें गहन संदेश भी युवक–युवतियों के लिए निहित हैं। प्रस्तुत निबंध में प्रकृति चित्रण में वर्णनात्मक शैली, नारी मुक्ति, शिक्षा और भारतीय संस्कृति विषयक विचारों के प्रतिपादन में विचारात्मक शैली, भारतीय नारी की महानता और भारतीय युवकों के देशप्रेम में भावात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के वर्णन में विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

संपूर्ण निबंध में भाषा प्रांजल हिंदी है और तत्सम शब्दावली प्रधान भाषा का सर्वत्र प्रयोग किया गया है।

**स्वंय आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'संस्कृति और शिक्षा' मूलरूप से किस विधा की रचना है ?
2. 'संस्कृति और शिक्षा' भाषण किस विश्वविद्यालय में दिया गया था ?
3. महादेवी वर्मा द्वारा 'संस्कृति और शिक्षा' भाषण किस वर्ष में दिया गया था ?
4. संस्कृति और शिक्षा में महादेवी वर्मा ने शिक्षा के कितने लक्ष्य माने हैं ?
5. महादेवी वर्मा के अनुसार हम एक प्रकार ने कितने युगों में जी रहे हैं ? श्नहि मानुषात प्रेष्ठतरं हि ।
6. 'नहि मानुषात श्रेष्ठतर' हिं किंचित् किसका कथन है ?

## 21.4 सारांश

संस्कृति और शिक्षा महादेवी जी द्वारा लिखित एक भाषण है। जो उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में किया था। इस भाषण के माध्यम से बच्चों के समक्ष उत्पन्न भारतीय संस्कृति और शिक्षा से जुड़े अनेक बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा की गई है। इस निबंध के माध्यम से प्रकृति चित्रण में वर्णानात्मक शैली, शिक्षा और भारतीय संस्कृति, नारी मुक्ति जैसे विचारों को विचारात्मक शैली नारी की महानता और भावात्मक द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं।

## 21.5 कठिन शब्दावली

**तत्परता** – जल्दबाजी

**कचहरी** – न्यायालय

**भूमि** – धरती

**अंगूठाछाप** – निरक्षर

**प्रतिरूप** – छाया

## 21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. भाषण।
2. कुमाऊँ विश्वविद्यालय।
3. 1975 ई. में।
4. दो लक्ष्य।
5. दो।
6. महाभारतकार का।

## 21.7 संदर्भित पुस्तकें

1. महादेवी वर्मा, मेरे प्रिय संभाषण नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, महादेवी रचना संचयन, साहित्य अकादमी दिल्ली।

## 21.8 सात्रिक प्रश्न

1. महादेवी वर्मा कृत 'संस्कृति एवं शिक्षा' की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
2. महादेवी वर्मा विरचित 'संस्कृति एवं शिक्षा' का सार अपने शब्दों में लिखिए।
3. संस्कृति एवं शिक्षा निबंध का उद्देश्य बताइए।

*****

# इकाई–22
# प्रभा खेतान : जीवन परिचय

**संरचना**


22.1 भूमिका

22.2 उद्देश्य

22.3 प्रभा खेतान : जीवन परिचय

22.3.1 व्यक्तित्व

22.3.2 कृतित्व

स्वयं आकलन प्रश्न

22.4 सारांश

22.5 कठिन शब्दावली

22.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

22.7 संदर्भित पुस्तकें

22.8 सात्रिक प्रश्न


## 22.1 भूमिका

इकाई इक्कीस में हमने महादेवी वर्मा के निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' का पाठ्परक अध्ययन किया साथ ही निबंध का सार, उद्देश्य, शिल्पगत विशेषताएँ और तात्विक समीक्षा का ही गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई बाईस में हम प्रभा खेतान के जीवन परिचय के बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

## 22.2 उद्देश्य

इकाई बाईस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होगे कि–

1. प्रभा खेतान का जीवन कैसा रहा ?
2. प्रभा खेतान का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
3. प्रभा खेतान की निबंध शैली क्या है ?
4. प्रभा खेतान के लेखन का पसंदीदा क्षेत्र कौन है ?

## 22.3 प्रभा खेतान : जीवन परिचय

### 22.3.1 व्यक्तित्व

राजस्थान के चुरू क्षेत्र में सुजानगढ़ के कस्बे से कलकत्ता के बालीगंज, मकान नं.71 में रामचंद्र खेतान के पाँच बेटों में से एक श्री. लादूरामजी खेतान के संकीर्णतावादी हिंदू, सनातनी परिवार में पाँचवी संतान के रूप में 1 नवंबर 1942 को प्रभा जी का जन्म हुआ था। उनकी माता का नाम पुरनी देवी खेतान था। वह एक विद्रोहिणी एवं महत्वाकांक्षी महिला थी। वह अपनी बेटियों को अपनी तरह नहीं रखना चाहती थी। वह कहती थी ''औरत को आत्मनिर्भर होना चाहिए। जिंदगी में जोखम उठाना सीखना चाहिए।'' यह अपनी बेटियों को हर पल कुछ प्राप्त करने हेतु प्रेरित करती हुई कहती है– ''चाँद को छूने की कल्पना करो तो खजूर के पेड़ तक पहुँचोगे। अरे तुम्हारी चाहना ही सीमित रहेगी तो आगे कैसे बढ़ोगे ? जो मिले उसी में संतोष खोज लेना भला यह भी कोई बात हुई ?'' वह अपनी बेटियों को निडर करने हेतु कहती– ''तुम लोग तो पढ़ी–लिखी लड़कियाँ हो, हमारी तरह बात–बात पर टिसुए ढलकाने मत बैठ जाना।

वह अपनी बेटियो को अपने पैरों पर खड़ी होने की सीख देते हुए कहती है– ''तुम लोग जरूर रूपया कमाना, अपने पैरों पर खड़ी होना।'' स्त्री जन्म के बारे में अपने माता के विचार प्रस्तुत करते हुए प्रभा जी कहती है– ''स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है जो बिना मालिक के जी नहीं पाएगी। उनकी माँ अपने बच्चों को ईमानदारी के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करती है। पर अपनी बेटियों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने वाली यह माँ बेटी प्रभा के साथ दुर्व्यवहार करती है। मारवाड़ी परिवार में बेटी का होना ही गुनाह था। पुराने खयालों के समृद्ध परिवार में प्रभा के जन्म लेने पर कोई खुशी नहीं मनाई गई। बच्ची के आगमन के साथ मां श्रीमती पुरनी देवी की बीमारी भी शुरू हो गई। प्रभा को न माँ का प्यार मिला न ही उनके स्तनों का दूध। माँ श्रीमती पूरनी देवी को यह संतान कभी अच्छी नहीं लगी।

सभी भाई–बहन गोरे और सुंदर थे। प्रभा का रंग सावला था। इसीलिए भी वह मों की उपेक्षा का कारण बनी। प्रमा स्वस्थ थी। अतः मात्र 9 वर्ष की उम्र में उसे मासिक धर्म शुरू हो गया। बढ़ता हुआ कद और किशोरावस्था के सारे परिवर्तन प्रभा में दिखने लगे थे। प्रकृति की देन का सारा दोष माँ उस पर लगाती और उसे कोसती रहती। प्रमा जी लिखती है– ''भाटा, पत्थर, बोकी, गधी. मंगन उपाधियों से विभूषित होकर मैं कपड़े बदलने गई।''

माता ममता का सागर एवं प्रेम की मूर्ति होती है। उसका मन बच्चे के प्रति प्यार से भरा हुआ होता है, लेकिन प्रभा जी का दुर्भाग्य यह है कि वे परिवार में माँ द्वारा उपेक्षित एवं अपमानित रही है। वह माँ के प्यार के लिए तरसती रही। अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है ''कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद ही शायद अपनी रजाई में सुला ले। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच। अम्मा मेरी बातों को समझ नहीं पाती थी।'' बचपन का यह दर्द उन्हें बार–बार सताता था। कामयाबी के शिखर पर पहुँचने के बाद भी यह टीस उनके मन में अंत तक बरकरार रहीं।

प्रभा जी के पिता प्रसिद्ध उद्योगपति श्री. लादूराम खेतान थे। यह सुधारवादी, आदर्शवादी एवं गांधीवादी थे। वह बालविवाह के बिलकुल खिलाफ थे। जब प्रभा जी की माता उनके बचपन में उनकी शिक्षा रोककर जब उनकी शादी की बात छेड़ती तब उसके विरोध में पिता जी खड़े होते है। वे लड़कियों की शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी इच्छा थी उनकी लड़कियों ज्यादा से ज्यादा पढ़े। पत्नी ने स्कूल से बच्चियों के नाम निकालने पर उन्होंने कहा था– ''इन लड़कियों को पढ़ने भेजो, इन्हें मैं ऊँची शिक्षा दिलाना चाहूँगा।'' प्रभा जी के पिता उनसे बहुत प्रेम करते थे, परंतु प्रभाः जी का दुर्भाग्य था कि प्रेम करने वाले उनके पिता जब यह साढ़े नौ साल की थी तब उन्हें छोड़कर दुनिया से ही चले गए। उस दिन के बाद से वह अपने ही घर में अपने आप को असुरक्षित महसूस करने लगी थी।

प्रभा जी के पिता उच्च विचारों के धनी थे। पितृत्व की देन उनका उद्योजक बनना था। पिता के कदम पर कदम रखकर यह आगे चलकर एक सफल उद्योजिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। उनके पिता धर्म, जाति आदि की व्यवस्था के प्रति क्रोध व्यक्त करते हुए कहते ''मारवाड़ी–बंगाली के पचड़े में मत पड़ो, खुद को भारतीय समझो। हम स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं।''

प्रभा जी का पालन–पोषण दाई माँ द्वारा हुआ, वहीं उनकी अभिभावक भी थी। प्रभा जी का सबसे ज्यादा लगाव दाई माँ से ही था। वह उनकी हर बात का ख्याल रखती थी। लेखिका के जीवन की सुख–दुखमयी घटनाओं की साक्षी थी। दाई माँ के बारे में खुद लेखिका ने कहा है– ''दाई माँ मेरा सहारा, मेरा आश्रय थी। अम्मा के क्रोध, भाई–बहनों का तूफानी वेग. गरजते बादल, कड़कती बिजलियों, दाई माँ इन सबसे मुझे बचाकर रखती।'' 10 पिता की मृत्यु के बाद उनका खयाल रखनेवाली, उन्हें प्यार करने वाली दाई माँ ही थी। प्रभा जी ने यह स्वीकार किया है ''दाई माँ के अलावा मेरा कोई नहीं।''

प्रमा जी के परिवार में सात भाई–बहन थे। भगवती, सल्लो, पुष्पा एवं गीता उनकी चार बहनें थीं। प्रभा पाँचवी संतान थी। इसलिए घर में उनकी उपेक्षा ही होती रही। उनकी माँ जितना प्रेम गीता से करती थी उससे ज्यादा अपमान प्रभा का करती थी। उन्होंने एक जगह खुद अपना दुख प्रकट करते हुए कहा है– ''माँ ने प्यार नहीं दिया यह तो समझ रही थी, क्योंकि में ठहरी काली। माँ की तरह गोरी नहीं। मैं बहुत शान्त, गीता की तरह स्मार्ट नहीं, मुँह पर फटाफट जवाब नहीं दे पाती, लेकिन मैं पढ़ने में तो अच्छी थी, क्या यह काफी नहीं था ?''

माँ के समान भाई–बहन भी उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे। उन्हें उनके साथ खेलने नहीं देते थे। छोटी प्रमा कोने में सीढ़ियों पर बैठकर एकांत में पंछियों से बातचीत करती तो वे उन्हें चिढ़ाते और रुलाते थे। वे भाई–बहनों के प्यार से भी वंचित रही। उनके द्वारा बार–बार सतायी एवं प्रताड़ित होती रही। उनके बड़े भाई ने जब वह नौ साल की थी तब उनका यौन शोषण किया था। उनका परिवार भरा–पूरा था। उन्हें चाचा–चाची, मामा–मामी, नानी एवं ताई आदि थे।

बचपन में रामदुलारी का बेटा खेदरवा उनका सबसे अच्छा दोस्त था और पुष्पा, वंदना, स्वर्णलता, उषा आदि उनकी सहेलियाँ थी। कॉलेज में जाने के बाद तो किताब ही उनकी दोस्त बनी थी।

प्रभा जी साँवले रंग की थी। उनके लंबे–लंबे बाल थे। नौ साल की उम्र से ही माँ के कहने पर वह साड़ी पहनने लगी थी। जापानी शिफॉन की साड़ियाँ उनकी कमजोरी थी। उन्हे खाने में हलवा, पूड़ी और खीर बेहद पसंद थी। प्रभा जी का परिवार कोलकत्ता में एक प्रतिष्ठित परिवार के रूप में प्रस्थापित था, किंतु पिता की मृत्यु के बाद परिवार की आर्थिक स्थिति बाहर से दिखावे की और अंदर से खोखली होती गई। इसे संभालने के लिए परिवार वालों को बहुत प्रयत्न करने पड़े। प्रभा जी की प्रारंभिक शिक्षा कोलकत्ता में हुई। प्रारंभ में गोखले मेमोरियल कान्वेंट स्कूल में प्रभा जी का दाखिला किया गया। कुछ दिनों के उपरांत उनकी अम्मा ने उनका और गीता का नाम इस स्कूल से काट लिया। वह उन्हें घर बिठाकर राई–जीरा चुनना तथा सिलाई कढ़ाई करना सिखाना चाहती थी, परंतु आदर्शवादी पिता की इच्छा थी कि वह अपनी बेटियों को ऊँची शिक्षा दिलाकर उन्हें स्वावलंबी बनाए। चौथी से लेकर ग्यारहवीं कक्षा तक की उनकी स्कूली शिक्षा बालीगंज शिक्षा सदन कोलकत्ता में हुई। प्रमा जी के लिए बालीगंज शिक्षा सदन की पढ़ाई का माहौल बड़ा अच्छा रहा है। यहाँ शुरू से अंत तक उन्हें हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी ने पढ़ाया। साहित्य की दुनिया में प्रमा जी ने उन्हीं के कदमों पर चलना चाहा।

तत्पश्चात उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। ये एकमात्र मारवाड़ी लड़की थी, जिसने प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया था। जहाँ लड़के–लड़कियों साथ पढ़ते थे। प्रोफेसर वर्ग भी अत्यंत विद्वान था। उन्हें कक्षा में यह निर्देश दिया जाता था कि वे सौभाग्यशाली छात्र है, क्योंकि वे कलकत्ता के अग्रणी महाविद्यालय की छात्र है। प्रेसीडेसी कॉलेज में उनके जीवन में बहुत–सा परिवर्तन आया। उच्च शिक्षा को लेकर उन्हें निरंतर पारिवारिक विरोध सहना पड़ा। उन्होंने एम.ए. की फीस भरने के लिए अपनी सहेली से पैसे उधार लिए थे, क्योंकि अम्मा हर महीने उसकी पढ़ाई का खर्चा उठाने में असमर्थ होने की बात कहती थी। बड़े भैय्या गीता को हर महीने बराबर रूपये देते परंतु प्रभा को नहीं। इसलिए प्रभा जी अपनी माँ से कहती है ''माँ। भैया, गीता को पैसे देने में कभी मना नहीं करते, मैं ही तो आप सबकी परेशानी का कारण हूँ, ठीक है आज के बाद में आपसे पैसे नहीं माँगूगी।''

स्कूली शिक्षा के साथ उन्होंने छोटे–छोटे कोर्स भी किए थे। स्पीड रीडिंग का कोर्स भी किया था। दस पन्नों का लेख पाँच मिनट में पढ़कर उसकी बारीकियों पर वह बहस कर सकती थी। उन्होंने दर्शनशास्त्र में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। अमरीका में लॉस एंजेल्स में ब्यूटी थेरोपी का कोर्स किया था।

प्रभा खेतान ने जीवन के अंतिम समय तक विवाह नहीं किया था। उनके व्यक्तित्व निर्माण में डॉ. सर्राफ का विशेष योगदान रहा। 22 वर्ष की अवस्था में आँखों का इलाज कराने गई प्रभा डॉ सर्राफ से प्रेम करने लगी।

आँखों के रास्ते कब डॉ. सर्राफ प्रभा जी के हृदय सिहासन पर विराजमान हो गए इसका पता उन्हें भी नहीं चला। डॉ. सर्राफ और प्रभा जी में 18 साल का अंतर था। इन दोनों में केवल आयु का ही अंतर नहीं था बल्कि डॉ. सर्राफ एक विवाहित पुरुष के साथ–साथ पाँच बच्चों के पिता भी थे। डॉ. सर्राफ प्रभा जी से प्रेम तो करते थे लेकिन उन्हें सात फेरों के बंधन में बांध नहीं सकते थे। वे समाज से डरते थे। प्रभा जी की राय में भी सात फेरों का कोई महत्व नहीं है। विवाह और प्रेम तो दो अलग–अलग घटनाएँ हैं। जिससे आदमी का मन मिले वहीं बंधन होता है। जिससे प्रेम हो गया वही विवाह होता है।

यह एक अनोखा रिश्ता था। उसे क्या नाम दे इसके संबंध में प्रभा जी कहती है. ''मैं क्या लगती थी डॉक्टर साहब की ? में क्यों ऐसे उनके साथ चली आई ? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती।'' डॉ. सर्राफ का उनके जीवन में स्थान अनन्य साधारण था। वह उनके लिए सब कुछ थे। उनके लिए अपनी जान न्यौछावर करने तक वह तैयार थी। वह एक जगह कहती है– ''डॉक्टर साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे। मेरी जिन्दगी का पड़ाव, मेरा सब कुछ..... डॉक्टर साहब के अलावा और किसी से मैं क्यों नहीं जुड़ पाती।'' डॉ. सर्राफ के साथ प्रभा जी का रिश्ता समाज को मान्य नहीं हो सकता था। पर प्रभा जी को समाज से कोई सरोकार नहीं था।

प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणा स्त्रोत का अधिक महत्व रहता है। साहित्य सृजन के लिए साहित्यकार को भी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है। प्रेरणा स्त्रोत परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जिससे आचार, विचार और व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है। यशपाल जी का मन्तव्य है ''चाहे जिस उद्देश्य से लिखा जाए, लिख पाने के लिए प्रेरणा का होना तो अनिवार्य ही है। लेकिन सभी अवस्थाओं और परिस्थितियों में प्रेरणा का स्त्रोत एक ही हो या एक जैसा हो यह आवश्यक नहीं समय–समय पर प्रेरणाएँ बिल्कुल अलग ढंग की हो सकती है।''

अंतर्मन में छुपे ज्ञान के अकूत मंजर को जागृत करने के लिए बाह्य उद्दीपक प्रेरित करता है और क्रियान्वित की ओर बढ़ाता है। प्रभा को कभी प्रकृति ने, कभी शिक्षकों ने तो कभी आत्मीय जनों ने प्रेरित किया। समकालीन परिस्थितियों से उदवेलित होकर भी प्रभा ने लिखा। उनके व्यक्तित्व एवं साहित्यिक अभिरूचि की अभिवृद्धि में कतिपय व्यक्ति प्रेरक रहे है। उनकी माँ विद्रोही थी। वह किसी पढ़ी लिखी स्वावलंबी स्त्री को देखकर अपनी बेटियों से कहती ''आखिर हमें क्या मिला ? बस बच्चे पैदा करती रही। अम्मा ने कभी नहीं कहा मेरी तरह बनो। जन्म से वे विद्रोही थी और विरासत में मुझे उनका विद्रोही स्वभाव मिला।'' यही कारण है कि संप्रति प्रभा जी साहित्य और व्यवसाय दोनों क्षेत्रों में प्रतिष्ठापित हो सकी। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में मन्नू भंडारी भी प्रेरक रही।

डॉ. सर्राफ भी उनके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक रहे। उन्होंने ही उन्हें डॉक्टरेट करने का सुझाव दिया था। महाविद्यालयीन जीवन में डॉ चॅटर्जी उनके आदर्श रहे जो उन्हें उच्च स्तर के ग्रंथों के अध्ययन करने की प्रेरणा देते थे– श्भारतीय दर्शन को जरूर पढ़ो, बार–बार पढ़ो। अथों की परत–दर–परत खुलती चली जाएगी। हाँ, तुम्हारे अन्दर तीन बातों का होना जरूरी है– अभीप्सा, जिज्ञासा और संकल्प। और फिर बार–बार दोहराते रहने का अभ्यास।''

उन्होंने यह भी सलाह दी थी कि गीता को केवल धर्म की तरह नहीं पढ़ना चाहिए। बल्कि आजीवन एक महाकाव्य की भाँति पढ़ना चाहिए। इससे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण की वृद्धि होती है। डॉ. चॅटर्जी का प्रभा के साथ आत्मीय एवं संवेदनात्मक स्तर पर संबंध रहा है। वे प्रमा जी को समझाते हुए कहते हैं– ''स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो वह एकलव्य की गुरूदक्षिणा होगी.... किसी भी बाहरी व्यक्ति को गुरु मत स्वीकारना। वह जो सिखाए, सीखना और कृतज्ञता सहित धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना। आत्मा ही आत्मा का गुरू हो सकता है।''

इस तरह प्रभा जी को प्रेरणा और प्रोत्साहन देने वाले उनके अलग–अलग अभिभावक थे। प्रमा आत्म प्रेरणा के साथ–साथ बाह्य प्रेरणा से आलोकित हुई और उसके अनुसार चली। इसी कारण उन्होंने अपना जीवन एक पूर्ण नारी रूप में ही नहीं बल्कि एक संस्था के रूप में जिंदादिली से जिया। एक स्थान पर प्रेमचंद जी ने कहा है– ''लिखते तो वे लोग है, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोग–विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया है वे क्या लिखेंगे ? प्रभा जी के जीवन में भी दर्द था इसी वजह से वह लेखन कार्य में सफल रहीं। उन्होंने लिखा है ''कविता लिखना भी इन्हीं दिनों शुरू किया, कविता के सहारे में असहनीय यथार्थ से पलायन कर पाती।''

जब प्रभा सातवीं कक्षा में थी तब उनकी पहली कविता 'सुप्रभात' में प्रकाशित हुई। उन्हें मार्क्स पढ़ना बेहद अच्छा लगता था। उन्होंने बटेंड रस्सल का 'मैरिज एंड मॉराल्स' और सार्ज का 'ला नाशे' एवं 'सीमोन–द–बोउवार की आत्मकथा' पढ़ी थी।

प्रभा ने अपने आसपास की स्त्रियों के घुटन भरे जीवन से जानना चाहा कि आखिर नारी की इस स्थिति का कारण क्या है ? शायद सबसे बड़ा कारण अशिक्षा और पैसा ही है। यदि स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाए तो एक हद तक वह स्वतंत्र हो सकेगी। वह नारी विषयक कार्यों में सक्रिय रूप से भागीदार रही। उन्होंने स्त्री शिक्षा का प्रसारार्थक भी कदम उठाए। प्रभा खेतान फाउण्डेशन के द्वारा स्थाई कोष बनाकर 'कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स' के माध्यम से 'प्रभा खेतान पुरस्कार' की स्थापना की। अपने क्षेत्र में विशेष योगदान देने वाली किसी महिला को प्रति वर्ष इस पुरस्कार से नवाजा जाता है। पुरस्कार स्वरूप एक लाख रूपये की नगद राशि दी जाती है। यह पुरस्कार अब तक मेधा पाटकर, शबाना आजमी, कपिला वात्स्यायन, मीरा मुखर्जी, वंदत्ता शिवा और उषा गांगुली आदि को मिल चुका है। इस पुरस्कार के संबंध में प्रभा खेतान कहती है, ''यह एक सेल्फमेड स्त्री की ओर से एक सेल्फमेड स्त्री के काम की पहचान और सम्मान है।''

### 22.2.3 कृतित्व

लेखक के कृतित्व को उसके व्यक्तित्व से पृथक करके देखा नहीं जा सकता। उसका कृतित्व उसके जीवन की प्रतिछाया ही होती है। प्रभा खेतान के लेखन का दौर शुरू हुआ कविताओ से और फिर उपन्यास, अनुवाद के साथ–साथ चिंतनपरक साहित्य तक जा पहुँचा। साहित्य और व्यापार दोनों कार्यों को प्रभा जी ने बड़ी ही संजीदगी से पूरा किया। जो भी लिखा व्यापार की भागदौड़ भरी जिंदगी के बीच लिखा।

उनका कृतित्व इस प्रकार है

**काव्य संग्रह–**

| | | |
|---|---|---|
| 1) अपरिचित उजाले | 1981 | अक्षर प्रकाशन, प्रा.लि., 2 36, अन्सारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली. 110002 |
| 2) सीढ़ियों चढ़ती हुई में | (1982) | इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली |
| 3) एक और आकाश की खोज में | (1985) | अप्रस्तुत प्रकाशन, कलकत्ता |
| 4) कृष्णधर्मा में | (1986) | स्वर समावेत, 6. तनसुक लेन, कलकत्ता, 700070 |
| 5) हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ | (1987) | स्वर समवेत. 6, तनसुक लेन, कलकत्ता, 700070 |
| 6) अहल्या | (1988) | शाहदरा, दिल्ली, 110095 |

**उपन्यास–**

| | | |
|---|---|---|
| 1 आओ पेपे, घर चलें | (1990) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 |

| | | |
|---|---|---|
| 2 तालाबंदी | (1991) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 |
| 3. छिन्नमस्ता | (1993) | राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., 1 बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002 |
| 4. अपने–अपने चेहरे | (1994) | किताबघर प्रकाशन, 24 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002 |
| 5. पीली आंधी | (1996) | राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., 1 बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002 |
| 6. स्त्री–पक्ष | 1999 | 14 फरवरी से सबरंग पत्रिका जनसत्ता में 1 अगस्त तक प्रकाशन |

**लघु उपन्यास–**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1) | अग्निसंभवा | मार्च 1992 से मई 1992 तक | 'हंस' मासिक, नई दिल्ली |
| 2) | एड्स | 1993 | 'आज', पूजा वार्षिकांक, कलकत्ता |

**आत्मकथा**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अन्या से अनन्या | (2007) | राजकमल प्रकाशन. प्रा.लि., 1 बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002 |

**अनुवाद –**

| | | |
|---|---|---|
| 1. सॉकलों में कैद क्षितिज | (1988) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 2. |
| 2. स्त्री उपेक्षिता | (1990) | हिंदी पॉकेट बुक्स प्रा. लि.जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली 110032 |

**संपादित**

| | | |
|---|---|---|
| 1) एक ओर पहचान (कविता संग्रह) | (1986) | स्वर समावेत 6. तनसुक लेन, कलकत्ता, 700070 |
| 1. हंस महिला विशेषांक | 2001 | हंस मासिक, नई दिल्ली |
| 2. पितृसत्ता के नये रूप | 2003 | राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली |

**चिंतन–परक–**

| | | |
|---|---|---|
| 1. सार्त्र का अस्तित्ववाद | (1984) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड़. दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 |
| 2 सार्च शब्दों का मसीहा | (1985) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 |
| 3. आल्बेयर कामू वह पहला आदमी | (1993) | सरस्वती विहार, जी.टी. रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 110095 |
| 4. उपनिवेश में स्त्री | (2003) | राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1 बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, 110002 |
| 5. बाजार के बीच : | (2004) | वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली |

**बाजार के खिलाफ**

प्रभा खेतान ने व्यवसाय की व्यस्तता के बीच भी पूरी लगन से लिखा और सिर्फ लिखा ही नहीं अपितु साहित्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान भी बनाया। छोटी–सी कविता से शुरू हुआ प्रभा का साहित्यिक सफर उत्कृष्टता के साथ लेखन की ऊँचाईयों को स्पर्श करने वाला रहा। उनका काव्य, कथा और बौद्धिक धरातल पर लिखा गया चितनपरक, शोधपरक साहित्य उन्हें हिंदी जगत में अमर कर गया।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. प्रभा खेतान का जन्म कब हुआ था ?
2. प्रभा खेतान ने किन विषय में परास्नातक की उपाधि प्राप्त की थी ?
3. प्रभा खेतान ने 'ज्यों पॉल सार्थ का अस्तित्ववाद' विषय पर कौन सी उपाधि प्राप्त की थी ?

4. प्रभा खेतान की आत्मकथा का क्या नाम है ?

5. 'स्त्री उपेक्षिता' किम फ्रांसीसी पुस्तक का अनुवाद है ?

6. 'अपरिचित उजले' किस विधा की स्चना है ?

## 22.4 सारांश

हिंदी भाषा की प्रतिष्ठित कवयित्री, उपन्यासकार और नारी चिंतक प्रभा खेतान ने अपनी रचनाओं में जहाँ एक ओर स्त्री जीवन की विविध समस्याओं को उठाया है वहीं दूसरी ओर उन्होने इन समस्याओं से स्त्री को सामाजिक व्यवस्था की सच्चाई से रू–ब–रू करवाया है। प्रभा खेतान ने व्यवसाय से साहित्य धर से सामाजिक कार्यों तथा देश से विदेशों तक के सफर से अनेक मंजिलें तय कीं।

## 22.5 कठिन शब्दावली

**चेष्टा** – कोशिश

**उग्र** – टीबा

**संचित** – इकट्ठा करना

**वात्याचक्र** – भंवर

**सुमुत्सुक** – उत्साहित

## 22.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1942 ई. में।
2. दर्शनशास्त्र।
3. पी.एच.डी.
4. अन्या से अनन्या।
5. दि सेकेंड सेक्स।
6. काव्य संग्रह।

## 22.7 संदर्भित पुस्तकें

1) डॉ. उषा कीर्ति राणावत, प्रभा खेतान व औपन्यासिक संसार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

2) डॉ. कृष्णा जाखड़, प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

## 22.8 सात्रिक प्रश्न

1. प्रभा खेतान का जीवन परिचय दीजिए।
2. प्रभा खेतान विरचित साहित्य का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. प्रभा खेतान के साहित्य की विशेषताएं बताइए।

*****

# इकाई–23
# भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : पाठपरक अध्ययन

**संरचना**


23.1 भूमिका

23.2 उद्देश्य

23.3 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : पाठपरक अध्ययन

23.3.1 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : तात्विक समीक्षा

23.3.2 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : निबंध का सार

23.3.3 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : निबंध का उद्देश्य

स्वयं आकलन प्रश्न

23.4 सारांश

23.5 कठिन शब्दावली

23.6 स्वयं आकलन

23.7 संदर्भित पुस्तकें

23.8 सात्रिक प्रश्न


## 23.1 भूमिका

इकाई बाईस में हमने प्रभा खेतान जी के जीवन परिचय के बारे में गहनता के साथ अध्ययन किया और आगामी इकाई में हम प्रभा खेतान को निबंध 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' की तात्विक समीक्षा, सार और उद्देश्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे

## 23.2 उद्देश्य

इकाई तेईस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' निबंध का पाठपरक अध्ययन क्या है ?
2. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' निबंध की तात्विक समीक्षा क्या है ?
3. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' निबंध का सार क्या है ?
4. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' निबंध का उद्देश्य क्या है ?

## 23.3 भूमण्डलीकरण धार्मिक समाज और पूँजीवादी : पाठपरक अध्ययन

नब्बे का दशक भूमंडलीकरण का रहा है। फ्रांसिस फुकूयामा ने इतिहास के अंत का ऐलान किया और उत्तर–शीतयुद्ध की आधारभूत विचारधारा को नव–उदारवार का दौर कहा। मगर भविष्य की दुनिया कैसी होनी चाहिए, इसकी वह कल्पना नहीं कर सके। डेनियल येर्गेन और जोसेफ स्टेनीस्ला ने अपनी पुस्तक 'द कमांडिग हाइट्स' में राज्य–व्यवस्था के सामने भूमंडलीय चुनौतियों को तो प्रस्तुत किया, लेकिन इसके असंतुलनकारी प्रभाव को मानने में वे भी असमर्थ थे। इस काल में सबसे अच्छी पुस्तक जो मुझे लगी है वह थी 'द लेक्सस एंड द ओलिव ट्री'। पुस्तक में लेक्सस ब्रांड की मोटर गाड़ी तकनीक और अर्थव्यवस्था की संवृद्धि एवं आधुनिकीकरण का प्रती है; जबकि ओलिव का पेड़ उन पारंपरिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी जड़ें समाज में गहरे तक पैठी हुई हैं। लेकिन इस भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को पलटने की क्षमता किसी भी राष्ट्र में नहीं है।

मोटे तौर पर भूमंडलीकरण के तीन मुख्य प्रभाव सामने आए हैं :

1. पिछली शताब्दी की पुरानी आस्थाओं का एकदम से लड़खड़ाना और निस्तेज होना।

2. एक वैश्विक दृष्टिकोण के साथ भूमण्डलीय संस्कृति का जन्म।

3. वर्ग, राष्ट्रीयता और जातीयता पर उठने वाला विवाद।

अब मानव समाज का पुरानी कृषियुगीन व औद्योगिक संस्कृति में लौटना असंभव है। जैसा कि चार्ल्स जैक का कहना है कि यह बदलाव उत्तर–औद्योगिक व्यवस्था का अगला कदम है जो कभी पलट नहीं सकता। भूमंडलीय समाज में निरंतर चुनाव करते रहने को हम बाध्य हैं; ने केवल धनिक वर्ग के पास चुनाव उपलब्ध है बल्कि हर कोई, हर जगह–वह चाहे पुरूष हो या स्त्री – एक स्वतंत्रचेता है, और अपना–अपना चुनाव कर रहा है। सभी अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं क्योंकि आज उन्हें तकनीक उपभोक्ता–जनित वस्तुएं और जीवन–शैली के विभिन्न प्रकार के चुनाव उपलब्ध है। अतः व्यक्ति चाहे प्रयोगधर्मी जीवन अपनाए या संस्कृति के बाजार में शाश्वत खरीददारी करे या फिर यदि उसका मन चाहे तो अपनी प्राचीन विरासत की खोह में तपस्या करे। वह कुछ भी बनने और किसी भी जीवन–शैली का चुनाव करने लिए स्वतंत्र है। भूमंडलीय समाज की यह देन है, और इसी कारण हम सब यथार्थ के उपभोक्ताओं के रूप में स्थापित हैं। परंपरा और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बीच ही हमें किसी एक जीवन को अपनाना है। विरासत में जो कुछ भी मिला उसे अतीत से काटकर वापस वर्तमान के चेहरे पर चिपकाना हमारी नियति है। इस प्रयास में यदि हम सफल होते हैं, तो परंपरा का एक महत्वपूर्ण संश्लेषण पेश कर पाते हैं और यदि असफल होते हैं तो इस खोजे गए सम्मिश्रण की उलझी पैरोड़ी के बीच ही हमें अपना रास्ता खोजना पड़ेगा।

भूमंडलीकृत समाज में एक ओर परंपरा के अवशेष मिलते हैं, उनके हिस्से जगमगाते है, तो दूसरी ओर, हम आधूनिकता की स्थापित सीमा के पार भी चले जाते हैं। हर कथन का दोहरा आशय है। और विडंबना है कि परंपरा में जो बिखराव, उलझन एवं विसंगतियां है वे ही बहुलता को हासिल करने में समर्थ है। अतः हम क्या हैं ? हम भूमंडलवासी कौन हैं ? इस भूमंडलीकृत समाज में स्त्री कहां आसीन है ? और उसे कौन–कौन से चुनाव उपलब्ध हैं? भूमंडलीकरण से वह क्या समझती है और उसे कैसी स्वतंत्रता चाहिए, तथा उसकी आस्था किन मूल्यों में है – इसे स्पष्ट करना होगा। मैं यहां यह स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि जब मैं 'भारतीय स्त्रियों' जैसे संबोधन को प्रयुक्त करती हूं तो उसमें लाखों स्त्रियां शामिल होते हुए भी कुछ स्त्रियां शामिल नहीं हो पाती, क्योंकि वे चुनाव करने में असमर्थ हैं। और गरीबी की सीमा–रेखा से नीचे हैं। भूमंडलीय समाज में मुक्ति की कामना केवल वही स्त्री करने में समर्थ है जो गरीबी की सीमा–रेखा से ऊपर है।

भूमंडलीकरण गैर–पश्चिमी संस्कृतियों के लिए मारक साबित हो रहा है। ऐसी दुनिया किस काबिल है ? ऐसा एक–आयामी समाज, जो अंततः बिना किसी लगाव के खत्म हो जाएगा। यह कहना कि पश्चिम और गैर–पश्चिम में बिना किसी बाधा के विचारों का आदान–प्रदान हो रहा है और संस्कृति एवं परंपरा का संश्लेषण इसी पर आधारित होगा– समुचित नहीं जान पड़ता। आज जो कुछ भी घट रहा है और पश्चिम से तीसरी दुनिया पर ही आरोपित किया जा रहा है, उसमें हमारा परिचय किसी भारतीय मेडोना से नहीं होता। हम किसी चीनी माइकेल जैक्सन को नहीं जानते। कोई मोरोक्कन जूलिया राबर्ट्स या फिलिपीनी न्यू किडस भी टीवी के चैनलों में उपस्थित नहीं है। ब्राजीलियाई शेक्सपीयर की चर्चा नहीं की जाती। उसके नाटक नहीं खेले जाते। भारतीय टीवी चैनल 'सहारा मनोरंजन' पर अंग्रेजी लेखिका बार्बरा कार्टलैंड मुकदमा दायर करती हैं, मगर भारत का कोई लेखक उसके लिखे पर आरोप नहीं लगा पाया है। भूमंडलीय स्टेज पर न चीनी ओपेरा देखने को मिलता है, और न ही उर्दू–हिंदी की कविता का पाठ मिलता है।

वास्तव में भूमंडलीय मंच अपने–आपमें एक पश्चिमी मंच है। यह पश्चिमी सत्ता और नियंत्रण का ही व्यक्तिकरण है। यदि यहां किसी गैर–पश्चिमी व्यक्ति को कभी–कभार कुछ कहने–बोलने के लिए चुन भी लिया

जाता है तो मात्र इस आधार पर कि वह पश्चिम के करीब है या पश्चिमी आदर्शों को बढ़ावा देता है या उनकी अच्छी नकल कर सकता है। जितनी भी गैर–पश्चिमी निर्मिति और कलाकृतियां हैं, वे पश्चिमी मानस को महज गुदगुदाती है। अतः भूमंडलीकरण के नाम पर वस्तुतः यह नव–पश्चिमीकरण है, जिसमें हम सबको रंगा जा रहा है। पश्चिम को अपनी संस्कृति और अपने सार्विक मूल्यों पर विश्वास है। मगर पूर्व–पश्चिम की पहेली का हल या दूसरी और तीसरी दुनिया के संश्लेषण की चर्चा करें तो यह संभव है, मगर एक वर्चस्ववादी संस्कृति और दूसरी कमज़ोर और निर्भरशील आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था में आपसी मेल संभव नही। कारण यह है कि जो प्रभावी है, वह कमजोर को सोख लेता है। माना कि जो कमजोर है उसके लिए नई योजना को पुनः अंकित किया जा रहा है। प्रभावशाली व्यवस्था के अनुसार ही एजेंडा को लिपिबद्ध किया जाता है। अतः 'भूमंडलीय सिंथेसिस' का दावा एक प्रकार से पश्चिमी सभ्यता में दूसरे की संस्कृति को सोखने और सुखाने का मायावी दावा है।

आज 21वीं सदी में यह व्यवस्था शीतयुद्ध की व्यवस्था को 'सुपरसीड' करती हुई नजर आती है। उस पुरानी दुनिया में दो खेमे थे। अस्सी के दशक तक दुनिया का भूगोल दो भागों में बंटा था– 'पूंजीवादी' और दूसरा 'समाजवादी'। राष्ट्रीय सरकारों की अपनी आर्थिक परियोजनाएं थीं। विकासशील देश या तो मास्को या फिर वाशिंगटन पर निर्भरशील थे। अतः छुटभैये राष्ट्रों ने अपनी सीमा के भीतर आधुनिकीकरण को स्वीकारा हुआ तो जरूर था, किंतु सोवियत यूनियन के विघटन व पतन के बाद जो उत्तर–शीतयुद्ध अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था प्रकट हुई, वह भोगवादी संस्कृति और राज्य के संदर्भ में लेस–एफेअर यानी मुक्त अर्थव्यवस्था की विचारधारा पर आधारित थी। इस व्यवस्था की स्थिरता एवं संतुलन राष्ट्रीय सत्ताओं के समीकरण से ही संभव था। सबसे अधिक जरूरत थी बाजार एवं राष्ट्रों के आपसी संतुलन की। कोई भी देश यह दावा करने में असमर्थ था कि वह अपने–आपको इस बदलते हुए परिवेश में अलग–थलग रखेगा। यह तो ताश के पत्तों की ठेंस थी, जहां एक पत्ते में जरा–से परिवर्तन से सभी पर दूरगामी प्रभाव पड़ना लाजिमी था। अतः राष्ट्र–राज्य चाहे कोई भी घरेलू आर्थिक नीति क्यों न अपनाएं, वे बाजार का अनुशासन मानने को बाध्य थे।

पर यह सवाल भी उठता है कि आखिर वह व्यवस्था एकाएक कैसे बदल गई? आखिर राष्ट्रीय सरकारों ने पूंजी के नियंत्रण से अपना हाथ अचानक क्यों हटा लिया ? क्या केवल इसलिए कि सूचना एवं संवाद की तकनीक को राष्ट्रीय सीमाओं पर रोकने में वे असमर्थ थीं ? माना कि इसको सोवियत संघ भी नहीं रोक पाया। मिखाइल गोर्वाचोव, परोस्त्राइका (खुलापन) को अपनाने को बाध्य थे। तकनीकी निर्धारण से आप चाहे जितना मुंह छिपाएं, मगर सच्चाई तो यह है कि समकालीन इतिहास की धारा का उद्‌गम–स्त्रोत माइक्रोचिप है और इसी कारण परा–राष्ट्रीय धाराओं का सामना स्थानीय संस्कृति से होता है; यद्यपि यह ऊपरी स्तर पर ही है।

कारपोरेट प्रमुख कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) रोजमर्रा के आर्थिक निर्णयों को प्रभावित करने में असमर्थ हैं, क्योंकि दुनिया के बाजार एक–दूसरे से इनती तेज गति से टकराते हैं कि न तो उनके बारे में कोई भविष्यवाणी की जा सकती है और न ही उनकी गति को नियंत्रित करना संभव है। राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर पूंजी को कैद नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज बटन दबाते ही अरबों की संख्या में डालर एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र की ओर फिसल जाते हैं। आज गरीब देशों की भी भूमंडलीय बाजार में भागीदारी है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि राष्ट्रीय सीमाओं का विलयन हो गया है। प्रत्येक राष्ट्र की भिन्न–भिन्न भूमिकाएं हैं, और इनसे उनकी आर्थिक सफलता या असफलता का परिचय मिलता है। कोई राष्ट्र यदि भूमंडलीय अर्थव्यवस्था में अपनी भागीदारी रखना चाहे और अपने स्थानीय बाजार में अंतरराष्ट्रीय निवेशकों का ध्यान आकर्षित करना चाहे तो यह उक्त राष्ट्र का काम होगा कि पूंजी के निवेशकों को बहलाने–फुसलाने का रास्ता निकाले। एक सुनहरे ढांचे की तैयारी करनी पड़ती है, जिसके अंतर्गत उद्योगों का निजीकरण, संतुलित बजट, आयात शुल्क को कम करना, विदेशी निवेश पर नियंत्रण और राज्य के द्वारा प्राधिकृत अनुदान (सब्सिडी) को खत्म करना शामिल है। गहराई

में जाने पर हम समझते हैं कि भूमंडलीकरण का फायदा बाजार की कार्य–कुशलता पर निर्भर है, जिसके लिए राष्ट्र को अन्य सहयोगी संस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर की एकाउंटिंग और आडिटिंग व्यवस्था, सुदृढ़ वित्तीय बाजार का नियमन, शेयरधारकों के अधिकार और कुल–मिलाकर 'लालफीताशाही' के बदले 'पारदर्शिता' को लागू करना पड़ता है, ताकि दूर बैठा व्यापारी भी राष्ट्रीय सीमा के भीतर होने वाली हलचलों का पूरा जायजा लेने में समर्थ हो।

भूमंडलीकरण व्यवस्था को पूर्णरूपेण लागू किए बगैर आर्थिक प्रगति संभव नहीं। मगर इसके लिए राष्ट्रीय सरकारों और समाज को रास्ता कौन दिखाएगा? माना कि केंटुकी फ्राइड चिकन के लिए बंगलूर में बड़ी हाय–तौबा मची या फिर किसी अन्य खाद्य पदार्थ के लिए कहीं कोई अलग प्रतिक्रिया हुई, कहीं फैशन की नग्नता के खिलाफ आंदोलन हुआ, तो कहीं भोगवादी संस्कृति पर समाज को आमूल रूप से असंतुलित करने का आरोप लगा। मगर इन सबके खिलाफ दरवाजा बंद करने में हर देश की सरकार असमर्थ नजर आ रही है। सीमा के पार आवाजाही पर रोक लगाने से भी कुछ हासिल नहीं होने वाला। आज कोई भी व्यक्ति इंटरनेट के माध्यम से बाहरी दुनिया से संवाद स्थापित करने में समर्थ है। जो सीधे दरवाजे से नहीं घुस पाता, वह कंप्यूटर के विंडो पर तुरंत उपस्थित होने में समर्थ है। आधुनिक सूचना तकनीक से प्रभावित राष्ट्रीय सरकारें भूमंडलीय बाजार–व्यवस्था को अपनाने के लिए इस कारण भी बाध्य है कि उत्पादनकर्ता कहीं भी आ जा सकता है। इंटरनेट तो वह एजेंट है जो बाजार–आधारित समाज को विकेंद्रित, जनतांत्रिक और पारदर्शी बनाकर ही छोड़ता है।

अतः प्रत्येक देश एक ही माडल को स्वीकार रहा है। इस माडल में राष्ट्रीय जोड़–घटाव का स्कोप बहुत कम है। फिर भी अल्पविकसित और विकासशील देशों को बाजार–व्यवस्था की संस्थागत जरूरतों को प्रस्तुत करने में काफी समय लग सकता है। हर देश में इंटरनेट से संचालित ये संस्थाएं इतनी जल्दी जड़ नहीं पकड़ेगी। कम से कम उन्नत राष्ट्रों की संस्थाएं भिन्न हैं। वे मौलिक खोजबीन को प्रोत्साहित करती हैं। विश्वविद्यालय की व्यवस्था वैज्ञानिकों को पैदा करती है। बाजर–आधारित अर्थव्यवस्था में नई तकनीक के लिए पूंजी का निवेश किया जाता है और बहुनिगम कंपनियों में प्रमुख कार्यकारी (सीईओ) को कंपनी के लाभ में भागीदारी मिलती है। लेकिन केवल तकनीक के कारण सूचना क्रांति की वजह से पूंजी का प्रवाह राष्ट्रीय सीमाओं का अपनी मर्जी से उल्लंघन करने लगा। इसे समझने के लिए हमें इतिहास में थोड़ा और पीछे लौटना होगा।

भूमंडलीकरण मिशेल जार्डोनो एवं पॉल क्रुगमैनों जैसे के हित में है, क्योंकि इंटरनेट एवं टीवी चैनलों के माध्यम से ऐसे ही लोग भूमंडलीय बाजार में अपनी सामाजिक एकता और लगाव का ह्रास होता है, बल्कि विजेता समाज को बेशर्मी से यह सब कुछ बटोरने का दुस्साहस भी देता है। दुनिया में आज जैसी असमानता पहले कभी नहीं थी। यदि देश के पास धन है तो व्यक्ति की शिक्षा पर अधिक खर्च करना संभव होगा और वह कुशल श्रमिक बन सकेगा। मगर बहुतेरे देशों की आर्थिक क्षमता सीमित है और वे अपनी जनता को तकनीकी शिक्षा मुहैया कराने में असमर्थ है। अमेरिकी अर्थशास्त्री फ्रिडमैन की भविष्यवाणी है कि 21वीं सदी में भूमंडलीकरण की पक्षधर एवं विपक्षी ताकतों के बीच गृहयुद्ध होगा, जिसका कारण उनकी संस्कृति होगी; केवल 'आर्थिक भूमंडलीकरण' का कोई औचित्य नहीं है – यह सही होती लगती है। मगर विकासशील देश विकासमान देशों की तुलना में कैसे खुद को बचाएं और कैसे मध्यम मार्ग पर चलें, इस पर चर्चा जरूरी है। भूमंडलीकरण तो वह बिजली है जिससे आपका घर रौशन भी हो सकता है और आपके घर में आग भी लग सकती है। फिलहाल वैश्विक स्तर के अर्थशास्त्रियों एवं समाज–वैज्ञानिकों के पास भूमंडलीकरण के दुष्प्रभावों से बचने का कोई सर्वकालिक उपाय है भी नहीं।

समकालीन भूमंडलीकरण वास्तव में कोई नई घटना नहीं है। इसकी प्रक्रिया सौ वर्ष पहले शुरू हो चुकी थी यानी उस समय जब न्यू डील की स्थापना हुई थी। वास्तविकता यह है कि हम आज भूमंडलीकरण के तीसरे चरण में है। उद्योग–व्यवस्था के संदर्भ में प्रत्येक चरण में नया दृष्टिकोण और नई तकनीक रहते हैं। व्यापार और

पूंजी के निवेश में नई राष्ट्रीय उर्जा को संलग्न होते हुए देखा जा सकता है। किंतु समकालीन दौर गुणात्मक रूप से भूमंडलीकरण के पिछले दो चरणों से अलग है। आज समकालीन व्यवस्थाएं ज्यादा लचीली और गतिशील हैं, क्योंकि उद्योग–व्यवस्था में सूचना तकनीक की महती भूमिका है। अतः अर्थव्यवस्था ज्ञान पर आधारित है, विशेषकर समृद्ध देशों के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का अधिकतम हिस्सा तकनीकी ज्ञान के कारण ही संभव हुआ है।

भूमंडलीकरण का एक और परिणाम है कि भूमंडलीय कंपनी को राष्ट्र नियंत्रित करने में असमर्थ साबित हो रहे हैं। हालांकि भूमंडलीकरण की कीमत और उससे होने वाले लाभ का सभी देशों में समान वितरण नहीं है, फिर भ्झी यह दावा तो किया जा रहा है कि बढ़ते हुए भूमंडलीकरण से स्त्रियों और वंचितों को ज्यादा लाभ होगा और अब तक जो क्षेत्र पुरूषों द्वारा अधिकृत थे, अब वे वह स्त्रियों को भी उपलब्ध हो रहे हैं। यद्यपि जमीन और पारंपरिक पूंजी का पुनः वितरण उतना आसान नहीं है, मगर ज्ञान के वितरण में तो कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। ज्ञान द्वारा स्त्रियों को सत्ता से सीधी बातचीत और मोलभाव की सुविधा मिलती है। कुछ ऐसी मध्यस्थताकारी संस्थाएं विकसित हुई हैं जो मानवीय विकास और अर्थव्यवस्था के पर्यावरण पर ध्यान देती है और राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लिए गए निर्णयों के प्रति अपना समर्थन या विरोध जताती है।

भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जो वित्त–पूंजी के निवेश, उत्पादन और बाजार द्वारा राष्ट्रीय सीमा में ही वर्चस्वी नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा से परे भूमंडलीय आधर पर निरंतर अपना प्रसार करना चाहती है। इसका निर्णय–क्षेत्र सारी दुनिया है। यह अपनी मुद्रा के कार्य–क्षेत्र को निरंतर पुनः–पुनः समायोजित करती रहती है। किसी भी कंपनी की फैक्टरी, आफिस और उसके कर्मचारी अधिक लाभ कमाने के लिए राष्ट्रीय सीमा के बाहर कहीं भी जाने को तैयार रहते हैं। इन भूमंडलीय निगमों के प्रबंधकों ने अपनी तकनीकी क्षमता के आधार पर नए अंतरराष्ट्रीय संबंधों का निर्माण किया है, जिससे उत्पादन एवं उपभोग की क्षमता बढ़ी है। आज पूंजी और सूचना के राष्ट्रीय सीमाओं के सहजता से आरपार आना–जाना संभव होने से जो नए नेटवर्क बने हैं उन्होंने पूंजी, सेवा और वस्तु की अंतरराष्ट्रीयता को बढ़ावा दिया है। भूमंडलीकरण से एक ओर, नई सुविधाएं मिलीं, तो दूसरी ओर, जोखिम भी बढ़े है। प्रत्येक समाज अपनी संस्थाओं का विकास करता है। ये संस्थाएं सत्ता और जनता के बीच बिचौलिए की भूमिका निभाती है, पर इस भूमिका के लिए सही प्रबंधन–क्षमता भी होनी चाहिए। नवजागरण के बाद ये संस्थाएं क्रमशः विकसित होती गई और राष्ट्रीय राज्यों का इन्हें पूरा संरक्षण मिला था। मगर आज इन्हीं संस्थाओं को अंतरराष्ट्रीय बाजार का सामना करना पड़ रहा है। इसी कारण कुछ सवाल उठते हैं–क्या अपनी मध्यस्थताकारी भूमिका में ये संस्थाएं स्त्रियों एवं वंचितों को भूमंडलीकरण से होने वाले लाभ दिलाने में समर्थ हैं?

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि भूमंडलीकरण के तीन चरण रहे हैं, और फिलहाल हम तीसरे चरण में हैं। भारत में अभी भूमंडलीकरण का दूसरा चरण ही शुरू हुआ है। पहला चरण अंतरराष्ट्रीयकरण का था, जो 1870 से 1914 के बीच का समय घेरता है। इस दौरान रेलवे, टेलीग्राफ व्यवस्था तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था और देशांतरण के लिए नए तौर–तरीकों एवं यांत्रिक साधनों का अन्वेषण और उपयोग हुआ। इस दौर में घरेलू स्तर पर संपूर्ण उत्पादन–क्षमता को केंद्रीकृत किया गया और उनके संरक्षण के लिए राष्ट्रीय राज्यों ने सेना तक से सहायता ली। हालांकि इन देशों के जीवन–स्तर में सुधार आता है। रोजगार की नई सुविधाएं मिलती हैं। पहली बार कार्य–क्षेत्र में ट्रेड–यूनियन का प्रभाव बढ़ता है, जो क्रमशः राष्ट्रीय एसेंबली में भी श्रमिकों की मांग को प्रस्तुत करने मं समर्थ होता है।

1950 से 1960 तक मात्र एक दशक की अवधि वाला दूसरा दौर बहुराष्ट्रीयकरण का रहा। इससे पहले 1914 और 1945 के बीच महामंदी का दौर और दो–दो विश्वयुद्ध हो चुके थे। विश्वयुद्ध का नतीजा था कि उन्नत देशों को फिर से अपने–अपने राष्ट्रों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता पड़ी और शायद इसी कारण उत्तर–औद्योगिक देशों में अभूतपूर्ण आर्थिक प्रगत और समृद्धि हुई है। राष्ट्र से बाहर यदि अमेरिका ने पूंजी का निवेश किया तो

इसका कारण संसाधनों की खोज थी। विदेशों में फैक्टरियां और आफिस खोले गए, हालांकि इनके मुख्यालयों को अमेरिका में ही रखा गया जो अपनी शाखाओं पर अपने लाभांश के लिए पूरी निगरानी रखते थे। ये सारी कंपनियां विशालकाय थीं और फोर्डवादी उत्पादन–व्यवस्था में विश्वास रखती थी। विदेशों में की जाने वाली व्यापारिक गतिविधि के केंद्र में मूल कंपनी के स्वार्थ का ध्यान रखना पड़ता था। इन विशालकाय निगमों का भारी–भरकम संगठन ही अंततः इनके विकास को अवरूद्ध करने लगता है। सत्तर के दशक के मध्य फोर्डवादी कंपनियां अपनी फैक्टरियों को देश से बाहर अन्य देशों में इसलिए स्थापित करती हैं कि वहां मजूरी कम थी और श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा देने की बाध्यता नहीं थी। विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय कोष (आईएमएफ) और अन्य क्षेत्रीय विकासशील बैंकों के द्वारा बहुराष्ट्रीय निगमों को संरक्षण दिया जाता है। औद्योगिकीकृत देशों में अर्थव्यवस्थाजन्य सुविधाओं से एक नया मध्यवर्ग उभरकर आता है जो इन निगमों के मूल्यों को ही अपनाता है।

अपने–आपमें इन एजेसियों पर आधारित भूमंडलीकरण एक संरचनात्मक परिघटना है, जिसके कुछ मुख्य कारण हैं – पूंजी की भूमंडलीय गतिशीलता में वृद्धि और स्टाक एक्सचेंज बाजार में कम समय के लिए पूंजी का विशाल आदान–प्रदान। बाजार हर जगह ळै – दुनिया के हर कोने में। और यह बाजार चौबीसों घंटे सक्रिय रहता है। अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के आरपार मुद्रा का तरलता से फिसलन बड़ी तेजी से घटता–बढ़ता है। फलस्वरूप भूमंडलीय वित्तीय व्यवस्था का एक विशालकाय नेटवर्क बन जाता है जो राष्ट्रीय सरकारों के अधीन नहीं है। मगर सरकारें राजकोषीय संतुलन और आर्थिक–व्यावहारिक सावधानी बनाए रखने का दबाव बनाए रखती हैं, ताकि राष्ट्रीय कर्जे में बेइंतहा इजाफा न हो; मुद्रास्फीति की गति पर नियंत्रण रहे। बाजार की दो प्रमुख असुविधाजनक प्रवृतियां हैं –

1. अत्याधिक प्रतिक्रियाशील बाजार छोटी–सी समस्या की संक्रांति में बदलने में समर्थ है, तथा दूसरी, बाजार किसी भी सामयिक व तात्कालिक लाभ के लिए सामाजिक और मानवीय पूंजी को ताक पर चढ़ा देता है।

भूमंडलीकरण की एक और भी विशिष्टता है – उत्पादन–व्यवस्था के ढांचे का परा–राष्ट्रीय नेटवर्क। कोई भी कंपनी भूगोल में सीमित नहीं है। जिन नए जटिल व्यवस्थात्मक और भौगोलिक ढांचों का निर्माण किया जा रहा है, उनका आपसी स्वरूप विविधता लिए हुए है। एक ओर यदि अंतरराष्ट्रीय रणनीतिक गठजोड़ है तो दूसरी ओर उप–ठेके से बनने वाले संबंध है। स्वतंत्र और छंद रूप से स्वतंत्र कंपनियों के बीच संबंधों का जटिल नेटवर्क हे। व्यापक अंतरराष्ट्रीय आधार पर उत्पादन को युक्तिसंगत बनाने के लिए उसने गतिशील पक्ष को और अधिक गतिशील किया है, जिससे अंतरराष्ट्रीय होड़ को बढ़ावा मिलता है। इससे देश क्रमशः विकास की ओर अग्रसर होता है। देशज संस्थाएं और अधिक कार्य–कुशल होती है। इससे कम कीमत पर ऊंची क्वालिटी की उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन संभव होता है। उत्पादन–प्रक्रिया के विभिन्न स्तर को भौगोलिक रूप से भिन्न–भिन्न स्थानों में सीमित करने का उद्देश्य है–कम कीमत के श्रम की खोज; कर–दर में सुविधा; तथा पर्यावरण की समस्याओं को अनदेखा करना। ये उत्पादनकर्ता बहुनिगम कंपनियां क्रमशः सेवा के क्षेत्र ( सर्विस सेक्टर) में भी सक्रिय हो उठती है।। विशाल बैंक, विज्ञापनदाता कंपनियां, होटलों की श्रृंखलाएं, गाड़ियां, बीमा, कानूनी और मालवाहक (फ्रेट कारपोरेशन) कंपनियों के साथ एक भारी–भरकम भूमंडलीय नेटवर्क स्थापित करने में सक्रिय है। अतः उत्पादन के साथ उससे संबंधित व्यापारिक सेवाएं भी भूमंडलीय स्तर पर फैलती चली गई है। परिणामस्वरूप कारपोरेट संस्थाओं में भूमंडलीय व्यवस्था को क्रमशः इंटरलाक (सम्मिलित, अंतनिर्हित) करना होता है। इसके साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआई) कम श्रम के आधार पर उत्पादन के साथ नए उपभोक्ता बाजार में भी प्रवेश करना चाहता है। अतः इसका एक सांस्कृतिक पक्ष भी है। परा–राष्ट्रीय कारपोरेशन अंतरराष्ट्रीय उत्पादन के विशालकाय नेटवर्क और सेवा डिलीवरी की सुविधाओं के लिए सक्रिय है जिसे हम अमेरिका द्वारा अपनी संस्कृति और मूल्यों को कमतर देशों पर आरोपित करने का प्रयास कहेंगे।

ये भूमंडलीय संस्थाएं राष्ट्रीय सरकारों के नियंत्रण से बाहर हैं। अतः व्यवस्था और उसके ढांचों का चाहे नया आकार विकसित हुआ हो, मगर उत्पादन के तरीकों से डिजाइन और तकनीक तथा संसाधनों का विकास

संभव हुआ है। प्रबंधन और प्रशासन के नए स्थान, मध्यवर्ती पूंजीकृत वस्तुओं और सेवा के संसाधनों का विकास भी संभव हुआ। इनसे जनित उत्पादित वस्तुएं एवं सेवा – स्थानीय जरूरत के अनुसार या फिर निर्यात के लिए– दोनों ही स्तर पर पाई जाती है। इसी कारण भूमंडलीकरण की दूसरी बड़ी शर्त यह है कि प्रतियोगितापूर्ण भूमंडलीय बाजार के लिए पूंजी के निवेश और व्यापार के उदारीकरण को संभव किया जाए। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजार के अनियंत्रकीकरण की मांग तथा उत्पादन के नेटवर्क का राष्ट्रीय सीमाओं में सीमित रखना संभव नहीं। इससे एक ओर जहां उत्पादन के नए तौर–तरीके विकसित होते हैं, नई संस्थाओं का जन्म होता है, वहीं पुरानी संस्थाओं का पंगुकरण भी होता है। फलस्वरूप, राष्ट्रीय सरकार अपनी सत्ता और ताकत को अवरूद्ध एवं अप्रभावी पाता है। अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था और बाजार से मिलने वाली चुनौतियां क्रमशः राज्य–सत्ता को असंतुलित करती है क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनी और व्यापार का उद्देश्य है–राज्य–सत्ता की तुलना में एक समानांतर भूमंडलीय सत्ता को विकसित करना, ताकि निरंतर विकसित होने वाली बाजार की अर्थव्यवस्था स्वयं को एक समर्थ समाज के रूप में पेश कर सके।

सत्तर के दशक की दुनिया अब बदल चुकी है। चीन, रूस और भारत ये तीन ऐसे विशालकाय जनसंख्या वाले देश हैं जो भूमंडलीय बाजार में प्रवेश कर चुके हैं तथा विश्व–श्रम के आधे हिस्से का दावा कर रहे हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों ने 1985 से 1992 के बीच विकासमान देशों में अस्सी लाख नौकरियां मुहैया करवाई। विकासमान देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों में एक करोड़ बीस लाख लोगों को नौकरी मिली और तब से यह संख्या निरंतर बढ़त पर है। कुल–मिलाकर विकासशील देशों में श्रम की लागत वाले उत्पादन को पुनः स्थापित किया गया है। ऐसा इसलिए भी संभव हुआ कि इन देशों की जनसंख्या का काफी बडा हिस्सा गरीबी की सीमा–रेखा से नीचे था। बहुराष्ट्रीय कंपनी की निवेशीकरण की नीति के कारण इनका जीवन–स्तर ऊपर उठा और क्रमशः गरीबी के दर में कमी आई। बल्कि आज तो ये देश अपनी सस्ते श्रम और उच्च्य तकनीक से संबंधित उत्पादन–क्षमता के कारण विकासमान देशों से होड़ करने में समर्थ है। केवल सानफ्रांसिसको ही नहीं, बल्कि भारत में भी बंगलूर का सिलीकान वैली बढ़ता जा रहा है। लेकिन प्राप्त होने वाली इन नई सुविधाओं का सजग प्रबंध होना चाहिए, ताकि वंचितों को इसका लाभ मिले। वैसे भूमंडलीकरण से दुनिया में असमानता बढ़ी ही है, घटी नही।

नियंत्रित अर्थव्यवस्था से पूंजीवाद की ओर अग्रसर होते हुए अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के संदर्भ में बाजारवाद के प्रति भारत का एक अलग दृष्टिकोण रहा है जो कि एशिया के अन्य देशों से भिन्न है। सबसे पहले, यदि एक ओर भारतीय नागरिक समाज का एक बड़ा हिस्सा भूमंडलीय स्तर पर संवाद करता रहा है, तो दूसरी ओर, इसकी जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा भूमंडलीय स्तर पर संवाद करता रहा है, तो दूसरी ओर, इसकी जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा अविकसित ही रहा है। यहां का नव–उदारवादी मानस और अभिजात वर्ग स्वतंत्र व्यापार और सम्मिलित भूमंडलीय बाजार के प्रबल समर्थक रहे हैं। उनके अनुसार, बाजार और जनतंत्र के विस्तार से देश में ज्यादा समृद्धि, राजनीतिक स्वतंत्रता एवं जन–जीवन को सुरक्षा एवं समानता मिलेगी।

नव–उदारवादियों के दो पहलू हैं – एक आर्थिक और दूसरा राजनीतिक। आर्थिक नव–उदारवार के अनुसार, बाजार की मौलिक शक्ति राज्य–नियंत्रित अर्थव्यवस्था को परिवर्तित करती है और नागरिक समाज का विकास और उदावादी नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का विकास संभव होता है। नव–अभिजात वर्ग बाजारवाद की स्थापना का समर्थक है। कुल मिलाकर नव–उदारवादियों के अनुसार, पूंजीवाद और जनतंत्र साथ–साथ चलते है। उन्हें अलग करना कठिन है। आर्थिक नव–उदारवाद के अनुसार, नियोजित अर्थव्यवस्था के दौरान भारत की उन्नति वैसी नहीं हुई जैसी कि होनी चाहिए थी, क्योंकि यह देश अशिक्षा, गरीबी, अधोसंरचना (इनफ्रास्ट्रक्चर) एवं संसाधनों के अभाव के कारण विश्वबाजार में खुद को सही तरीके से प्रस्तुत नहीं कर पाया। फलस्वरूप, अंतरराष्ट्रीय पूंजी के निवेशीकरण के अभाव से न केवल उत्पादन का ह्यस हुआ, बल्कि विदेशी कर्जा, मुद्रास्फीति

का दबाव और सेवा तथा वस्तुओं की खराब गुणवत्ता के कारण विश्वबाजार में भारत को जो पैठ मिलनी चाहिए थी, वह भी नहीं मिली। अतः दरवाजे खुलने के बाद आमूल रूप से जिन सुधारवादी योजनाओं को लागू किया गया, उनका मुख्य उद्देश्य था बाजार–व्यवस्था की ओर अग्रसर होना।

इसमें भारत अकेला नहीं था। कमोबेशी एशिया और पूर्वी यूरोप के सभी देशों को यही हाल था। 1990 में वैक्लेव क्लास चेकोस्लोवाकिया की अर्थव्यवस्था की क्रमशः उदारीकरण की नीति के बदले आमूल सुधारवादी योजनाओं के संदर्भ में लिखते हैं – 'इन नव–उदारवादी अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि सफलता का प्रमुख कारण पूंजी है, जिससे कि हम कितनी जल्दी और कितनी सफलता से इन योजनाओं को अपने देश में लागू करें, इनके निर्देश के अनुसार, राज्य के हाथों से आर्थिक नियंत्रण का अधिकार लेकर बाजार के सुधारवादियों को दे दें।' भारतीय उदारीकरण के दौरान यही घटित हुआ है। जिसके परिणामस्वरूप विदेशी पूंजी का निवेश एवं बाजारवादी अर्थव्यवस्था का क्रमशः विश्वबाजार में एकीकरण संभव होता है। बहुसंख्यक जन का सामाजिक और अर्थिक जीवन–स्तर पर प्रभाव पड़ता है। स्वाभाविक है कि इससे एक ऐसा मध्यवर्ग उभरता है जो कम से कम बाजार के सुधार और खुलेपन को बनाए रखता है।

परिवर्तन के दूसरे स्तर पर बाजार–व्यवस्था का ढांचा तभी संपूर्ण होता है जब सामाजिक सुरक्षा–व्यवस्था और कानूनी और बैकिंग–व्यवस्था में संस्थागत सुधार किए जाएं। भारत में पूंजीवादी बाजार तभी स्थापित होगा जब क्रमशः वृहत् आर्थिक एडजेस्टमेंट को हासिल किया जाए एवं जिसके निर्देशन से मुद्रास्फीति, उधारी का स्तर, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का विकास, निजीकरण एवं उदारीकरण का स्तर मालूम हो। विश्वबैंक के अनुसार, इसी से अर्थव्यवस्था बदलती है। इससे अभावग्रस्त अर्थव्यवस्था के बदले व्यापक चुनाव व विकल्प की अर्थव्यवस्था, राशन की लंबी लाइनों के बदले खुले बाजार, नियंत्रित और विशाल राजकीय संपति के बदले निजीकृत सतर पर संपति–अधिग्रहण, पुरानी संस्थाओं और व्यवस्थाओं के बदले नए संसाधन एवं उपकरणों का प्रचलन बढ़ता है। राज्य और उसके नागरिक के संबंध में भी मौलिक परिवर्तन के कारण व्यक्ति को चुनाव की ज्यादा स्वतंत्रता मिलती है।

भारत में यह परिवर्तन घटित हो चुका है। यदि आर्थिक नव–उदारवादी मौलिक रूप से अमूर्त बाजार–व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करते हैं तो राजनीतिक नव–उदारवादी राज्य की सत्तावादी नीति के बदले नागरिक समाज की केंद्रीय भूमिका पर जोर देते हैं, जिसके विकास से पूंजीवादी जनतंत्र को हासिल करना संभव होगा। खुले समाज की चर्चा इसलिए जरूरी है कि उदार समाज ही सत्तावादी राजकीय संस्थाओं के जनतांत्रिकीकरण की पहली शर्त है। नागरिक समाज तो जनतांत्रिक और बाजार की संस्थाओं की नैतिक नींव है, जिसके आधार पर सामाजिक संबंध व पक्षधरता, संवादजनित मूल्य एवं विचार और सूचना के महत्वपूर्ण सामाजिक अवदान संभव होते हैं। वृहत् स्तर पर किए जाने वाले आर्थिक सुधार के बदले जमीनी स्तर पर नागरिक जनतांत्रिक सुधार किए जाते हैं। इसके लिए गैर–सरकारी संगठन (एनजीओ) सक्रिय हो जाते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहयोग मिलता है। ये भूमंडलीकरण के प्रभावों से नागरिकों को राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर पर सुरक्षित करने की चेष्टा करती हैं। बाजार तो राज्य की कल्याणकारी भूमिका को आघात पहुंचाता है; इसकी जरूरत को घटाता है; इसलिए स्वयंसेवी संस्थाएं इस कमी को पूरी करती है। अतः इनका सशक्तीकरण होना चाहिए।

स्वतंत्रता कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था पर नेहरू के समाजवाद का असर पड़ा है। नेहरू न केवल कार्ल मार्क्स के लेखन से प्रभावित थे, बल्कि समकालीन समाजवादी राष्ट्र यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो एवं सोवियत संघ से भी प्रभावित थे। 'हिंदी–चीनी भाई–भाई' का नारा नेहरू ने ही दिया था। नेहरू के अनुसार–सामंतवादी पृष्ठभूमि में जकड़े हुए भारत को मुक्त करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की जरूरत थी। जब तक राज्य में नियंत्रित व नियोजित अर्थव्यवस्था लागू नहीं होगी, तब तक आम आदमी के लिए समृद्धि संभव नहीं होगी। किंतु

स्वतंत्रता के पांच दशक बाद नेहरू की समाजवादी संरचना में दरार पड़ती है और भारतीय अर्थव्यवस्था पर बाजारवाद का दबाव बढ़ता है। उत्तर–औपनिवेशक भारत क्रमशः पूंजी की ताकत को स्वीकारने को बाध्य होता है–इसलिए कि विकासशील देश भी पूंजी का महत्व समझ रहे थे।

विस्तार और फैलाव, यानी आंतरिक रूप से पूंजी का संबंध व्यापक प्रसार के साथ संबंधित है, क्योंकि पूंजी कभी सीमा के अंदर स्थायी रूप से बंधकर रह नहीं सकती। नए स्पेस का संधान करना पूंजी का स्वभाव है; अतः निरंतर संक्रांति अवश्यंभावी है। पर इससे पूंजी का विध्वंस नहीं होता, बल्कि यह तो उसके काम करने का तरीका है। उत्पादन के मूल में पूंजी है और उत्पादित वस्तु को बेचने के लिए बाजार चाहिए। सीमित बाजार में पूंजी की लागत बढ़ जाती है, अतः और व्यापक क्षेत्र में सक्रिय होना ही इसका अभीष्ट है। इस अनिवार्यता से कोई बच नहीं सकता। पूंजी की साम्राज्यवादी संरचना भी यही है; लाभ तथा और अधिक लाभ की इच्छा ही निरंतर नए से नए बाजार की खोज को प्रेरित करती है।

हालांकि यह भी एक प्रकार का उभयभावी और अपूर्ण परिवर्तन ही कहलाएगा, क्योंकि सामाजिक और आर्थिक असमानता पहले की तुलना में बढ़ी है, घटी नहीं। भारतीय मिश्रित समाज में आज असमान आय में इजाफा हुआ है। साथ ही बाजार के सुधारवादी प्रयासों के कारण बढ़ती हुई बेकारी और गरीबी में एक ओर, यदि कुछ विजेता हैं, तो उत्तर–स्वातंत्र्य काल के खामोश पराजित भी है। दो प्रकार के 'समकालीन मार्क्सवाद' हैं, जिन पर मैं प्रकाश डालना चाहूंगी।

पहला–पूर्वी यूरोप में मार्क्सवाद के पतन का प्रमुख आर्थिक व्याख्या परोसने वाला विश्व–पूंजीवादी दृष्टिकोण, जिसके अनुसार समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी लचीली व्यवस्था के साथ कदम मिलाकर चल नहीं पाई तथा पूंजी की घुमंतू प्रवृति को न तो ये समाजवादी देश समझ पाए और न ही वे इस प्रवृति के सांचे में खुद को ढाल पाए। दूसरा, इन देशों की अर्थव्यवस्थाएं पश्चिमी पूंजी और व्यापार पर अपने आंतरिक ढांचागत समस्याओं के निदान के लिए निर्भरशील थी। इसी बाध्यता के चलते स्थानीय आर्थिक एवं राजनीतिक अभिजात वर्ग भूमंडलीय अर्थव्यवस्था को अपनाने के लिए बाध्य होता है। भूमंडलीय पूंजीवादी दृष्टिकोण के अनुसार– यही वह वर्ग है जो 1990 के बाद सक्रिय हुआ है।

समकालीन मार्क्सवाद का दूसरा आकार है– 'नव–ग्रामिशियन एप्रोच', जो विश्व में पूंजीवादी विचार और संस्कृति के प्रभाव की चर्चा करता है। नव–ग्रामिशियन दृष्टिकोण के अनुसार, जहां भी अप्रयुक्त संसाधन और उनके उपयोग की संभावना होगी, पूंजी का निवेश नहीं होगा यानी पूंजीवाद की दृष्टि में वही सबसे उर्वर जमीन होगी। पूंजीवाद अर्थव्यवस्था के असमान टुकड़ों का लाभ उठाता है और हर प्रकार की स्थापित एवं राजनीतिक भिन्नताओं का अपने हित में उपयोग करता है। यह भिन्नता चाहे जाति की हो अथवा वर्ग या लिंग की या फिर धर्म या नस्ल की हो, नव–ग्रामिशीवाद सहमतिजन्य सामाजिक अभिरूचियों का तथा नागरिक समाज और राज्य के भीतर एवं बाहर की पूंजीवादी बाध्यकारी ताकतों का विश्लेषण करता है। राज्य का नैतिक नेतृत्व एवं विचार और पहचान जो पूंजीवादी सामाजिक संबंधों का समर्थन करता है, उस पर ध्यान केंद्रित करते है। इस दृष्टिकोण से साम्यवाद के खिलाफ पूर्वी और मध्य यूरोपीय 'मखमली क्रांति' के मूल में छंदवेशी राष्ट्रपारीय नेटवर्क – अर्थात् उदार विचारधारा और सांस्कृतिक आदर्शों का छिपा हुआ प्रयास – रहा है। इस विचारधार और आदर्शों ने स्थानीय समाज को पूंजीवाद की ओर ढकेला। उनके पक्ष में जन–सर्मथन पैदा किया और राज्य–सत्ता के बेतुकेपन को छिपाया तथा बढ़ती हुई सामाजिक और आर्थिक असमानता पर पर्दा डाला। यहां राज्य और निजीकृत पूंजीवादी विचारधारा दोनों हाथ मिला बैठते हैं तथा ऐसा जनमत तैयार करते हैं, जो 90 से 94 के भीतर होने वाले बाजारवाद एवं उदारीकरण की नीति का समर्थन करता हुआ नजर आता है। यह कहना कि खुलेपन की नीति की वजह से सबको समान सुविधा हासिल होगी, एक प्रकार से निजीकृत योजनाओं के लिए जनमत तैयार करना था। अधिकतर देशों में – वह चाहे उत्तर औपरनिवेशिक भारत हो या साम्यवादी चीन या फिर पूर्वी यूरोपीय देश–जनतंत्र एक आयातित विचारधारा रही है। एक ऐसी विचारधारा जिसको लागू करने से पहले बहुसंख्यक की न तो उसमें भागीदारी रही है और न सहमति। स्वाभाविक है कि नब्बे के दशक में उभरते हुए

मध्यवर्ग का न अपना कोई सामाजिक आधार रहा और न ही अपना कोई स्थापित वर्चस्व है। परिणामस्वरूप जनतंत्र को बार–बार अस्थिर करने वाली शक्तियां सक्रिय रही तथा बिना पर्याप्त घरेलु पूंजी के तथा जनमत के अभाव में राजकीय सत्ता पूंजीवादी जनतंत्र को अपनाने को बाध्य होती दिखाई देती है।

व्यवस्थात्मक परिवर्तन के सामाजिक और ऐतिहासिक आयाम को समझने के लिए संस्थाओं के प्रति स्थापित दृष्टिकोण का भी जायजा लिया जाना चाहिए। नव–उदारवाद और नव–मार्क्सवाद के महत्वपूर्ण सिद्धांतों से थोड़ा अलग हटकर संस्थावादियों के अनुसार सामाजीकृत, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तन की बहुस्तरीय विकास की समझ के लिए संस्थाओं का वैज्ञानिक अध्ययन जरूरी है। संस्थाएं कोई कोरा कागज तो नहीं, जिस पर जैसा मन चाहे वैसी नीति को लिखना संभव है। संस्थाओं का अपना इतिहास है, अपना वजूद है; अतः वे प्रतिरोध की क्षमता रखती हैं। सबसे पहले तो सामाजिक संस्थाएं अपने अतीत से अनुकूलित हैं और इनमें परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। उदाहरण के लिए, लैंगिक रिश्तों में पाए जाने वाले दृष्टिकोण और विचारों पर पारंपरिक समाज के नेटवर्क तथा परिवार–व्यवस्था का अच्छा–खासा दबदबा रहता है। भारतीय व्यवस्था भी इसकी अपवाद नहीं। अतः भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के प्रति इनका रूख इनके अपने स्थापित ढांचे से प्रभावित रहा है। सुधार ऊपर से नीचे छनता हुआ बहुधा स्पष्ट नहीं हो पाता। बहुधा इन संस्थाओं के अपने पूर्वाग्रहों ने किए जाने वाले सुधारों को तोड़ा–मरोड़ा है। परिणामस्वरूप, एक निषेधात्मक परिणाम ही उभरकर सामने आया। विचारक न केवल व्यवस्थात्मक परिवर्तन के प्रबल आलोचक हुए, बल्कि विभिन्न सामाजिक समूह के 'एडजस्टमेंट' में भी उनका हस्तक्षेप रहा। उनके अनुसार, राज्य की नीति और संस्थाओं में सुधार के बदले भूमंडलीय प्रतियोगिता से स्थानीय समाज में बिखराव ज्यादा आया। भविष्य की सामाजिक शक्ति और समृद्धि जो कि राज्य की क्षमता के स्थानीय अनुकूलन, प्रबंधन के नेटवर्क एवं परिवार के सामाजिक पूंजीवादी पक्ष पर निर्भर करती है –उन्हें कुंद किया गया। एक प्रकार से नव–उदारवादियों के स्थानीय समाज को ये संस्थाएं ही बचाकर रख सकती हैं।

सुधार के करीब एक दशक बाद भूमंडलीकृत पूंजीवाद द्वारा समाज को किए गए वायदे पूरे नहीं हुए। मसलन, विश्व–संगठन की नकाब उलट गई– वह कितना अमीरपरस्त है, इसे सारी दुनिया जान गई है। उरूग्वे दौर में तर्क दिया जाता था कि उदारीकरण से हर साल दुनिया के देशों को 213 से 510 अरब डालर तक की आमदनी होगी, जिसका फायदा हर देश को होगा। विकासशील देशों को 86 अरब से 122 अरब डालर तक की भागीदारी मिलेगी। लेकिन हुआ ठीक इससे उलटा–अमीर देशों ने अपने कारोबार को बढ़ाया और गरीबों के बाजार पर अपनी गिद्धदृष्टि गड़ा दी। यह दावा भी बार–बार किया गया था कि उदारीकरण से हमारे किसानों को अमीर देशो का बाजार उपलब्ध होगा, पर बिल्कुल इसके विपरीत ही हुआ। किसानों को बाजार तो मिला नहीं, उलटे वे अब अमीरों के बाजार में लूटे जाने का खतरा झेल रहे हैं। समकालीन भारतीय समाज में आज भी पूंजीवाद को शक की नजर से देखा जा रहा है, और शायद इसीलिए सत्ता अपनी नीतियों पर मानवीयता का मुखौटा लगाने को बाध्य हो रही है।

समाजवाद से पूंजीवाद की ओर अग्रसर होते हुए भारत में निजीकृत संपति और स्त्री–पुरूष के बीच सोपानीकृत व्यवस्था को जायज ठहरा दिया गया है, जिसमें अग्रणी दस्ते के रूप में भारत की बुनियादपरस्त पार्टियां प्रमुख हैं। इस संदर्भ में पुरूषवादी संस्कृति की सारी दमनकारी ताकतें निरंकुश हो उठती हैं। (समय –समय पर होने वाले दंगे फसादों से यह स्वतः स्पष्ट है।) साथ ही स्त्री–पुरूष का असमान वेतन, स्त्रियों के लिए रोजगार योजनाओं में भेदभाव, कार्य–जगत में यौन उत्पीड़न, यौनवादी विज्ञापन, घरेलू हिंसा, बलात्कार और यौन उत्पीड़न तथा गरीब होती हुई स्त्रियों की संख्या में वृद्धि, पुनरूत्पादन में चुनाव का अभाव आदि घटनाएं प्रमुख हैं। स्त्री दमन के ये विभिन्न पहलू पहले भी मौजूद थे, मगर राजनीतिक रूप से ये अदृश्य थे। पश्चिम के लिए दरवाजे खुलने पर ये समस्याएं ज्यादा प्रकट हुई हैं और मानवाधिकार के नाम पर इनका विरोध भी मुखर हुआ

है। बहुतेरी नारीवादी चिंतकों का कहना है कि आर्थिक परिवर्तन का खामियाजा स्त्री–वर्ग को भोगना पड़ा है। श्रमिक–वर्ग के रूप में स्त्रियां बेकार हुई हैं। देश के प्रायः सभी भागों में पुरूषों की तुलना में निजीकरण और पुनः संरचना का प्रभाव स्त्रियों को अधिक झेलना पड़ा, क्योंकि अब तक राज्य की कल्याणकारी भूमिका के अंतर्गत स्त्री को जो थोड़ी बहुत सुरक्षा और सुविधा मिलती आई थी, अब वे उनसे भी वंचित होने लगी हैं। विशेषकर विभाजन के दौरान किसी अकेली औरत और विधवा को आर्थिक रूप से आर्थिक मुख्यधारा में शामिल करने का जो प्रयास किया जा रहा था, अब वैसा कुछ नहीं होता। वर्तमान समाज को इन स्त्री–समस्याओं से कोई लेना–देना ही नहीं है। इन सबके बदले, व्यक्तिवादी पुरूष–आदर्शों पर आधारित एक नए वर्ग की पहचान उभरकर आई हैं, जिसमें स्त्री–पुरूष को समान होना है एवं समान स्तर पर भूमंडलीकरण का सामना करना है।

सवाल उठता है कि क्या स्त्री इसके लिए तैयार है ? क्या उसकी और पुरूष की स्थिति समान है? क्या परंपरा का बोझ और संस्थाओं का प्रतिरोध स्त्री को ही अधिक नहीं झेलना पड़ता ? नारीवादी चिंतकों के अनुसार, भारत का जनतंत्र ही घरेलूपन के कल्ट में विलीन होता हुआ दिखाई देता है, जहां परिवार और गृहस्थी के निजी जगत को धर्म और संस्कृति के नाम पर तरजीह दी जा रही है। साथ ही इस नव–पूंजीवाद ने स्त्री के यौन वस्तुकरण को भी बढ़ावा दिया है, जिसमें बाजार में होड़ एवं प्रतियोगिता के साथ पश्चिमी पुरूष के मूल्यों का वर्चस्व बढ़ा है। भारत से संपृक्त पश्चिमी पुरूषों ने भारत को एक 'सेक्सी बाजार' के रूप में उभरते हुए पाया। ये नए प्रबंधक, निवेशक हैं, जो अपनी 'मर्दवादी दृष्टि' के कारण यह सोचते हैं कि इस अछूते बाजार का शीलहरण कैसे किया जाए ? 'प्ले बॉय' में वर्णन है – 'खरीदने और बेचने की एक विशालकाय बहुराष्ट्रीय क्रीड़ा।' बाजार का उतार–चढ़ाव उसका वर्णन, निवेशीकरण के खेल की तुलना कामक्रीडा से की जाने लगी है; और कहा जाने लगा है कि यह 'वर्जिन टेरीटोरी' यानी 'कुंवारी जमीन' है, जहां पश्चिमी पुरूष को अपना वर्चस्व एवं अपनी पुरूषवादी पहचान को पुनस्थापित करना है। इसी बीच पश्चिमी पुरूष ने अपने पौरूष की एक सुधारवादी, उदारवादी और भरोसेमंद साहूकार तथा संभावित दोस्त के रूप में पेशबंदी की। उसी से प्रभावित भारत में राष्ट्रीय संस्कृतिवाद का नया दौर शुरू हुआ जो जन–समाज से वापस अपनी संस्कृति, अपने मंदिर, अपने आंगन में लौटने की अपील करने लगा।

लेकिन फिर भी सवाल उठता है कि इस सारी उठा–पटक में स्त्री आखिर कहां थी ? क्या उससे भी इस बारे में राय ली गई ? क्या होने वाले परिवर्तनों से वह वाकिफ थी ? आखिर सत्ता ने अलग स्त्री पर ध्यान देने की जरूरत क्यों नहीं समझी ? भारत के विशिष्ट वर्ग ने पूर्वानुमानित रूप से यह क्यों मान लिया कि स्त्री–खासकर ऊंची जाति की अभिजात स्त्री – उनके साथ है ? इस सोच के साथ ही समाजवाद के क्षीणकाय अनुभवों के बाद पुरूषत्व को स्थापित करने के लिए सार्वजनिक और निजीकरण की नई लैंगिकीकृत परिभाषाएं अभिव्यक्त होने लगी हैं।

भारत में समाजवादी प्रतिरोध और नव–उदारवादी अर्थशास्त्रियों के गठजोड़ ने जिस पूंजीवाद को स्थापित करना चाहा वह राजनीति से अर्थव्यवस्था को अलग करता हुआ नजर आया, ताकि परिवारिक और निजी जीवन से अलग, स्वतंत्र एवं नैतिक और सार्वजनिक क्षेत्र को स्थापित किया जा सके। भारतीय राजनीतिक अभिजात वर्ग ने बिना किसी आलोचना के सहज ही पश्चिमी विशेषज्ञता और माडल को स्वीकार कर लिया। इसके विपरीत, बहुतेरे गैर–सरकारी नारीवादी संगठन और समूहों ने पश्चिमी नारीवादी विचार और संघर्ष को थोक भाव में स्वीकारे जाने का विरोध किया; और यह उचित भी था। किंतु नारीवाद के लिए समस्या तब पैदा होती है जब इस विरोध का स्तर दक्षिणपंथी खेमे से – यानी पूंजीपति के स्वर से मेल खाने लगता है। नारीवाद को एक ओर पूर्व–पश्चिम के इस विलाप से एक बेहतर भूमंडलीय समझ उत्पन्न हो रही थी, तो दूसरी ओर, पूर्वी–पश्चिमी के उस आपसी सहयोग से स्त्रियों को अधिक से अधिक नव–उदारवादी सार्वजनिक स्पेस तो उपलब्ध हुआ, मगर उन्हें अपनी स्वतंत्र वैचारिक जमीन नहीं मिली। विडंबना तो यह है कि स्त्रियों का यह नेटवर्क

क्रमशः पश्चिमी साम्राज्यवाद और भारत के अभिजात विचारधारा का का संपोषक बनकर रह जाता है। साथ ही पश्चिम के विदेशी निवेश व्यापार तथा अमेरिकी संवैधानिक विशेषता और धनी पर्यटकों की आवाजाही ने सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया है।

नव–उदारवाद की तरह नव–मार्क्सवादी संस्थाओं ने भी लैंगिक भिन्नता से जनित अनुभवों को अनदेखा किया। इनकी आलोचना का आधर मुख्यतः सार्वजनिक क्षेत्र की राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएं तथा उत्पादन का वह क्षेत्र रहा है, जहां पुरूषों का वर्चस्व है। उभरते हुए भारतीय नारीवाद को समझने में संस्थाएं नाकाम रहीं, तथा उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था और परिवार एवं गृहस्थी के क्षेत्र में स्त्रियों की बढ़ती हुई भागीदारी से –जो कि राजनीतिक अर्थव्यवस्था का ही क्षेत्र है– भी ये वाकिफ नहीं रही। ये संभावित ढांचागत परिवर्तनों को समझने तथा समकालीन भारत से भूमंडलीकरण के आकलन में असमर्थ रहीं। राज्य ने कल्याणकारी भूमिका से हाथ खींच लिया, स्त्री और बच्चों पर होने वाले खर्चो में कटौती। मगर स्त्री नए क्षेत्रों में कैसे राज्य की स्थापित भूमिका तथा उसकी पूंजीवाद ताकतों से निर्मित गठबंधनों को चुनौती दे रही है, इसका आकलन भी नहीं किया गया; जबकि नारीवाद भूमंडलीकृत बाजार में स्त्री के उत्पीड़न की चर्चा करता है तथा प्रायः भूमंडलीकरण के प्रतिगामी प्रभाव का ही विवरण देता है।

स्त्री के लिए सार्वजनिक स्पेस का संकुचन उसके जनतांत्रिक अधिकारों का दमन कहलाएगा। अब तक– अधिकतर नारीवादी विचारों के अनुसार– उत्तर–समाजवादी परिवर्तन के दौर में स्त्री नुकसान में रही है। स्त्री–जीवन में परिवर्तन का निषेधक प्रभाव रहा है और ऐसा करते हुए स्त्री वंचित एवं उत्पीड़ित कोटि के रूप में राष्ट्रीय पृष्टभूमि में प्रकट हुई है। चंद्र मोहंती ने इसे ही 'तीसरी दुनिया की स्त्री' के रूप में संबोधित किया और ऐसा करने के साथ–साथ पश्चिमी नारीवादी विचारकों की आलोचना की। मार्क्सवादियों की भांति पश्चिमी नारीवाद ने भी पितृसत्ता और पूंजीवाद के भूमंडलीय ढांचे की ताकत को 'ओवर एस्टिमेंट' किया है। फलस्वरूप, तीसरी दुनिया की मुक्तिकारी संभावनाओं पर विचार ही नहीं किया गया।

मेरे मत में, उत्तर–समाजवादी संदर्भ में भूमंडलीय ताकत और स्थानीय व्यवहार की द्वंद्वात्मकता को हम समझ ही नहीं पाए हैं। नव–उदारवादी और समकालीन मार्क्सवादियों के अनुसार, यह भूमंडलीय आर्थिक ताकतें विश्वबाजार की प्रमुख संचालक हैं। मगर यह अकेली ही परिवर्तन नहीं ला रहीं। परिवर्तन हो रहा है स्थानीय प्रतिक्रियाओं के आधार पर तथा अपने–आपमें जिसकी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया काफी सबल है। स्त्री–पुरूष के लैंगिक संबंधों को ध्यान से देखते हुए इस अध्ययन में हमारी यात्रा विशिष्ट से सामान्य की ओर है तथा भूमंडलीकरण और उत्तर–समाजवादी परिवर्तन के आपसी संबंध के स्पेस पर हमें मुख्यतः ध्यान केंद्रित करना है। नव–ग्रामिशीवादी सिद्धांत नागरिक समाज की निचली गहराइयों के परिवर्तन पर प्रकाश डालता है, अतः उसी आधार पर समाज पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का भी आकलन करना संभव होता है। लिंग की अवधारणा का उपयोग मैं तीन प्रकार से करना चाहूंगी :

1. विचारधारात्मक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक व्यवहार, जो रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा है।
2. असमान सामाजिक संबंध, जो मौलिक जीवन का आधार है, जिसे समझने की चेष्टा करनी होगी।
3. सार्वजनिक और निजी का अलगाव एवं उत्पादन व पुनरूत्पादन की प्रक्रिया, जिनके माध्यम से राजनीतिक पहचान बनती हो। जहां लैंगिक भिन्नता को न केवल विचारधारात्मक रूप से अभिसंरचना के रूप में समझा जा रहा है, बल्कि भौतिक आधार के हिस्से के रूप में भी देखा जा रहा है। ऐतिहासिक स्तर पर सामाजिक जीवन में स्त्री और पुरूष के मानवीय स्वभाव के बारे में सामान्य विचार क्या है ? वे कैसे राज्य एवं नागरिक समाज को स्वरूप प्रदान करते हैं ? स्त्री, उत्पादन तथा पुनरूत्पादन की शक्ति के रूप में वे कैसे पूंजीवादी जनतंत्र की ओर अग्रसर होती हैं ?

एक प्रकार से यह चौतरफा परिवर्तन है, जिसने भारतीय समजा को प्रभावित किया है। एक तो भूमंडलीय सार्वजनिक नीति के एजेंडा के द्वारा किए जाने वलो सुधार के परिणामस्वरूप परिवार की परिभाषा में बदलाव और सामाजिक पुनरूत्पादन की संक्रांति को समझना जरूरी है। दूसरे, लैंगिक गतिविज्ञान कैसे निजीकृत श्रम के प्रकटीकरण एवं श्रम के भूमंडलीय विभाजन को स्वरूप प्रदान करता है—इसे भी समझना चाहिए। तीसरे, भूमंडलीकृत उपभोक्ता बाजार के प्रसार में स्त्री की पहचान में होने वाले परिवर्तन की छानबीन होनी चाहिए। चौथे, औपचारिक एवं अनौपरचारिक जनतांत्रिक प्रक्रिया में पुरूषों के वर्चस्व और नागरिक समाज में स्त्रियों की सशक्तीकरण पर इन दोनों की बढ़ती हुई आपसी दूरी जिसको परा—राष्ट्रीय संस्थाएं हवा देती हैं। इस खोजबीन के साथ, भूमंडलीय समायोजन और राज्य की भूमिका की सजगता के संदर्भ में स्त्री—पुरुष के संबंध में आने वाला बदलाव कैसे भविष्य की राजनीति को प्रभावित करेगा — इसका भी अध्ययन होना चाहिए।

यहां तीन वैचारिक समस्याएं प्रमुख हैंः पहली बात तो यह है कि उत्तर औपनिवेशिक भारत और नब्बे के दशक के बाद उदारीकरण के बाद के भारत में स्त्री की पहचान को कैसे निर्मित किया जाए? माना कि संवैधानिक स्तर पर समान अधिकार मिलने के बावजूद, राजनीतिक पहचान के एिल लिंग एक दृश्यमान संवर्ग के रूप में कभी नहीं रहा है। राज्य का दाव ाहै कि वह समानता के प्रयास को तरजीह देता है— यह गलत है। नब्बे के दशक के बाद उदारीकरण के दौर में समानता एक प्रकार से दफ्तरी नीति के रूप में ही रह गई है। लैंगिक भिन्नता और उससे जनित दमन रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा है तथा समकालीन राजनीतिक अर्थव्यवस्था का विशेष पहलू। दूसरी समस्या है स्त्री—जीवन पर पड़ रहे भूमंडलीकरण के मिले—जुले प्रभाव की। उदाहरण के लिए —लैंगिक संबंधों के नए आदर्श पश्चिम से आयात किए गए, जो भूमंडलीय बाजार के प्रसार के दौरान स्त्री—मुक्ति में सहायक तो हुए और इससे उसे पहचान भी मिली, मगर दूसरी ओर, पहचान के साथ 'मानव यौनिकता और मानव—श्रम' का वस्तुकरण ही अधिक हुआ। बहुराष्ट्रीय बाजार—व्यवस्था के कारण यौन वस्तुकरण तथा परा—राष्ट्रीय यौन बाजार में स्त्री का जींस की भांति बिकना वास्तव में भारतीय जनतंत्र में एक शोषणकारी परिणाम के रूप में उभरा है।

### 23.3.1 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : तात्विक समीक्षा

हिंदी की प्रबुद्व लेखिका प्रभा खेतान का प्रस्तुत निबंध एक विचार प्रधान विस्तृत निबंध है। इस निबंध में 'भूमंडलीयकरण', 'धार्मिक समाज' और 'पूंजीवाद समाज' जैसे तीन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है। नब्बे के दशक में भारत में प्रारंभ हुआए आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया भारत के धार्मिक समाज को किस तरह प्रभावित करती है और उसके पूँजीवादी समाज में बदलने के रास्ते में कौन—सी बाधाएँ हैं, इसे इस निबंध में स्पष्ट किया गया है। पूँजीवादी समाज का पाश्चात्य स्वरूप क्या है, इसे रेखांकित करते हुए प्रभा खेतान ने वर्तमान समय में नारी की स्थिति पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। यह निबंध अनावश्यक विस्तार लिए है, क्योंकि इसमें चार विषय एक साथ विवेचित किए गए हैं। 'भूमंडलीकरण' का आधार आर्थिक, राजनीतिक और सूचना—प्रौद्योगिकी पर आधारित तकनीक विस्तार पर आधारित है। यह विषय साहित्यिक कम और आर्थिक—राजनीतिक अधिक है, इसलिए साहित्य के विद्यार्थियों के लिए कठिन है। इसकी तात्त्विक समीक्षा इस प्रकार प्रकार से की जा सकती है—

**1. निबंध का विचार प्रधान—स्वरूप**—प्रस्तुत निबंध शुद्ध रूप से विचार प्रधान निबंध है, क्योंकि इसमें 'आर्थिक उदारीकरण' और 'सूचना प्रौद्योगिकी' आश्रित भूमंडलीकरण तथा 'भारतीय समाज' पर विचार किया गया है। ये विषय साहित्यिक कम और समाज—वैज्ञानिक तथा आर्थिक अधिक हैं। निबंध लंबा है और एक शोधपरक लेख जैसा है। विचार की एकसूत्रता रहते हुए भी इसमें बिखराव अधिक दिखाई पड़ता है, क्योंकि लेखिका शोधपत्र की तरह भूमंडलीकरण के विविध पक्षों पर वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार करती है। भूमंडलीकरण क्या है, कब प्रारंभ हुआ, उसके विविध पड़ाव कौन—कौन से रहे हैं, भूमडलीकरण का स्वरूप, पश्चिमीकरण कैसे हैं, भारतीय

अर्थव्यवस्था नेहरू युग से वर्तमान युग तक कैसे बदलती रही है, इन विषयों पर भूमंडलीकरण के संदर्भ में विचार किया गया है। वस्तुओं, सेवाओं और पूँजी का भूमंडलीकरण कैसे हुआ है, हो रहा है इसका भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। निबंध में भारतीय समाज को धार्मिक समाज कहा गया है जो परंपरानिष्ठ समाज होता है। ऐसे समाज को उपभोगवादी, पूँजीवादी समाज में बदलना एक कठिन कार्य है। प्रभा खेतान इस स्थिति का भी विश्लेषण करती है। इन तीनों स्थितियों में–भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे स्पष्ट किया गया है। पूरे निबंध की कसौटी पर खरा उतरता है।

**2. लेखकीय व्यक्तिव की छाप**– हम जानते हैं कि प्रभा खेतान, नारीवादी लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत निबंध में भी उन्होंने विभिन्न समाजों में नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है। वह भूमंडलीकरण के आर्थिक पक्ष की आलोचना इस आधार पर करती है कि यह 'नारी' और कमजोर वर्गों के हित में नहीं है। उनके अनुसार, **''राज्य ने कल्याणकारी भूमिका से हाथ खींच लिया, स्त्री और बच्चों पर होने वाले खर्चों में कटौती की। मगर स्त्री नए क्षेत्रों में कैसे राज्य की स्थापित भूमिका तथा उसकी पूँजीवादी ताकतों में निर्मित गठबंधनों को चुनौती दे रही है, इसका आकलन भी नहीं किया गया, जबकि नारीवाद भूमंडलीकृत बाजार में स्त्री के उत्पीड़न की चर्चा करता है तथा प्रायः भूमंडलीकरण के प्रतिगामी प्रभावों का ही विवरण देता है।''** प्रभा खेतान भूमंडलीकरण के स्वरूप पर टिप्पणी करती हुई कहती है कि यह वास्तव में वैश्वीकरण न होकर, पश्चिमीकरण है। पश्चिमीकरण का अर्थ है पाश्चात्य जीवन–शैली और जीवन मूल्यों को भारतीय समाज पर थोपने का प्रयास किया जा रहा है। लेखिका का भारतीय चिंतन यहाँ स्पष्ट है। पश्चिमी देश अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए, आर्थिक उदारीकरण की आड़ में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के रास्ते पर चल रहे हैं, क्योंकि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक साम्राज्यवाद सांस्कृतिक साम्राज्यवाद पर आधारित है।

**3. भाषा शिल्प**–प्रस्तुत निबंध विचार प्रधान होने के कारण, भाषा–शैली की दृष्टि से भी जटिल है। 'भूमंडलीकरण' एक पारिभाषिक शब्द है जिसे समझने के लिए अर्थशास्त्र, राजनीति और समाजशास्त्र की कुछ अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका, पश्चिमी लेखकों की पुस्तकों से अनूदित अंशों का प्रयोग कर रही है इसलिए निबंध की भाषा, मौलिक, सहज न होकर अनुवाद की ऊबड़–खाबड़, कृत्रिम भाषा प्रतीत होती है जिसे समझने के लिए अतिरिक्त प्रयास करना पड़ता है। जटिल वाक्य–विन्यास कठिनाई को बढ़ा देता है। एक उद्धरण दर्शनीय है–

'भूमंडलीकरण की एक और भी विशिष्टता है–उत्पादन व्यवस्था के ढाँचे पर परा–राष्ट्रीय नेटवर्क। कोई भी कंपनी भूगोल से सीमित नहीं है। जिन नए जटिल, व्यवस्थात्मक और भौगोलिक ढाँचों का निर्माण किया जा रहा है, उनका आपसी स्वरूप विविधता लिए हुए है। एक ओर यदि अंतर्राष्ट्रीय रणनीतिक गठजोड़ हैं तो दूसरी ओर उप–ठेके से बनाने वाले संबंध हैं। स्वतंत्र और छद्म रूप में स्वतंत्र।' इस गद्यांश में वाक्य लंबे एवं उलझे हैं। तथ्य, पारिभाषिक शब्दों से बंधे हैं, इसलिए व्याख्या की मांग करते हैं। 'उत्पादन व्यवस्था' बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में होने का अर्थ यही है कि अमेरिकी उत्पादों का उत्पादन कोरिया, ताइवान और चीन में हो सकता है क्योंकि वहां मजदूरी सस्ती है। ब्रांड अमेरिकी ही रहता है। इस गद्यांश में नेटवर्क, कंपनी जैसे अंग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

विषय को और अधिक रोचक बनाया जा सकता था, यदि भावात्मक शैली का अनुसरण किया जाता। निबंध में वस्तुनिष्ठ, शुष्क शैली को अपनाया गया है जिसके कारण अनेक स्थलों पर वाक्य दुर्बोध हो गए हैं। नारी–शोषण और दमन के संदर्भों में ही भाषा भावात्मक एवं प्रवाहपूर्ण हैं। सामान्य रूप से भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान, प्रांजल हिंदी है।

### 23.3.2 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : निबंध का सार

प्रभा खेतान ने अपने इस लेख के प्रारंभ में जिन तीन पुस्तकों का उल्लेख किया है वे ही इस निबंध के मूल विचारों की प्रेरक मानी जा सकती हैं। पहली पुस्तक फ्रांसिस फुकूयामा की 'एंड ऑफ हिस्ट्र' 'इतिहास का अंत' है। फुकुयामा एक प्रकार से ऐतिहासिक परंपराओं के अंत की बात कर रहे हैं। आज का भूमंडलीकृत समाज अपनी परंपराओं से कटकर चलता है या उन्हें बिल्कुल बदल कर ही अपना सकता है। दूसरी पुस्तक डेनियल येर्गेन और जोसेफ स्टेनीस्ला की है जिसे 'कगाडिंग हाइटस' का नाम दिया गया है। इसमें भूमंडलीकरण से राज्य व्यवस्थाओं के सामने जो चुनौतियाँ प्रस्तुत हुई हैं, उसका वर्णन है। खेतान के अनुसार तीसरी पुस्तक 'दी लेक्सस एंड द ओलिव ट्री' सबसे अच्छी है क्योंकि लेक्सस तकनीकी विकास की प्रतीक गाड़ी है, जो भूमंडलीकरण में सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीकी के प्रभाव को रेखांकित करती है और 'ओलिव ट्री' (जैतून का पेड़) परंपरा का सूचक है। परंपरागत समाज के मूल्यों को किस तरह भूमंडलीकरण ने बदला, तोड़ा और नष्ट किया है, इसकी कहानी इस पुस्तक में है। इन्हीं पुस्तकों के आधार पर प्रभा खेतान ने भूमंडलीकरण के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक स्वरूप को परखने का प्रयास किया है। अतिरिक्त वित्तीय पूंजी का प्रसार, बहुराष्ट्रीय निकायों का वर्चस्व, राजसत्ता का सिकुड़ता दायरा, अबाध–व्यापार का विकसित वैश्विक बाजार, सूचना प्रौद्योगिक आश्रित तकनीकी निर्धारणवाद से चलता आधुनिक विश्व और उस सब का नारी की स्थिति पर पड़ता प्रभाव ही निबंध का वर्ण्य विषय है।

प्रभा खेतान विरचित यह लेख वर्तमान समय में विश्व की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। वर्तमान वैश्वीकरण (भूमंडलीकण) का अर्थ क्या है स्वरूप क्या है, माध्यम क्या है, इसके लाभ और हानियाँ क्या हैं, इसके सहायक और विरोधी तत्त्व क्या हैं तथा इससे नारी की स्थिति पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा है, इन सारी समस्याओं पर इस लेख में विचार किया गया है। 21 वीं सदी में विश्व राजनीति एवं अर्थव्यवस्था में क्या परिवर्तन आए, क्यों आए इसका विवेचन भी किया गया है। लेख का सार इस प्रकार है–

**1. भूमंडलीकरण का अभिप्राय**– आज का युग भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण अथा आर्थिक उदारीकरण का युग कहलाता है। इसका सीधा–सा अभिप्राय है, संसार की प्रत्येक अर्थव्यवस्था को, सभी राष्ट्रों के बाजारों को एक–दूसरे से जोड़ दिया जाए अर्थात् वस्तु, पूंजी, श्रम और सेवाओं का अबाध प्रवाह सभी देशों में हो सके, इसके लिए विश्व के बाजार खोल दिए जाएं। इसे आर्थिक उदारीकरण का नाम दिया गया और कहा गया कि इससे सभी राष्ट्रों को विकास के समान अवसर मिलेंगे, अपनी क्षमतानुसार विकास कर सकेंगे। ऐसा करने से विश्व एक बाजार बन जाएगा और हर देश के नागरिक के पास चुनाव के असंख्य विकल्प होंगे। अभाव की अर्थव्यवस्थाएँ जिसकी पहचान कंट्रोल, राशन की लाइनों, सरकारी नियंत्रण से होती है बदलकर बहुतायत की अर्थव्यवस्था में बदल जाएगी।

**2. भूमंडलीकरण क्यों और किसके लिए इस संदर्भ में लिखा गया है–**

**(i) भूमंडलीकरण रू प्रथम दौर**–प्रभा खेतान का मानना है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया 100 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई जब अंतरराष्ट्रीयकरण बढ़ा। यह 1870 से 1914 तक का समय था, जब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं ने रेल, टेलीग्रॉफ, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था तथा उसके देशांतरण के तरीके खोजे। इसके लिए घरेलू उत्पादों का केंद्रीकरण किया जिससे उत्पादन बढ़ा, लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठा, रोजगार के अवसर बढ़े, साथ ही ट्रेड यूनियनों की भूमिका बढ़ी। सरकार को भी ये प्रभावित करने लगीं।

**(ii) भूमंडलीकरण रू दूसरा दौर**– भूमंडलीकरण की प्रक्रिया 1914 से 1945 तक रुकी रही। इस बीच दो विश्वयुद्ध लड़े गए। युद्ध में ध्वस्त राष्ट्रों ने अपने को आर्थिक तौर पर खड़ा किया। इसके लिए दूसरे दौर का भूमंडलीकरण प्रारंभ किया गया, जिसमें उन्नत राष्ट्रों ने, विकासशील और पिछड़े राष्ट्रों में अपने व्यापारिक तथा उत्पादन केंद्र प्रारंभ किए और उनका नियंत्रण अपने हाथ में रखते हुए लाभ और लोभ की नीति पर चलने लगे।

अमेरिका ने एशिया, अफ्रीका ऐसा किया। पिछड़े राष्ट्रों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोग कम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी बिना उपलब्ध थे। इसलिए वहाँ पूंजी निवेश किया, उद्योग लगाए। विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा राष्ट्रीय बैंकों के (सहयोग से यह कार्य हुआ। इसे एजेंसियों पर आधारित भूमंडलीकरण कहा जा सकता है। मुद्रा स्फीति कम रखने, कर्जा कम रखने तथा राजकोषीय संतुलन बनाए रखने में यह संस्थाएँ उपयोगी सिद्ध हुई। ऐसी बाजार व्यवस्था में खतरा यही रहता था कि यह अत्यधिक संवेदनशील और प्रतिक्रियाशील थी। छोटी सी घटना से संक्रांति संभव थी। दूसरे, किसी भी सामयिक, तात्कालिक लाभ के लिए सामाजिक और मानवीय पूंजी को धोखा देना संभव था। यह व्यवस्था स्थिर नहीं थी।

**(iii) भूमंडलीकरण का तीसरा दौर**— 1990 के पश्चात भूमंडलीकरण का तीसरा दौर प्रारंभ हुआ। अभी तक दो विश्व व्यवस्थाएँ क्रमशः पूंजीवादी और समाजवादी चल रही थीं, जिनकी धुरी क्रमशः अमेरिका और रूस थे। अमेरिकी जीवाद प्रजातंत्र और आर्थिक स्तर पर मुक्त अर्थव्यवस्था का पक्षधर था, इसलिए अमेरिकी खेमे के राष्ट्र इस व्यवस्था के अनुरूप भूमडलीकरण से चल रहे थे। रूसी अर्थ चिंतन का आधार उत्पादन और वितरण पर सरकारी नियंत्रण का था। इसलिए समाजवादी विचारधारा के अधीन नियंत्रित आर्थिक विकास की पद्धति पर चल रहे थे। भारत जैसे गुटनिरपेक्ष राष्ट्र दोनों विश्व व्यवस्थाओं में संतुलन बनाने के चक्कर में मिश्रित अर्थव्यवस्था चला रहे थे। नेहरू जी पर रूसी रव्रश्चोय, चेकोस्लावियन, मार्शल टीटो और चीनी माओ का प्रभाव गहरा था, इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से नियंत्रित अर्थव्यवस्था का समाजवादी मार्ग उन्होंने चुना। इससे भारत विश्व बाजार में पैठ न बना पाया, आर्थिक विकास धीमा रहा, निवेश योग्य पूंजी सीमित रही, इसलिए अभाव की अर्थव्यवस्था हावी रही। कोटा—परमिट राज का बोलबाला रहा। नेहरू के पश्चात् भी यही व्यवस्था चलती रही परंतु 1990 में यह अचानक टूटने लगी। नव उदारवादी आर्थिक व्यवस्था को भारत ने अपना लिया।

**3. भूमंडलीकरण कैसे ? इस संदर्भ में लिखा गया है—**

**(i) रूसी समाजवाद का पतन और एक ध्रुवीय संसार**— रूसी साम्राज्य गोर्वोचोव के समय में पोरिसत्रोयिका (खुलेपन) को अपनाने को विवश हुआ तो लोहे की दीवार टूट गई और संयुक्त सोवियत संघ का विघटन हो गया। पूर्वी और मध्य पूर्वी यूरोप के देश पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनाने को आतुर दिखाई दिए। पूरे विश्व पर पूँजीवादी पश्चिमी विचारधारा हावी हुई। सभी राष्ट्र आत्मनिर्भरता की बात छोड़ पूंजी के अधिकाधिक निवेश के लिए, पश्चिम की शर्तों पर अपने बाजार खोलने को कभी आतुर, कभी विवश दिखाई पड़े। अर्थ—सत्ता, राज्य के हाथ से निकलकर सुधारवादी बाजारी शक्तियों के हाथ में केंद्रित हो गई। यही भूमंडलीकरण के तीसरे दौर का प्रारंभ था।

**(ii) सूचना प्रौद्योगिकी का विकास एवं इंटरनेट**— वर्तमान युग 'चिप' का युग है, जिसमें संसार की सूचनाएँ समाहित रहती हैं। इंटरनेट ने विश्व बाजारों को, देशों को जोड़ा अब पूंजी प्रवाह आसान हो गया और बटन दबाते ही अरबों डॉलर एक देश से दूसरे देश में जाने लगे। राज्य सरकारों का उस पर नियंत्रण प्रायः समाप्त हो गया। बाजार की एक समानांतर सत्ता विकसित हो गई। व्यापारिक कंपनियाँ अब अंतर्राष्ट्रीय हो गईं। इससे देशी कंपनियों को प्रतियोगिता में उतरना पड़ा जिससे कुछ समाप्त हो गईं और कुछ की गुणवत्ता बढ़ी और वे विकसित हुईं। सस्ती मजदूरी और संसाधनों की तलाश में औद्योगिकीकरण निर्धन राष्ट्रों में होने लगा, चीन का उदाहरण सामने है। अमीर राष्ट्रों को निर्धन राष्ट्रों के पर्यावरण की भी अधिक चिंता नहीं थी।

तीसरे दौर में पूंजी और उद्योगों का अंतर्राष्ट्रीयकरण हुआ तो साथ ही इससे जुड़ी सेवाओं का भी विस्तार हुआ। बीमा, विज्ञापन, बैंक, होटल, गाड़ियां, मालवाहक कंपनियों का प्रबंधन आवश्यक हो गया। इन सेवाओं को चलाने के लिए प्रशिक्षित, कुशल कर्मचारी पश्चिम में अधिक उपलब्ध थे क्योंकि वहाँ शिक्षा पर व्यय अधिक है जिससे तकनीकी कुशल कारीगर अधिक तैयार होते हैं। उच्चस्तरीय सेवाओं के लिए श्रमिक भी पश्चिम से आने लगे। आर्थिक उदारीकरण में पूंजी, उत्पादन, वस्तुओं और सेवाओं का भूमंडलीकरण हुआ। भूमंडलीय संस्थाओं पर

राष्ट्र–राज्यों का नियंत्रण संभव नहीं था, इसलिए 'विश्व व्यापार संगठन' की स्थापना हुई जो अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विवादों के निपटारे के लिए बना परंतु उसकी पक्षधरता स्पष्ट रूप से पश्चिम की ओर है। वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन, राष्ट्र में उपभोग और निर्यात दोनों के लिए होने लगा।

**(iii) पूंजी निवेश की राजनीति और पूंजीवादी व्यवस्था**– जब सभी अविकसित और विकासशील राष्ट्र भी विकास का पूंजीवादी मॉडल अपनाने को विवश हो गए तो स्वाभाविक था कि अपने यहाँ अधिक पूँजी निवेश को आकर्षित करने के लिए उन शर्तों को मानते जो पश्चिमी राष्ट्र पूँजी निवेश के लिए तय करते थे। इन शर्तों में डंकल प्रस्तावों के अधीन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को स्वदेशी कंपनियों की तरह समान अधिकार देना, टट कर कम करना, अपने उद्योगों और कृषि को सब्सिडी कम करना जैसी शर्तें शामिल थीं।

**4. भूमंडलीकरण और पूँजी निवेश**–पूँजी निवेश की शर्तें मानने पर अर्थतंत्र पर राज्यों की पकड़ ढीली पड़ी, आर्थिक विकास बाजार की शक्तियों के अधीन हो गया। सरकारें जन–कल्याण के कार्यों में खर्चों में कटौती करने को विवश हुई। बच्चों और औरतों के कल्याण की योजनाएं प्रभावित हुई। देश में औद्योगीकरण हुआ, नए रोजगार आए आर्थिक स्तर ऊँचा उठा परंतु साथ ही आर्थिक विषमता भी बढ़ी। करोड़पतियों की संख्या भी बढ़ी और गरीबी से आत्महत्या करने वालों की संख्या भी बढ़ी।

**5. श्रम का भूमंडलीकरण**– यदि रूस, चीन और भारत को मिला दें तो विश्व श्रम का आधा भाग यहीं बसता है। भारत का अभिजात वर्ग, विश्व मानस से जुड़ा होने से भूमंडलीकरण का पक्ष वैचारिक आधार पर लेता था। नव–उदारवादी, आर्थिक कारणों से भूमंडलीकरण का पक्ष ले रहे थे। नियोजित अर्थव्यवस्था में भारत विश्व बाजार में पिछड़ा था, इसलिए भारत के पूँजीपति, अर्थशास्त्री 1990 के दशक में भूमंडलीकरण के पक्ष में वातावरण बनाने में सफल रहे। मुद्रा स्फीति में सुधार, उद्योगों का निजीकरण, करों में उदारीकरण जैसी नीतियाँ अपनाते हुए भारत ने अपने बाजार विश्व के लिए खोल दिए। 'सिलिकॉन वैली' सॉनफ्रांसिस्को में ही नहीं, बंगलौर में भी बनी। 1992 तक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने वैश्विक स्तर पर 80 लाख नौकरियों दीं, भारत में बहुराष्ट्रीय कपनियों में। करोड़ 20 लाख लोगों को काम मिला।

**6. आर्थिक नव उदारवादी और राजनीतिक उदारवादी**– भारत का अभिजात वर्ग पश्चिम से प्रभावित था और पूँजीवाद और प्रजातंत्र को सहजात मानकर उसका समर्थन करता रहा। आर्थिक नव–उदारवादी एक अमूर्त वैश्विक बाजार का समर्थन करते हैं जिसमें पूँजी, सेवा, श्रम, और वस्तुओं का अबाघ व्यापार समृद्धि लाता है। राजनीतिक उदारवादी मानते हैं कि उदार समाज ही सत्तावादी राजनीतिक संस्थाओं को बदल सकता है। सिविल सोसायटी मजबूत बने तथा गैर राजनीतिक संगठन (N.G.O.) जन कल्याण के कार्यों को आगे बढ़ाएँ, यही इस व्यवस्था की परिकल्पना है।

**7. पूंजी का फैलाव और दो तरह का मार्क्सवाद**–जब पूरे विश्व ने पूँजी की सत्ता को स्वीकार कर लिया है तो पूँजी के फैलाव की प्रकृति को समझना आवश्यक है। पूँजी का स्वभाव है विस्तार करना, जिसके लिए वह नए 'स्पेस' (क्षेत्र) खोजती है। उत्पादन के लिए पूँजी चाहिए, उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए बाजार चाहिए। सीमित बाजार में उत्पादन लागत, पूँजी लागत अधिक होगी, इसलिए बड़े–से–बड़े क्षेत्र में पूँजी का प्रवाह हो, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन हो तो अधिकाधिक लाभ मिलेगा। पूँजी सदा लाभ का पीछा करती है और लाभ अधिक पिछड़े राष्ट्रों के संसाधनों के दोहन और बाजारों के शोषण पर निर्भर करता है।

**8. रूसी साम्राज्य का पतन क्यों?**– रूसी समाजवाद का पतन पूर्वी यूरोप में कैसे हुआ इसे समझाने के लिए नव उदारवादी कहते हैं कि पूर्वी यूरोप की समाजवादी कठोर राज्य व्यवस्थाएं पूँजीवादी लचीली व्यवस्था के विरोध में थीं। पूँजी पाने के लिए इन्हें इन पूँजीवादी–प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं की जरूरत थी, इसलिए इन देशों में जन समर्थन सरकारों से उठ गया और तख्ता पलट हुआ। ये देश कठोर समाजवादी अर्थव्यवस्था से बाहर आ गए। नव मार्क्सवादी, ग्राम्शी, रूसी साम्राज्य के पतन का कारण, पूँजीवादी विचार और संस्कृति को इसका कारण

मानता है। पूँजीवादी अपनी पूंजी के प्रसार के लिए पिछड़े राष्ट्रों के अप्रयुक्त संसाधनों पर गिद्ध दृष्टि लगाए रहते हैं। वे इन देशों के समाज में स्थापित राजनीतिक विभेदों जो लिंग, जाति, धर्म, नस्ल तथा वर्गभेद के रूप में सामने लाते हैं, उनका प्रयोग करते हैं और पूँजीवादी व्यवस्था के पक्ष में जनमत तैयार कर लेते हैं। पूर्वी यूरोप के देशों में मार्क्सवाद के विघटन का करण ग्राम्शी इस पूँजीवादी विचारधारा और कार्य प्रणाली को मानते हैं। पूँजी की कमी और जनमत का अभाव इन सरकारों के पतन का कारण बना।

**9. आर्थिक भूमडलीकरण की असफलता–** आर्थिक भूमंडलीकरण ने जो वायदे किए थे वे पूरे नहीं हुए। उरूगुए बातचीत के दौर में यह तर्क दिया गया था कि इससे हर साल दुनिया को 213 अरब डॉलर में 510 अरब डॉलर तक की आमदनी होगी, जिससे हर देश संपन्न होगा। विकासशील देशों को भी 86 से 122 अरब डॉलर तक मिलेगा। इसके विपणीत, अमीर देशों का व्यापार बढ़ा और अविकसित तथा विकासशील देशों के बाजारों पर भी उनका शिकंजा कसा दया। यह भी कहा गया था कि अविकसित देशों के किसानों को उपज विक्रय के लिए विकसित देशों के बाजार मिलेंगे बातु किसानों की लूट भी अमीर राष्ट्रों ने बढ़ा दी।

**10. संस्कृति का पश्चिमीकरण या सांस्कृतिक साम्राज्यवाद–** भूमंडलीकरण केवल आर्थिक और तकनीकी ही नहीं है एका सांस्कृतिक पहलू भी है। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति अपने मूल्यों को थोप कर अन्य संस्कृतियों को अपने में सोखने या फिर उसे सुखाने का काम करती है। पश्चिमी संस्कृति से आदान–प्रदान संभव नहीं, क्योंकि वह बर्चस्ववादी, श्रेष्ठता ग्रंथी की शिकार और पश्चिमी हितों की पोषक है। पश्चिम अपनी मैडोना, माइकल जैक्सन, जूलिया राबर्टस, न्यू किड्स, बार्बी शेक्सपीयर को हम पर थोप कर वैयक्तिक नियंत्रण का प्रमाण दे रहे है। पश्चिम अन्य देशों की उन्हीं प्रतिभाओं को महत्त्व देता है तो पश्चिम की अनुचर है। नाच गान, कविता नाटक सभी में वे अपना वर्चस्व थोप रहे है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के नाम पर केवल पश्चिमीकरण किया जा रहा है। अन्य संस्कृतियों को सोखा और सुखाया जा रहा है। पश्चिमी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद उनके आर्थिक साम्राज्यवाद का अग्रिम दस्ता है। विश्व की संस्कृति उनके अनुरूप बदलेगी तो उनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का थोक व्यापार चमकेगा। केक–पेस्ट्री, पीजा–बर्गर खाने की आदत पड़ेगी तो हलवा–पूरी, आलू छोले. खाना भारतीय भूल जाएंगे। सास्कृतिक आदतों को बदला जा रहा है।

**11 भूमंडलीकरण के दौर में सामाजिक संस्थाएँ और नारी–** भूमंडलीकरण के दौर में नारी की स्थिति को सामाजिक और नागरिक समाज कैसे सुरक्षित रख पा रहा है ? धार्मिक समाजों में नारी की भूमिका पुरुष के अधीन रहने की रही है। भले ही उसे देवी का पर दिया गया। उस कार्यक्षेत्र घर तय किया गया और संतान उत्पन्न कर उसका पालन–पोषण और पति तथा परिवार की लेश उसके पतिव्रत्य धर्म का अंग रहा। स्त्री की स्थिति पुरुष प्रधान समाज में दोयम दर्जे की रही, वह वंचित और शोषित रही। पूँजी और जमीन में उसे हिस्सा नहीं मिला।

भूमंडलीकरण का आधार ज्ञान आधारित समाज है। ज्ञान के बंटवारे में स्त्री की उपेक्षा संभव नहीं रही। शिक्षित नहीं पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देकर उन क्षेत्रों में पहुंची जहाँ केवल पुरुष का ही प्रवेश अपेक्षित था। इस अर्थ में भूमंडलीकरण ने नारी को आर्थिक स्वावलंबन, स्वाभिमान से जीने का अधिकार दिया।

पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से नारी शारीरिक मुक्ति के प्रयास में विकृत पश्चिमी भौतिक चिंतन का शिकार हुई और विवाह, परिवार जैसी संस्थाओं के विरोध में मुक्त यौन संबंधों और नशों की ओर गई। धार्मिक समाज में इसका विरोध दक्षिणपंथी रूढ़िवादियों और वामपंथी सुधारवादियों ने एक साथ किया। पूँजीवादी, अभिजात्यवादी विचारों ने नारी पर अंकुश लगाएँ। शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् भोगवादी संस्कृति और सरकारी अहस्तक्षेप (लेजेफेयर) की नीति के चलते नारी की स्थिति और भी दयनीय हो गई। बाजारवाद ने नारी को बराबरी का सपना दिखाया और उससे सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा के परंपरागत आधार छीन लिए। परिवार टूटने लगे।

**12. भूमंडलीकृत नारी की दशा**– भूमंडलीकरण के कारण बाजार में स्त्री का उत्पीड़न बढ़ा है। स्त्री के सार्वजनिक स्पेस का संकुचन हुआ है। चंद्रा मोहंती ने 'तीसरी दुनिया की स्त्री' में स्पष्ट किया है कि इस दौर में मार्क्सवादियों और पश्चिमी नारीवादियों ने नारी की उपेक्षा की है। यह मान लिया गया कि बाजार की ताकतें, पितृ सत्तात्मक समाज ही नारी संबंधों के नियामक है। सच तो यह है कि स्थानीय संस्थाएँ और उनकी प्रतिक्रियाओं पर यह संबंध आश्रित हैं।

संविधान में नारी को पुरुष के समान अधिकार देकर राष्ट्र ने अपने कर्तव्य की पूर्ति मान ली। लैगिंग आधार पर नारी का शोषण और दमन जारी रहा। स्त्री पर हो रहे भूमंडलीकरण के प्रभाव कुछ सीमा तक लाभकारी थे, परंतु नगर पूँजीवादी घृष्टता से भारी यौनिकता की वस्तु बन गई। उसे विज्ञापनों से लेकर यौन बाजार में वस्तु की तरह परोसा जाने लगा। असमान सामाजिक संबंध सहज मान लिए गए। नारी हिंसा बढ़ी।

**13. लैंगिक भिन्नता के स्तर**–प्रभा खेतान अपने निबंध के अंत में लैंगिक भिन्नता को तीन स्तर पर देखती हैं। एक तो विचारधारा और सांस्कृतिक व्यवहार के रूप में जबकि पूँजीवादी और मार्क्सवादी समान रूप से नारी को पितृसत्तात्मक समाज में रहने के लिए कहते हैं। पश्चिमी नारी मुवित आंदोलनों का विरोध विचारधारा के स्तर पर हुआ। दूसरे, असमान सामाजिक संबंध जो विभिन्न समाजों की संस्थाओं ने स्वीकृत करवाए। भारत में पातिव्रत्य धर्म और सीता–सावित्री के आदर्श ऐसे ही हैं। नारी की श्रेष्ठता इस असमानता को महत्त्व देने में ही है। तीसरे, सार्वजनिक और निजी का अलगाव। निजी जीवन में नारी की स्थिति, सार्वजनिक क्षेत्र से भिन्न मानी गई। स्वयंसेवी संस्थाएँ, मानव अधिकारों पर नारी की मुक्ति और समानता के लिए संघर्ष कर रही हैं, परंतु भूमंडलीकरण ने सांस्कृतिक और विचारधारापरक आधार प्रायः मिटा दिया है।

**14. पुरुष वर्चस्व से संघर्ष**–राजनीति, औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक, नारी और पुरुष में संघर्ष बढ़ा है। श्रम का भूमंडलीकरण होने से नारी को श्रमिक रूप में अधिक हानि हुई है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली नारी तो उपेक्षित है ही, संभ्रांत नारी की भी श्रमिक के रूप में गतिशीलता सीमित है। परिवार और संतान उसे गतिशील होने से रोकते हैं। पुरुष वर्चस्व की राजनीति में नारी अपना स्थान बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। श्रम के भूमंडलीय समायोजन और राज्य की भूमिका की सजगता से स्त्री–पुरुष संबंधों में बदलाव आएगा।

उपभोक्ता समाज में नारी विकाऊ वस्तु बनकर न रह जाए, मानवी बने इसके लिए संस्थागत सजगता और राजनीतिक प्रश्रय आवश्यक है।

### 23.3.3 भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : निबंध का उद्देश्य

उत्तर– 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवादी समाज' लेख तीन मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालता है। भूमंडलीकरण क्या है, कैसे विकसित हुआ, किन सोपानों से गुजरा, इसका आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीति स्वरूप क्या है, इन बातों पर प्रकाश डाला गया है। भूमंडलीकरण में पूँजी का संचरण, श्रम, वस्तुओं और सेवाओं का अबाध व्यापार कैसे होना है यहाँ स्पष्ट किया गया है। भूमंडलीकरण एक ओर आर्थिक साम्राज्यवाद तथा दूसरी ओर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को बढ़ावा देता है। उपभोगवाद को बढ़ावा देने वाला भूमंडलीकरण, भौतिकवादी चिंतन को मजबूत करता 'और समाज की परंपराओं और संस्थाओं को नष्ट करता है। भूमंडलीकरण का नारी को वस्तु की तरह बाजार में यौनाकर्षण की वस्तु बना देता है। नारी, मनुष्य से वस्तु बन जाती है। ज्ञानाधारित समाज भी भूमंडलीकरण की पहचान है, जिसे भूमंडलीकरण बढ़ावा देता है। नारी, ज्ञान प्राप्त कर सशक्त हुई है।

दूसरा बिंदु धार्मिक अर्थात परंपरागत समाजों में नारी की स्थिति के विवेचन का है। नारी घर की चारदिवारी में बंद, पूंजी और भूमि अधिकारों से वंचित, पुरुष से निचले स्तर पर रहती है। वैचारिक रूप से उसे देवी का स्थान देकर भी घर में उसकी स्थिति दासी की रहती है। परंपराएँ उसे पंगु बनाती हैं। भूमंडलीकरण ने परंपरागत समाजों को तोड़ा है। पूँजीवादी समाज मूलतः भोगवादी संस्कृति को प्राश्रय देता है, जिसके लिए प्रजातंत्र को आवश्यक मानता है। सरकार अहस्तक्षेप को उचित मानती है। प्रभा खेतान पूँजीवाद समाज में नारी के वस्तुकरण पर दुःख प्रकट करती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं और नागरिक समाज पर नारी संरक्षण का दायित्व आ पड़ा है।

भूमंडलीकरण से राष्ट्रीय पहचान कमजोर हुई है और उसके सम्मुख खतरा पैदा हुआ है। यही कारण है कि गरिकृतिया राष्ट्रवाद का उदय हुआ है। हर राष्ट्र अपनी पहचान अपने सांस्कृतिक प्रतीकों और मूल्यों में खोजने लगा है। दक्षिणपंथी बुनियादी संस्थाओं का प्रभाव बढ़ रहा है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद' की लेखिका कौन हैं ?
2. समकालीन इतिहास की धारा का उद्गम स्रोत क्या है ?
3. स्वतंत्रताकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था पर किसके समाजवाद का असर पड़ा था ?
4. स्वतंत्रता के कितने दशक बाद नेहरू की समाजवादी संरचना में दरार पड़ती है ?
5. भूमण्डलीकरण बाजार में स्त्री उत्पीड़न की चर्चा कौन करता है ?
6. हिन्दी–चीनी भाई–भाई का नारा किसने दिया था ?

## 23.4 सारांश

प्रभा खेतान ने भूमण्डलीकरण के लिए तीन दौर माने है। इसमें 1870 से 1914 तक का समय लिया जाता है। दूसरा दौर 1914 से 1945 और तीसरा दौर 1990 के पश्चात भूमंडलीकरण का आरंभ माना है। इन लेख में तीन मुख्य बिन्दु, भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज भौर पूंजीवादी समाज पर प्रकाश डाला है। भूमंडलीकरण क्या है, कैसे विकसित हुई आदि बातों को प्रभाव में लाया है।

## 23.5 कठिन शब्दावली

**ईंधन** – साधन

**उद्भव** – उत्पत्ति

**अवयव** – अंग

**चरायंध** – दुर्गंध

**क्षीणबंधु** – कमजोर

## 23.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उतर

1. प्रभा खेतान।
2. माइक्रोचिप।
3. पण्डित जवाहरलाल नेहरू के।
4. पांच
5. नारीवाद।
6. पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने।

## 23.7 संदर्भित पुस्तकें


1. डॉ. कृष्णा जाखड, प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श, राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर।
2. डॉ. नवल किशोर, प्रभा खेतान के साहित्य में युगबोध एवं मूल्य संक्रमण, वन्य पब्लिकेशन, कानपुर।


## 23.8 सात्रिक प्रश्न

1. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद' की तात्विक समीक्षा कीजिए।
2. भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद निबंध का सार लिखिए।
3. भूमण्डलीकरण धार्मिक समाज और पूंजीवाद निबंध का उद्देश्य बताइए।

*****

# इकाई–24
# लोभ और प्रीति, कुटज, संस्कृति और शिक्षा, भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज एवं पूँजीवादी समाज व्याख्या भाग

**संरचना**


24.1 भूमिका

24.2 उद्देश्य

24.3 भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज एवं पूँजीवादी समाज व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

24.4 सारांश

24.5 कठिन शब्दावली

24.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

24.7 संदर्भित पुस्तकें

24.8 सात्रिक प्रश्न


## 24.1 भूमिका

इकाई तेईस में हमने प्रभा खेतान के निबंध 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद की तात्विक समीक्षा, सार और उद्देश्य का गहनता के साथ अध्ययन किया। आगामी इकाई चौबीस में हम सभी निबंधों लोभ और प्रीति, 'कुटज', 'संस्कृति और शिक्षा' और 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद' आदि की व्याख्या विस्तारपूर्वक करेंगे।

## 24.2 उद्देश्य

इकाई चौबीस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने सक्षम होंगे कि –

1. 'भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज एवं पूँजीवाद' निबंध की व्याख्या– क्या है ?
2. 'लोभ और प्रीति' निबंध की व्याख्या क्या है ?
3. 'कुटज' निबंध की सप्रसंग व्याख्या क्या है ?
4. 'संस्कृति और शिक्षा' की व्याख्या क्या है ?

## 24.3 लोभ और प्रीति : व्याख्या भाग

**1. ''विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है, जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं। जहाँ लोभ सामान्य या जाति के प्रति होता है वहाँ यह लोभ ही रहता है। जहाँ पर किसी जाति के एक ही विशेष व्यक्ति के प्रति होता है, वहाँ वह 'रुचि' या 'प्रीति' का पद प्राप्त करता है। लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख। कहीं कोई अच्छी चीज सुनकर दौड़ पड़ना लोभ है। किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी ही अच्छी–अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे, रुचि या प्रेम है। किसी स्त्री या पुरुष के रूप की प्रशंसा सुनते ही पहला भाव लोभ का होगा। किसी को हमने बहुत सुंदर देखा और लुभा गए, उसके पीछे दूसरे को उससे भी सुंदर देखा तो उस पर लुभा गए। जब तक प्रवृत्ति का यह व्यभिचार रहेगा, तब तक हम रूप–लोभी ही माने जाएँगे। जब हमारा लोभ किसी एक ही व्यक्ति पर स्थिर हो जाएगा हमारी**

**वृत्ति एकनिष्ठ हो जाएगी, तब हम प्रेमी कहे जाने के अधिकारी होंगे, पर साधारणतः मन की ललक यदि वस्तु के प्रति होती है, तो लोभ और किसी प्राणी या मनुष्य के प्रति होती है तो प्रीति कहलाती है।''**

**शब्दार्थ–सात्विक** = सत् गुण। **प्रीति** = प्रेम। **सामान्योन्मुख** = सामान्य की ओर उन्मुख होने वाला। **विशेषोन्मुख** = विशेष की ओर उन्मुख होने वाला। **मुग्ध** = आकर्षित। **ललक** = इच्छा।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा विरचित **'चिन्तामणि'** नामक निबंध संग्रह के **'लोभ और प्रीति'** विषयक निबंध से लिया गया है। प्रस्तुत गद्यांश में निबंधकार ने लोभ और प्रीति का अंतर स्पष्ट किया है।

**व्याख्या**–लोभ और प्रीति के मध्य विभाजक रेखा खींचते हुए निबंधकार शुक्ल जी कहते हैं कि लोभ का सात्विक रूप प्रेम के आदरणीय स्थान का अधिकारी होता है। लोभ और प्रीति में मूल अंतर यही है कि लोभ किसी भी सामान्य या जाति की वस्तु के प्रति हो सकता है। किंतु जब लोभ जाति के किसी व्यक्ति विशेष के प्रति हो जाता है तो उसे प्रीति कहा जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लोभ सामान्य के प्रति होता है, जबकि प्रीति अथवा रुचि विशिष्ट के प्रति होती है। मान लीजिए आपने कहीं कोई सुंदर फूल देखा, आप उसे देखकर लुभा गए तो आपका यह 'लोभ' केवल लोभ के स्तर तक ही रहेगा। प्रीति की स्थिति तक पहुँचने की पहली शर्त ही विशिष्टता है। प्रत्येक माँ को अपना शिशु सुंदर लगता है, यहाँ तक कि उस माँ को भी जिसका बालक देखने में अत्यधिक कुरूप, मरियल और गंदा हो। माँ के इस भाव को वात्सल्यपूर्ण प्रेम कहा 'लोभ' केवल लोभ के स्तर तक ही रहेगा। प्रीति की स्थिति तक पहुँचने की पहली शर्त ही विशिष्टता है। प्रत्येक माँ की अपना शिशु सुंदर लगता है, यहाँ तक कि उस माँ को भी जिसका बालक देखने में अत्यधिक कुरूप, मरियल और गंदा हो। माँ के इस भाव को वात्सल्यपूर्ण प्रेम कहा जाएगा, क्योंकि उसकी दृष्टि में और कोई भी बालक उतना सुंदर नहीं दिख सकता जितना कि उसका अपना बालक है। प्रीति की पहचान ही यह है कि जिस व्यक्ति विशेष पर प्रीति टिक जाती है, वहाँ से वह फिर हटती नहीं है। प्रेमी अपने प्रिय को अपनी ही दृष्टि से देखता है, संसार की दृष्टि से नहीं।

रूप का लोभी केवल रूप ही देख पाता है और रूप अपने आप से सापेक्ष होता है। किसी एक युवती के रूप को निहारकर यह नहीं कहा जा सकता कि उससे बढ़कर सुंदर कोई और युवती नहीं हो सकती। रूप के लोभी को आज कुमारी 'क' सुंदर लगती है। तो कल उसकी दृष्टि कुमारी 'ख' पर भी टिक सकती है। तथापि प्रेमी की स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। प्रेमी की दृष्टि जिस रूप का अपने अंतर्मन में एक बार बिठा लेती है, फिर वह कहीं और नहीं भटकती। उसके बाद उसके समक्ष आप यदि विश्वसुंदरी भी लाकर प्रस्तुत कर दें तो वह निश्चय ही दृष्टि फेर लेगा। प्रेम में एकनिष्ठता होती है और यही एकनिष्ठता लोभ और प्रेम के मध्य की विभाजक रेखा होती है।

लोभ और प्रीति का एक अन्य अंतर विषय को लेकर भी किया जा सकता है। लोभ का विषय प्रायः वस्तुएँ होती हैं, जबकि प्रेम का विषय कोई प्राणी अथवा व्यक्ति होता है।

**विशेष**– 1. प्रस्तुत गद्यांश में निबंधकार ने लोभ और प्रीति के मध्य एक सूक्ष्म किंतु सुस्पष्ट विभाजक रेखा खींच दी है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तद्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

**2. इनमें से प्रथम प्रतिषेधात्मक होने के कारण प्रायः विरोधग्रस्त होती है, इससे उस पर समाज का ध्यान अधिक रहता है। कोई वस्तु हमें बहुत अच्छी लगती है, लगा करे, दूसरों को इससे क्या ? पर जब हम उस वस्तु की ओर हाथ बढ़ाएंगे या औरों को उसकी ओर हाथ बढ़ाने न देंगे तब बहुत से लोगों का ध्यान हमारे इस कृत्य पर जाएगा, जिनमें से कुछ हाथ थामने वाले और मुँह लटकाने वाले भी निकल सकते हैं। हमारे लोभ की शिकायत ऐसे ही लोग अधिक करते पाए जाएंगे, दूसरों के लोभ की निंदा जैसी अच्छे लोभी कर सकते हैं वैसे और लोग नहीं। माँगने पर पाने वाले और न देने वाले दोनों, इसमें प्रवृत्त होते हैं। एक कहता है ''वह बड़ा लोभी है, देता नहीं'' दूसरा कहता है कि ''वह बड़ा लोभी है, बराबर माँगा करता है।'' रहीम दोनों को लोभी, दोनों को बुरा कहते हैं—**

**रहिमन वे नर मरि चुके जे कहुँ माँगन जाहिं।**

**नर्ते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं।।**

**शब्दार्थ—प्रतिषेपात्मक** = निषेधात्मक। **विरोधग्रस्त** = विरोध से पूर्ण। **लोभ** = आलोचना। **प्रवृत्त** = संलिप्त **निसकत** = निकलता है।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध संग्रह **'चिन्तामणि'** के **'लोभ और प्रीति'** विषयक निबंध से लिया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में निबंधकार ने यह समझाने का प्रयास किया है कि लोभ का कौन—सा रूप समाज की आँखों में खटकता है।

**व्याख्या**—लोभ की एक अनिवार्य शर्त सानिध्य अथवा प्राप्ति की इच्छा होती है। हमें कोई कलाई घड़ी बहुत सुंदर लगी किंतु बात यहीं तो समाप्त नहीं हो गई। सुंदर लगने के बाद हमारे मन में स्वभावतः वैसी ही घड़ी प्राप्त करने की उत्कट इच्छा जन्म ले लेती है, हम उसकी प्राप्ति के लिए साधन जुटाते हैं और हमारा मन तभी तुष्ट होता है, जब हम अंततः उसे प्राप्त कर लेते हैं। निबंधकार ने सानिध्य की इस इच्छा को पुनः दो भेदों में बाँटा है। ऐसे सानिध्य की इच्छा जितना किसी का भी न हो अथवा ऐसे संपर्क की इच्छा जितना अनेक लोगों का हो सकता है अथवा होता है।

पहले प्रकार के संपर्क अथवा सानिध्य की इच्छा निश्चय ही समाज की आँखों में खटकेगी। किसी वस्तु या व्यक्ति पर जब हम एकाधिकार की बात सोचते हैं, तो समाज का प्रश्न स्वतः उपस्थित हो जाता है। मान लीजिए किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में कोई दुर्लभ ग्रंथ विद्यमान है, विषय से संबंधित विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग आवश्यकतानुसार उस ग्रंथ का प्रयोग करते हैं और लाभ उठाते हैं। इस व्यवस्था में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं होगी, किंतु यदि कोई महाशय उस ग्रंथ को अपने नाम चढ़वाकर अपने घर ले जाकर रख देते हैं और लौटाने का नाम ही नहीं लेते, तो निश्चय ही उनका यह व्यवहार घोर आपत्तिपूर्ण माना जाएगा। वह दुर्लभ ग्रंथ यदि आपको अथवा किसी और को बहुत अच्छा उपयोगी लगता है तो यहाँ तक कोई बुराई नहीं है। किसी भी व्यक्ति का ध्यान आपकी इस रुचि की ओर नहीं जाएगा। बुराई तो वहाँ से आरंभ होती है जहाँ हम उस दुर्लभ ग्रंथ पर एकाधिकार रखने की बात सोचते हैं।

हमारे ऐसे लोभ को कोई भी मौन रहकर सहन नहीं करेगा। लोग हमारे ऐसे लोभ की निन्दा करेंगे और वे लोग तो संभवतः गालीगुफ्तारन तक भी उतर आए जो प्रकृति से हमारी ही तरह के लोभ हैं। लोभी के स्वभाव को लोभी ही अच्छी तरह समझ सकता है। भीख माँगने वाले व्यक्ति के लोभ को वही लोभी अच्छी तरह समझता है, जो संपन्न होते हुए भी उसकी सहायता करने से इंकार कर देता है। रहीम ने ऐसे लोभियों की बहुत निंदा की है। उनके अनुसार जो होते हुए देने से इंकार करता है—दोनों ही लोभी हैं और निन्दा के योग्य हैं।

**विशेष**—1. प्रस्तुत गद्यांश में निबंधकार ने मनुष्य की सानिध्य अथवा संपर्क रखने की इच्छा का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन किया है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तद्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

**3. ''यदि मनुष्य समाज में सब के लोभ के लक्ष्य भिन्न–भिन्न होते तो लोभ को बुरा कहने वाले कहीं नहीं मिलते। यदि एक साथ रहने वाले दस आदमियों में से कोई गाय बहुत चाहता, कोई घोड़ा, कोई कपड़ा, कोई इंट, कोई पत्थर, कोई सोना, कोई चाँदी, कोई तांबा और इन वस्तुओं में से किसी को शेष सब वस्तुओं को प्राप्त करने की कृत्रिम शक्ति न दी जाती, तो एक के लोभ से दूसरे को कोई कष्ट नहीं पहुँचता और दूसरी बात यह होती कि लोभ का एक बुरा लक्षण जो असंतोष है, उसकी भी एक सीमा हो जाती। कोई कितनी गाय रखता, कितने घोड़े बांधता, कहाँ तक सोना–चाँदी इकट्ठी करता। पर बिनिमय की कठिनता दूर करने के लिए मनुष्यों ने कुछ पातुओं में सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कराने को कृत्रिम गुण आरोपित किया जिससे मनुष्य मात्र की सांसारिक इच्छा और प्रयत्न का लक्ष्य एक हो गया, सब की टकटकी टके की ओर लग गई।**

**शब्दार्थ**–लक्ष्य = उद्देश्य। **कृत्रिम** = अप्राकृतिक। **शक्ति** = ताकत **इकट्ठी** = एकत्र। **विनिमय** = आदान–प्रदान।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'चितांमणि' नामक निबंध संग्रह के 'लोभ और प्रीति' विषयक लेख से लिया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में निबंधकार ने यह समझाने का प्रयास किया है कि यदि लोभ के लक्ष्य भिन्न–भिन्न होते तो किसी एक का लोभ किसी दूसरे के लिए कष्ट का कारण सिद्ध नहीं होता।

**व्याख्या**–लोभ के लक्ष्यों की भिन्नता लोभ के दोष पक्ष का शमन करती है। यदि हर व्यक्ति का लोभ अलग वस्तु के प्रति होता तो कोई झंझट ही नहीं था। मान लीजिए किसी व्यक्ति का लोभ केवल घोड़ों के प्रति होता तो यदि वह संसारभर के घोड़े बाँधे रहता तो किसी दूसरे को क्या कठिनाई हो सकती थी। कठिनाई तो दो स्थितियों में ही हो सकती है–पहली तो तब जबकि घोड़ों के प्रति लोभ किसी और का भी होता, दूसरी तब जबकि वह किसी प्रकार घोड़े प्राप्त करने के साधन जुटा पाता। यदि ये दोनों स्थितियाँ नहीं हैं तो किसी का लोभ किसी को नहीं खटकने वाला।

कठिनाई यह हुई कि विनिमय के लिए मानव समाज ने मुद्रा का आविष्कार कर लिया और मुद्रा अपने–आप में एक ऐसा साधन बन गई, जिससे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यही आपसी टकराव का कारण सिद्ध हुआ और परस्पर असंतोष का भाव भी इसी कारण उत्पन्न हुआ। यदि किसी घोड़े के लोभी को यह पता चल जाए कि वह किसी भी साधन से घोड़े प्राप्त नहीं कर सकता, तो निश्चय ही उसके भीतर असंतोष का भाव उत्पन्न नहीं होगा। अप्राप्य के संबंध में मनुष्य अपने–आपको यह कहकर समझा लेता है कि वह तो प्राप्त ही नहीं होने वाला, उसके लिए क्या रोना। तथापि मुद्रा के आविष्कार ने मानव समाज को प्रत्यक्षतः दो रूपों में क्षति पहुँचाई है–एक तो इसके कारण सभी के लोभ का लक्ष्य एक ही अर्थात् रुपया–पैसा हो गया, दूसरे सभी के भीतर असंतोष का भाव उत्पन्न हो गया। यही मानव समाज के दुख का मूल कारण बन गया है।

**विशेष–1.** प्रस्तुत पंक्तियों में शुक्ल जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मुद्रा ही समस्त लोभ का विषय बन गई और मानव मात्र की अशांति का कारण यही बन गई है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तद्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

4. वे यदि दस बने–ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश–प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि, 'भाइयों!' बिना परिचय का यह प्रेम कैसा ? जिनके सुख–दुःख के तुम कभी साथी न हुए उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह समझते नहीं बनता। उनसे कोसों दूर बैठे–बैठे, पड़े–पड़े या खड़े–खड़े तुम विलायती बोली में अर्थशास्त्र की दुहाई दिया करो, पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो। प्रेम हिसाब–किताब की बात नहीं है। हिसाब–किताब करने वाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं प्रेम करने वाले नहीं। हिसाब–किताब से देश की दशा का ज्ञान मात्र हो सकता है। हित–चिंतन और हित–साधन की प्रवृत्ति इस ज्ञान से भिन्न है। वह मन के वेग पर निर्भर है, उसका संबंध लोभ या प्रेम से है, जिसके बिना आवश्यक त्याग का उत्साह हो ही नहीं सकता।

**शब्दार्थ– परता** = हिसाब। **दावा करना** = अधिकार जताना।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्याश हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल विरचित निबंध 'लोभ और प्रीति' से लिया गया है। प्रस्तुत लेख में आचार्य देश–प्रेम को भी लोभ या प्रेम का ही एक रूप स्वीकार करते हैं और देश के विषय में अपने ज्ञान का ढिंढोरा पीटने वालों का मजाक उड़ाते हुए कहते हैं कि–

**व्याख्या**–जो बुद्धिजीवी अपने बंद कमरों में बैठकर भारत के आम आदमी की आमदनी का हिसाब लगाकर उन्हें सुखी–दुःखी सिद्ध करते हुए अपने को देश प्रेमी मानते हैं, उनके लिए शुक्ल जी का कथन है कि उन्हें देश प्रेमी होने का दिखावा नहीं करना चाहिए। जिन लोगों के दुःख–सुख में वे भागीदार नहीं हुए, जिनसे कभी हिले–मिले नहीं, उनसे मीलों दूर बैठकर विदेशी अर्थशास्त्र के सहारे उनके सुख–दुःख का ढिंढोरा पीटते रहे, ऐसे लोगों के विषय में शुक्ल जी का कहना है कि वे अपने हिसाब–किताब को कम–से–कम देश प्रेम का नाम न दें। शुक्ल जी व्यंग्यपूर्वक कहते हैं कि हिसाब–किताब करने वाले तो किराए पर भी मिल जाते हैं, परंतु देशभक्त तो किराए पर नहीं मिल सकते। हिसाब–किताब से देश की दशा का ज्ञान तो हो सकता है, परंतु उसका हित साधन और हित–चिंतन संभव नहीं होता। देश प्रेम तो मन का भाव है जो लोभ या प्रेम से जुड़ा है। जब इसके लिए प्रेम न हो तो त्याग और उत्साह का भाव नहीं रह सकता।

**विशेष**–1. प्रस्तुत गद्यांश में देश का ज्ञान तथा देश प्रेम का भेद स्पष्ट किया गया है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तद्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

"धन का जो लोभ मानसिक व्याधि या व्यसन के रूप में होता है, उसका प्रभाव अंतःकारण की शेष वृत्तियों पर यह होता है कि वे अनभ्यास से कुंठित हो जाती हैं। लोभ मान–अपमान के भाव को, करुणा और दया के भाव को, न्याय–अन्याय के भाव को, यहाँ तक कि अपने कष्ट–निवारण या सुख–भोग की इच्छा तक को दबा दे, वह मनुष्य कहाँ तक रहने देगा ? जो अनाथ विधवा का सर्वस्वहरण करने के लिए कुर्क अमीन लेकर चढ़ाई करते हैं, जो अभिमानी धनिकों की दुत्कार सुनकर त्यौरी पर बल नहीं आने देते, जो मिट्टी में रुपया गाड़कर न आप खाते हैं, न दूसरे को खाने देते हैं, जो अपने परिजनों का कष्ट–क्रन्दन सुनकर भी रुपए गिनने में लगे रहते हैं, वे अधमरे होकर जीते हैं। उनका आधार अंतःकरण मारा गया समझिए। जो किसी के लिए नहीं जीते, उनका जीना बराबर है।"

**शब्दार्थ**–**व्याधि** = बीमारी। **व्यसन** = लत। **अतःकरण** = हृदय। **शेष** = बाकी। **कुंठित** = संकुचित। **कष्ट** = दुख। **अभिमानी** = घमंड।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध–संग्रह **'चिन्तामणि'** के **'लोभ और प्रीति'** विषयक निबंध से उद्धत किया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में निबंधकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि धन का लोभ किस प्रकार मानव मन की सद्‌वृत्तियों का नाश कर देता है।

**व्याख्या**–निबंधकार के अनुसार धन का लोभ जब अति को पहुँच जाता है, तो वह मनुष्य के भीतर के दया, करुणा, सहानुभूति जैसे कोमल भावों के लिए घातक सिद्ध होता है। यह स्थिति एक प्रकार की व्याधि की–सी स्थिति होती है। जब मनुष्य ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, तो उसे धन के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसकी  दृष्टि, उसकी समूची वृत्तियाँ एकमात्र धन की ओर केन्द्रित रहती हैं। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य धन प्राप्ति के साधन हो जाते हैं। शनैः–शनैः यह व्याधि उस चरम सीमा तक भी पहुँच जाती है, जहाँ मनुष्य दूसरों की बात छोड़िए स्वयं अपने दुख का निवारण भी नहीं कर सकता। इस प्रकार यह बहुत स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जो व्यक्ति स्वयं अपने सुख–लाभ के लिए अपना रुपया नहीं खर्च कर सकता, वह किसी और के दुख की कथा सुनने का अवकाश कैसे निकाल सकता है। उसके भीतर की सारी करुणा, दयालुता और सहानुभूति तो धन का लोभ सोख लेता है, तो फिर भला वह किसी के दुख–से–दुखी कैसे हो सकता है ? निश्चय ही, धन के लोभी के शरीर की खाल बहुत मोटी होती है, उसे उसके कंजूस स्वभाव को लेकर आप एक हजार बुरी–भली बात कह दें, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। वह धन के मद में इतना अन्धा हो जाता है कि वह मान–अपमान, दया, करुणा यहाँ तक कि मानवीय मूल्यों को भी भुला बैठता है।

**विशेष**–1. निबंधकार ने धन के मद के प्रभाव का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन किया है। धन का मद मनुष्य के भीतर की श्रेष्ठता का किस प्रकार हरण कर लेता है–शुक्ल जी ने इस तथ्य को सजीव रूप में व्यक्त किया है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तद्‌सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

**कुटज : व्याख्या भाग**

**1. ''कुटज के ये सुन्दर फूल बुरे तो नहीं हैं। जो कालिदास के काम आया हो, उसे ज्यादा इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है। रहीम को मैं बड़े आदर के साथ स्मरण करता हूँ। दरियादिल आदमी थे, पाया सो लुटाया। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है। सुना है, रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया था।**

**शब्दार्थ**–**कुटज** = एक फूलदार वृक्ष। **इज्जत** = मान–सम्मान। **नसीब** =  भाग्य। **स्मरण** = याद । **दरियादिल** = बड़े दिलवाला। **बादशाह** =  राजा।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यावतरण **हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा रचित निबंध 'कुटज' से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने 'कुटज' के फूल की महत्ता पर प्रकाश डाला है।

**व्याख्या**–निबन्धकार का कथन है। कुटज का फूल खूबसूरत है, इसलिए इसका मान–सम्मान होना चाहिए। कहा जाता है कि यही कुटज का फूल कालिदास के भी काम आया था इसलिए भी तो उसे मान–सम्मान मिलना ही चाहिए, पर इतना मान–सम्मान इसे मिला नहीं है। लेखक कहना यह चाहता है कि कोई खूबसूरत हो,

यह मायने नहीं रखता, लेकिन मान–सम्मान तो नसीब की बात होती है। लेखक कुटज के फूल की तुलना महान् कवि रहीमदास से करता हुआ कहता है कि कवि रहीम का मैं बहुत आदर, मान–सम्मान करता हूँ, वे दरियादिल आदमी थे, उन्होंने जो कुछ भी हासिल किया, उसे स्वयं के लिए नहीं रखा, अपितु बाँटते चले गये। लेखक का कहना है कि यह दुनिया मतलब की है, जब तक अभिप्राय है तब तक उसका मान–सम्मान करते हैं, जब मतलब निकल गया तब उस फल का रस चूसकर, छिलका उतारकर गुठली फेंक दी जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि स्वार्थ सिद्ध होने के बाद लोग अपनी भलाई करने वाले को भूल जाते हैं। लेखक कहता है कि मैंने सुना है कि रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया। कभी एक मुगल बादशाह ने जिस महान् कवि रहीम को बड़े आदर के साथ अपने दरबार में बुलाया था, दूसरे मुगल बादशाह ने उसे अपने दरबार से निकाल दिया। लेखक को कुछ ऐसी ही स्थिति कुटज के वृक्ष की भी दिखाई देती है।

**विशेष**–1. लेखक ने साहित्य और संस्कृति को प्रस्तुत अवतरण में व्यक्त किया है।

2. भाव साभ्य

**काज परै कछु और है, काज सरे कछु ओर।**
**रहिमन भंवरी के मए नदी सिरावत मोर।।**

3. साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है।

4. संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ठेठ ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है।

5. प्रस्तुत निबन्ध में जीवनोन्मुखता अधिक निखर उठी है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

**2. ''सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है। याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिश की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिया नहीं होती–सब मतलब के लिए प्रिय होते हैं– 'आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति' विचित्र नहीं है यह तर्क ? संसार में जहाँ कहीं प्रेम है, सब मतलब के लिए। सुना है, पश्चिम के हॉब्स और हेल्वेशियस जैसे विचारकों ने भी ऐसी बात कही है। सुन के हैरानी होती है। दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, पराय नहीं है, परमार्थ नहीं है–केवल प्रचंड स्वार्थ।''**

**शब्दार्थ–आत्मनास्तु** = आत्मा का तो। **कामाय** = इच्छा। **हैरानी** = आश्चर्य। **परार्थ** = दूसरे के अभिप्राय के लिए। **परमार्थ** = निःस्वार्थ।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यावतरण **हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा रचित निबंध **'कुटज'** से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने स्पष्ट किया है सारा संसार अपने मतलब के लिए जी रहा है।

**व्याख्या**–लेखक का कहना है कि समस्त संसार अपने मतलब के लिए जी रहा है। ऋषि याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे, उन्होंने एक बार विचित्र भाव से अपनी पत्नी को बताया कि इस जगत् में सब कुछ स्वार्थ के लिए है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता और पत्नी के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती बल्कि सब संबंध स्वार्थ के लिए हैं। सब अपने स्वार्थ साधने के लिए पत्नी–पुत्र को प्रिय कहते रहते हैं। सबको सर्वाधिक प्रेम अपने कार्यों अर्थात् स्वार्थों को साधने से ही होता है। लेखक कहता है कि मैं कोई विचित्र बात नहीं कह रहा, यह कटु सत्य है। यह संसार ही मतलब का है। सब संबंध मतलब के हैं। हम कहते हैं कि मेरा अमुक व्यक्ति से प्रेम है। ये सभी प्रेम–सबंधी अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए हैं। लेखक कहता है कि उसने सुना है कि पाश्चात्य चिंतक हॉब्स और हेल्वेशियम जैसे विचारकों ने भी प्रेम के विषय में ऐसी ही बात कही है। कोई पत्नी–पुत्र नहीं। सभी स्वार्थ के सबंध में जुड़े हुए हैं। लेखक अन्त में कहता है कि यह सब सुनकर, देखकर हैरानी होती है कि दुनिया में किसी का किसी के लिए त्याग नहीं, प्रेम नहीं, कोई दूसरे के लिए, परहित के लिए नहीं जीता। सभी अपने स्वार्थों में लिप्त है।

**विशेष**–1. लेखक ने निःस्वार्थ भाव से जीने पर बल दिया है।

2. भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है।

3. लेखक ने जीवन जीने की कला को व्यक्त किया है।

4. संस्कृत की सूक्ति 'आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति' का प्रयोग हुआ है।

5. यहाँ पर अर्न्तकथा व्यक्त की गई है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

**3. ''याज्ञवल्क्य ने जो बात धक्कामार ढंग से कह दी थी, वह अन्तिम नहीं थी। वे 'आत्मनः' का अर्थ कुछ और बड़ा करना चाहते थे। व्यक्ति का 'आत्मा' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, वह व्यापक है। अपने में सब और सब में आप–इस प्रकार की एक समष्टि बुद्धि जब तक नहीं आती, तब तक पूर्णसुख का आनंद नहीं मिलता। अपने आपको दलित–द्राक्षा की भाँति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए निछावर नहीं कर दिया जाता हैय तब तक 'स्वार्थ' खंड सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दण्डनीय–कृपण बना देता है। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहत हो गया है, उसकी दृष्टि म्लान हो जाती है, वह स्पष्ट नहीं देख पाता। वह स्वार्थ भी नहीं समझ पाता, परमार्थ तो दूर की बात है।''**

**शब्दार्थ–आत्मनः** = आत्मा। **समष्टि** = समूह। **द्राक्षा** = अंगूर। **निछावर** = बलिदान। **मोह** = लगाव। **तृष्णा** = प्यास, आकांक्षा। **कृपण** = कंजूस। **कार्पण्य** = कंजूसी। **उपहत** = अशुद्ध। **म्लान** = मैली।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यावतरण हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'कुटज' से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने ऋषि याज्ञवल्क्य की बात कही है कि उनका 'आत्मनः' से अभिप्राय केवल अपने तक सीमित रहना नहीं है बल्कि सर्व के हित के लिए अपने आपको न्योछावर कर देना है।

**व्याख्या**–लेखक का कथन है कि ऋषि याज्ञवल्क्य ने 'आत्मा' की विस्तृत व्याख्या की है। व्यक्ति की आत्मा केवल आत्मा तक सीमित नहीं है। अपने ही लिए जीना ही इस दुनिया में आने का अर्थ नहीं। मनुष्य की आत्मा विवेक–बुद्धि से परिपूर्ण होती है। वह व्यापकता की प्रवृत्ति लिए होती है। मनुष्य की आत्मा इस रूप में जगत् को जाने कि वह भी मैं हूँ और मैं वह हूँ अर्थात् उसमें और मुझमें कोई भेद नहीं है। लेखक कहता है कि मनुष्य को पूर्णता ही तभी मिलती है, जब अपने आपको द्राक्षासव की भाँति पूर्ण जगत् के लिए न्योछावर कर दे। स्वार्थ के कारण व्यक्ति सांसारिक मोहमाया में फँसा होता है। मोहमाया तृष्णाओं को पैदा करती है। तृष्णा के फेर में पड़कर मनुष्य गलत कार्य भी करता है, इससे फिर वह दण्ड का भागी बनता है। स्वार्थ मनुष्य को कृपण बना देता है। जो मनुष्य पूर्ण रूप से कार्पण्य में फँस जाता है, अर्थात् कार्पण्य ही उसका स्वभाव बन जाता है तो उसकी दृष्टि–वृत्ति भी मलिन हो जाती है। उसे केवल अपना स्वार्थ ही दिखायी देता है। उसे कोई भी बात समझ नहीं आती। परहित की बात तो दूर वह अपने वास्तविक स्वार्थ को भी नहीं समझ पाता।

**विशेष**–1. लेखक ने ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा बतायी गई 'आत्मा' की विस्तृत व्याख्या की है।

2. मनुष्य इस जगत् में परहित के लिए जिये, अपने लिये तो सभी जीते हैं।

3. लेखक ने तत्सम शब्दों के साथ ठेठ ग्रामीण जीवन के शब्दों का प्रयोग किया है।

4. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है।

5. भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है।

**4. ''कुटज क्या केवल जी रहा है ? वह दूसरों के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की**

**खुशामद नहीं करता, आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगले नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है—काहे वास्ते, किस उद्देश्य से ? कोई नहीं जानता।''**

**शब्दार्थ—द्वार** = दरवाजा। **अफसर** = अधिकारी। **खुशामद** = चापलूसी। **आत्मोन्नति** = आत्मा की उन्नति।

**प्रसंग**— प्रस्तुत गद्यावतरण **हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा रचित निबंध **'कुटज'** से लिया गया है। लेखक ने यहाँ पर जीवनोन्मुखता को मुखरित किया है।

**व्याख्या**—लेखक ने यहाँ कुटज को मानवीकृत रूप में वर्णित करते हुए उसकी जीवन शैली पर प्रकाश डाला है और कहा है कि वह दूसरों के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, न ही वह किसी भय में फंसा हुआ है। वह धर्म के ठेकेदारों की भाँति धर्म और नीति का उपदेश भी नहीं देता फिरता है। न ही वह अपनी उन्नति के लिए किसी की चापलूसी करता फिरता है। न वह किसी को अपमानित करता है और न ही शक्तिशाली ग्रहों की खुशामद करता है। वह किसी प्रकार के वहम आदि का शिकार भी नहीं है। अपनी आत्मोन्नति के लिए न ही कोई नग या पत्थर धारण करता है, न ही वह अंगूठियों की लड़ियाँ पहनता है। वह किसी के आगे दाँत नहीं निकालता, न ही किसी की ताक—झाँक करता है। जीता है तो शान से जीता है। वह किसलिए ? किस उद्देश्य से जी रहा है कोई नहीं जानता मगर वह निःस्वार्थ और बेखौफ भाव से जी रहा है।

**विशेष**—1. लेखक ने कुटज वृक्ष की जीवन शैली पर प्रकाश डाला है।

2. मनुष्य को कभी मन से नहीं हारना चाहिए।

3. लेखक का कहना है कि विशाल हृदय कभी भी सुख—दुःख, प्रिय—अप्रिय से विचलित नहीं होता।

4. निबन्ध में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

5. विद्वता और सहृदयता का सामंजस्य मिलता है।

6. भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है।

**5. ''जो सपन्नता है कि वह दूसरों का अपकार कर रहा है, वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरा उसका अपकार कर रहा है, वह भी बुद्धिहीन है, कौन किसका उपकार करता है, कौन किसका अपकार कर रहा है ? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास—विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाय, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परन्तु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुंचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुःख पहुंचाने का अभिमान तो नितांत गलत है।''**

**शब्दार्थ—अपकार** = बुरा। **अबोध** = अज्ञानी। **उपकार** = भलाई। **अभिमान** = अहंकार, गर्व। **निरंतर** = सर्वदा।

**प्रसंग**—प्रस्तुत गद्यावतरण **हजारी प्रसाद द्विवेदी** द्वारा लिखित निबंध **'कुटज'** से लिया गया है। लेखक ने यहाँ स्पष्ट किया है कि संसार में न कोई किसी का उपकार करता है और न अपकार।

**व्याख्या**—निबन्धकार का कहना है कि जो मनुष्य यह सोचता है कि वह दूसरों का अपकार कर रहा है तो वह अबोध है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य यह सोचता है कि दूसरे व्यक्ति ने उसका बुरा कर दिया तो यह बुद्धिहीन है। लेखक कहता है कि इस संसार में न कोई किसी का उपकार करता है तथा न कोई किसी का अपकार करता है। मनुष्य इस जगत् में जी रहा है, केवल जी रहा है। चाहे वह इस जगत् में उपकार करके जिये या अपकार करके। सभी बस जीवन को ढो रहे हैं, जी रहे हैं, चाहे अच्छे जी रहे हैं या बुरे बनकर जी रहे हैं। केवल जी रहे हैं, कोई भी अपनी इच्छा से नहीं जी रहा। सभी भाग्य विधाता के हाथ के खिलौने हैं। चाहे किसी

को सुख मिल जाये चाहे किसी को दुःख पित्त जाए। किसी को सुख मिल जाए तो बहुत अच्छी बात है। यदि उसे सुख न भी मिल पाए तो कोई विशेष बात नहीं है। यदि किसी दूसरे व्यक्ति को दुःख मिल जाए तो उसे सुखी व्यक्ति को देखकर दुःखी नहीं होना चाहिए। सुखी होने का अभिमान भी मनुष्य को नहीं होना चाहिए। लेखक की मान्यता है कि हमें न तो किसी का सुख पहुँचाने का अभिमान करना चाहिए और न किसी को दुःख पहुंचाने पर गर्व करना चाहिए क्योंकि किसी को सुख पहुँचाने का अभिमान करना 1 जही गलत है, वहीं किसी को दुःख पहुँचाने का अभिमान करना तो नितांत गलत है।

**विशेष**–1. लेखक को मान्यता है कि इस संसार में सभी ईश्वर की इच्छा के अनुसार जी रहे हैं। यहाँ न कोई किसी का भला करता है और न कोई किसी का बुरा।

2. भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है।

3. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

4. तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।

5. अभिधा व व्यजना शब्द–शक्तियों का प्रयोग है।

**संस्कृति और शिक्षा : व्याख्या भाग**

**1.** मैं समझती हूँ, आपकी स्थिति उनसे भिन्न होनी चाहिए और उसका कारण है–आप भारत माँ के तुषार किरीट की छाया में उत्पन्न होते हैं, आपको निर्झर लोरियाँ सुनाते हैं, आपको रंगीन बादल छाया देते हैं, आपके लिए प्रकृति की हरी–भरी गोद पालना बन जाती है, देवदारू के आकाशचुंबी वृक्ष आपके प्रहरी हैं। यह आपको प्रकृति का दान है। आप जानते हैं कि प्रकृति उदार बहुत है, पर परिणाम में बहुत कठिन भी है। आप आलस्य में नहीं रह सकते, अकर्मण्य नहीं रह सकते। यदि आप रहना चाहें तो क्या होगा ? बर्फ की पर्त आपको पाषाण बना देगी, बवंडर आपको उड़ा ले जायेंगे, निर्झर आपको बहा ले जायेंगे।

**शब्दार्थ**–**तुषार**–कोहरा, हिमकण, धुंध। **किरीट**–मुकुट। **निर्झर**–झरने। **आकांशचुंबी** – आकाश को छूने वाले। **अकर्मण्य** – आलसी। **पर्त** – तह। **पाषाण**– पत्थर।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पक्तियाँ महादेवी वर्मा विरचित निबंध **'संस्कृति और शिक्षा'** से ली गई है। यह निबंध महादेवी के कुमाऊँ विश्वविद्यालय में 1975 में दिए भाषण का रूपांतरण है। इस निबंध में लेखिका भारतीय शिक्षा प्रणाली और भारत की सांस्कृतिक विरासत पर प्रकाश डाला है। इन पंक्तियों में लेखिका ने कुमाऊँ के पहाड़ी जीवन की विशिष्टता पर प्रकाश डाला है।

**व्याख्या**–लेखिका कुमाऊँ के पहाड़ी जीवन की विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए छात्र–छात्राओं से कहती है कि पहाड़ के लोगों की स्थिति मैदानी लोगों से भिन्न है। इसका कारण बताते हुए वह कहती हैं कि कुमाऊँ के पहाड़ी लोग भारत माता के बर्फ और कोहरे से बने मुकुट, हिमालय की छाया में रहते हैं, उसकी तराई में बसे हैं। यहाँ के लोगों को कलकल करते झरने लोरियों गाकर सुलाते हैं। यहाँ के आसमान रंगीन बादल उड़ कर सभी को छाया देते हैं। यहाँ के लिए प्रकृति की हरी–भरी गद्दी पालने का काम करती है, सभी प्रकृति की गोद में पलते हैं। देवदारू के आसमान को छूने वाले पेड़ यहाँ के लोगों के रक्षक हैं। यह सब प्रकृति के उपहार आपको मिले हैं। प्रकृति बहुत उदार है परन्तु कहीं–कहीं प्रकृति कठोर भी होती है। पहाड़ में रहने वाला व्यक्ति आलसी और निकम्मा नहीं रह सकता। यदि कोई ऐसा करता है तो तह–दर–तह बर्फ उसे ढक लेगी और वह जमकर पत्थर हो जाएगा, मर जाएगा। जीवित रहने के लिए श्रम करना यहाँ के लोगों की नियति है। यहाँ की आधियों निठल्ले व्यक्ति को उड़ा ले जाएँगी, झरने बहा ले जाएँगे। पहाड़ी मनुष्य क्रियाशील रहता है।

**विशेष**–1. लेखिका ने स्पष्ट किया है कि पहाड़ की प्रकृति के दो रूप हैं, वह उदार भी है और कठोर भी।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तदभव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. भाषण शैली का प्रयोग हुआ है।

2. हम एक प्रकार से दो युगों में जी रहे हैं–एक युग तो मध्ययुग और एक युग नया विज्ञान का युग। हमारा एक आर्यभट्ट आकाश में उड़ रहा है और असंख्य जन धरती पर चलने में भी असमर्थ हैं। हमारी अधिकांश जनता सड़क के किनारे बिना छाया के, बिना भोजन के, बिना वस्त्र के जन्म लेती है, मरती है। आप इस विषमता की कल्पना कीजिये। वह देश जो अणु का विस्फोट करता है, वह देश जो आर्यभट्ट को आकाश में भेजता है, वही अपने मनुष्य को कितना हीन बनाये हुए है! आपने अपने मन में कभी पूछा कि यह हीनता क्यों है ? इस दोहरी व्यथा पर विचार कीजिये। इस महानता के चरणों के स्वर्ग के साथ जो नरक निरंतर बंधा हो उसको यदि हम दूर नहीं करते तो हम अपने आपको कैसे क्षमा कर सकते हैं! कैसे हम अपने आपको इस वैज्ञानिक युग का प्राणी कहते हैं। यही समस्या है। कौन उसे दूर करेगा ? कैसे ?

**शब्दार्थ**–हीनता–गिरावट, घटियापन। **विषमता**–भेद। **हीन**–तुच्छ। **व्यथा**–पीड़ा।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियां महादेवी वर्मा विरचित निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' से ली गई हैं। यह निबंध में लेखिका भारतीय संस्कृति के मूल्यपरक स्वरूप का उद्‌घाटन करते हुए भारतीय शिक्षा पद्धति को मूल्याधारित करने पर बल देती है। इन पंक्तियों में भारत में फैली विषमता का मार्मिक चित्रण किया गया है।

**व्याख्या**–लेखिका भारत में फैली विषमता का उल्लेख करते हुए कहती है कि हम भारतीय एक तरह से एक साथ दो युगों में जी रहे हैं। भारत का एक हिस्सा मध्ययुग में जीता है दूसरा इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में। एक ओर भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट अंतरिक्ष के चक्कर काट रहा है, दूसरी ओर असंख्य भारतीय अपने पांव पर खड़े भी नहीं हो सकते, वे फुटपाथ पर पैदा होकर, वहीं जीते हैं और मरते हैं। वे भोजन–वस्त्र विहीन असहाय जीवन जीते हैं। महादेवी जी कहती हैं कि भारत के इन दोनों रूपों पर ध्यान दें। एक ओर हमारा आर्यभट्ट आसमान में चक्कर लगा रहा है, भारत अणु विस्फोट कर रहा है, दूसरी ओर करोड़ों लोगों की ऐसी दुर्दशा है। महादेवी जी पूछती है कि क्या हमने कभी इस दुर्दशा का कारण जानने का प्रयास किया है ? हमारे स्वर्ग के साथ अनिवार्य रूप से नरक क्यों जुड़ा है ? यदि हम इस अंतर को मिटा नहीं सकते तो हमारे वैज्ञानिक युग में होने का अर्थ ही क्या है ? हमारी यह समस्या कौन दूर करेगा, इस पर विचार करना आवश्यक है।

**विशेष**–1. लेखिका ने स्पष्ट किया है कि भारत के समाज में भंयकर विषमता है, लोग अमानवीय स्थितियों में जीने और मरने को विवश हैं।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. भाषण शैली का प्रयोग हुआ है।

3. संभवतया हमारी सारी पीढ़ी उसी ओर चलती। परिणाम यह हुआ कि हमारे भीतर से अंग्रेजियत तो गई नहीं, साथ ही अनेक सदियों की दासता से जितने दुर्गुण उत्पन्न हो गये थे, वे ज्यों–के–त्यों बने रहे। कैदी को जेलखाने से निकालकर उसकी हथकड़ी–बेड़ी काट दो। लेकिन हाथ पैरों पर उसके जो दाग पड़ गये हैं, वे कैसे दूर होंगे। हथकड़ी–बेड़ी काट देने से ही तो व्यक्ति मुक्त नहीं होता। मुक्त तो तब होता है जब वह स्वतंत्रता का अनुभव करेय जब वह मुक्ति का वरण करे! मुक्ति की अनुभूति के बिना मुक्त होना संभव नहीं है।

संपूर्ण मुक्ति का अनुभव हम शिक्षा के क्षेत्र में ही कर सकते हैं, जहाँ हमारी संस्कृति नया रूप लेती है, कायाकल्प करती है, जहाँ जीवन के नये मूल्य ढलते हैं, जहाँ नई समस्याओं को हम देखते हैं और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करते हैं।

**शब्दार्थ–अनुभूति**–गहराई से अनुभव करना।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियाँ महादेवी वर्मा विरचित निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' से ली गई हैं। जो उनके कुमाऊँ विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षांत समारोह में दिए अभिभाषण का रूपांतरण है। भारतीय समाज, अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भी मुक्त नहीं हो सका। इसी तथ्य का वर्णन यहाँ हुआ है।

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि यह संभव था कि सारी पीढ़ी उस केंद्र की ओर चलती जो आजादी के पश्चात् निर्मित होता। परंतु कोई केंद्र बन न सका। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे भीतर से अंग्रेजियत नहीं गई और सदियों की दासता में हममें जो बुराइयां भर गई थीं वे भी बनी रहीं। महादेवी जी उदाहरण देकर समझाती हैं कि जेल से मुक्त हुए बंदी की बेड़ियाँ उतार देने पर भी उसके निशान उसके बाजुओं पर बने रह जाते हैं। इसी तरह जब तक कोई व्यक्ति दिल से आजादी को अनुभव न करे, उसे आजाद नहीं कहा जा सकता। मुक्त तो व्यक्ति तभी होता है जब उसका दिल और दिमाग भी मुक्ति का अनुभव करे। मुक्ति एक भौतिक स्थिति से अधिक मानसिक एवं भावात्मक स्थिति है। मुक्ति का यह भाव शिक्षा के माध्यम से ही हम ग्रहण करते हैं। शिक्षा में ही संस्कृति के नए मूल्य ढलते हैं, विकसित होते हैं। शिक्षा से ही हम समस्याओं को देखते समझते हैं और उन्हें सुलझाने का प्रयास करते हैं।

**विशेष**–1. लेखिका ने स्पष्ट किया है कि सांस्कृतिक मूल्यों के संप्रेषण में शिक्षा का महत्त्व सर्वाधिक है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. भाषण शैली का प्रयोग हुआ है।

4. गति अपने आप में कोई महत्त्व नहीं रखती, जब तक प्रगति न हो। प्रकृति को देखिये–पृथ्वी का पहिया गोल–गोल घूमता हुआ हजारों–हजारों मील चलता है, पर घूमना तो उसका अपनी धुरी पर ही सार्थक होता है। समाज को प्रगति चाहिए। लक्ष्य की ओर चलना होगा तभी उसे आप प्रगति कह सकते हैं। लक्ष्य नहीं होगा तो प्रगति कहाँ होगी। यही स्थिति है हमारी साज–सज्जा की। शव को हम कितने फूलों में सजाते हैं, कितना अबीर–गुलाल छिड़कते हैं, कितना कीमती वस्त्र उड़ाते हैं। इससे क्या वह जीवित हो सकता है ? जीवन में शक्ति चिंतन से आती है, साज–सज्जा से नहीं। आप एक पेड़ को, चाहे वह वट हो या देवदारु, काट लीजिये और संगमरमर के वा सोने के चबूतरे पर रख दीजिये। क्या वह फले–फूलेगा। वास्तव में उसे परती चाहिए, मिट्टी चाहिए।

**शब्दार्थ–गति**–हिलना–डुलना चलना। **प्रगति**–आगे बढ़ना। **सार्थक**–सफल। **लक्ष्य**–मंजिल, गंतव्य स्थान।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियाँ 'महादेवी वर्मा' विरचित निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' से ली गई हैं। इस लेख में महादेवी भारतीय संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं और शिक्षा के ढांचे को बदलने का आह्वान करती हैं। गति नहीं, प्रगति ही सार्थक जीवन का आधार है, इसे स्पष्ट करते हुए महादेवी इन पंक्तियों में कहती है–

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि गति का तब तक कोई महत्व नहीं जब तक वह किसी लक्ष्य की ओर न ले जाती हो, आगे न बढ़ाती हो। प्रकृति से उदाहरण देते हुए महादेवी जी कहती हैं कि धरती अपनी धरती पर

घूमते हुए भी लाखों किलोमीटर का चक्कर लगा लेती है। वह अपने लक्ष्य सूर्य को ध्यान में रखकर निरंतर गतिशील रहती है और चक्कर काटते हुए आगे बढ़ती जाती है। बिना लक्ष्य के प्रगति नहीं होती। यही स्थिति साज–सज्जा की है। मृतदेह को हम कितने ही वस्त्राभूषणों से सजा लें, उसको पूजा कर लें, वह जीवित न होगी। शक्ति चिंतन से आती है, सजावट से नहीं। इसी प्रकार, यदि किसी विशाल पेड़ को काटकर संगमरमर के चबूतरे पर भी सजा दें, वह जीवित न होगा। उसे जीने के लिए धरती चाहिए, मिट्टी चाहिए।

**विशेष**–1. लेखिका ने स्पष्ट किया है कि प्रगति के लिए लक्ष्य की जरूरत है, जैसे धरती का लक्ष्य सूर्य की परिक्रमा करना है। प्रगति के लिए श्रृंगार और सजावट की अपेक्षा चिंतन मनन की जरूरत है, जो शिक्षा से प्राप्त होता है। प्रगति के लिए परंपरा और अतीत ज्ञान चाहिए जैसे वृक्ष को उगाने के लिए मिट्टी चाहिए, धरती चाहिए।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. भाषण शैली का प्रयोग हुआ है।

5. भारत के पास बड़ी मूल्यवान संस्कृति है और भारत माँ की प्रतिमा तो संसार की नारी प्रतिमाओं से सुंदरतम है। किसी देश की इतनी सुंदर धरती नहीं। हमारी यह धरती हरितांचला नदियों की मुक्ता माला पहिने हुए हैं, तुषार मंडित हिमालय का किरीट धारण किये हुए है। तीन समुद्र उसके चरणों का प्रक्षालन करते हैं। कितनी विविधता है उसमें, किंतु उस विविधता के साथ एकता भी कितनी है। प्राणवत्ता कितनी है! जैसे हमारे अंगों में इतनी विविधता है, परंतु अगर किसी अंग में पीड़ा हो तो ह्रदय में उस पीड़ा का बोध होता है। छोटी–सी अँगुली की पीड़ा भी समग्र शरीर की पीड़ा है, क्योंकि समग्र शरीर एक है। इसी तरह हमारा समग्र देश एक है। उसमें जो सांस्कृतिक आंदोलन हुआ है, उद्वेलन हुआ है, वह जैसे समुद्र की तरंगे हैं। उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक आपको एक ही भारत मिलेगा। भारत के एक ही प्रकार के मूल्य मिलेंगे।

**शब्दार्थ**–**प्रतिमा**–मूर्ति, **हरितांचला**–हरे आंचल वाली। **मुक्तामाला**–मोतियों की माला। **तुषार**–हिम। **मंडित**–शोभित। **किरीट**–मुकुट। **प्रक्षालन**–धोना। **उद्वेलन**–उभार। **तरंगें**–लहरें।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पंक्तियाँ महादेवी वर्मा विरचित निबंध 'संस्कृति और शिक्षा' से ली गई हैं। भारतीय संस्कृति की मूल्यपरकता की चर्चा करते हुए शैक्षिक ढांचे को सुधारने पर महादेवी जोर देती है। इन पंक्तियों में लेखिका ने भारत के सौंदर्य का गुणगान किया है।

**व्याख्या**–भारत की संस्कृति मूल्यवान है, मूल्यपरक है, साथ ही भारत देश भी अत्यधिक सुंदर है। भारत माता की मूर्ति सबसे सुंदर है। किसी देश की धरती इतनी सुंदर नहीं। धरती का आंचल हरा है अर्थात् यहाँ सर्वत्र हरियाली छाई है। यहाँ की नदियाँ भारत माँ के गले में मोतियों की मालाओं की तरह हैं। हिममंडित हिमालय, भारत माता का मुकुट है। तीन ओर से तीन समुद्र भारत माता के चरण घोते हैं। भारत में अत्यधिक विविधता है परंतु भावात्मक एकता भी है। शरीर के सारे अंग भिन्न होते हैं परंतु फिर भी किसी अंग पर चोट पड़ते ही, ह्रदय कराह उठता है। भारत में ऐसी ही एकता है। भारत में जो भी सांस्कृतिक आंदोलन हुए, सांस्कृतिक क्रांतियाँ हुईं वे सब समुद्र की लहरों के समान हैं। महादेवी का मानना है कि भारतीय संस्कृत का स्वरूप संपूर्ण भारत में एक–सा ही है। पूरे भारत में जीवन मूल्य एक से ही मिलते हैं।

**विशेष**–1. महादेवी का देश प्रेम स्पष्ट झलकता है।

2. भाषा सरल, सहज व भावपूर्ण खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

6. भाषण शैली का प्रयोग हुआ है।

स्वतंत्र और छद्म रूप में स्वतंत्र। इस गद्यांश में चाक्य लंबे एवं उलझे हैं। तथ्य, पारिभाषिक शब्दों से बंधे हैं, इसलिए व्याख्या की मांग करते हैं। 'उत्पादन व्यवस्था' बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ में होने का अर्थ यहीं है कि अमेरिकी उत्पादों का उत्पादन कोरिया, ताइवान और चीन में हो सकता है क्योंकि वहां मजदूरी सस्ती है। ब्रांड अमेरिकी ही रहता है। इस गद्यांश में नेटवर्क, कंपनी जैसे अंग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

विषय को और अधिक रोचक बनाया जा सकता था, यदि भावात्मक शैली का अनुसरण किया जाता। निबंध में वस्तुनिष्ठ, शुष्क शैली को अपनाया गया है जिसके कारण अनेक स्थलों पर वाक्य दुर्बोध हो गए हैं। नारी–शोषण और दमन के संदों में ही भाषा भावात्मक एवं प्रवाहपूर्ण हैं। सामान्य रूप से माषा तत्सम शब्दावली प्रधान, प्रांजल हिंदी है।

**भूमण्डलीकरण, धार्मिक समान पूंजीवाद : व्याख्या भाग**

1. भूमंडलीकृत रामाज में एक ओर परंपरा के अवशेष मिलते हैं, उनके हिस्से जगमगाते हैं, तो दूसरी ओर, हम आधुनिकता की स्थापित सीमा के पार भी चले जाते हैं। हर कथन का दोहरा आशय है और विडंबना है कि परंपरा में जो बिखराव, उलझन एवं विसंगतियों हैं वे ही बहुलता को हासिल करने में समर्थ हैं। अतः हम क्या हैं ? हम भूमंडलवासी कौन हैं ? इस भूमंडलीकृत समाज में स्त्री कहाँ आसीन है ? और उसे कौन–कौन से चुनाव उपलब्ध हैं ? भूमंडलीकरण से वह क्या समझती है और उसे कैसी स्वतंत्रता चाहिए, तथा उसकी आस्था किन मूल्यों में है–इसे स्पष्ट करना होगा।

**शब्दार्थ–अवशेष**–खंडहर, पुराने चिन्ह। **आशय**–भाव, अर्थ। **विसंगतियां**–परस्पर विरोधी बातें। **बहुलता**–अधिकता। **विडंबना**–आश्चर्य की बात, विचित्र बात। **आसीन**–स्थापित।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश हिंदी की सुप्रसिद्ध नारीवादी लेखिका प्रभा खेतान विरचित लेख 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद समाज' से है। इस लेख में प्रभा जी भूमंडलीकरण और उसके प्रभावों का चित्रण किया है।

**व्याख्या**–भूमंडलीकरण और उसके प्रभावों का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती है कि भूमडलीकृत समाज में एक ओर तो परंपरा के ऐसे चिह्न मिलते हैं जो बहुत पुराने हैं, उनके वे अंश चमकते नजर आते हैं। दूसरी ओर भूमंडलीकरण आधुनिकता से आगे उत्तर आधुनिकता के अंश भी अपने में समेटे रहता है। उत्तर आधुनिकता में हर कथन का दुहरा अर्थ होता है। परंपरा में जो हैरान करने वाली विरोधमूलक, उलझन भरी और परस्पर विरोधी बातें रहती हैं, अधिकतर लोग उन्हीं की ओर अग्रसर होते हैं। बहुसंख्यक समाज उन्हीं को अपनाना चाहता है। यही कारण है कि हम पहचान नहीं पाते कि हम क्या हैं ? हम भूमंडलवासी कौन हैं, इस भूमंडलीकृत समाज में स्त्री का स्थान कहाँ है ? उसके समक्ष कौन–कौन से चुनाव प्राप्त हैं ? वह भूमंडलीकृत से क्या समझती हैं, उसे किस तरह की आजादी चाहिए, उसकी आस्था किस चीज में है, किन मूल्यों में है, इसे स्पष्ट रूप से समझना चाहिए।

**विशेष** (1) प्रभा खेतान भूमंडलीकरण की विसंगतियों को स्पष्ट करते हुए प्रश्न उठाती है कि इस व्यवस्था में नारी का स्थान क्या है ?

(2) भाषा सरल, सहज व विचारपरक खड़ी बोली है।

(3) तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

(5) वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

(6) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**2. पर यह सवाल भी उठता है कि आखिर यह व्यवस्था एकाएक कैसे बदल गई ? आखिर राष्ट्रीय सरकारों ने पूंजी के नियंत्रण से अपना हाथ अचानक क्यों हटा लिया ? क्या केवल इसलिए कि सूचना एवं संवाद की तकनीक को राष्ट्रीय सीमाओं पर रोकने में वे असमर्थ थीं ? माना कि इसको सोवियत संघ भी नहीं रोक पाया। मिखाइल गोर्वाचोव, परोस्त्राइका (खुलापन) को अपनाने को बाध्य थे। तकनीकी निर्धारण से आप चाहे जितना मुंह छिपाएँ, मगर सच्चाई तो यह है कि समकालीन इतिहास की धारा का उद्‌गम स्रोत माइक्रोचिप है और इसी कारण परा–राष्ट्रीय धाराओं का सामना स्थानीय संस्कृति से होता हैय यद्यपि यह ऊपरी स्तर पर ही है।**

**शब्दार्थ**–एकाएक अचानक। **संवाद**–बातचीत। **बाध्य**–मजबूर। **तकनीक निर्धारण**–तकनीक से ही विश्व प्रगति होती है। **मुंह छिपाएँ**–इंकार करें। **परा राष्ट्रीय**–विभिन्न राष्ट्रों।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश प्रभा खेतान विरचित विवार प्रधान लेख 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज' से अवतरित है। प्रभा जी भूमंडलीकरण के लिए उत्तरदायी कारणों में सूचना प्रौद्योगिकी के विकास को प्रमुख मानती हैं। लेखिका द्वारा यहाँ स्पष्ट किया गया है कि आज का युग माइक्रोचिप का युग है, क्योंकि मोबाइल इंटरनेट सभी इसी से चलते हैं।

**व्याख्या**–लेखिका लिखती है कि पुरानी व्यवस्था जिसमें आर्थिक शक्तियाँ राज्य के हाथ में रहती थीं, में नियंत्रित आर्थिक विकास ही प्रमुख था, वह कैसे बदल गया। आखिरकार राष्ट्रीय सरकारों ने पूंजी नियंत्रण कैसे अपने हाथ से जाने दिया। वास्तव में ऐसा इसलिए हुआ कि अब सूचना और संवाद, अंतरिक्ष में स्थापित सैटेलाइटों पर निर्भर था और राष्ट्रीय सीमाओं में उसे बंद नहीं किया जा सकता था। सोवियत संघ भी इसे नहीं रोक पाया। गोर्वाचोव को भी खुलेपन नीति अपनाने को मजबूर होना पड़ा, रूसी जनता को साम्यवादी लोहे की दीवार के पीछे नहीं रखा जा सका। समकालीन इतिहास की धारा माइक्रोचिप्स से निर्धारित होगी। इसमें बाहरी राष्ट्रों की संस्कृतियों का सामना, स्थानीय संस्कृतियों से होता है। यह मिलाप सतही स्तर पर ही होता है।

**विशेष** (1) भूमंडलीकरण की प्रक्रिया कैसे प्रारंभ हुई इसे स्पष्ट किया गया है।

(2) भाषा सरल, सहज व विचारपरक खड़ी बोली है।

(3) तत्सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

(5) वाक्य–विन्यासः सरल, सहज तथा रोचक है।

(6) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**3. भूमंडलीकरण की एक और भी विशिष्टता है–उत्पादन व्यवस्था के ढांचे का परा–राष्ट्रीय नेटवर्क। कोई भी कंपनी भूगोल में सीमित नहीं है। जिन नए जटिल व्यवस्थात्मक और भौगोलिक ढांचों का निर्माण किया जा रहा है, उनका आपसी स्वरूप विविधता लिए हुए है। एक ओर यदि अंतर्राष्ट्रीय रणनीतिक गठजोड़ है तो दूसरी ओर उप–ठेके से बनने वाले संबंध हैं। स्वतंत्र और छद्‌म रूप से स्वतंत्र।**

**शब्दार्थ– विशिष्टता**–विशेषता। **नेटवर्क**–अंतर्जाल। **जटिल**–उलझी। **छद्‌म**–बनावटी।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश प्रभा खेतान विरचित लेख 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद समाज' से अवतरित है। यहाँ लेखिका ने भूमंडलीकरण में उत्पादन और प्रबंधन में आने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट किया है।

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि भूमंडलीकरण की एक विशेषता और भी है। उत्पादन के ढांचे का बहुराष्ट्रीय स्वरूप विकसित हो रहा है। कोई भी कंपनी एक राष्ट्र तक सीमित नहीं है। जिस प्रकार की बहुराष्ट्रीय कंपनियों स्थापित हो रही हैं, उसके परिणामस्वरूप एक जटिल प्रबंधन का ढांचा विकसित हो रहा है। उनके आपसी संबंधों में भी विविधता आई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों व्यवस्थापक ढांचा विकसित कर रही हैं। एक ओर तो राष्ट्र युद्धों के लिए गठजोड़ बने हैं तो दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से बनने वाले बहुराष्ट्रीय संबंध हैं। विभिन्न देशों में कंपनियाँ उत्पादन के लिए उप–ठेके देते हैं। ये संबंध बनावटी तौर पर स्वतंत्र दिखते हैं परंतु इनके पीछे भी राष्ट्रीय सरकारों की नीतियाँ रहती हैं।

**विशेष**–(1) भूमंडलीकरण में उत्पादन प्रणाली के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

(2) भाषा सरल, सहज व विचारपरक खड़ी बोली है।

(3) तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

(5) वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

(6) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**4. नियंत्रित अर्थव्यवस्था से पूँजीवाद की ओर अग्रसर होते हुए अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के संदर्भ में बाजारवाद के प्रति भारत का एक अलग दृष्टिकोण रहा है जो कि एशिया के अन्य देशों से भिन्न है। सबसे पहले, यदि एक ओर भारतीय नागरिक समाज का एक बड़ा हिस्सा भूमंडलीय स्तर पर संवाद करता रहा है, तो दूसरी ओर, इसकी जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा अविकसित ही रहा है। यहाँ का नव–उदारवादी मानस और अभिजात वर्ग स्वतंत्र व्यापार और सम्मिलित भूमंडलीय बाजार के प्रबल समर्थक रहे हैं। उनके अनुसार, बाजार और जनतंत्र के विस्तार से देश में ज्यादा समृद्धि, राजनीतिक स्वतंत्रता एवं जन–जीवन को सुरक्षा एवं समानता मिलेगी।**

**शब्दार्थ–अविकसित**–पिछड़ा। **अभिजात**–उच्च शिक्षित वर्ग। **समानती**–बराबरी।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश प्रभा खेतान विरचित लेख 'भूमंडलीकरण, घार्मिक समाज और पूँजीवादी समाज' से अवतरित है। यहाँ लेखिका ने भारत की नियंत्रित अर्थ व्यवस्था के दौर में भारतीय अभिजात वर्ग के चिंतन पर टिप्पणी की है–

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि भारत जब सरकारी नियंत्रण वाली अर्थव्यवस्था से भूमंडलीय मुक्त अर्थ व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाने लगा था, उस समय बाजारवाद और अपनी पंचवर्षीय योजना के विषय में भारत का अपना दृष्टिकोण संसार के अन्य देशों से भिन्न था। भारत का अभिजात्य समाज, विश्व की गतिविधियों से सीधे जुड़ा था, अन्य राष्ट्रों से सीधे संवाद कर रहा था। दूसरी ओर, अधिकांश जनता अत्यधिक पिछड़ी ही रही। भारत का नव–उदारवादी बुद्धिजीवी समाज और अभिजात वर्ग सम्मिलित भूमंडलीय बाजार का पक्का समर्थक था। इस वर्ग का मानना था कि इससे देश अधिक समृद्ध होगा, जनता को राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता मिलेगी।

**विशेष**–

(1) लेखिका ने स्पष्ट किया है कि भारत के बुद्धिजीवी और अभिजात वर्ग के लोग पहले से ही भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे, क्योंकि वे विश्व की गतिविधियों को जानते थे। देश के अधिकांश अनपढ़ पिछड़े लोग इससे अनभिज्ञ थे।

(2) भाषा सरल, सहज व विचारपरक खड़ी बोली है।

(3) तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

(5) वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

(6) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**5. उत्तर–स्वतंत्रता कालीन भारतीय अर्थव्यवस्या पर नेहरू के समाजवाद का असर पड़ा। नेहरू न केवल कार्ल मार्क्स के लेखन से प्रभावित थे, बल्कि समकालीन समाजवादी राष्ट्र यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो एवं सोवियत संघ से भी प्रभावित थे। 'हिंदी–चीनी भाई–भाई' का नारा नेहरू ने ही दिया था। नेहरू के अनुसार–सामंतवादी पृष्ठभूमि में जकड़े हुए भारत को मुक्त करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की जरूरत थी। जब तक राज्य में नियंत्रित व नियोजित अर्थव्यवस्था लागू नहीं होगी, तब तक आम आदमी के लिए समृद्धि संभव नहीं होगी। किंतु स्वतंत्रता के पांच दशक बाद नेहरू की समाजवादी संरचना में दरार पड़ती है और भारतीय अर्थव्यवस्था पर बाजारवाद का दबाव बढ़ता है। उत्तर–औपनिवेशिक भारत क्रमशः पूंजी की ताकत को स्वीकारने को बाध्य होता है–इसलिए कि विकासशील देश भी पूंजी का महत्त्व समझ रहे थे।**

**शब्दार्थ–सामंतवादी**–सामंतों की व्यवस्था, रोज–रजवाड़ों का शासन। **नियोजित**–योजनाबद्ध।

**प्रसंग**–प्रस्तुत गद्यांश प्रभा खेतान विरचित लेख 'भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवादी समाज' से अवतरित है। इस गद्यांश में लेखिका ने स्वाधीनता के पश्चात् पंडित नेहरू द्वारा अपनाई गई नियंत्रित आर्थिक विकास की नीति पर प्रकाश डाला है।

**व्याख्या**–लेखिका कहती है कि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् के समय में भारतीय अर्थव्यवस्था पर नेहरू के समाजवादी विचारों का प्रभाव था। नेहरू मार्क्स के विचारों से भी प्रभावित थे और यूगोस्लाविया के समाजवादी अध्यक्ष मार्शल टीटो तथा रूसी नेताओं से भी प्रभावित थे। यह कारण था कि उन्हें लगता था कि भारत को पिछड़ी सामंती व्यवस्था से मुक्त करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास अपेक्षित है। नेहरू चीन से भी प्रभावित थे इसीलिए उन्होंने 'हिंदी चीनी भाई–भाई' का नारा भी लगाया था। उनका मानना था कि जब तक भारत में नियंत्रित अर्थव्यवस्था लागू न होगी तब तक भारत की उन्नति संभव नहीं। पांच दशक तक नेहरू की समाजवादी अर्थव्यवस्था चली और फिर उसमें दरार पड़ने लगी। भारतीय अर्थव्यवस्था पर बाजारवाद का दबाव बढ़ता गया। उत्तर–औपनिवेशिक भारत भी पूँजी के महत्त्व को समझने लगा था। विकासशील देश भी पूंजी के महत्त्व को समझने लगे थे।

**विशेष** (1) भारत की नियंत्रित अर्थव्यवस्था से पूँजीवादी व्यवस्था में जाने की प्रक्रिया स्पष्ट की गई है।

(2) भाषा सरल, सहज व विचारपरक खड़ी बोली है।

(3) तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(4) प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

(5) वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।

(6) विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

**स्वयं आकलन हेतु अभ्यास प्रश्न**

1. लोभ यदि सामान्योन्मुख है तो प्रेम क्या है ?
2. किसका लोभ मानसिक व्याधि या व्यसन के रूप में होता है ?
3. 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हू, किसका कथन है ?
4. परवश होने का क्या अर्थ है ?

5. गांधी, कृष्ण, राम के जन्म विषयक महादेवी ने क्या कहा है ?

6. प्रभा खेतान के अनुसार भूमंडलीकरण का प्रारंभ कब हुआ था ?

## 24.4 सारांश

सामान्य तौर पर लोभ और प्रीति को परस्पर विरोधी भाव माना जाला है किन्तु शुक्ल जी का मानना है कि लोभ एवं प्रीति में समानता, तथा एकता के भाव होते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध कुटज एक लघु निबंध है जिसमें कुटज की इच्छाशक्ति का वर्णन देखने को मिलता है। संस्कृति कौर शिक्षा, महादेवी वर्मा जी का एक भाषण है जो उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिया था। भूमण्डलीकरण, धार्मिक समाज और पूँजीवाद प्रभा जी की का एक लेख है जिसने भूमंडलीकरण एवं पूंजीवाद पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

## 24.5 कठिन शब्दावली

**अलापना** – बोलना

**स्पृहा** – अभिलाषा

**चंचल** – अस्थिर

**निराश्रय** – बेसहारा

**विरक्त** – उदासीन

## 24.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. विशेषोन्मुख।
2. धन।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी।
4. चाटुकारिता।
5. यह सभी जन्म लेकर आए हैं न कि आकाश से उतरे हैं।
6. आज से 100 वर्ष पूर्व ही।

## 24.7 संदर्भित पुस्तकें

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं), चिंतामणि, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुटज, लोकभारती प्रकाशन।

## 24.8 सात्रिक प्रश्न

1. लोभ और प्रीति निबंध की व्याख्या कीजिए।
2. कुटज एक लघु निबंध है स्पष्ट कीजिए।
3. भूमंडलीकरण का विकास क्रम बताइए।

*****

बी०ए० हिन्दी
द्वितीय वर्ष

कोर्स कोडः HIND 203
DSC-ID (CBCS)

# हिन्दी गद्य साहित्य

इकाई 1 से 24

लेखक : फूला देवी
अविनाश कुमार
भीम सिंह

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ समरहिल, शिमला-05

# अनुक्रमणिका


| क्र.सं. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1. | उपन्यास का उद्भव एवं विकास | |
| 2. | जैनेन्द्र कुमार : जीवन परिचय | |
| 3. | त्यागपत्र : पाठपरक अध्ययन | |
| 4. | त्यागपत्र : व्याख्या भाग | |
| 5. | कहानी का उद्भव एवं विकास | |
| 6. | प्रेमचंद : जीवन परिचय | |
| 7. | नमक का दरोगा : पाठपरक अध्ययन | |
| 8. | जयशंकर प्रसाद : जीवन परिचय | |
| 9. | आकाशदीप : पाठपरक अध्ययन | |
| 10. | यशपाल : जीवन परिचय | |
| 11. | परदा : पाठपरक अध्ययन | |
| 12. | उषा प्रियंवदा : जीवन परिचय | |
| 13. | वापमी : पाठपरक अध्ययन | |
| 14. | नमक का दरोगा, आकाशदीप, परदा एवं वापसी कहानी : व्याख्या भाग | |
| 15. | निबंध का उद्भव एवं विकास | |
| 16. | रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय | |
| 17. | लोभ एवं प्रीति : पाठपरक अध्ययन | |
| 18. | हजारीप्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय | |
| 19. | कुटज : पाठपरक अध्ययन | |
| 20. | महादेवी वर्मा : जीवन परिचय | |
| 21. | संस्कृति और शिक्षा : पाठपरक अध्ययन | |
| 22. | प्रभा खेतान : जीवन परिचय | |
| 23. | भूमंडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद : तात्विक समीक्षा | |
| 24. | लोभ एवं प्रीति, कुटज, संस्कृति और शिक्षा एवं भूंमडलीकरण, धार्मिक समाज और पूंजीवाद निबंध : व्याख्या भाग | |